□ सम्प्रेरक—

- परमश्रद्धेय ज्योतिषाचार्य, पूज्य प्रवर्तक गुरुवर्य श्री कुन्दनमलजी म० सा०
- आशुकवि, मधुर व्याख्यानी पंडितरत्न मुनिश्री सोहनलालजी म० सा०

□ दिशानिर्देशक

- विद्याभिलापी पं० मुनिश्री वल्लभमुनि जी म० सा०

□ लेखक

- श्रीचन्द सुराना 'सरस'

□ सम्पादक-मण्डल

- श्रीमान् पंडित शोभाचन्द्र जी भारिल्ल
- श्री कन्हैयालालजी लोढा
- श्री रणजीतसिंह जी कुमट, I A S (जिलाधीश जयपुर)
- श्री रतनलाल जी जैन एम० ए०
- श्री शोभागसिंह जी चौधरी, एम० ए०

□ प्रकाशक

- श्री प्राज्ञ जैन स्मारक समिति, विजयनगर (राजस्थान)

□ प्राप्ति-स्थान

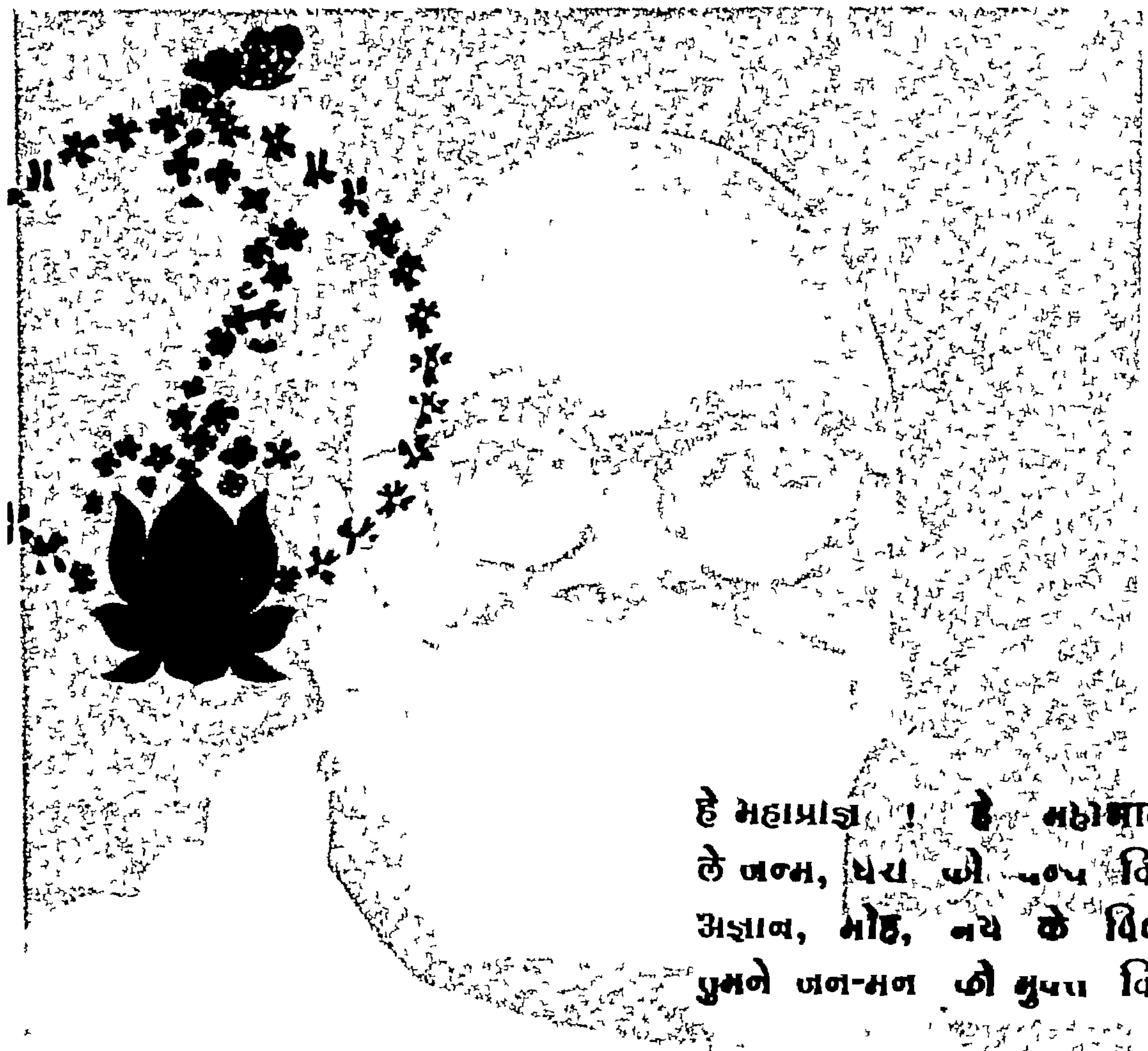
- श्री प्राज्ञ जैन स्मारक समिति, विजयनगर (राजस्थान)
- श्री श्वे० स्था० जैन स्वाध्यायी संघ, गुलाबपुरा (राजस्थान)

□ मुद्रक— दुर्गा प्रिंटिंग वर्क्स
दरेसी २, आगरा-४

□ मूल्य— २०) रुपये

□ प्रकाशन— वर्ष १९७६ नवम्बर

मालवर प्रवर्तक गुरुदेव श्री पन्नालाल जी महाराज



हे महाप्राज्ञ ! हे महाभाग !
ले जन्म, धरा को धन्य किया ।
अज्ञान, मोह, मद के विष से
तुमने जन-मन को मुक्त किया ।

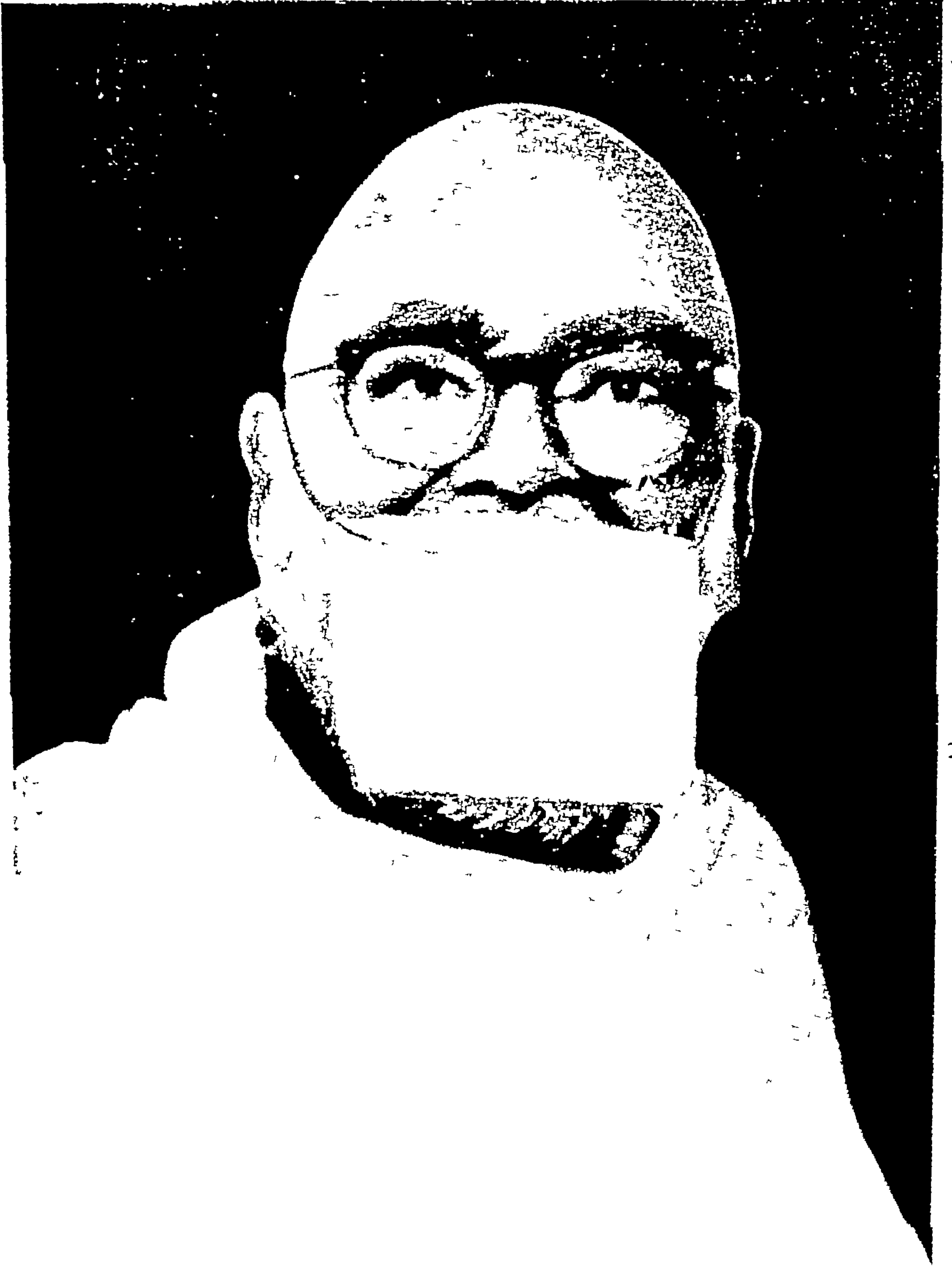
नव जागृति का उद्बोधन दे
शिक्षा औ सद्संस्कार दिये ।
अगणित जीवों को अभयदान
करुणा की रसमय धार लिये ।

सचमुच में थे तुम वीरपुत्र
सदा सत्य पर रहे अटल ।
कोटि-कोटि है नमन तुम्हें
स्वीकृत हो श्रद्धा सुम-निर्मल ।

— 'सरस'

जन्म	दीक्षा	स्वर्गवास
वि० सं० १९४५ भादवासुदि ३ शनिवार (किनतसर)	वि० सं० १९५७ वैशाखसुदि ६ शनिवार, (आनन्दपुर)	वि० सं० २०२४ माघसुदि ५ शनिवार (विजयनगर)

प्राज्ञवर प्रवर्तक गुरुदेव श्री पन्नालाल जी महाराज



जन्म :	दीक्षा :	स्वर्गवास
वि० स० १९४५ भादवासुदि ३	वि० स० १९५७ वैशाखसुदि ६	वि० स० २०२४ माघसुदि ५
शनिवार (फीतलसर)	शनिवार, (आनन्दपुर)	शनिवार (विजयनगर)

प्रकाशकीय

"भूतल पर मानव जीवन की कथा मे सबसे बडी घटना उसकी आधिभौतिक सफलताएँ अथवा उसके द्वारा बनाये गये और बिगाडे हुए साम्राज्य नही, बल्कि सच्चाई और भलाई की खोज के पीछे उसकी आत्मा द्वारा की हुई युग-युग की प्रगति है। जो व्यक्ति आत्मा की इस खोज के प्रयत्नो मे भाग लेते हैं उन्हे मानवीय सभ्यता के इतिहास मे स्थाई स्थान प्राप्त हो जाता है। समय महायोद्धाओ को, अन्य अनेक वस्तुओ की भाति बडी सुगमता से भुला चुका है, परन्तु सतो की स्मृति कायम है।"

ऐसे महापुरुष ससार की सर्वोत्तम विभूति हैं—अनमोल निधि हैं। अज्ञान के अध-कार मे भटकने वाले प्राणियो के लिए दिव्य प्रकाश-पुंज हैं। वे आत्म-साधना मे निरत रहकर भी विश्व के महान् उपकर्त्ता होते हैं, क्योकि उनकी आत्मा विश्वात्मा बन जाती है। ऐसे सतो का स्मरण, स्तवन, गुणगान मानव जाति के लिए महान मगल-विधान है।

सम्यग्ज्ञान महान् है। इसका मूल्य अनन्त है। मानव ने जो सर्वोच्च चीज प्राप्त की है, वह सम्यग्यज्ञान ही है। यही वह एकमात्र रत्न है जो जन्म-जन्मान्तर साथ रहता है। प्लेटो ने इसे समस्त विज्ञानो का विज्ञान माना है एव इसका स्थान हृदय मे स्वीकार किया है न कि मस्तिष्क मे। मस्तिष्कीय ज्ञान से किये गए निर्णय अपूर्ण एव गलत हो सकते हैं। जिस आत्मा मे सम्यग्ज्ञान नही है उस आत्मा का चारित्र भी सम्यग्चारित्र नही हो सकता। शास्त्रो ने भी **'नाणेण विना न हुंति चरणगुणा'** कहा है।

परम श्रद्धेय, महामहिम, सत शिरोमणि, स्व० पूज्य प्रवर्तक गुरुदेव श्री पन्नालाल जी महाराज साहब 'प्राज्ञ' भी एक ऐसे ज्योति पुज महापुरुष थे, जिन्होने आत्म-विकास के साथ-साथ अनेकानेक भव्यात्माओ को भी सम्यग्ज्ञान का प्रकाश उपलब्ध कराया था। वे स्वय सूर्य के समान तेजस्वी एव प्रतिभावान तो थे ही, साथ ही सूर्य से विकसित कमल की भाति विषय-कषाय रूपी पक से निर्लेप, उन्नत एव आत्मगुणो से पूर्ण प्रकाश-मान भी थे। **सज्झायम्मि रओ सया'** इस शास्त्र-वचन के अनुसार वे सदैव स्वाध्याय मे ही रत रहते थे। इससे पूज्य गुरुदेव श्री ने अन्तर्मुखता प्राप्त की। जो मनुष्य स्वाध्याय से जितनी अन्तर्मुखता प्राप्त करेगा उतनी ही उसकी वृत्ति सात्विक और निर्मल होगी एव उतनी ही दूर की वह सोच सकेगा, तथा उतने ही दूर के परिणामो की सभावना

देख सकेगा। पूज्य गुरुदेव श्री ने समाज की अव्यवस्थित दशा का अनुमान लगाया एव उन्होने स्वाध्याय का महत्त्व हृदयगम कराते हुए ज्ञान साधनापूर्वक लोकाशाह के समान आचारवान बनकर धार्मिक क्रान्ति करने का शखनाद समाज मे फूँका। उन्होने अज्ञान को मन की रात कहा, ऐसी रात जिसमे न चाँद हैं न तारे।

गुरुदेव श्री पन्नालाल जी महाराज क्रान्तिकारी व्यक्तित्व लेकर प्रकट हुए थे। उनमे स्वस्थ समाज-निर्माण एव आदर्श व्यक्ति-निर्माण की तडप थी। वे समाज एव व्यक्ति को इस विन्दु तक ले जाना चाहते थे जहा वैषम्य का अभाव हो, गतानुगतिकता न हो एव मानव चेतना मुक्त होकर अपने सामाजिक व राष्ट्रीय दायित्व का निर्वाह करने मे सक्षम हो। वे चाहते थे कि व्यक्ति मे सहानुभूति व सदाशयता के भाव जगे, परस्पर घृणा एव स्वार्थ को त्याग कर आत्मोन्नति के लिए चिन्तन करें एव तदनुकूल आचरण करें, उनमे आन्तरिक चेतना एव मानसिक तटस्थता के भाव पैदा हो। पूज्य गुरुदेव श्री के अधिकाश उपदेश प्राय इन्ही विन्दुओ को लेकर हुआ करते थे। वे जव तक जिये, अपने लिए नही, वरन् एक ध्येय विशेष के लिए जिये एकदम अटल वैरागी, महान् त्यागी एव अनासक्त वनकर। उनके जीवन-दर्शन की यही पृष्ठभूमि उन्हे सामाजिक क्रान्ति की ओर ले गई। वे सवमे चेतनता, गतिशीलता और पुरुषार्थ की भावना का अभ्युदय देखना चाहते थे। क्या ठीक है ? इसे देखकर फिर उसे नही करने मे उन्हे साहस का अभाव प्रतीत हुआ। अत जिसे आत्मप्रज्ञा के अनुसार सही समझा उसी ओर उनके कदम वढ गए।

पूज्य पन्नालालजी महाराज साहव ने सिद्धान्तो से सौदेवाजी करना कभी स्वीकार नही किया, लेकिन शुष्क सिद्धान्तवादी वनेकर जीवन की गतिशीलता को भी इन्कार नही किया। उन्होने सिद्धान्तो के ढांचे को पवित्र-जीवन के सजीव सौन्दर्य से सुडौल और सुसज्जित किया। यही कारण है कि जोश के क्षणो मे जव व्यक्ति वडे-वडे काम करने की कल्पना करता है वहा वे सिद्धान्तो के वल पर छोटे-छोटे प्रयासो से सामान्य अवसरो पर भी महान् से महानतर कार्य करने मे सफल हुए। उनकी सफलताओ को अनेको ने विस्मित होकर देखा एव कइयो ने सम्मानजनक दृष्टि से सराहा, किन्तु उनका ध्यान स्व-पूजा, यश कीर्ति आदि से सर्वथा दूर आत्म साधना की ओर ही केन्द्रित रहा—"**पूयणा पिट्ठतो कता जो ठिया सुसमाहिया।**" के अनुसार वे सदैव समाधिस्थ ही रहे।

सत्यमार्ग का अनुसरण करते हुए यदा-कदा कडुए-मीठे घूट पीने का अवसर भी आया किन्तु **मेरुव्व वाएण अकपमाणो** के समान ही अटल रहकर समताभाव से सव कुछ सहन किया। चैनिग के अनुसार 'महान् व्यक्ति वह है जो अटल प्रतिज्ञा के साथ सत्य का अनुसरण करता है, जो अन्दर और वाहर के सभी प्रलोभनो का प्रतिरोध करता है, जो भारी से भारी वोझो को खुशी से वहन करता है, सत्य, नेकी और धर्म पर जिसकी निर्भरता सर्वथा अडिग है।" स्वर्गीय पन्नालाल जी महाराज इसके प्रतिमान थे। उन्हें '**अवि अप्पणो वि देहंमि नायरंति ममाइय**' के अनुसार अपने देह पर

भी ममत्व नहीं था फिर वे उच्चपद, गरिमा, यशःकीर्ति आदि प्रलोभनो के सामने क्यो झुकते।

"सन्त सौ युगो का शिक्षक होता है।" एमर्सन के इस कथन मे आन्तरिक हृदय की सचाई बोल रही है। वे युग के पीछे-पीछे नही चलते, वरन् युग उनका अनुगमन करता है। अपने पुरुष को जाग्रत करके पुरुषोत्तम करना यही उनकी साधना का मूलमंत्र होता है। इसी के सहारे वे समय की रेत पर अमिट चरण-चिह्न अंकित कर जाते हैं जिनका अनुसरण कर मानवता अपने आपको कृतकृत्य अनुभव करती है। वे वाणी मे नही जीते, वरन् आचरण मे जीते हैं। वे कहने के लिए लिखते कम हैं परन्तु लिखने योग्य करते अधिक हैं। पूज्य पन्नालाल जी महाराज साहब का जीवन इसका सच्चा प्रमाण था। उन्होंने समाज के शिक्षक का कार्य बखूबी निभाया। मालाकार जाति मे जन्म लेने के कारण चतुर माली के समान समाज के उद्यान से अवाछनीय झाड-झखाडो को उखाडने मे हिचक नही की ताकि रक्षणीय की रक्षा हो सके, तभी तो आडम्बर-रहित, रुढिमुक्त, स्वस्थ समाज का सुन्दर पौधा अपना सौन्दर्य बिखेर सका।

ऐसे ही भव्य महापुरुष के प्रति अपनी यत्किंचित् हार्दिक श्रद्धा व्यक्त करने की दृष्टि से ही उनकी विशेषताओ से युक्त प्रामाणिक जीवन-परिचय-ग्रथ प्रकाशित करने का आग्रह भक्तजनो की ओर से विगत वर्षो मे अत्यधिक रूप से होता रहा है। श्री प्राज्ञ जैन स्मारक समिति विजयनगर एव श्री श्वेताम्बर स्थानकवासी जैन स्वाध्यायी सघ गुलाबपुरा के वार्षिक अधिवेशनो मे भी तत्सम्बन्धी कई बार चर्चाएँ हुई, किन्तु अपरिहार्य कारणो से बात टलती ही रही। जीवन वृत्त की सामग्री को भी पूर्ण-लेखन के अभाव मे व्यवस्थित रूप से सकलित करना था। इधर श्रद्धालु भक्तो का आग्रहपूर्ण दबाव बढता जा रहा था, अत परम श्रद्धेय, ज्योतिर्विद गुरुदेव श्री कुन्दनलाल जी महाराज साहब आदि सतो के भीलवाड़ा चातुर्मास के समय इस योजना को अन्तिम व व्यवस्थित रूप दिया गया। लेखन कार्य प्रारम्भ हुआ, किन्तु शुभ कार्यो की पूर्ति में यदा-कदा विघ्न भी उपस्थित होते ही हैं। तदनुसार सुलेखक विद्वान् श्रीचन्द जी सुराणा व स्थानीय कार्यकर्ताओ की व्यस्तता के कारण प्रकाशन-कार्य मे अत्यधिक विलम्ब होता गया। इधर स्वाध्यायी सदस्यो के बार-बार स्मरण-पत्र आते रहे अत विगत कुछ समय से इसमे त्वरित गति लाकर कार्य को सम्पन्न कराया गया।

हमे अत्यधिक प्रसन्नता है कि अति कार्य व्यस्त होने के बावजूद भी समाज के जाने-माने लेखक आदरणीय विद्वद्वर श्री श्रीचन्द जी साहब सुराणा ने उपलब्ध सामग्री को व्यवस्थित रूप देने एव उसे यथाक्रम लिपिबद्ध कर सजाने सवारने के लिए स्वीकृति प्रदान कर अनुग्रहीत किया तथा यथासमय इसे सम्पन्न भी किया। वस्तुत उनके परिश्रम से ही यह ग्रन्थ समय पर प्रकाशित हो सका है। अत उनके प्रति हम आभारी हैं।

विद्वद्वरेण्य आदरणीय प० श्री शोभाचन्द्र जी साहब भारिल्ल ने भी समय निकाल कर सम्पूर्ण पाण्डुलिपि एव सकलित सामग्री का अवलोकन कर सुझावो से लाभान्वित

किया एव समय-समय पर प्रकाशनार्थ प्रेरणा देते रहे। इसी प्रकार श्री रतनलाल जी जैन व कन्हैयालाल जी लोढा ने भी प्रारम्भिक सामग्री को लिपिवद्ध कर प्रकाशन योग्य रूप देने का श्री गणेश किया तथा आदरणीय रणजीतसिंह जी साहव कुंभट, जिलाधीश जयपुर ने भी ग्रथ को सर्वाङ्ग-पूर्ण वनाने से आवश्यक सुझाव प्रदान किये तदर्थ हम उनके आभारी हैं।

परम श्रद्धेय, राजस्थानकेसरी अध्यात्मयोगी श्री पुष्कर मुनि जी महाराज ने भूमिका लिख कर जो अनुग्रह किया है, उसके लिए हम किन शब्दो मे आभार मानें। उनके इस अनुग्रह के लिए तो 'गिरा अनयन नयन विनु वानी' ही कहा जा सकता है। उनका आशीर्वाद हमारे लिए अपूर्व पाथेय का काम देगा, ऐसी पूर्ण आशा है।

ऐसे ही, मन से सरल एव स्वभाव से सौम्य स्वर्गीय गुरुदेव के प्रति अपनी हार्दिक श्रद्धा व्यक्त करने के लिए औद्योगिक, व्यावसायिक व शैक्षणिक दृष्टि से महत्वपूर्ण विजयनगर मे विद्यानुरागी नागरिको ने उनकी स्मृति को चिरस्थायी रूप देने के लिए एक महाविद्यालय स्थापित करने का शुभ सकल्प किया। गुरुदेव श्री के अद्‌भुत, चमत्कारी एव साधनामय जीवन से प्रेरणा पाकर यह सकल्प कार्य रूप मे परिणत हुआ एव विगत ५ वर्षो से उनकी पुण्य स्मृति मे 'श्री प्राज्ञमहाविद्यालय' के नाम से एक प्रज्ञादीप जगमगा रहा है। इस महाविद्यालय के निर्माणार्थ, गुरुभक्ति में लीन सुश्राविका श्रीमती सुन्दर कवरवाई धर्मपत्नी स्व० दृढधर्मी सुश्रावक श्रीमान् विरदीचन्द जी सा० चोरडिया की प्रेरणा से ४ बीघा जमीन श्री प्राज्ञ जैन स्मारक समिति को श्रीमान् विरदीचन्द जी, गुलावचन्द जी सा० चोरडिया विजयनगर वालों ने भेंट की है। इस भूमि पर आज महाविद्यालय का मुख्य भवन निर्मित हो चुका है एवं शीघ्र ही सिद्धान्त शाला-भवन का निर्माण कार्य भी प्रारम्भ होने वाला है।

स्व० पूज्य गुरुदेव के प्रति अपनी हार्दिक श्रद्धा व्यक्त करने के लिए अभी २ नवम्वर ७६ से 'श्री प्राज्ञ वालमन्दिर' की स्थापना इस ध्येय से की गई है कि इस क्षेत्र के नन्हे मुन्नो मे भी नैतिक आचार-विचार के प्रति इस प्रकार आकर्पण उत्पन्न किया जा सके कि वे गौरवमय जीवन जी सके एव राष्ट्र के भावी नागरिको का जीवन शुद्ध व सात्विक वन सके। इसी प्रकार श्री प्राज्ञ पुस्तकालय भी विजयनगर मे ७ वर्षों से निरन्तर कार्यरत है।

श्री प्राज्ञ महाविद्यालय मे छात्रो की सख्या वढ जाने से वाहर से आने वाले छात्रो के आवास की समस्या उपस्थित हुई जिसकी पूर्ति हेतु परमश्रद्धेय, गुरुभक्त धर्म प्रेमी सुश्रावक श्रीमान् रामसिह जी साहव चौधरी ने श्री प्राज्ञ जैन स्मारक समिति के तत्वावधान मे उनके स्व० पिताजी श्रीमान् चम्पालाल जी साहव चौधरी की स्मृति मे चम्पालाल चौधरी जैन छात्रावास का निर्माण करवाने का सकल्प किया। परम हर्प है कि इस छात्रावास का शिलान्यास दिनांक २९ जनवरी १९७७ को पद्मश्री सेठ कस्तूरभाई लालभाई अहमदावाद निवासी के कर-कमलो से सम्पन्न होने वाला है।

छात्रावास भवन का निर्माण कार्य भी महाविद्यालय की साधना भूमि के सामने दानवीर श्रावक श्रीमान् मिश्रीलाल जी मेघराज जी साहब तातेड एव कुन्दनलाल जी हुक्मचद जी साहब कोठारी द्वारा श्री प्राज्ञ जैन स्मारक समिति को प्रदत्त भूमि पर शीघ्र ही प्रारम्भ होने वाला है । इस हेतु उक्त दानदाता महानुभावों के प्रति हम आभारी हैं।

आदरणीय सेठ श्री रामसिंह जी साहब चौधरी इस क्षेत्र की विशेष विभूति हैं। जिन्होने अपने पुरुषार्थ एव कौशल से व्यावसायिक क्षेत्र मे महत्वपूर्ण प्रगति कर इस क्षेत्र के मस्तक को गौरव से ऊचा उठाया है। उनकी उदारता, दानवीरता एव सरलता अनुकरणीय है। पूज्य गुरुदेव श्री का प्रेरणामय जीवन-चरित्र ग्रथ अति शीघ्र ही प्रकाशित होकर भक्तजनो के हाथो मे पहुँचे ऐसे उनके उत्कठामय आग्रह से ही इस ग्रथ का प्रकाशन शीघ्र सम्भव हो सका। इस हेतु फोन, पत्र एव समक्ष वार्ता द्वारा उनका आग्रह बराबर चलता रहा। इसी के शुभ परिणाम स्वरूप यह ग्रथ पाठको के कर कमलो मे पहुँच सका है। हमे अत्यन्त प्रसन्नता है। कि इस ग्रन्थ का विमोचन सुप्रसिद्ध त्यागमूर्ति, दानवीर सेठ सा० श्री गुमानमल जी साहब चोरडिया जयपुर निवासी के करकमलो से होना प्रस्तावित हुआ है । आशा है यह ग्रन्थ समस्त गुरुभक्त श्रावको के हाथो मे पहुँचकर अमर प्रेरणा स्रोत बनेगा।

प्रकाशन-समिति व व्यवस्था समिति के सभी सदस्यो के प्रति भी मैं अपना आभार व्यक्त करता हूँ, जिन्होने समय-समय पर मार्गदर्शन देकर इस कार्य को सम्पन्न कराया। गुरुदेव के उन श्रद्धालु भक्तजनो का भी, मुख्यत सर्वश्री अर्जुनलाल जी साहब डागी, किस्तूरचन्द जी साहब नाहर, शांतिलाल जी साहब पोखरणा आदि का भी बहुत-बहुत आभारी हूँ जिनके प्रेमपूर्ण आग्रह एव प्रयत्नो के कारण ही यह प्रकाशन-कार्य सम्भव हो सका है। प्राज्ञ जैन स्मारक समिति विजयनगर एव श्री स्वाध्यायी सघ गुलाबपुरा के पदाधिकारियो व कार्यकर्ताओ को धन्यवाद देना स्वप्रशसा करना होगा क्योकि इन आत्मीय-बन्धुओ के परिवार सदृश मधुर सम्पर्क ने इसे सफलता के सोपान पर रखा। हम दुर्गा प्रिंटिंग वर्क्स, आगरा के सचालक श्रीयुत पुरुषोत्तमदास जी भार्गव का भी हार्दिक आभार मानते हैं जिन्होंने इतने कम समय में पुस्तक का सुन्दर मुद्रण कर हमारे कार्य को सम्पन्न कराया।

मत्री

श्री प्राज्ञ जैन स्मारक समिति

प्रस्तुत ग्रन्थ प्रकाशन में अर्थ सहयोग दाता महानुभावों की शुभ नामावली

१ श्रीमान् रामसिंह जी साहब चौधरी, अहमदाबाद
२ श्रीमान् छोटूलाल जी अजीत सिंह जी, गुलाबपुरा
३ श्रीमान् अर्जुनलाल जी मिश्रीलाल जी डागी, भीलवाडा
४ श्रीमान् अमोलक चन्द जी कावडिया, देवरिया
५. श्रीमान् सन्तोषसिंह जी उमरावसिंह जी आजाद सिंह जी चौधरी, फूलियाकलाँ
६ श्रीमान् मोतीलाल जी उमरावसिंह जी कर्णावट, बिजयनगर
७ श्रीमान् भैरुसिंह जी चौधरी, ब्यावर
८. श्रीमान् भैरुलाल जी चादमल जी खेराडा, अजमेर
९. श्रीमान् मिश्रीलाल जी नौरतमल जी चौधरी, भीलवाडा
१०. श्रीमान् रतनलाल जी प्रेमचन्द जी चत्तर, जयपुर
११. श्रीमान् मदनलाल जी मोहनलाल जी पोखरणा, भीलवाडा
१२ श्रीमान् मदनलाल जी खीवेसरा, गोविन्दगढ
१३. श्रीमान् गुलाबचन्द जी नौरतमल जी लुणावत, बिजयनगर
१४ श्रीमान् गुलाबचन्द जी ताराचन्द जी श्रीमाल, कनकपुर
१५ श्रीमान् उदयलाल जी बावेल, अटाली
१६ श्रीमान् बिरदीचन्द जी गुलाबचन्द जी चोरडिया, विजयनगर
१७ श्रीमान् भूरालाल जी ताराचन्द जी चौपडा, बिजयनगर
१८. श्रीमान् एवं श्रीमती मदनलाल जी चौधरी साथाना वाले, इन्दौर
१९. श्रीमान् फतहचन्द जी सुगनचन्द जी तातेड, बिजयनगर
२०. श्रीमान् तेजमल जी महता विजयनगर
२१. श्रीमान् शान्तिलाल जी पारख, जोधपुर
२२. श्रीमान् धीसालाल जी भण्डारी, ब्यावर
२३ श्रीमान् नाथू लाल जी मदनलाल जी बाफणा, भीलवाडा
२४ श्रीमती मातेश्वरी श्रीमान् नौरतमल जी चौधरी, भीलवाडा
२५. श्रीमान् जोरावरमल जी लादूलाल जी डागी, भीलवाडा
२६ श्रीमान् शोभागमल जी कोठारी, जालिया कलाँ
२७ श्रीमान् बिरदीचन्द जी भँवरलाल जी पगारिया, अजमेर

२८. श्रीमान् दौलतराम जी शिवचरणदास जी खण्डेलवाल, विजयनगर
२९. श्रीमान् मागीलाल जी घमाणी, कवलियास
३०. श्रीमान् तेजमल जी वाफणा, भीलवाडा
३१ श्रीमान् शिवराज जी ताराचन्द जी वोहरा, विजयनगर
३२ श्रीमान् डा. जयप्रकाश जी गुप्ता, विजयनगर
३३ श्रीमान् घीसालाल जी रांका, खामोर
३४ श्रीमान् घीसालाल जी शान्तिलाल जी कुमठ, जामोला
३५ श्रीमान् सुखराज जी कोठारी, टोंगी
३६ श्रीमान् मिलापचन्द जी घेवर चन्द जी तातेड़, राताकोट
३७ श्रीमान् अमरसिंह जी पानगडिया, सरेरी वाघ
३८ श्रीमान् फतहलाल जी खटोड, सरेरी वाघ
३९ श्रीमती कंचन वाई जी, भिनाय
४० श्रीमती सुगन वाई जी वुरड, गुलाबपुरा
४१ श्रीमान् कनकराज जी कावडिया, पूना
४२ श्रीमान् मोहनलाल जी खाविया, छोटी पादू
४३ श्रीमान् हरिसिंह जी लोढा, अरवड
४४. श्रीमान् मोतीलाल जी जयसिंह जी, जयसिंहपुरा
४५. श्रीमान् रतनलाल जी कांठेड, खामोर
४६ श्रीमान् मूलचन्द जी सुराणा, कवलियास
४७ श्रीमान् सुगनचन्द जी डोसी, ब्यावर
४८. श्रीमान् लालचन्द जी कांठेड़, ब्यावर
४९ श्रीमान् जीवराज जी जवरचंद जी सा० चोरडिया, मेडता





अनुयोगद्वार सूत्र मे श्रमण भगवतों के बहु आयामी बहुगुण सपन्न जीवन को बारह उपमाओ से उपमित कर उसके चौरासी विरल गुणो का सुन्दर वर्णन किया गया है।

सर्प, पर्वत, अग्नि, सागर, कमल आदि उपमानो मे से प्रत्येक की सात-सात विशेषताए बताकर उनके साथ श्रमण जीवन की तुलना की गई है। वहां कमल के साथ भी श्रमण जीवन की सात तुलनाए की है

१ कमल कीचड मे उत्पन्न होकर भी उससे निर्लेप रहता है। इसी प्रकार श्रमण भी संसार पक मे जन्म लेकर भी विषय-भोगो से निर्लिप्त रहता है।

२. कमल सभी को मधुर सुगध देता है। श्रमण भी सभी को ज्ञान की सुगध देते रहते हैं।

३. कमल की सौरभ चारो दिशाओ मे व्याप्त होकर सभी को प्रसन्नता देती है। श्रमण की शाति और समत्व-सौरभ भी चहुँ ओर परिव्याप्त होकर सभी को प्रफुल्लता देती रहती है।

४ कमल- सूर्य एव चन्द्रमा को देखकर खिल उठता है। श्रमण भी ज्ञानी, तपस्वी आदि गुणिजनो को देखकर आनन्द से मुदित हो उठता है।

५ कमल प्रकाश व अधकार मे, सर्दी व गर्मी मे सदा प्रसन्न रहता है। श्रमण भी सुख-दुख मे सदा समभावी रहता है।

६ कमल सदा सूर्य व चन्द्रमा की तरफ मुख किये रहता है। श्रमण का ध्यान भी सदा प्रभु आज्ञा (गुरु आज्ञा) पर केन्द्रित रहता है।

७ कमल—स्वभावत. ही उज्ज्वल व निर्मल होता है। श्रमण भी स्वभावत. शुक्ल एव धर्म ध्यान मे रत रहता है। तथा निर्मल हृदय वाला होता है।

कमल के इन सात विशिष्ट गुणो पर चिन्तन करते-करते मेरा ध्यान स्व० प्रवर्तक श्री पन्नालाल जी महाराज के जीवन पर केन्द्रित हो जाता है। उनका जीवन कमल से किसी प्रकार कम नही था। आगमधर आचार्यो ने कमल और श्रमण के जिन गुणो की समानता स्वीकार की है, वे गुण प्रवर्तक श्री जी के जीवन मे साकार हुये थे ऐसा मेरा व्यक्तिगत अनुभव है।

वे सदा कमल की तरह अनासक्त वृत्ति थे।
सभी को ज्ञान सौरभ, शिक्षा की पराग लुटाते थे।
वे गुणानुरागी थे।
वे स्थिरचेता स्थितप्रज्ञ थे।
शास्त्र एवं गुरु आज्ञा पर उनका जीवन केन्द्रित था।
उनका हृदय बडा निर्मल और उज्ज्वल था।

इसके साथ ही उनके जीवन की अन्य अनेक विशेषताएं भी थी जो आज हमारी स्मृतियो मे छाई हुई हैं।

वे निर्भीक वृत्ति के स्पष्ट वक्ता थे। आगम की भाषा मे वे स्वय अभयदर्शी व अभय-प्रदाता थे।

समाज मे ज्ञान, सुशिक्षा, स्वाध्याय आदि के प्रचार हेतु उन्होंने पहल की, अपनी संपूर्ण शक्ति का नियोजन किया और स्थान-स्थान पर शिक्षा केन्द्रो व स्वाध्यायी सघों की स्थापना का स्वप्न देखा, उसे साकार भी किया।

श्रमण सघ के सगठन मे उन्होंने अद्‌भुत योगदान किया। चार तीर्थ की सेवा मे, वात्सल्य भावना मे वे अप्रतिम थे।

दूरदर्शिता, गभीरता, चिन्तनशीलता और वचन-पटुता उनकी विलक्षण थी।

उनके साथ स्व० गुरुदेव महास्थविर श्री ताराचन्द जी महाराज के बहुत ही घनिष्ठ व मधुर सम्बन्ध थे। मैं भी अनेक बार उनके सम्पर्क मे आया और उनके विरल गुणों की अमिट छाप मेरे हृदय पर अकित हुई।

स्व० प्रवर्तक श्री जी का जीवन-चरित्र मेरे सामने है। इस सुन्दर प्रवाहपूर्ण जीवन चरित्र मे उनके दिव्य गुणों को, उनके बहुआयामी व्यक्तित्व और अमर कृतित्व को सुन्दर सचोट शब्दो मे बाधने का जो स्तुत्य प्रयास किया गया है, वह एक ऐतिहासिक आवश्यकता की सम्पूर्ति है। यह बहुत पहले ही हो जाना चाहिए था, पर कभी-कभी विलम्ब भी लाभ के लिए हो जाता है, सभवत पहले लिखा जाता तो श्री 'सरस' जी की लेखिनी का चमत्कारी स्पर्श इस जीवन-चरित्र को न मिला होता, जो अब मिला है। और इस लेखन मे, जीवन मे वास्तव मे ही जीवतता आ गई है। यथार्थता को भाषा का समर्थ सहारा मिल गया, या यो कहूँ सत्य को सुन्दरता का परिवेश मिल गया, मणि को सोने का सुयोग मिल गया। उस ऊर्जस्वल जीवन को अभिव्यक्त होने के लिए ऐसी ही प्राणवान मंजी हुई भाषा की जरूरत थी जो मिल गई।

मैं इस जीवन-चरित्रन लेख के प्रेरक प्रवर्तक श्री कुन्दनमल जी महाराज को भी धन्यवाद देता हूँ कि वे इस प्रकार गुरु-ऋण से उऋण होने की दिशा मे बढ रहे हैं। साथ ही लेखक स्नेही श्रीचन्द जी सुराना को भी कि उन्होने इतनी तन्मयता, भावप्रवणता, श्रद्धा और सजगता के साथ प्रवर्तकश्री जी के महासागरीय जीवन को शब्दो का तटबध देने मे समर्थ हुये हैं।

वास्तव मे यह जीवन-चरित्र न होकर एक प्रेरणा स्रोत है, एक आदर्श पोथी है जिसे पढ़कर पाठक कुछ प्राप्त कर सकेगा, आनन्द भी, उल्लास भी और नया मार्गदर्शन भी, इसी शुभाशा के साथ।

पुष्कर मुनि



जैनरत्न दानवीर सेठ श्री गुमानमल जी चौरड़िया
जयपुर

लेखकीय

भगवान महावीर के परिनिर्वाण को २५०० वर्ष पूर्ण हो चुके। इस ढाई हजार वर्ष के दीर्घकाल मे जैन गगन मे भले ही किसी सहस्र-रश्मि सूर्य का उदय नही हो सका पर यह सत्य है कि युग-युग मे अनेक ज्योतिष्मान नक्षत्र उदित होकर अधकार को ललकारते रहे है। अपने प्रभामडल से आलोक रश्मिया बिखेर कर विश्वयात्री को पथ-दर्शन तो कराते ही रहे हैं। इन ज्योतिष्मान नक्षत्रो के प्रभापुंज से जैन-गगन का ही क्या, समस्त धार्मिक जगत का अधकार छटता रहा है और ज्ञान-तप-त्याग-सेवा-सहिष्णुता और सद्भावना की प्रकाश किरणें भूमडल पर फैलती रही हैं।

आज से लगभग दद वर्ष पूर्व (वि० स० १६४५) मे एक ऐसा ही ज्योतिष्मान दिव्य नक्षत्र इस गगनागण पर अवतरित हुआ था, जिसने अपनी आलोक रश्मिया बिखेर कर दूर-दूर क्षितिज तक का अधकार मिटाया, अज्ञानमय अधविश्वास और रूढियो के घने कोहरे मे डूबे मानव समूह को प्रकाश का पथ दिखाया, जागरण का सदेश सुनाया और गतिशीलता का मत्र देकर उसे प्रगति-पथ पर बढ जाने को प्रोत्साहित किया। वह महान श्रमण-नक्षत्र था—प्रवर्तक श्री पन्नालाल जी महाराज।

प्रवर्तक श्री पन्नालाल जी महाराज एक अद्भुत तेजस्वी व्यक्तित्व के धनी सत थे। वे स्वय आचार्य न होते हुए भी अनेक प्राचीन आचार्यों की पावन परम्परा के साकार प्रतिनिधि थे। उनके व्यक्तित्व मे आचार्य हेमचन्द्र, आचार्य हीरविजय सूरि जैसे निर्भीक, समाज सघटक तथा अहिंसा प्रचारक महान आचार्यो के दिव्य गुणो का स्पष्ट प्रतिबिम्व झलक उठा था। वे समाज सघटक, शिक्षा-प्रचारक, अहिंसा के पुजारी और शाति एव समन्वय के कट्टर पक्षधर होते हुए भी एक महान क्रान्तद्रष्टा सत थे। वे जीवनभर रूढियो से लड़ते रहे, क्राति की मशाल लिये घूमते रहे। समाज को निर्भीक, स्वावलम्बी और सुशिक्षित बनाने मे उनका योगदान अद्भुत रहा है।

प्रस्तुत लेखन

तीन वर्ष पूर्व प्रवर्तक श्री पन्नालाल जी महाराज के प्रधान शिष्य प्रवर्तक मुनि श्री कुन्दनमल जी महाराज की तरफ से मुझे एक आदेश मिला था कि महाप्राज्ञ श्री पन्नालाल जी महाराज का जीवन चरित्र लिखना है। मैं महावीर निर्वाण शताब्दी के कुछ अन्य लेखन कार्यों मे व्यस्त था अत वह आदेश शिरोधार्य न कर सका। एक वर्ष बाद पुन प्रवर्तक श्री जी की आज्ञा लेकर श्री रतनलाल जी जैन आदि कार्यकर्ता आगरा आये और इस कार्य की जिम्मेदारी मुझे स्वीकारने का आग्रह करने लगे।

आज्ञा गुरूणामविचारणीया कालिदास का यह कथन स्मृतियो मे आया और मैंने कुछ सकोच के साथ इसे स्वीकार कर लिया। वैसे जो सामग्री मुझे श्री कुन्दनमल जी महाराज की तरफ से मिली, वह इतनी परिपूर्ण और व्यवस्थित थी कि स्वयं ही एक जीवनचरित्र की पांडुलिपि थी। फिर भी मैंने उनकी लिखी हुई, छपी हुई तथा अन्य सामग्री को मनोयोग पूर्वक पढा तो स्वत ही इस जीवनी मे मेरी अभिरुचि जाग्रत हो गई।

मैंने कुछ मुनियों, आचार्यों आदि का जीवन चरित्र लिखा है, कई जीवन चरित्र पढे भी हैं, पर जो ओजस्विता, जो कृतित्व और एक संत-जीवनी के योग्य सहज गुणों की प्रवहणशीलता इस जीवन चरित्र मे मिली, वैसी आज तक नही मिली थी। इस जीवनधारा मे कही जडता नही, अवरोध नही, और कही क्षीणता नही, अपितु "प्रतिपर्व रसोदय" के अनुसार सर्वत्र गति, प्रवाह और उत्तरोत्तर विकासमान व्यक्तित्व के दर्शन हुए। उनकी जीवनयात्रा ६ वर्ष के उषःकाल से चमकने लगी जो ८० वर्ष की सांध्य वेला तक दीप्तिमान और नव प्रभा मे परिपूर्ण रही। बुढापे मे भी उनके जीवन मे ताजगी थी। उनके विचारो और जीवन की तेजस्विता तथा प्रभास्वरता नन्दादीप की तरह सदा अखड, सतत ज्योतिर्मय रही। इसी अपराटता व अक्षुण्णता ने मुझे प्रभावित किया और मैं सिर्फ जीवन चरित्र का लेखक ही नहीं रहा उस महान व्यक्तित्व का श्रद्धालु भी बन गया।

प्रस्तुत मे प्रवर्तक श्री पन्नालाल जी महाराज के बहु आयामी जीवन को विभिन्न शीर्षकों के अन्तर्गत निबद्ध कर परिपूर्णता देने का प्रयत्न किया है। प्रथम खण्ड मे उनके जीवन व व्यक्तित्व के विविध पक्षों को उजागर करने वाले प्रसग हैं, जिनमे उनका उज्ज्वल व्यक्तित्व स्वय ही बोल रहा है।

द्वितीय खण्ड मे पूज्य प्रवर्तक श्री जी के गरिमापूर्ण कृतित्व की विविध झांकियाँ है। समाज-सुधार, शिक्षा-प्रचार, अहिंसा की प्रतिष्ठा, जीव-हिंसा बदी, समाज-सगठन, तथा सुधारवादी क्रातिकारी विचारो को सक्षेप मे पाठको के समक्ष रखा गया है। इतनी बहुविध प्रवृत्तियो के बीच कभी-कभी आप काव्य रचनाएँ भी करते थे और वे भी बड़ी सरस और प्रेरक। एक प्रकरण मे आप श्री जी की काव्य कृतियो का भी सक्षिप्त परिचय दिया गया है।

जीवन के सपूर्ण परिप्रेक्ष्य मे कहूँ तो आपको 'समाज-निर्माता' विशेषण सार्थक लगता है। वे जितने निर्भीक थे, उतने ही समाज की टूटती कडियो को जोडने मे कुशल! आज की परिस्थिति मे जब ऐसे बहुप्रभावी व्यक्तित्व की सर्वाधिक आवश्यकता है, तब वह हमारे बीच नही रहा। आज सिर्फ उनकी स्मृतियाँ ही हमे पथ-दर्शन कर रही हैं। अत तृतीय खण्ड मे गुरुदेव के प्रति भावभीनी श्रद्धाजलियाँ दी हैं, जो भक्त हृदय की अक्षय भक्ति का सूचन करती हैं।

इस लेखन की सार्थकता इसी मे है कि हम इस सर्वांग सुशोभित जीवन-दर्शन को पढें और प्रेरणा लें।

इस लेखन मे प्रवर्तक श्री कुन्दनमल जी महाराज का मार्ग-दर्शन एव हर प्रकार का सहयोग बराबर मिला है। साथ ही श्री रतनलाल जी जैन व प्रकाशन समिति के अन्य सदस्यो का योगदान सतत मिलता रहा है। आगरा स्थित मुनिश्री नेमिचन्द जी महाराज का सहयोग भी समय-समय पर मिला है, मैं उन सभी के प्रति हार्दिक कृतज्ञ हूँ।

कार्तिक पूर्णिमा
वि० स० २०३३

श्रीचन्द सुराना 'सरस'

ग्रंथ प्रकाशन एवं छात्रावास-निर्माण के मुख्य प्रेरक



श्रीमान रामसिंहजी सा० चौधरी एकल सिंगावाले

(वर्तमान मे अहमदाबाद)

अनुक्रमणिका

प्रथम खण्ड

बहु आयामी व्यक्तित्व

द्वितीय खण्ड

अमर कृतित्व

तृतीय खण्ड

भावभीनी श्रद्धांजलियां (३०३ से ३४०)

[पद्य भाग]

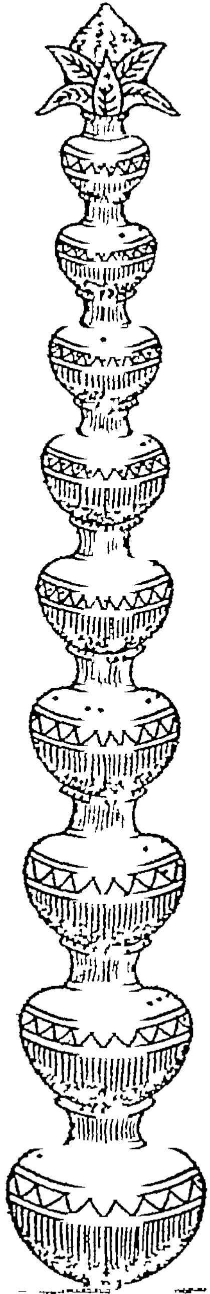
[गद्य भाग]

[पत्र-पत्रिकाएँ]



औद्योगिक, व्यावसायिक एव शैक्षणिक दृष्टि से प्रमुख केन्द्र विजयनगर
को बसानेवाले परम गुरुभक्त

स्व० रावसाहब श्री विजयसिंहजी साहब मसूदा



प्रथम खण्ड



जीवन-दर्शन

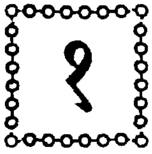
प्रवर्तक श्री पन्नालाल जी महाराज के
इन्द्रधनुषी व्यक्तित्व के
विविध रंगो की मनहर छवि



कितना निर्मल मन-भावन है आकर्षक व्यक्तित्व।
क्रान्ति-शान्ति, करुणा दृढ़ता का अद्भुत सह-अस्तित्व॥

चेहरे पर है ओज, ओज मे स्नेह सुधा का सगम।
आखो मे है तेज, तेज मे छलके करुणा-सरगम॥

—श्रीचन्द सुराना 'सरस'



जीवन-यात्री : एक महायात्री



ढाई हजार वर्ष पूर्व एक बार श्रमण-परम्परा के दो महान् दिग्गज श्रमणकेशी और गणधर इन्द्रभूति श्रावस्ती के तिन्दुकवन में मिले। केशीश्रमण पार्श्वनाथ की परम्परा के प्रतिनिधि थे और इन्द्रभूति भगवान् महावीर के धर्म-शासन के सर्वोच्च श्रमण। दोनों के मधुर-मिलन में अनेक प्रकार की तत्त्वचर्चाएँ हुईं। जिज्ञासाएँ उठीं, समाधान हुए। होता ही है

ज्ञानी से ज्ञानी मिले, करे ज्ञान की बात

दोनों ही महान् ज्ञानी, अनुभवी, तत्त्वरसिक और जीते जागते जिज्ञासा के स्रोत। प्रश्नोत्तरों के क्रम में केशीस्वामी ने इन्द्रभूति से प्रश्न किया।

'एक बहुत बड़ा गहरा सागर है, तरंगाकुल। अथाह जलराशि लहरा रही है। तूफान उठ रहे हैं, लहरें उछल-उछल कर आकाश को चूमने जा रही हैं, ऐसे अपार पारावार को पार कर कैसे हम अपने द्वीप में पहुँच सकते हैं?'

इन्द्रभूति ने कहा। 'हम साहस और दृढ संकल्प के साथ अपनी नाव को खेते रहेंगे, हमारा नाविक बड़ा निपुण है, तैरते-तैरते उस पार अवश्य ही पहुँच जायेंगे।'

केशी ने गौतम के संकेत से अर्थध्वनि स्पष्ट कराते हुए पूछा। "वह सागर कौन-सा है? नाविक कौन है? नौका कैसी है? और कैसे आप उस पार पहुँच जायेंगे?"

गणधर गौतम ने धीर-गम्भीर वाणी में उत्तर दिया।

सरीरमाहु नावत्ति, जीवो वुच्चइ नाविओ।
संसारो अण्णवो वुत्तो, ज तरंति महेसिणो॥

'शरीर नौका है, जीव (आत्मा) कुशल नाविक है। संसार-सागर में यह नाव तैरती-तैरती अपने तट पर पहुँच जाती है। संकल्पबली महर्षि इस यात्रा को पूर्ण कर

'अपने उस अलौकिक द्वीप मे पहुँच जाते हैं, जहाँ बस सुख ही सुख है ! न भय है, न कष्ट, न पीडा, न भूख ! न प्यास ! न शत्रु, न मित्र ! जहाँ अनन्त असीम आनन्द, अखण्ड आरोग्य और अपार शान्ति है।'

जगत् का अर्थ ही है गतिशील ! ससार के माने हैं संसरणशील ! भव-चक्र सदा चलता रहता है। अनन्त-अनन्त प्राणी इस पथ पर सदा गति कर रहे हैं, संचरण कर रहे हैं। ससार का यह अनन्त यात्रापथ खुला है। किन्तु यह बडा घुमावदार है। यह पथ सीधा नही है, कही उतार है, कही चढाव। कही वक्र है, कही सरल। इसीलिए प्राणी अनन्तकाल से यात्रा करता हुआ भी इस चक्र से निकल नही पाता।

इस घुमावदार चक्करदार पथ से पार पहुँचना बुद्धि का खेल है। गति करने से नही, किन्तु प्रगति करने से ही प्राणी अपने लक्ष्य तक पहुँच सकता है। हृदय की शुद्धि, सरलता और बुद्धि की विलक्षण निर्मलता से ही प्राणी इस पथ के पार, समुद्र के तट पर पहुँच जाता है—

'जीवा सोहिमणुप्पत्ता आययंति मणुस्सयं।'

कलुष हृदय वाले, बुद्धिहीन, अज्ञानी मझधार मे ही भटकते रहते हैं, डूबते-उतराते गोते खाते रहते हैं। इस भव-वन की घुमावदार टेढी-मेढी पगडडियो मे **सहारा**[1] **के जंगल** की तरह भूख-प्यास से प्रताडित हुए विलखते-विलखते ही प्राण छोड देते हैं।

शिखरयात्रा

जीवन की यात्रा शिखर की ऊँची यात्रा है। पहाड की चढाई है। इसमे छलाग नही लगाई जा सकती, किन्तु धीरे-धीरे आगे बढना होता है, साहस के साथ ऊपर चढना होता है। ऊर्ध्वयात्रा मे सबल चाहिए, साहस चाहिए, सहारा चाहिए। ऊँचा चढना, शिखर को छूना हमारा लक्ष्य है। वेदो मे कहा है

उद्यान पुरुष ! ते नावयान।

हे पुरुष ! ऊपर उठना ही तेरा लक्ष्य है, नीचे गिरना नही, तुम निरन्तर **'ऊर्ध्वोभव'** ऊँचे उठो ! भगवान महावीर कहते हैं—उट्ठिए, उठो, ऊपर चढो ! यह ऊर्ध्वगमन ही मानव-जीवन की यात्रा है। इस यात्रा मे कही रुको मत ! जीवनभर विना रुके, विना पीछे मुड़े बढते जाओ

जावज्जीवमविस्सामो

जीवनभर अविश्राम चलते रहो, **चरैवेति-चरैवेति**-चलते रहो, चलते रहो, बस यही तुम्हारे प्राणो का सगान है।' कविवर जयशकरप्रसाद ने यात्रा का यही सदेश दिया है

हिमाद्रि तुंग शृङ्ग से प्रबुद्ध शुद्ध भारती।
स्वयं प्रभा समुज्ज्वला स्वतन्त्रता पुकारती।

१ अफ्रीका का एक बहुत बडा लम्बा-चौडा रेगिस्तान, जिसे 'सहारा का रन' कहते हैं।

अमर्त्य वीरपुत्र हो दृढप्रतिज्ञ सोच लो।
प्रशस्त पुण्य-पंथ है, बढ़े चलो, बढ़े चलो ॥

जीवन के इस मगलमय पुण्य-पथ पर बढते जाना, अपार साहस के साथ ऊपर चढते जाना, यही हमारी यात्रा है। इसी ऊर्ध्वयात्रा को पूर्ण कर हम अपने लक्ष्य को प्राप्त कर सकते हैं। सम्पूर्ण स्वाधीनता, परम आनन्द की उपलब्धि इस यात्रा का गन्तव्य है।

यात्रा के सम्बल

यात्री अकेला ही इस पथ पर बढता चला जा रहा है **'एगे आया'** यह आत्मा अकेला यात्री है और **'संसारम्मि अणंतए'** अनन्त ससार पथ को पार करना है। यात्रा में पाथेय तो चाहिए। इस लम्बे यात्रापथ पर पाथेय के बिना जो कोई चलेगा, वह कष्ट पायेगा, भूख-प्यास से पीडित हो कर रुक जायेगा। महाप्राज्ञ प्रभु ने कहा है

अद्धाणंमि महत तु अपाहेओ पवज्जइ।
गच्छंतो सो दुही होइ छुहा-तण्हाए पीडिओ ॥

इसलिए यात्रापथ मे पाथेय जरूरी है। पाथेय साथ मे रहे तो यात्रा सुखपूर्वक, बाधारहित पूर्ण हो सकती है। सोचिए, जीवन-पथ का पाथेय क्या है ? मानवयात्री को किस सम्बल की जरूरत है, जो उसे निर्विघ्न मजिल तक पहुँचा दे ? मनीषियो ने उस पाथेय के नाम गिनाये है

आत्मज्ञान
ध्रुवसकल्प
सयम एव तप का अभ्यास
सहिष्णुता
कर्मठता
आत्मोत्सर्ग की भावना
सत्यनिष्ठा
सहृदयता
एकता एव अनुशासन
बौद्धिक एव आत्मिक बल

मनुष्य जब तक अपने विराट् एव अनन्त-शक्तिसम्पन्न स्वरूप का ज्ञान प्राप्त नही कर पायेगा, तब तक वह दीनता-हीनता का शिकार होता रहेगा। केशरीसिंह भी अपना स्वरूप भूल कर गर्दभसिंह बन गया था और धोबी के डडे खाता रहा, किन्तु जैसे ही उसे अपना भान हुआ, उसका स्वाभिमान जगा, वह हुंकार उठा, दीनता भाग गई, पौरुष प्रदीप्त हो उठा। आत्मज्ञान के अभाव मे दीनतारूपी राक्षसी दबोच लेती है, मनुष्य क्षुद्रता के कठघरे मे बन्द हो जाता है। आत्मज्ञान से आत्मविश्वास जगता है, स्वरूपबोध का दिव्यप्रकाश मिलता है, वह प्राणो के पिण्ड मे ही ब्रह्माण्ड का दर्शन करने लगता है। अथर्ववेद मे कहा है—

'सर्वाह्यस्मिन् देवता गावो गोष्ठ इवासते'

'गोष्ठ (गौशाला) मे गायो की भांति समस्त देवता इस मानव मे निवास करते हैं।'

प्रश्नोपनिषद्कार कहते हैं

प्राणस्येदं वशे सर्वं त्रिदिवे यत् प्रतिष्ठितम्।

ससार मे जो कुछ है वह और जो स्वर्ग मे है वह भी मनुष्य के प्राणो मे प्रतिष्ठित है। यह 'अक्खए अणावाहे' अक्षय और अनावाध-शक्ति का स्रोत है। इस शक्ति-स्रोत का अनुभव आत्मज्ञान से ही सम्भव है। आत्म-ज्ञान से आत्मविश्वास वढता है। आत्म-विश्वास ध्रुव सकल्प जगाता है। ध्रुव सकल्प ही मनुष्य की विराट् शक्ति को केन्द्रित कर सत्कार्य मे नियोजित करता है। नेपोलियन वोनापार्ट से किसी ने पूछा "आपकी असाधारण सफलताओं का रहस्य क्या है?" नेपोलियन ने दो टूक उत्तर दिया "दृढ निश्चय और ध्रुव सकल्प।" भगवान् महावीर ने मनुष्य के पतन का, असफलता का कारण वताते हुए कहा है

'अणेगचित्ते खलु अयं पुरिसे'

यह मनुष्य अनेक चित्त वाला है, विविध विकल्पो से युक्त है। विकल्पों से मनुष्य की शक्ति उसी प्रकार विखर जाती है जैसे चलनी मे भरा हुआ जल विखर जाता है। साध्य की सिद्धि करने के लिए, लक्ष्यवेध करने के लिए चाहिए—

'अहीव एगंतदिट्ठिए'

साप की भांति एकान्त (एक पदार्थ मे निविष्ट) दृष्टि। दृष्टि को एक ही लक्ष्य पर केन्द्रित करना होगा। "अविक्खित्तेण चेयसा" अविक्षिप्त चित्त से—एकाग्र चित्त से लक्ष्य-साधना करनी होगी। **"कह कहं वा वितिगिच्छ तिण्णे"** किसी भी उपाय से विचिकित्साओ के दल-दल को पार करना होगा। विचिकित्सा-विकल्प से मन की अक्षय शक्ति छिन्न-भिन्न हो जाती है, ध्रुवसकल्प से वह केन्द्रित हो कर अभेद्य, अपूर्ववलयुक्त वन जाती है। अंग्रेजी के प्रसिद्ध लेखक कार्लाइल ने कहा है—'कमजोर से कमजोर आदमी भी अपनी शक्ति को एक लक्ष्य पर केन्द्रित कर कुछ न कुछ कर दिखाएगा, किन्तु ताकतवर से ताकतवर आदमी भी अपनी शक्ति को छिन्न-भिन्न करके कुछ नही कर सकेगा।'

किसी स्त्री ने घास की ढेरी को उठा कर वाहर फेक दिया कि जलाने के सिवाय इसका क्या उपयोग होगा? दूसरी स्त्री ने उसी घास को भिगो कर कूट-पीट कर रस्सी वनाई और उससे हाथी को वांध दिया, कुएँ से जल निकाल लिया। केन्द्रित गुम्फित घास मे कितनी शक्ति है? जव तिनको से हाथी वांधने की सांकल वन सकती है, तो विखरे हुए विचार एकाग्र हो कर क्या नही कर सकते? एकाग्रता से ध्रुव संकल्प को वल मिलता है। यही जीवनयात्री का महान सम्वल है।

सयम एव तप का अभ्यास जीवन-यात्रा मे सफलता प्राप्त करने के लिये सयम का अभ्यास वहुत जरूरी है। सयम का अर्थ है आत्मनिग्रह। नियमवद्धता अथवा विवेकपूर्वक नियत्रण। सयम से ही सदाचार सधता है, शक्ति प्राप्त होती है। सयमहीन

शक्तिहीन होता है। शक्तिहीन संसार मे कभी आनन्द का अनुभव नही कर सकता। अखण्ड आनन्द, शक्ति, ऊर्जा और तेज प्राप्त करने के लिए संयम-साधना अत्यन्त आवश्यक है। संयम से ही तप की सिद्धि होती है। तप-साधना द्वारा ही आत्मा की अनन्त शक्तिया प्रकट होती है। भगवान् महावीर ने कहा है **'अहिंसा-संजमो-तवो'** धर्मरूप महल के तीन आधार है अहिंसा, संयम और तप। इनके बिना धर्म टिक नही सकता। प्राचीन समय मे जब कभी किसी को इष्टसिद्धि करनी होती तो वह तप करता था। चक्रवर्ती वासुदेव अपनी सार्वभौम सत्ता फैलाने के लिए तेला करते थे। ऋषि-महर्षि कर्मावरण क्षीण कर ज्ञान-प्राप्ति के लिए तप करते थे। वास्तव मे **'तपोमूल-मिदं सर्वम्'** संसार मे जो भी सिद्धि है, उपलब्धि है, शक्ति है, उसका मूल तप मे छिपा है। संयम और तप के अभ्यास द्वारा ही जीवन मे सहिष्णुता आती है, मन को निगृहीत करने की क्षमता आती है, कर्मठता और तेजस्विता बढती है।

कर्मठ व्यक्ति जिस सत्कार्य मे प्रवृत्त हो जाता है, उसे प्राणप्रण से पूर्ण करके ही दम लेता है। लक्ष्य के पीछे बलिदान होने की भावना उसमे निहित होती है। एक कहावत है **'न निश्चितार्थाद् विरमन्ति धीरा'**—धीर साहसी अपना निश्चित अर्थ प्राप्त किये बिना विश्राम नही लेते। वे सोच-समझकर जो मार्ग चुन लेते हैं, उस पर बढते जाते है। उसी के प्रति समर्पित हो जाते हैं। भगवान् महावीर की भाषा मे **'तद्दिट्ठीए तम्मुत्तीए** तल्लेसे' उसी पर दृष्टि टिका देते हैं, उसी मे बुद्धि लगा देता है, उनका संकल्प उसी लक्ष्यबिन्दु मे रमण करने लगता है। अंग्रेजी मे कहावत है

To aim is not enough, we must hit

एक उर्दू शेर मे उसका भावार्थ कहे तो

"निशाने पर जो लग जायें उसे ही तीर कहते है।"

कविवर विशाखदत्त ने मुद्राराक्षस मे एक जगह कहा है

प्रारभ्यते न खलुविघ्नभयेन नीचै
प्रारभ्य विघ्नविहता विरमन्ति मध्या।
विघ्नै: पुन पुनरपि प्रतिहन्यमाना
प्रारब्धमुत्तमजनाः न परित्यजन्ति॥

अल्पबुद्धि वाले विघ्नो के डर से कार्य प्रारम्भ ही नही करते। वे सिर्फ नक्षत्र पूछते रहते हैं, काम शुरू नही करते। मध्यमबुद्धि के मनुष्य कार्य प्रारम्भ कर देते हैं, लेकिन थोडा-सा विघ्न आया कि हार-थक कर बैठ जाते हैं। किन्तु उत्तमपुरुष बार-बार विघ्न आने पर भी प्रारम्भ किये हुए कार्य को बीच मे नही छोडते। वे मिट जायेंगे, मगर पथ से हटेंगे नही।

आत्मोत्सर्ग की वृत्ति हाथी की वृत्ति होती है। भगवान् महावीर ने कहा है **'संगामसीसे जह नागराया'** जैसे नागराज हाथी रणक्षेत्र मे मोर्चे पर जा कर डट जाता है, चाहे भालो के घाव लगें, चाहे गोलियो की बौछार हो, रणभूमि मे मरना मंजूर है, मगर वापस भागना नही। बलिदानी अपने लक्ष्य पर इसी प्रकार डट जाता है। **'चइज्ज देहं**

नहु धम्मसासणं' शरीर को छोड दूगा, मगर अपने धर्म पर आँच नही आने दूंगा। ऐसे वलिदानी के लिए कुछ भी दुष्कर व दुष्प्राप्य नही है। नीतिकार ने कहा है

शरीर-निरपेक्षस्य दक्षस्य व्यवसायिन ।
वुद्धिप्रारब्धकार्यस्य नास्ति किंचन दुष्करम् ॥

आत्म-वलिदान की जिसमे उमंग होती है, उसे शरीर का मोह नही होता, वह सिर्फ अपने कर्तव्य का ध्यान रखता है। उसकी वुद्धि प्रारम्भ किये हुए कार्य को पूर्ण करने मे जुटी रहती है। वह स्वार्थो और सुखो का वलिदान करने को उद्यत रहता है। ऐसे व्यक्ति के लिए ससार मे कौन-सा कार्य कठिन है ? गालिव के शब्दो मे वह सितारो पर भी कमन्द डाल सकता है

"पस्तियों में रहकर भी जिनके इरादे हो वुलन्द,
डालते हैं वोह जवाँ-हिम्मत सितारो पर कमन्द।"

ऐसे दृढसंकल्पी और वलिदानी व्यक्ति सत्य पर अडिग रहते हैं। सत्य को ही वे ईश्वर समझते हैं। **'सच्चस्स आणाए उवट्ठिओ मेहावी मारं तरइ'** वे सत्यनिष्ठ पुरुष सत्य के लिए सव कुछ छोड़ देते हैं। अपने सत्यवल से मृत्यु को भी जीत लेते हैं। उनकी सत्यनिष्ठा ही उन्हे ससार मे सर्वोच्च पद पर आसीन कर देती है। एक राजा के सामने जव लक्ष्मी ने कहा कि 'मैं जाती हूँ, क्योकि तुम सत्य के पक्षपाती हो गये हो।' तो उसने साफ-साफ कहा 'जाओ !' जव कीर्ति, आरोग्य और सत्ता भी जाने को तैयार हुई तो राजा ने सहर्ष कह दिया "सव कुछ जाए तो भी मुझे परवाह नही। मैं अपना सत्य नही छोडूंगा।" जव सत्य ने कहा "मैं भी जा रहा हूँ, तो राजा ने उसे पकड लिया। कहा 'सत्य देवता ! तुम्हारे लिए ही तो मैंने लक्ष्मी, कीर्ति आदि सवको त्याग दिया। लेकिन मैं तुम्हे नही छोड़ सकता। सत्य की रक्षा करना ही मेरा जीवन-ध्येय है। इसीलिए राजस्थानी कवि कहता है

सत मत छोड़ो सूरमा, सत छोड़े पत जाय ।
सत की वांधी लछमी, फेर मिलेगी आय ॥

सत्य ही ईश्वर है, **'सच्चं खु भगवं'** सत्य ही भगवान है। इस जीवन-यात्रा मे सत्यनिष्ठा वहुत वड़ा सम्वल है। सत्य का आग्रही कभी असत्य का आश्रय नही लेता। वड़े से वड़ा लाभ दीखता है, तव भी वह उसकी परवाह नही करता, वह लाभ का लोभ न करके किसी भी मूल्य पर सत्य की रक्षा करता है। सत्यनिष्ठ को न पुत्र का मोह होता है, न शिष्य का, न परम्परा का और न अपने शरीर का ही। उसका नारा होता है **'सत्यमेवेश्वरो लोके'** ससार मे सत्य ही एकमात्र ईश्वर है।

सत्यनिष्ठ का हृदय सदा करुणा एवं भ्रातृभाव से ओतप्रोत रहता है। वह सहृदय होता है। किसी के कष्ट मे स्वय मोम की तरह पिघल जाता है। जिसको विश्वास देता है, उसे पूरा निभाता है। भगवान् महावीर ने सहृदय का आदर्श वताया है **'महुकुम्भे महुपिहाणे'** मधु का घडा और मधु का ही ढक्कन अर्थात् वाणी मीठी मधु

के समान हो और हृदय निर्मल, पवित्र, सदा भलाई करने वाला। **पियकरे पियंवाई** प्रिय करने वाला और प्रिय ही बोलने वाला हो। सहृदयता मनुष्यता का भूषण है। जीवन-यात्रा का दुर्लभ सम्बल है। जिसके पास हृदय नही, वह दूसरे हृदय को कैसे समझ सकेगा? हृदय ही हृदय को जीतता है। हृदय की सद्भावना वायुमण्डल को मैत्रीपूर्ण बना देती है। बड़े-बड़े अत्याचारी, अगुलीमाल और अर्जुनमाली जैसे हत्यारे भी सहृदयता से अभिभूत हो गए। पशु और अबोध बच्चे भी सहृदयता से रीझ उठते है।

सहृदय दूसरो के हृदय को सहज ही अपनी ओर खीच लेता है। हृदय का हृदय के प्रति आकर्षण एकता और सगठन को बल देता है। मनुष्यो की एकता कोई झुड नही है, यह विचार और भावना के सूत्र से बधा हुआ हार्दिक सगठन है। जीवन-पथ पर मनुष्य अकेला आया है, पर सबको साथ ले कर चलना पडता है। मनुष्य का स्वभाव है, वह दूसरो के साथ आत्मीय सम्बन्ध-एकत्वभाव स्थापित करके चलता है। इसीलिए आदिचिन्तक ऋषि ने कहा है—

'संगच्छध्व सवदध्व स वो मनांसि जानताम्'

साथ मे चलो, मिलकर चलो, मिलकर कुछ बात कहो। अकेला चना भाड नही फोडता, अकेला तिनका रस्सी नही बन सकती, अकेली ईंट महल या मन्दिर का रूप नही ले पाती। समूह मे ही शक्ति है—**'सघे शक्ति' कलौ युगे'** कलियुग मे सघ मे ही शक्ति है। अँग्रेजी की कहावत है United we stand, divided we fall. 'सगठित होकर हम खड़े रह सकते हैं, विभाजित होते ही गिर पडेंगे।'

सगठन और विभाजन का परिणाम देखना हो तो किसी भी बड़े भवन या मन्दिर की तरफ देख लो, किसी भी बडी सस्था का इतिहास पढ लो। भारत की पराधीनता का कारण क्या था? सिर्फ फूट! नैषधीय चरित्र मे कहा है

पचभिर्मिलितै कि तज्जगतीह न साध्यते।

'जगत मे ऐसा कौन-सा काम है, जिसे पाच व्यक्ति मिल कर नही कर सकते?' सगठन, एकता एव अनुशासन मे सफलता का रहस्य छिपा है। जहाँ अनुशासन नही, छोटे-वडे का लिहाज नही, वह सघ, सस्था अधिक दिन टिक नही सकती। जिस झाड़ू को बाँधने की रस्सी ढीली हो गई है, उसके तिनके बिखरते क्या देर लगेगी? कवि ने कहा है

'यत्र सर्वेऽपि नेतारः सर्वे पण्डितमानिनः
सर्वे महत्त्वमिच्छन्ति ससघोऽप्यवसीदति।'

जिस सगठन मे सभी नेता है, सभी अपने को पण्डित मानते हैं। सभी अपना-अपना महत्व जमाना चाहते हैं, वह सगठन अधिक दिन नही चल सकता। सगठन एव एकता का प्राण अनुशासन है। भगवान महावीर ने कहा है

'अणुसासिओ न कुप्पिज्जा'

गुरुजनो के अनुशासन से कभी क्षुब्ध नही होना चाहिए। क्योकि अनुशासन मे रहने वाला आत्मानुशासन करता है और आत्मानुशासन करने वाला कही भी शासन कर सकता है। जीवन मे सुख, स्वाधीनता और उन्नति की कामना करने वाला सगठन, एकता और अनुशासन मे आस्थाशील होता ही है।

बुद्धिबल एवं आत्मबल

अनुशासन का अर्थ यह नही है कि व्यक्ति पशु या भेड-बकरी की तरह पीछे-पीछे चलता रहे। अनुशासन मे बौद्धिकता का लोप नही करना है। बुद्धिबल ही तो सर्वश्रेष्ठ बल है। मित्रबल, धनबल, शरीरबल, कुलबल इन सब मे बुद्धिबल श्रेष्ठ है। यदि बुद्धि बल है, तो आत्मबल भी जाग्रत रहता है। बुद्धि के साथ आत्मा का गहरा सम्बन्ध है। एक ओर हजारो-लाखो सुभट हो और एक ओर अकेला बुद्धिमान। दुबले-पतले लँगोटी-धारी गाँधी ने अग्रेजी शासन की दुर्दान्त सेनाओ के दाँत खट्टे कर दिये। किस बल पर? बुद्धि एव आत्म-बल के आधार पर ही तो।

मुद्राराक्षस मे एक प्रसग है। जिस समय चाणक्य ने लोगो के मुख से सुना कि अनेक प्रभावशाली वीर और प्रचण्ड योद्धा उनका साथ छोड कर विपक्ष मे चले गये हैं। उस समय उस बुद्धिबली ने स्वाभिमानपूर्वक कहा 'जो चले गये हैं, वे तो चले ही गए हैं, जो शेष हैं वे भी जाना चाहें तो चले जाएँ। नन्दवश का विनाश करने मे अपने पराक्रम की महिमा दिखाने वाली और कार्य सिद्ध करने मे सैकडो सेनाओ से अधिक बलवती केवल एक मेरी बुद्धि मेरे साथ रहे

एका केवलमर्थसाधनविधौ सेनाशतेभ्योऽधिका,
नन्दोन्मूलन-दृष्टवीर्यमहिमा बुद्धिस्तु मा गान्मम।

तो यह महिमा है बुद्धिबल की। बुद्धिबल से ही मनुष्य की श्रेष्ठता है, शरीरबल मे तो सिंह, हाथी और गरुड़ मनुष्य से कही अधिक बलशाली हैं। किन्तु वास्तव मे **'बुद्धिर्यस्य बल तस्य'** जिसके पास बुद्धि है, वही बलवान है। बुद्धिमान ही जीवन-यात्रा को निर्विघ्न अपनी मजिल तक पहुँचा सकता है। बुद्धिबल से ही आत्मबल की जाग्रति और वृद्धि होती है। आत्मबल सब शक्तियो का मूल बीज है। आत्मबल टॉनिक पीने से नही बढता है, किन्तु वह ध्रुव सकल्प, सयम, तप, सहिष्णुता, कर्मठता, बलिदान की भावना, नि स्वार्थवृत्ति, सत्यनिष्ठा और अनुशासनबद्धता से बढता है। आत्मबली ही सर्वबली होता है। वह किसी भी शक्ति से पराजित नही होता। छोटी-सी देह मे उसकी विराट् आत्मा ससार की समस्त शक्तियो को छिपाये रहती है। इसलिए जीवन की यात्रा मे, श्रेष्ठता के शिखर को छूने मे आत्मबल आदि ये सम्बल आवश्यक ही नही, किन्तु अनिवार्य हैं। इन्ही सम्बलो के आधार पर मनुष्य अपनी यात्रा मे सफल हो कर मजिल पा सकता है।

इतनी भूमिका के बाद हम इस बात पर आना चाहते हैं कि जीवन की इस शिखर-यात्रा मे एक ऐसा महान यात्री, एक शिखर यात्री अभी-अभी हमारे सामने से

गुजर चुका है जिसके पास ये सम्बल थे। उसके जीवन मे उपरिवर्णित सभी शक्तियो का विकास हुआ था। एक छोटे से गाँव मे, अनजान परिवार मे जन्म लेकर उसने वह कमाल पैदा किया कि जिसके लिए एक सूफी सत ने पुकारा था

शक्ले इन्सां मे खुदा था, मुझे मालूम न था।
चाँद वादल में छिपा था, मुझे मालूम न था॥

उसके चरण-चिह्न अभी धूमिल नही हुए हैं। उसकी स्मृतिया अभी स्मृति-पटल से ओझल नही हुई है। जिसने देखा, वह आज भी उस महायात्री की याद मे तरसता है, उसकी तस्वीर दिल मे देखकर पुकारता है

तलाश उसकी थी कावे मे,
मिला वह खानाए-दिल मे।

उस महायात्री का हृदयहारी नाम था महाश्रमण पन्नालाल! पन्ना हरा होता है, लाल-रक्ताभ! हरा रग जीवन मे सदावहार, प्रसन्नता-प्रफुल्लता और समृद्धि का सूचक है। उसका जीवन सदा वहार था, उसकी समृद्धि, आन्तरिक वैभव, आध्यात्मिक सम्पत्ति द्वितीया के चाँद की तरह सदा वढती ही रही। लालिमा उनके अन्त.करण की तेजस्विता की सूचना देती है। वे वालक थे तव भी उनका हृदय अनन्त उत्साह से भरा था, यौवन तो पौरुष और उत्साह का पिंड होता ही है। पर बुढापे मे भी उन्हे वृद्धत्व छू नही गया। उनके अन्दर कर्मठता, तेजस्विता की रक्तिमा सदा प्रवाहित थी। वे एक कर्मयोगी थे। कर्मण्यता मे उनका अटूट विश्वास था। जीवन की अन्तिम साँस तक वे पुरुषार्थ और कर्मयोग मे लीन रहे, जिस कार्य मे उनका विश्वास था, रुचि थी उसे प्राणपण से करते रहना, वस करते रहना, यही उनका लक्ष्य था, इसी मे आनन्द और कृतार्थता की अनुभूति करते थे। उनके सतत अविश्रान्त उदात्त कर्मयोग को देखकर अमेरिकी दार्शनिक विलियम ड्यूरेड का यह उल्लेख याद आता है। उसने एक पुस्तक Meaning of life (जीवन का उद्देश्य) लिखी है। इसमे श्री जवाहरलाल नेहरू का एक मत उल्लेख किया है। श्री नेहरू ने लिखा है "सच्चा समाधान चिर कर्मण्य रहने मे है। जिस दिव्य कर्म मे मेरा मन लग गया है वही कार्य अविश्रान्त रूप से करने मे वस है उसीमे से मैं सम्पूर्ण उत्साह, शान्ति और समाधान पा लेता हूँ।"

स्व० महामना प्रवर्तक श्री पन्नालाल जी महाराज भी अपने विषय मे कुछ लिखते तो इसी प्रकार की भावाभिव्यक्ति करते, इसी से मिलीजुली शब्दावली मे।

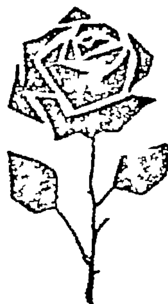
उनकी सत्यनिष्ठा, सयम वृत्ति और निर्भीकता अद्वितीय थी। इन्ही शक्तियो ने तो उनको एक सामान्य भूमिका से महाश्रमण के शिखर पर पहुँचाया। सगठन प्रेम, अनुशासनवद्धता और परोपकार, परहित के लिए आत्म-वलिदान कर डालने की उनकी उद्दाम भावना आज भी उनके सम्पर्क मे आने वालो के दिलो मे लिखी हुई मिलेगी।

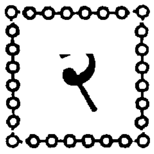
संक्षेप मे यहाँ इतना कहना प्रासंगिक होगा कि जीवन-यात्रा के जिन गुणो को सम्बल रूप मे हमने स्वीकार किया है, वे गुण उस दिव्य व्यक्तित्व में मूर्तिमान थे। वह शक्ति और वह ऊर्जा उस महाप्राण मे तरंगित थी कि हजारो-हजार श्राद्धजन उससे प्रेरित होते थे। उनकी सम्प्रेषणशीलता अद्भुत थी।

उनके सम्बन्ध में दिव्य चमत्कारो की भी अनेक श्रुतिया है, पर वह और कुछ नही उनके आन्तरिक बल का ही प्रतिबिम्ब था। जो देवताओ को भी आकृष्ट करता है। भगवान् महावीर की वाणी मे जिस महामानव के चरणो मे

देवा वि तं नमंसंति

देवता भी नमस्कार करते हैं, वह आत्म-पुरुष था वह व्यक्तित्व ! जिसकी जीवन रेखाएँ अगले पृष्ठो पर अंकित हो रही हैं।





संस्कार-जागरण



प्राकृतिक सौन्दर्य की दृष्टि से वसन्त-ऋतु को काव्यो मे 'ऋतुराज' कहा गया है। गीता मे भी 'ऋतूणा कुसुमाकर' कहकर इसकी विशिष्टता बताई है। किन्तु प्रकृति के सभरण और समृद्धि की दृष्टि से विचार करें तो वसन्त से भी अधिक 'वर्षा-ऋतु' का महत्व है। प्राचीन सस्कृत साहित्य वर्षा-ऋतु की महिमा से भरा पडा है। वर्षा की धाराओ से प्रकृति का अतृप्त और रिक्त हृदय शीतल मधुर जल से लबालब भर जाता है। नदी-नद-सरोवर सब का अन्तस्तल जल-पूरित हो जाता है, निदाघ की भीपण उष्मा शात हो जाती है, और शीतलता का साम्राज्य छा जाता है। सूखे खेत हरे-भरे हो जाते हैं, नग्न धरा हरी साडी पहनकर श्रृगार सजने लगती है। सूखे और नगे पहाड़ो पर भी हरी-हरी दूब निकल आती है जो देखने पर हरी मखमल-सी बिछी लगती है मन को गुदगुदाने, वाली आँखो को सरसाने वाली। समस्त जीव जगत की सुख-समृद्धि वर्षा ऋतु पर ही निर्भर करती है।

बादशाह ने अपने सभासदो से पूछा कि बारह मे से दो निकाल दिये तो क्या बचा ? सभी ने कहा दस ! किन्तु गणित को भी मानवीय दृष्टि से देखने वाले बीरबल ने कहा शून्य !

आश्चर्यपूर्वक बादशाह ने कारण पूछा तो बीरबल ने बताया बारह महीनो मे से यदि वर्षा के दो महीने निकल जाय, तो ससार का क्या हाल होगा ? न धरती पर अन्न पकेगा, न घास-फूस निकलेगा, न वृक्षो पर पत्ते और फल आयेंगे, न नदी और तालावो मे पानी की एक बूद मिलेगी। फिर ससार शून्य नही हो जायेगा ?

कल्पना कीजिए, यदि एक वर्ष अच्छी वर्षा न हुई तो दुष्काल से त्राहि-त्राहि नही मच जाती है ? नर-ककाल और पशु-ककालो से धरती का रूप कितना रौद्र, कितना

वीभत्स वन जाता है ? तो वर्षा ऋतु ही सृष्टि का प्राण है, जगत का आधार है। वर्षा ऋतु से ही वर्ष वनता है।

वर्षा ऋतु के दो मास होते हैं। श्रावण और भाद्रपद। ये दो मास भारत की धर्म और संस्कृति-प्रिय प्रजा के त्यौहारों के दिन हैं। उत्सव और उल्लास के महीने हैं। प्रकृति की हरी-भरी गोद को देखकर मानव-मन भी सहज ही लहरा उठता है और वह त्यौहारों के रूप में अपना आन्तरिक उल्लास व्यक्त करता है। भाद्रपद तो महान पर्वों का महीना है। इसी महीने में वासुदेव श्रीकृष्ण का जन्म होता है। कारागार की एक अंधेरी कोठरी में भारत खण्ड की राजनीतिक चेतना का सूर्योदय होता है। उसी भाद्रपद में पर्युषण-महापर्व का प्रारम्भ होता है। जैन-जगत का यह अष्टाह्निक महापर्व आध्यात्मिक जागरण और संस्कार-शुद्धि का महान संदेश लेकर आता है। अनुश्रुति है कि प्राचीन समय में आठ दिन तक श्रद्धालु-जन उपवास कर आत्मचिन्तन, ध्यान-स्वाध्याय और आत्मालोचन करते रहते थे। वर्ष भर की भूलों और अपराधों की शुद्धि तथा नयी आध्यात्मिक शक्ति की उपलब्धि का यही पुण्य पर्व है। निर्ग्रन्थ प्रवचन का उपासक, चाहे वह श्रमण हो या श्रावक, इन दिनों में नई आध्यात्मिक ऊर्जा प्राप्त करता है, वर्ष भर के लिए नये संकल्प करता है और मनोबल संचित करता है। भाद्रपद मानव जाति को भद्रता-सरलता और सात्त्विकता का संदेश देता है। भद्र कल्याणकारिता का उद्बोधन देता है।

प्रचीनतम जैन अनुश्रुति के अनुसार भाद्रपद का महीना मानवता की संस्कार शुद्धि का महीना है। गुहावासी मांसाहारी जातियों ने जब धरती पर हरियाली छाई देखी, फल-फूल खिले देखे तो मांसाहार को त्यागकर फल-फूल शाक-आहार द्वारा आजीविका चलाने का पवित्र संकल्प किया था। क्रूरता का परित्याग कर दयालु और संस्कारी वनने का यह उपक्रम था। इसलिए भाद्रपद संस्कार-जागरण, संस्कार-शुद्धि अथवा संस्कार निर्माण का महीना है। प्राचीन मानव सभ्यता की दृष्टि से।

हां तो भाद्रपद की इसी शुद्धसात्त्विक वेला में, पवित्रता और तपाराधना की प्रेरक घड़ियों में एक वालक ने जन्म लिया था। श्री तुलसादेवी के गर्भ से अवतार धारण किया था। असंख्य-असंख्य जीवधारियों के कल्याण और श्रेयस्साधन की अनन्त संभावनायें लेकर।

राजस्थान का जोधपुर राज्य उसमें नागौर जिला का विशेष महत्व है। इसी नागौर जिला में डेगाना शहर के पास एक छोटा-सा गांव है कीतलसर। शायद कभी इस गाँव में खूव गहरे और विशाल सरोवर सदा जल से भरे रहे होंगे, उनका तल (पैंदा) कभी सूखा नहीं होगा। इस कारण गाँव का नाम भी कीतलसर रख दिया हो। कीतलसर की भूमि सोना-मोती उगलती है या नहीं, मुझे नहीं पता, किन्तु वहां की नारियाँ अवश्य ही रत्नगर्भा हुई हैं। इसका प्रत्यक्ष प्रमाण है भाटी गोत्रीय मालाकार वालूराम जी की धर्मपत्नी तुलसादेवी। संयोग से इन दम्पती की आजीविका का साधन भी निर्माण और विकास का एक अंग था। धरती माता को नये-नये रंग-विरंगे परिवेश से मंडित करते रहना फल-फूल, शाक-सब्जी के रूप में विविध अलंकारों से

उसकी शोभा बढ़ाते रहना और जन-जन को शाकाहार की सामग्री सुलभ करना यही सात्त्विक धंधा था उनका। बालूराम जी घरेलू खेती-बाडी करते थे। इसलिए उन्हे 'माली' कहा जाता था। पता नही फूलो की माला बनाने वाले वे मालाकार थे या नही। किन्तु कलाकार तो अवश्य थे। जिन्होने अपनी सतान मे सात्त्विक और उदात्त सस्कारो का निर्माण किया।

वि० स० १९४५ भाद्रपद शुक्ला तृतीया शनिवार को श्री तुलसादेवी जी ने एक होनहार तेजस्वी पुत्र को जन्म दिया। पुत्र का नाम 'पन्नालाल' रखा गया।[1]

यह एक स्मरणीय सयोग ही कहा जा सकता है कि प्रवर्तक पूज्य श्री पन्नालालजी महाराज साहब का जन्म, दीक्षा और स्वर्गवास तीनो शनिवार के दिन ही हुए।

शनि ग्रह ज्योतिष शास्त्र के अनुसार शक्ति और स्थिरता का प्रतीक माना गया है। प्रसिद्ध ज्योतिषी शास्त्री डा० चन्दनलाल जी पाराशर ने लिखा है—'शनि अन्तःकरण का स्वामी है। यह बाह्य और आन्तरिक व्यक्तित्व को मिलाने का कार्य समान रूपेण करता है। अहभावना, का भी प्रतीक है। आत्मिक रूप से यह तत्त्वज्ञान, सक्रियता, नायकत्व, मननशीलता, सतर्क स्थिरता, मानसिक रूप से उच्चाधिकार योग, तत्र एव सन्यासित्व का प्रतिनिधित्व करता है।[2]

मनीषी चिन्तक उपाध्याय श्री अमर मुनि जी ने लिखा है "शनि स्थिरता का प्रतीक है, लेकिन निष्क्रियता का नही। निष्क्रिय रहने वाला कोई देव कैसे हो सकता है। ज्योतिष शास्त्र मे शनि का स्वरूप बाणारूढ धनुष खीचे हुए बताया गया है, जो जीवन मे वीरतापूर्वक लक्ष्य वेध करने की सक्रियता का प्रतीक है।"[3]

सामान्य जीवन मे भी स्थिरता आवश्यक है। अस्थिरता जीवन का सबसे बडा दोष है। एक अग्रेज कवि ने जीवन के तीन बडे शत्रुओ के नाम गिनाये हैं

Hurry हरी हडबडी जल्दबाजी
Worry वरी चिन्ता-फिकर
Curry करी गडबडी

ये तीनो ही अस्थिरता जन्य दोष है। श्री पन्नालाल जी के व्यक्तित्व मे जन्म बेला मे शनि का आगमन उक्त शनि के प्रतीकात्मक और प्रभावशील गुणो का स्पष्ट निदर्शन करता है। वे धैर्य की अचल मूर्ति थे ही, उनमे सक्रियता, मननशीलता, उच्च अधिकार और सन्यास योग का आगमन शनि का उच्च प्रभाव स्पष्ट सूचित करते हैं। उनके व्यक्तित्व का विश्लेषण करने पर पूरे जीवन मे शनि का प्रभाव परिलक्षित होता है, जो अगली घटनाओ से स्वय ही सूचित हो जायेगा।

१ ईस्वी सन् ८ सितम्बर १८८८
२ 'सात वारो से क्या सीखें' भूमिका, पृ० ११। ३ वही

वाल्यकाल संस्कार निर्माण की वेला

वाल्यकाल कितना निर्दोष और पवित्र होता है। कहा जाता है वालक में भगवान का रूप है। जहाँ तक उसकी सरलता का प्रश्न है वह आदर्श होती है। जैनाचार्यों ने भी कहा है

"किं वाललीलाकलितो न वालः पित्रोः पुरोजल्पति निर्विकल्प ।"

रत्नाकरपच्चीसी, श्लोक ३

'जह वालो जपतो' जैसे वालक विना कुछ छिपाव-दुराव किए सरलतापूर्वक जो भी किया है, वह सव कह सकता है, वैसा ही सरल मन आलोचना करते समय होना चाहिए। वालक का हृदय निर्विकार होता है। साथ ही वह कच्ची मिट्टी का पिंड है, माता-पिता जैसे संस्कार भरना चाहे, जैसी मूर्ति घडना चाहे वैसी ही घड़ सकते हैं।

श्री पन्नालाल जी के पिता वालूराम जी सरल प्रकृति के परिश्रमी व्यक्ति थे। व्यवसाय से माली होने के कारण उनकी प्रकृति मे कोमलता थी और कोमल फूल-पौधों के प्रति सहज अनुराग था। वे सहेजने की वृत्ति वाले थे। वालक को भी वे एक नन्हे पौधे की तरह वडी सावधानी और कोमलता के साथ सभालते थे। माता तुलसाजी के जीवन मे धार्मिक सस्कारो का रग था, साथ ही वह अनुशासन मे कठोर भी थी। माली फूलो को खाद्य पानी देकर वढाता है, प्यार दुलार करता है तो वेकार झाड़-झंखाड को उखाडता भी है, टेढी-मेढी डालियो को कैची भी करता है। माता तुलसा जी के जीवन मे ये दोनो ही गुण थे। सत्सगति एवं सरलता, मीठी और कोमलवाणी रात-दिन परिश्रम करते रहने की आदत ये सव तुलसाजी के व्यक्तित्व के घुले-मिले रग थे जिनका प्रतिविम्व वालक पन्नालाल जी के जीवन मे झलकना स्वाभाविक ही था।

वीर नेपोलियन से किसी ने पूछा आपने यह वीरता कहाँ से सीखी ?

उत्तर मिला माता के दूध के साथ मिली हुई है।

यदि मैं प्रवर्त्तक श्री पन्नालालजी महाराज साहव से पूछता आपके जीवन मे यह कोमलता और कठोरता का सगम कैसे हुआ तो वे शायद ऐसा ही उत्तर देते माता की जन्म-घुटी के साथ ही हुआ ! सच तो यह है कि उदात्त और वहुरगी व्यक्तित्व निर्माण के सस्कार उन्हे माता के दूध के साथ ही मिले थे।

भाग्य का चक्र

श्री वालूरामजी वडी फक्कड़ वृत्ति के थे। स्पष्टवादी और वे-हिचक खरी-खरी सुनाने वाले। कभी-कभी 'उलटा चोर कोतवाल को डांटे' वाली कहावत के शिकार हो जाते हैं। कहने वाले ने कह दिया **'सत्ये नास्ति भयं क्वचित्'** सांच ने आच कोनी, किन्तु व्यवहार मे जव हम सत्य पर चोट पड़ती देखते है तो धीरज डोल जाता है। क्षणिक-अहित सत्य की शाश्वत आस्था को हिला देता है। हम ही क्या, सत तुलसीदास जैसो ने भी किसी चोट से आहत होकर कह दिया था

'साँच कहूँ तो मारे लाठी, झूठे जग पतियाही' कुछ ऐसा ही घटनाक्रम बालूरामजी के साथ घटित हुआ। किसी बात पर ठकुर सुहाती न कह सके, न कर सके, परिणाम स्वरूप ठाकुर साहब नाराज हो गये और उन्हे गाँव से निकल जाने की आज्ञा दे दी। वि० स० १६५५ के लगभग राज-कोप का शिकार हुआ, वह परिवार अपनी जन्मभूमि की मिट्टी को अन्तिम बार स्पर्श कर सदा-सदा के लिए उसे छोडने को विवश हुआ। पक्षी को भी अपना घोसला छोडते समय कष्ट होता है, तो इन्सान का यह मिट्टी का घरोदा चाहे जितना वडा हो या छोटा, छोड़ते समय दिल भर आना सहज है। भरे दिल से दम्पती ने अपना सामान बाधा, १० वर्ष के पन्नालालजी भी मा-बाप का साथ देने जुट गए। एक भैसा था, जिस पर सब सामान लादा, और निकल पड़े जन्मभूमि का त्याग कर।

प्रश्न था 'जायें तो कहाँ? आपत्तिकाल मे कौन सहायता करेगा? फिर याद आया—

धीरज धर्म मित्र अरु नारी,
आपत काल परखिये चारी।

बाबा तुलसीदास ने कहा है तो अब इसकी परीक्षा करनी चाहिए। धीरज, धर्म और नारी तीनो तो वही साथ थे ही, अब बारी थी मित्र की।[1] थामला के सेठ जोरावरमलजी डूगरवाल बालूरामजी के पिता के घनिष्ट मित्र थे। बालूरामजी को उन पर भरोसा था कि वे इस बुरी वखत मे नजर नही फेरेंगे और सहारा देंगे। परिवार के सभी प्राणी भैसे पर सामान लादकर घर-मजला-घर कूचा चल पड़े। विपत्ति कभी अकेली नही आती। थोडी दूर चले होगे कि भैसा बिदक गया। वह उछालें मारने लगा, लदा हुआ सामान इधर-उधर गिरा दिया और मनमोजी छूटकर भाग गया। आखिर उसे भी परतत्रता अखरी होगी। क्यो इन्सान के बन्धन मे रहे? भाग गया सो भाग गया। सामान भी रास्ते मे दूर तक फैल गया। घाव मे और घाव! दुष्काल मे अधिक मास की तरह और अधिक पीडा! किन्तु सभी ने साहस बटोरा। बुरा वखत सभी को आता है—

दिन एक-से नहीं हैं चमने-रोजगार के।
दो दिन खिजा के होते हैं दो दिन बहार के॥

किन्तु मनुष्य तो वह है, जो हिम्मत न हारे, जिन्दगी की राह पर कदम बढाता ही चला जाये जीवन-सागर मे तूफान तो आते ही हैं, किन्तु तूफानो से टक्कर लेकर चलने वाला ही तो इन्सान है

जहाजो को डुबो दे जो उसे तूफान कहते हैं,
जो तूफानो से टक्कर ले उसे इन्सान कहते हैं।

तो तूफानो से लडते हुए बालूरामजी सामान कधो पर लादकर आगे बढे! बालक पन्नालालजी ने भी इस आपत्ति मे भी धीरज और साहस दिखाया। कुछ

१ बालूराम जी के पिता गिरधारीलाल जी के एक परम स्नेही मित्र थे सेठ जोरावरमल जी डूंगरवाल।

सामान अपने कोमल कन्धो पर सिर पर उठाया और मारवाड़ के वे कटीले, रेतीले रास्ते पार करते हुए श्री डूंगरवाल जी के घर थामला पहुँचे। डूंगरवाल जी मे मित्रता और सज्जनता दोनों ही गुण थे। सच्चा मित्र क्या नही करता?

साचो मित्र सचेत कहो काम न करै किसो।
हरि अर्जुन रै हेत, रथ कर हांक्यो राजिया।

यहाँ तो रथ हाँकने का सवाल ही नही, सवाल था सिर्फ आश्रय का, सहारे का। बालूरामजी ने डूंगरवालजी से सिर्फ एक ही बात कही थी बेल को बढने के लिए सहारा देना पडता है, आपत्ति मे फसा इन्सान भी जब उसका आसियाना उजड जाता है तो नया आशियाना बसाने के लिए, अपने पर फैलाने के लिए थोडा-सा सहारा चाहता है।"

डूंगरवालजी दिल के दरिया थे। मित्रो के सुख के साथी ही नही, दुख के साथी भी थे। उन्होने बालूरामजी को हिम्मत बधाई और आश्रय दिया। रहने के लिए स्थान, और करने के लिए काम बस दो बातें मिल गईं तो पुरुषार्थी कष्ट की नदी को बड़ी जल्दी ही तैर जाता है। फिर बालूरामजी तो सस्कारी थे। धार्मिक प्रकृति के। पुरुषार्थ करके उजडा हुआ घर तो बसाया ही, मन को शाति देने के लिए वे धर्म की शीतल छाया मे आगये।

संत-समागम

थावला मे उस वर्ष[1] गुरुदेव श्री मोतीलालजी महाराज का शिष्य मडली सहित चातुर्मास था। वहाँ के भावनाशील श्रद्धालु श्रावकों के लिए यह परम सौभाग्य का प्रसंग था। उनका उपदेश सर्वसाधारण के लिए होता था, उसमे नैतिक जीवन की प्रेरणा और सदाचार का प्रोत्साहन मुख्यत होता जो श्रोताओ के हृदय को सीधा स्पर्श कर जाता। श्री डूंगरवालजी को एक दिन सत्सग मे जाते देखकर बालूरामजी ने पूछा-सेठ जी! आप सत्सग मे जाते हैं, सुना है मुनिजी का उपदेश बड़ा ही सुन्दर होता है, क्या हम भी सुन सकते हैं?

सेठ जी वाह! यह भी कोई पूछने की बात है? सतो का द्वार तो सभी के लिए खुला है। यह तो नदी की बहती धारा है, जो इसमे डुबकी लगाले, जो अपना घड़ा भरले वह उसी का है। भाई, तुम भी मेरे साथ चलो, मुनिजी के दर्शन करो, और उनके उपदेश भी सुनो।...

दूसरे दिन दोनों मित्र गुरुदेव श्री मोतीलालजी की सेवा मे पहुँचे। बालूरामजी का परिचय हुआ और गुरुदेव ने बड़े स्नेह एवं वात्सल्य के साथ उनसे बातचीत की। जादू तो वह है जो सिर चढ़कर बोले, पहली ही मुलाकात मे बालूरामजी पर 'संत-समागम का जादू चढ गया। धर्म-कथा सुनकर वे घर आये तो बड़े शांत और खुश थे। तुलसाजी ने पूछा आज क्या किसी मित्र के घर दाल-बाटी खा के आये हो? कैसे बडे खुश-खुश और तरोताजा दीख रहे हो?

1 वि० स० १९५६

वालूरामजी ने कहा - आज तो ऐसी खुराक मिली कि पहले कभी नही मिली। यहाँ अपने गाव मे ही एक जैन महात्मा आये हुए हैं। उनके दर्शन करने से ही मन को वड़ी शांति मिली। क्या तेज और चमक है उनके ललाट पर। आँखे तो अमृत के कटोरे जैसी हैं। मन होता है देखता जाऊँ, अमृत पीता जाऊँ, पीता जाऊँ! वडे सरल निर्मल-मन के! और इतना स्नेहिल दिल है कि वड़े-वडे सेठो मे और अपने जैसे गरीबो मे कोई फर्क नही करते। वल्कि इतने सेठ लोगो के वीच उन्होने सबसे पहले मुझसे ही बात की, उपदेश सुनाया और मन की सुख-दुख की बात पूछी।"

अव तो तुलसाजी और वालक पन्नालाल को भी सत समागम की रुचि जगी। दूसरे दिन घर के सभी सदस्य संतो के दर्शन करने आये और सतो के ही हो गए। तुलसाजी धर्मशीला तो थी ही, जैन और वैष्णव सप्रदाय का भेद उनके मन मे नही था, साप्रदायिक दीवारें अधिकतर उन लोगो के मन मे खडी रहती है जो धर्म को मजहब बना लेते हैं और उसे आत्म-शुद्धि की जगह आत्म-सम्मान का साधन मान लेते है। सरल भद्र प्रकृति का सामान्य मानव धर्म मे, और पवित्र सतो मे कोई भेद-भाव नही मानता। उसके लिए धर्म गगाजल है, और सत देवता। श्रद्धा के साथ उनके चरणो मे सिर झुकाना और उपदेश सुनकर जीवन मे उतारने का प्रयत्न करना यही सरल जनो की प्रकृति होती है।

वालूरामजी और तुलसाजी दोनो ही सत्-सगति के रग मे रग गये। पन्नालालजी तो बालक थे, फिर भी उनके मन मे भी सतो के प्रति एक अज्ञात आकर्षण होने लग गया। अतिमुक्तकुमार जैसे गौतमस्वामी को पहली बार देखते ही उनका हो गया था, लगभग वही स्थिति पन्नालालजी के मन की थी। सुवह-शाम-मध्याह्न वे हर समय सत-चरणो मे ही वैठे रहते। साथी वालको के साथ वे स्थानक मे दिनभर वैठे रहते। गुरुदेव उन्हे कभी शिक्षाप्रद कहानियाँ सुनाते, कभी तत्त्व-ज्ञान की दो-चार कडियाँ सिखा देते और कभी सामायिक तिक्खुत्तो आदि पाठ रटाते। बच्चो मे धार्मिक सस्कार भरने का उनका तरीका वडा ही मनोवैज्ञानिक था। बात की बात मे पन्ना-लालजी ने धार्मिक क्रियाओ के पाठ सीख लिए। और ठीक वैसे ही बोलने-करने लग गये जैसे अन्य श्रावक लोग करते थे। उनमे जन्मजात प्रतिभा और ग्रहण शक्ति तो थी। कमी थी सिर्फ अवसर की। स्वच्छ दर्पण के सामने जैसे ही कोई विम्ब आता है, वह तुरन्त उसे ग्रहण कर लेता है। पन्नालालजी का हृदय भी ऐसा ही था, उच्च धार्मिक संस्कार उनके स्वच्छ हृदय-दर्पण मे प्रतिविम्बित होते गये।

एक वार गुरुदेव ने वच्चो को सामायिक करने की प्रेरणा दी। जन्मजात जैन-वालको ने मुँहपत्ति बाँधकर सामायिक की, तो पन्नालालजी भी कहाँ पीछे रहते? सस्कारो से तो वे भी जैन वन ही चुके थे। उन्होने भी मुहपत्ती लगाई और सामायिक की। मुह-पत्ती लगाते ही पन्नालालजी का रूप कुछ अद्भुत ही प्रतीत होने लगा। गेंहुआ वर्ण, गठा हुआ गुदगुदा शरीर। वडी-वडी कटोरे-सी आँखें, गोल मुँह साथी हम-

जोले वालको ने मजाक किया पन्नालालजी, मुँहपत्ती बाँधने से तुम बडे गुरुजी बन गये ? साधुजी जैसे ही लगने लगे हो। मुँहपत्ती तुम्हारे चेहरे पर अच्छी जचती है ?

पन्नालालजी हाथ जोडकर गुरुदेव के पास आये और वोले गुरुदेव ! मेरे मुँह पर यह मुँह-पत्ती कैसी लगती है ?

गुरुदेव ने हँसकर कहा अच्छी लगती है ! क्यो क्या वात है ?

पन्नालालजी गुहपत्ती लगाने से मैं भी आप जैसा लगने लगा हूँ, यह सच है ?

हाँ, हाँ, मुँहपत्ती तो साधुता का प्रतीक है। साधु जैसा लगे तो इसमे अच्छी वात ही है"—गुरुदेव ने मुस्कराकर कह दिया, किन्तु पन्नालालजी के ये शब्द उन्हे वडे गहरे लगे "मैं भी आप जैसा लगने लगा हूँ"। शब्दो के विम्व मे छिपी अर्थ-किरणो के प्रकाश मे वे कुछ देर तक सोचते रहे, और पन्नालालजी के आन्तरिक-सस्कारो मे छिपी दिव्य नियति को पढने लगे। वालक के ये शब्द इसे भविष्य मे क्या मेरे समान ही वनाने मे समर्थ होगे ? "जो भाखै वालक कथा" वच्चे की कही हुई वाणी सती के वचन जैसी सत्य-सिद्ध होती है, तो क्या इसका यह कथन भविष्य के किसी रहस्य का सकेत है ?" गुरुदेव कुछ देर तक विचारमग्न हो गये।

गुरुदेव की विचार-मग्नता भग करते हुए पन्नालालजी ने फिर पूछा "महाराज ! क्या मैं भी मुहपत्ती लगाकर आप जैसा साधु वन सकता हूँ ?

हाँ, जरूर वन सकते हो वत्स ! गुरुदेव ने वालक पन्नालाल पर एडी से चोटी तक दिव्य दृष्टि डाली और वे सोचने लग गये। इसके दिव्य लक्षण तो मुँह वोल रहे हैं, वालक होनहार है। फिर मधुर शब्दो मे वोले पन्ना ! क्या सचमुच ही तेरे मन मे साधु वनने की उमग उठी है ? ऐसी उमग क्यो उठी ? ऐसा क्यो पूछा ?"

वालक मन की इस गूढ-ग्रन्थि को खोल नही सका। अन्त प्रेरणा और अज्ञात सस्कारो का सवेदन तो हर कोई कर सकता है, लेकिन क्यो, कैसे, किसलिए इन गूढ प्रश्नो का विश्लेपण मनोविज्ञान का विषय है, वालक के पास इनका उत्तर देने वाली शब्दावली भी तो नही ! और फिर हर सवेदन और हर प्रेरणा की अभिव्यक्ति करने मे भाषा समर्थ भी कहाँ है ? पन्नालालजी चुप हो गये। 'वस, यो ही' के सिवाय उनके पास और शब्द भी क्या थे ! फिर भी ढाढस वटोर कर कह दिया मुझे साधु का वाना अच्छा लगता है। इस मुहपत्ती और रजोहरण से मुझे लगाव-सा हो गया है ?"

शास्त्रो के गहन अभ्यासी गुरुदेव मोतीलालजी ने पन्नालालजी के भाषा-व्यवहार और आन्तरिक अनुराग से यह स्पष्ट समझ लिया कि वालक मे जन्मान्तरीय संस्कार प्रवल है। सुसस्कारो का यह अकुर समय पर कल्पवृक्ष का रूप धारण कर सकता है। अभी वात्सल्य का जल, ज्ञान का प्रकाश और अभ्यास की हवा अपेक्षित है। वस, धूप-हवा और जल के योग से यह कल्पवृक्ष अवश्य ही फलित होगा।

गुरुदेव के आशा और उत्साह भरे उत्तर ने पन्नालालजी के सकल्प को जाग्रत कर दिया "मैं भी साधू वनूँगा।" और गुरुदेव के मानस-सकल्प ने उनकी भवितव्यता को

पहचान कर निर्णय ले लिया "पन्नालाल एक दिन इस जैन-सघ के मुकुट मे बहुमूल्य पन्ना बनकर चमकेगा। लाल की भाँति इसकी आभा से जैनसघ का भाल दीप्त होगा।" बस, फिर क्या था जौहरी ने रत्न को परख लिया, गुरु ने शिष्य की आत्मा को जान लिया। पन्नालालजी उत्साह और लगन के साथ ज्ञानाभ्यास मे जुट गये, और गुरुदेव मोतीलालजी मुक्त-मन से 'ज्ञान दान' करने मे। बस, गुरु-कृपा होगई तो फिर शिष्य को अक्षय-अमर सपत्ति मिलने मे क्या विलम्ब होता है? कहा गया है

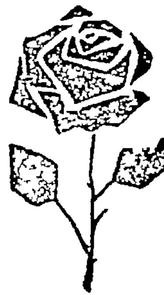
तिर्यक् समोऽपि पुरुषो सुगुरोः कृपातः
सम्यक्त्वरत्नमनघ लभते चरित्रम्।
सर्वज्ञतां च तरस ह्यजरामरत्वं
किं वर्णयामि सुगुरो करुणा महत्त्वम्॥

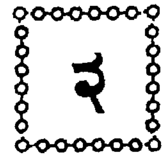
गुरु की कृपा से पशु के तुल्य अज्ञान मनुष्य भी सत्यासत्य विवेक रूप निर्मल सम्यक्त्व रत्न को प्राप्त कर लेता है। सम्यक्त्व से सम्यक् चारित्र, सर्वज्ञता और अजर अमर पद-रूप निर्वाण की प्राप्ति भी हो जाती है। गुरु कृपा का कितना महत्त्व बताया जाय? वास्तव मे

मोक्ष मूलं गुरो कृपा

मोक्ष का मूल कारण श्री गुरुदेव की कृपा ही है।

श्री पन्नालालजी को गुरु-कृपा का वरदान मिल गया, वे कृतकृत्य हो गये और गुरुचरण-चचरीक बनकर मकरन्दपान करने लग गये।





परीक्षा और दीक्षा



सूर्य की प्रथम किरण का स्पर्श पाकर जैसे सूरजमुखी फल की कलियाँ खिल उठती हैं और सूर्यगति के साथ-साथ फूल घूमने लगता है, लगभग वही दशा श्री पन्नालाल की हो गई थी, पूज्य श्री मोतीलाल जी महाराज के सम्पर्क मे आने के बाद। वह प्रति-पल, प्रतिक्षण उनके सम्पर्क मे जुड़ा रहना चाहते थे। चातुर्मास काल मे चार मास तक वे थावला मे स्थिर रहे। पन्नालाल जी को सामान्य तत्त्व-ज्ञान का बोध कराया, सामायिक आदि धार्मिक क्रियाएँ भी सिखाईं। चातुर्मास समाप्ति के पश्चात् जब गुरुदेव श्री ने विहार किया तो श्री पन्नालाल जी भी उनका अंचल पकडकर बैठ गये, जैसे छोटा बालक गाँव को जाती हुई माँ का अचल पकडकर उसके साथ चलने का हठ करता है, उसी प्रकार पन्नालाल जी भी गुरुदेव के साथ-साथ रहने का हठ पकड बैठे। बालक की खुशी मे माता-पिता की खुशी है, यह समझकर बालूराम जी और तुलसा जी ने उसे प्रेम पूर्वक गुरुदेव के साथ जाने की अनुमति दे दी।

गुरुदेव श्री, बालक पन्नालाल जी के भीतर दिव्य सस्कारो की झलक देख चुके थे। उनके मन मे बलवती जिज्ञासा और त्यागमार्ग के प्रति सहज आकर्षण भी था, जो उनकी रहस्यमयी आँखो और सरल मुखाकृति से व्यक्त हो रहा था। इसलिए गुरुदेव ने पन्नालाल जी को मौखिक रूप से तत्त्व ज्ञान सिखाना प्रारम्भ किया। तीव्र स्मरण-शक्ति के कारण बालक पन्नालाल जी ने कुछ ही समय मे आश्चर्यजनक प्रगति कर ली।

सत्सग का प्रत्यक्ष प्रभाव जीवन पर क्या होता है, यह जान पाना कठिन है, किन्तु धीरे-धीरे विचारो मे एक रासायनिक परिवर्तन की प्रक्रिया प्रारम्भ हो जाती है, सस्कारो मे स्वाभाविक जागृति और एक प्रकार की वैराग्यवृत्ति फलवती होने लगती है, जो कुछ ही समय मे अपना रग प्रकट कर देती है।

पन्नालाल जी ११ वर्ष के होंगे, किन्तु फिर भी जैसे-जैसे वे तत्त्वज्ञान सीखते गये और गुरुदेव के सान्निध्य मे रमते गये, वैरागी के नाम से प्रख्यात होने लग गये। खान-

पान मे सयम, वोल-चाल और रहन-सहन मे शालीनता एव विवेक आने लगा। कुछ लोग कहने लग गये यह वालक अब साधु बनेगा। साधु-सतो के प्रेमी इस अनुमान से प्रसन्न थे तो कुछ द्वेषी लोगो का दिल जलने भी लगा। कुछ लोग ऐसे होते हैं, जिनसे दूसरे का भला फूटी आँखो से भी नही देखा जाता। नीतिकार कहते हैं

घातयितुमेव नीच, न च परकार्यं साधयितुम्'

नीच प्रकृति का व्यक्ति दूसरो के अच्छे कार्य को बिगाडना ही जानता है, सुधारना नही। उन्ही मे के दो-चार विघ्नसतोषी व्यक्ति बालूराम जी के पास पहुँचे और उनके कान भरने लगे तुम्हारा बेटा तो साधु बन जायगा, अपने छोकरे को कमाने-खाने लायक बनाना है या भीख मांगने लायक! पता है, तुम हो माली, पुरुषार्थी, नया-नया सृजन करने वाले और फिर इन जैन-साधुओ की सगत मे पड कर तुम्हारा बेटा बनेगा भीख मागने वाला। झोली हाथ मे लेकर घर-घर भिक्षा मांगेगा, तब क्या तुलसा जी तुम्हारा दूध लज्जित नही होगा?" यो उलटी-सुलटी अनेक बातें उन मत्सरी बन्धुओ ने बालूराम जी को सिखाईं।

वालूराम जी भले थे, किन्तु भोले भी थे, और साथ ही, बहुत अधिक सरल भी थे। ऐसी सरलता भी किस काम की जो हित-अहित का निर्णय न कर सके। इन सज्जनो के बहकावे मे आकर बालूराम जी का पारा भी चढ गया। वे अपने मित्र सेठ डूंगरवाल जी के पास आये और बोले "सेठ जी! आपके कहने से मैंने छोकरे को महाराज के साथ कर दिया था। मेरी बड़ी भूल हो गई।"

सेठ जी "क्यो, क्या हो गया? कोई आसमान ढह गया?"

"नही, सेठ जी! अब महाराज उसे भी मूंड लेंगे। मुझे उस लड़के को अब महाराज के पास नही रखना है।"

सेठ जी "वालू जी! आज कैसी वहकी-बहकी बाते कर रहे हो? हमारे महाराज कभी भी किसी को जबर्दस्ती नही मूडते। पहली बात यह है कि अभी तक ऐसी कोई बात नही हुई है। फिर यदि कोई बात होगी तो मैं जिम्मेदार हूँ। याद रखो, जब तक तुम्हारा छोकरा नही चाहेगा और तुम लिखकर अनुमति नही दोगे तब तक महाराज तुम्हारे छोकरे को नही मूंडेंगे घबराते क्यो हो?"

"लेकिन मैं तो नही चाहता।"

"नही चाहते तो ऐसा नही होगा।"

वालूराम जी कुछ आश्वस्त हुए और घर आ गये। जब नारदो ने देखा कि दाल नही गली तो वे बालूराम जी के कान फिर भरने लगे। झूठ भी सौ बार 'सच' कहने से सच लगने लगता है, सो बार-बार की भ्रान्त और झूठी बातो से बालूराम जी का हृदय फिर डोल गया। कभी वे सेठ की बातो पर भरोसा करते और कभी उन नारद लोगो की बातो पर। अति सरलता मे यह दोष है कि वह परिपक्व निर्णय नही करने देती। वालूराम जी का मन, मन्दिर की ध्वजा की तरह हवा के झोको के साथ इधर-उधर डोलने लगा। लोगो ने यह भी सिखा दिया "डूंगरवाल जी के झांसे मे मत आना। वे

तो उन्ही के भक्त हैं। वे तो अपना पथ बढाना चाहेगे। तेरे वश की उनको क्या चिन्ता है ?" बस, अब तो बालूराम जी का सन्देह और भी बढ गया। वे सेठ जी को बिना बताये ही चल पड़े। पता लगाते-लगाते वहाँ से कई मील दूर जशनगर (केकिन) पहुँचे। वहाँ पूज्यश्री मन्दिर मे व्याख्यान दे रहे थे और पन्नालाल जी वही एक ओर बैठे अध्ययन कर रहे थे। बालूराम जी ने अपने पुत्र को शास्त्र रटते देखा तो बस मन और उतावला हो गया। सीधा उसका कान पकडा और बोले—"चल, घर चल !"

पन्नालाल जी—पिताजी, आप अचानक कैसे आये ? और आये तो पहले गुरु महाराज के दर्शन किये बिना मुझे चुपचाप घर को ले जा रहे हो ? चलो, गुरु महाराज के दर्शन करो।"

पिता—"नही, मुझे दर्शन-वर्शन नही करने हैं। बस, सीधी नाक की डाडी घर का रास्ता पकड।"

पुत्र पिताजी ! मैं यहाँ पढाई कर रहा हूँ। घर नही जाऊँगा।"

"क्यो ?"

"मेरा घर मे मन नही लगता। मैं तो गुरु महाराज के पास पढाई करूँगा।"

पुत्र का उत्तर सुनकर बालूराम जी का रहा-सहा सन्देह पक्का हो गया। लोगो ने ठीक ही कहा था 'ये साधु लोग भुरकी डाल देते हैं।' लड़के को यो अपने बाप से छुडा देते हैं। लेकिन मैं भी तो मर्द हूँ, इसे यहां नही छोडूँगा। वे उसका हाथ पकडकर उठाने की कोशिश करने लगे "चल ? घर चलता है कि नही।" बालक ने भी अपना हठ पकड लिया "नही चलूँगा।" पिता ने और जोश खाया, जोश मे होश गुम। बालक का हाथ पकड़ कर बड़े जोर से घसीटना शुरू किया। वे घसीटते-घसीटते सीढियो तक ले आये। वे आवेश मे अन्धे हुए यह भी नही देख पाये कि आगे सीढियाँ हैं। बस, बालक सीढियो पर लुढक गया, और नीचे सिर के बल गिरा। वहाँ था पत्थर। पत्थर की चोट लगते ही कपाल से रक्त की धार बह चली। बालक जोर-जोर से रोने लगा। लोग व्याख्यान से उठकर दौड़े आये। बालूराम जी ने यह सब देखा तो एक अपराधी की भाँति काँप उठे। चुपचाप आये। अनजाने ही आवेश मे पुत्र का सिर फोड़ डाला। वे रगे हाथो पकड़े गये। अपराधी की तरह दयनीय हो गये।

लोगो ने पूछा "बालक को तुमने क्यो पटका ? कौन हो तुम ?"

अब तो फिर अधिकार का क्रोध भडक उठा "यह मेरा छोकरा है। महाराज के साथ भाग आया था। मैं अब इसे घर ले जाना चाहता हूँ। यह चलता नही है।"

श्रावको ने समझाया- "यह तुम्हारा बेटा है, पशु तो नही है ? इन्सान को जानवर की तरह घसीटना क्या ठीक है ? इसे प्रेम से समझाओ। इसके बाप होकर भी तुम प्यार से इसे समझा नही सकते ? घर ले जाना है तो महाराज मना नही करते, पर एक चोर की तरह क्यों ? खुल्लमखुल्ला ले जाओ और इसे प्यार-दुलार के साथ ले जाओ। इसका मन है तो भले जाए, जबरदस्ती क्यो करते हो ? क्या इसे जानवर समझ लिया

है। इतना समझदार और होशियार लडका है, बात से समझाओ, हाथ से और लात से क्यो ?"

श्रावको की कडी चेतावनी से बालूराम जी का क्रोध ठडा पड गया और उन्हे अपना अपराध स्पष्ट दीखने लगा।

लोगो ने बालक के घाव की मरहम-पट्टी की। बालूराम जी को शान्त किया। बालक से कहा—"तुम्हे तुम्हारे पिताजी बुलाने आये हैं तो तुम अपने घर जा सकते हो ? क्या इच्छा है तुम्हारी ?"

बालक "मैं घर नही जाऊँगा। मैंने गुरुदेव के साथ रहकर अध्ययन करने का निश्चय किया है। अध्ययन के बाद मैं साधु बनूगा, दीक्षा लूंगा। मुझे घर से कुछ लेना-देना नही है।"

बालूराम जी पत्थर की तरह देखते ही रह गये। 'इस छोटे-से बालक मे इतना साहस कब, कैसे आ गया! मेरे सामने इसकी जबान भी नही खुलती थी। आज तो निर्भीक होकर बोल रहा है।' बालूराम जी ने उसे प्रेम, भय, लालच और आतक से हर तरह से समझाने-बुझाने की कोशिश की, पर बालक पन्नालाल जी पर तो गहरा रग चढ चुका था 'सूरदास की कारी कमलिया चढै न दूजो रग'। उनके मुँह मे एक ही बात थी मैं गुरुदेव का शिष्य बनूगा, मुझे गृहस्थी मे नही रहना है।"

श्रावको ने भी बालूराम जी को समझाया तुम्हारा पुत्र जब तुम्हारे लाख समझाने पर भी घर जाने को तैयार नही है तो फिर इसके साथ जबरदस्ती क्यो करते हो," फिर बालक पन्नालाल जी से भी पूछा गया "बोल तेरी क्या इच्छा है ?"

बालक "मुझे घर नही जाना है। मैं गुरुदेव के साथ रहूँगा और साधू बनूंगा।"

बालक की दृढ भावना देख कर बालूराम जी को अनुभव हुआ 'पूर्व जन्म के सस्कार भी कभी-कभी मनुष्य को अनजाने ही महान पथ की ओर खीच ले जाते हैं। पन्नालाल मे भी पूर्व सस्कारो की प्रेरणा है। मैं इन्हे दबाना चाहूँगा तो ये दबेगे नही। फिर बहकाने-फुसलाने जैसी कोई बात यहाँ नही है। बालक अगर सस्कारी है तो कौन इसे रोक सकता है?' कुछ देर के मनोमन्थन के पश्चात् बालूराम जी भी पूज्य गुरुदेव की सेवा मे आये। अपने अज्ञान, वहम और अल्हडपन के लिए क्षमा मांगते हुए वह गुरुदेव के चरणो मे गिर कर रो पडे। गुरुदेव ने समझाया और अतिमुक्तक, ध्रुव, प्रह्लाद, मणक, हेमचन्द्राचार्य, शकराचार्य, सत एकनाथ आदि कितने ही सस्कारी बालको के उदाहरण उनके सामने रखे। उनकी समझ मे आ गया, बालक ही भविष्य का निर्माता है। विचारक और कवि ने इसीलिए अपनी काव्य पक्ति मे कहा है—Child is the father of man अर्थात् बालक ही आदमी का जनक अथवा पिता है। जो उच्च सस्कार बचपन में सहजतया आ सकते हैं, वे फिर जीवन भर प्रयत्न करने पर भी आ पाने मुश्किल हैं।

बालूराम जी ने प्रार्थना की "गुरुदेव! यदि इसका भाग्य इसे ससार का भला करने के लिए पुकार रहा है तो मैं इसे रोककर पाप का भागी नही बनूंगा। मेरी सहर्ष

स्वीकृति है। आप इसे साधु बनाइए और संसार का कल्याण करने की शक्ति दीजिए बालक यदि किसी महापद पर पहुँच जाएगा तो बाप का नाम तो चमकेगा ही। मेरा वश चले, इसकी बजाय मेरा नाम अमर रहे, यह अधिक श्रेष्ठ है।"

श्रावकों ने कहा, "यदि आप सहर्ष अनुमति देते हैं तो फिर आज्ञापत्र लिख दीजिए, ताकि कोई ऐरा-गैरा बाधक न बने।"

बालूराम जी ने आज्ञापत्र लिख दिया। पन्नालाल जी का हृदय बाँसों उछल पड़ा। पिता ने पुत्र को एक बार वात्सल्यपूर्वक चूम लिया और आत्मा से आशीष दी "पुत्र ! तू अपना कल्याण कर और मानवता के कल्याण मे सहायक बन।"

बालूराम जी आये थे क्रोध और आवेश का जहर भरकर और अब लौटे शांति एव प्रसन्नता का अमृतपान कर। गुरुदेव भी केकिन से विहार कर कुछ समय बाद आनन्दपुर (कालू) पधारे। वहाँ चन्दनमल जी सीताराम जी पाटणी प्रमुख भक्तिमान श्रावकों मे थे। उन्हें जब पन्नालाल जी के दृढ वैराग्य का पता लगा और पिता द्वारा पत्थर पर पटक देने की घटना मालूम हुई तो वे बड़े चकित हुए। उन्होंने गुरुदेव श्री से आग्रह किया—"यह आपका नाम चमकाने वाला होगा, साधु बनकर बड़ा तेजस्वी निकलेगा, ऐसा मुझे लगता है। मेरी विनम्र प्रार्थना है कि इसके दीक्षा महोत्सव का लाभ मुझे ही मिलना चाहिए।"

गुरुदेव ने सामान्य उपेक्षा दिखाई, पर पाटणी जी का आग्रह जोर पकड़ता गया। वासुदेव श्रीकृष्ण और महाराज श्रेणिक द्वारा की गई दीक्षा-दलाली का पुण्य-प्रस्ताव उनकी स्मृतियो मे उभर रहा था। वे भी ऐसे सहज प्राप्त सुप्रसंग को कैसे खो देते। उनकी निर्मल-निश्छल भक्ति ने गुरुदेव का दिल पिघला दिया। सतो को भक्त श्रावक प्यारे होते ही हैं। गीता मे श्रीकृष्ण ने कहा है

'भक्तिमान् य स मे प्रिय' अर्थात् जो भक्तिमान् है, वही मुझे प्रिय है—

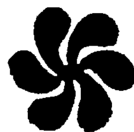
'भक्तास्तेऽतीव मे प्रिया.'

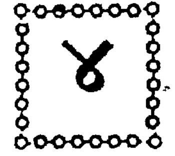
तो भक्त की मनुहार गुरुदेव श्री कैसे टाल पाते ? आखिर गुरुदेव ने स्वीकृति दे दी। बस आनन्दपुर मे आनन्द की गंगा बह चली। और उस गगा को उतार लाने वाले भगीरथ पाटणी जी जुट गए दीक्षा महोत्सव की तैयारी मे।

विक्रम संवत् १९५७। वैशाख का महीना, शुक्लपक्ष की षष्ठी (छठ) तिथि और दिन शनिवार। प्रभात का सूर्य आज नई आशाएँ लेकर उदित हुआ था। शीतल, मन्द पवन किसी उमंग मे धीमे-धीमे गुनगुना रहा था और आकाश मे विहंगगण कलरव के बहाने साधना-पथ के एक महान पथिक की बलैया ले रहे थे। एक विशाल जुलूस के साथ बालक पन्नालाल जी घोड़ी पर बैठ कर गुरुदेव के चरणो में पहुँचे। उनकी आँखो मे आज अद्भुत चमक थी। चेहरे पर कुछ विलक्षण तेज दमकने लगा था। उत्साह और उमग से भरे-पूरे दीख रहे थे। गुरुदेव श्री मोतीलाल जी महाराज अपने शिष्य श्री पीरचन्द जी महाराज के साथ विशाल वट-वृक्ष के नीचे एक चबूतरे पर विराजमान थे।

वटवृक्ष विस्तार और समृद्धि का प्रतीक है, इसलिए भारतीय संस्कृति मे उसका विशिष्ट स्थान है। उसकी प्राकृतिक शीतल छाया मे एक सात्त्विकता और साधना की सुगन्ध होती है। बालक पन्नालाल जी ने उसी वृक्ष के नीचे गुरुदेव श्री के चरणो मे विनम्र वन्दना की, फिर एकान्त स्थान की ओर गए। अब तक शरीर पर सुन्दर रंग-बिरंगे वस्त्र थे, बहुमूल्य आभूषण थे। अब उनका त्याग करना था। बाह्य वेशभूषा का मन के परिवेश के साथ गहरा सम्बन्ध है। इसीलिए केशरिया और लाल कपडा वीरता और युद्ध का प्रतीक माना गया है तथा काला क्रोध, आक्रोश और भय का। श्वेत वस्त्र शान्ति के प्रतीक होते हैं। युद्ध विराम के लिए सफेद झण्डी दिखाई जाती है। शान्ति के लिए भी श्वेत वस्त्र धारण किये जाते हैं। दीक्षार्थी पन्नालाल जी अब ससार के अशान्त, कोलाहलपूर्ण और राग-द्वेषमय वातावरण से मुक्त होकर शान्ति, समता, वैराग्य और वीतरागता के पथ पर बढ रहे थे। इसलिए रंगीन वस्त्र और आभूषणो को उतार कर श्वेत-स्वच्छ वस्त्र धारण कर गुरुदेव के चरणो मे पुन उपस्थित हुए तो ऐसा लग रहा था, मानो एक राजहस मानसरोवर की यात्रा के लिए सन्नद्ध होकर पख फडफडा रहा है। सैकडो-हजारो उत्सुक आँखे उस साहसी और दृढ निश्चयी बालक के दर्शन करने अपलक आतुर थी। सैकडो स्वर एक साथ 'धन्य-धन्य' और 'जय-जय' की ध्वनियो से वातावरण को मगलमय बना रहे थे। वह दृश्य अद्भुत था। लगभग बारह वर्ष का एक बालक जीवन-भर के लिए सत्य-अहिंसा और सयम-तप की अखण्ड साधना का वज्र-सकल्प कर उस आग्नेय पथ पर कदम बढा रहा है। कितना रोमाचक और भाव-प्रवण था यह दृश्य। दर्शको की आँखो से हर्ष और आश्चर्य के आँसू बहने लगे और उनके मुँह से धन्य-धन्य की ध्वनियाँ गूँजने लगी।

विशाल जनमेदिनी के मध्य वट की छाया मे एक ओर ऊँचे चबूतरे पर गुरुदेव श्री मोतीलाल जी बैठे थे। दूसरी ओर उनके समक्ष अजलिबद्ध विनम्र भाव से श्वेत परिधान मे मडित बालक पन्नालाल जी भागवती दीक्षा ग्रहण करने उपस्थित थे। गुरुदेव श्री ने उदात्त घोष के साथ भागवती दीक्षा का मन्त्र पाठ दिया। 'करेमि भन्ते' के शास्त्रीय वचन का उच्चारण कर सयम-तप त्याग की दीक्षा दी। पन्नालाल जी अब 'मुनि पन्नालाल जी' बन गए। संसार से विरक्त, त्याग पथ मे अनुरक्त सयम के सशक्त **'असिधारागमणं चेव'** के पथ पर बढ गए। आत्महित और परहित का पवित्र सकल्प लिए साधना के पथ पर चल पड़े साधु श्री पन्नालाल जी।





गुरु प्रयोग



भगवान महावीर ने सच्चे साधक की मनोवृत्तियो का वर्णन करते हुए कहा है

लाभालाभे सुहे दुक्खे जीविए-मरणे तहा ।
समो णिदापसंसासु तहामाणावमाणओ ॥

साधक अपनी अन्तर्वृत्तियो को इस प्रकार मोड़ता है कि वे उसकी मनोनुवर्तिनी बन जाती हैं। लाभ हो या हानि, सुख हो या दुःख, आनन्द का सुप्रभात हो या विषाद का गहन अंधकार, कोई निन्दा करे या प्रशसा, कही सन्मान मिले या अपमान दोनो ही प्रकार की अनुकूल-प्रतिकूल स्थितियो मे वह समचित्त रहता है। सुमेरु की भाँति न वर्षा से गलता है और न धूप से पसीजता है। अपनी मनोवृत्तियो को इस प्रकार बना लेता है कि उन पर बाह्य वातावरण का कोई असर नही होता। अन्तर मे ही सदा रमण करता हुआ अन्तर्मुखी जीवन जीता है। न उसे किसी की प्रशसा व मधुर वचन अनुरक्त कर सकते हैं और न कटुवचन या निन्दा व्यथा पहुँचाते हैं। यह आदर्श साधक की स्थिति है, जिसे उपनिषद और गीता मे स्थितप्रज्ञ कहा है, आगमो मे 'वीतराग' कहा है।

'वीतराग साधना' का यह पथ सरल नही है। उत्तराध्ययन सूत्र मे इसे **'असि-धारा गमणं चेव दुक्करं चरिउं तवो'** तलवार की धार पर चलने जैसा दुष्कर कहा है। अग्नि की प्रज्वलित शिखाओ को पी जाने जैसा कठोर है। साधना की कठिनता की मुख्य बात है मन को वश मे करना। जीवन मे सुख-दुख तो आते ही हैं। मान-सन्मान और अपमान भी मिलते हैं, किन्तु सुख का मधुपान और दुःख का विषपान दोनो ही समय मे एक समान प्रसन्नता, बुद्धि और विवेक को स्थिर रखना बड़ा कठिन है। सन्मान का और सुख का प्रसग आते ही मन उछलने लगता है तथा अपमान और कष्ट की एक हल्की-सी चोट पड़ते ही मन व्यथित एव उद्विग्न हो जाता है, धीरज छोड़ देता है सामान्य जीवन मे ऐसी ही स्थितियाँ आती हैं, किन्तु साधक को इन दोनो ही स्थितियो पर विजय प्राप्त करना होता है। उसको महासागर बनकर सब कुछ सह लेना होता है, शिवशंकर

वनकर विषपान कर लेना होता है। यही साधक का असिधारा व्रत है। मोम के दांतो से लोहे के चने चवाने हैं। मुनि पन्नालाल जी ने दीक्षा ग्रहण करते ही गुरुदेव से जो पहली शिक्षा ग्रहण की वह यही थी "करेमि भते ! सामाइयं।" "भगवन् ! मैं सममाव की साधना स्वीकार करता हूँ। प्रत्येक परिस्थिति मे अपने मन को सतुलित रखूंगा, विचारो को विवेक से वांधकर रखूँगा। दुःखो को सहन करूँगा और सुखो को भी। कोई गाली देगा तव भी प्रसन्न रहूँगा और कोई वन्दना-स्तुति करेगा तब भी। किसी भी स्थिति मे मैं मन की 'समता' को नही खोऊँगा। सम-मन वनकर ही मैं 'श्रमण' के विरुद को चमकाऊँगा। मन की स्थिरता और समता ही मुझे ज्ञान-ध्यान, तपोभ्यास के लिए वल प्रदान करेगी।"

गुरु चरणो मे इस शिक्षा को ग्रहण कर श्री पन्नालाल जी अब शास्त्र-अध्ययन मे जुटे। जैसे स्वच्छ व शान्त जल मे वस्तु का यथार्थ प्रतिविम्ब झलक आता है। उसी प्रकार मुनि पन्नालाल जी के स्वच्छ व शान्त प्रशान्त मन सरोवर मे तत्त्वज्ञान एव आगम वाणी अविकल रूप से प्रतिविम्वित होने लगी। गुरुदेव श्री की प्रेरणा उन्हें और अधिक वल प्रदान कर रही थी।

मुनि श्री पन्नालाल जी की दीक्षा के पश्चात् गुरुदेव श्री मोतीलाल जी महाराज ने आनन्दपुर से प्रस्थान कर लाम्विया को पवित्र किया। दीक्षा के सातवे दिन वैशाख शुक्ला त्रयोदशी (१३) शनिवार को वडी दीक्षा (छेदोपस्थापनीय चारित्र) प्रदान किया और वहाँ से विहार करते हुये जसवन्तावाद के लिए चातुर्मासार्थ प्रवास किया। चातुर्मास मे चतुर श्रावको का विश्वास प्रचड आत्मविकास के पथ पर वढता है। जैसे श्रावण मे वर्षा की झडी लगती है, वैसे ही श्रमण-जीवन एव श्रमणोपासक जीवन मे भी तप-जप, ज्ञान-ध्यान, सयम-सेवा की झडी लग जाती है। नवदीक्षित वाल मुनि श्री पन्नालाल जी भी इस झडी मे भीग गए और रम गए 'श्रमणत्वमिद रमणीयतर' के मधुर गान मे।

जसवन्तावाद का सफल चातुर्मास सम्पन्न कर गुरुदेव श्री मोतीलाल जी महाराज अपने तेजस्वी नवदीक्षित शिष्य को साथ लिए विहार करते हुए अजमेर पधारे। वहाँ पहले से ही गुरुदेव श्री के लघु गुरु भ्राता श्री गजमल जी महाराज, श्री विजयलाल जी महाराज आदि मुनिप्रवर विराजमान थे। सत-मिलन स्वजन-मिलन से भी अधिक सुखद होता है, फिर स्वजन भी और सत भी 'मिसरी मिला मधुर दूध स्वर्ण कटोरे में' जैसा ही सुसयोग वन जाता है। गुरुदेव श्री के दर्शन कर जहाँ भक्तो का हृदय सागर हर्षातिरेक से ठाठें मारने लगा, वहाँ सत-मिलन के मधुर प्रसग से गुरुदेव एवं मुनि पन्नालाल जी का मन भी आनन्द-विभोर हो उठा।

गुरु-वियोग

महाकवि कालिदास ने कहा है

कस्यात्यन्तं सुखमुपनतं दुःखमेकान्ततो वा
नीचैर्गच्छत्युपरि च पुनश्चक्र नेमिक्रमेण।'

यह ससार बडा विचित्र है, यहाँ न किसी को एकान्त सुख मिलता है, और न दुख। नियति का चक्र निरन्तर चलता ही रहता है, जो कभी ऊपर और कभी नीचे घूमता है। इस नियति-चक्र से सामान्य मनुष्य तो क्या, चक्रवर्ती एव अनन्त बली तीर्थङ्कर भी नही बच सकते। सुख-दुख और जन्म-मरण अवश्यम्भावी भाव हैं, मनुष्य जन्म को शुभ प्रसग और मृत्यु को अशुभ प्रसग मानता है, किन्तु ये दोनो ही प्रसग कभी टल नही सकते।

अजमेर मे आनन्द की स्रोतस्विनी वह रही थी। सन्त-समागम का महान् लाभ जन-सामान्य को मिल रहा था और मुनि श्री पन्नालाल जी की श्रुताराधना भी अस्खलित गति से चल रही थी। पार्श्व जयन्ती[1] का विशाल समारोह भी सानन्द सम्पन्न हो चुका था। अचानक उसी दिन गुरुदेव श्री मोतीलाल जी महाराज शरीर मे अधिक अस्वस्थता अनुभव करने लगे। वृद्धावस्था के कारण सामान्य दुर्वलता और कुछ व्याधि तो कई दिनो से चल रही थी, किन्तु मनोवली व्यक्ति रोग का भोग करते हुए भी उसे महत्त्व नही देते। सहसा व्याधि ने उग्र रूप धारण कर लिया। श्वास, वेचैनी आदि अनेक रूपो मे पीडा का वेग वढा, वेदना से शरीर टूटने लगा। फिर भी गुरुदेव श्री का मनोवल अटूट था। वे व्याधि-वेदना से जूझने लगे। व्याधि को ललकारा और मृत्यु को भी चुनौती देकर वे वीर योद्धा की भांति जीवन के रणक्षेत्र मे डट गये। रोग की असह्य पीडा को भी वे समभावपूर्वक सहन करते गये। मनुष्य रोगाक्रान्त होने पर आकुल-व्याकुल हो जाता है, एक तो वेदना और फिर मृत्यु का भय। दोनो ही मन की शान्ति खा जाते हैं, किन्तु गुरुदेव श्री जैसे तपोधन, योगी का आत्मवल शारीरिक पीडा को तो मन पर आने ही नही देता, और मृत्यु का उन्हे कोई भय नही था, क्योकि चारित्र-श्रुत-शील की आराधना से वे कृतकृत्य थे। ऐसे कृतकृत्य तपस्वी को मृत्यु का क्या भय

न संतसंति मरणंते सीलवंता बहुस्सुया।

शील सम्पन्न एव महाज्ञानी पुरुष मृत्यु निकट आने पर भी घवराते नही हैं। व्याधि का प्रकोप वढता गया। मृत्यु सामने आकर नाचने लगी, फिर भी गुरुदेव श्री पूर्ण समाधिस्थ और शान्त थे। वे प्राय सम्पन्नकार्य थे, किन्तु फिर भी एक उत्तरदायित्व उनके कधो पर था मुनि श्री पन्नालाल के व्यक्तित्व निर्माण का।

गुरु अपने शिष्य की चिन्ता न करे तो फिर गुरुता मे स्खलना आती है। अत: गुरुदेव ने मुनि श्री गजमल जी महाराज एव श्री विजयलालजी महाराज के शिष्य श्री धूलचन्द जी महाराज से कहा—

"यह पन्ना तुम्हारे हाथ मे है। जौहरी के हाथ मे रत्न सौपकर मैं निश्चिन्त हूँ।"

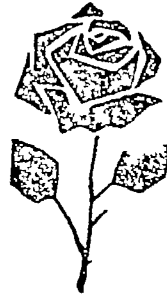
तपस्वी श्री धूलचन्द जी महाराज की स्वीकृति पाकर गुरुदेव श्री पूर्ण निश्चिन्त हो गये। अब उन्होंने शान्त व स्थिर मन होकर श्री गजमल जी महाराज के समक्ष नि शल्य होकर आलोचना की। सलेखना सथारा कर पूर्ण समाधिभाव मे लीन हो गये।

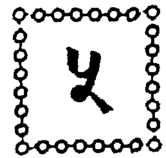
1 पोप वदी १०

'अरिहंत-शरण, सिद्ध शरण, साधु शरण, केवलि प्ररूपित धर्म शरण' बस इन चार महा-शरण का स्मरण करते हुए, मृत्यु से निरपेक्ष होकर परम शान्ति का अनुभव करते हुए उन्होने देहत्याग किया। एक ज्योतिपुज धरा से विलीन हो गया। पौष कृष्णा ११ का मध्याह्नोत्तर काल था, किन्तु फिर भी भक्तजनो के समक्ष एक बार अंधेरी रात-सी आ गई।

बालमुनि पन्नालाल जी के हृदय को गुरु-वियोग का आघात लगना सहज था। वे सहसा इस चोट से विचलित हो गये। जिन गुरुदेव के वरदहस्त की शीतल छाया मे जीवन का यह नया पौधा सरक्षण और सवर्धन पा रहा था, वह छाया आज आँधी के एक ही वेग से ध्वस्त हो गई। इस स्थिति मे असहायता और आश्रयहीनता का अनुभव मन को द्रवित कर ही डालता है। मुनि पन्नालाल जी भी कुछ काल तक ऐसी सभ्रम स्थिति मे पड़े रहे। पर आगमवेत्ता गुरुवर श्री गजमल जी महाराज आदि मुनि मडल का मधुर सान्त्वना-भरा सहयोग, सान्निध्य और सतत वैराग्य-बोधक भावनाओ का चिन्तन गुरु-वियोग के दुस्सह कष्ट को सहने मे सामर्थ्य देने वाला सिद्ध हुआ।

मुनि श्री पन्नालाल जी पुन शान्त एव स्थिरचित्त से ज्ञान की आराधना तथा निर्मल सयम-साधना मे लीन हो गये।





कसौटी पर



नीतिकार चाणक्य ने कहा है

यथा चतुर्भि कनकं परीक्ष्यते
निघर्षणच्छेदन-ताप-ताडनैः ।
तथा चतुर्भि पुरुष. परीक्ष्यते
त्यागेन शीलेन गुणेन कर्मणा ।

अर्थात् सोने की परीक्षा चार प्रकार से होती है घिसना, काटना, तपाना और पीटना । इसी प्रकार त्याग, शील, गुण और कर्म के द्वारा पुरुष की परीक्षा होती है ।

पुरुष की उदारता, निस्पृहता, सदाचार, विद्या, सहिष्णुता और परोपकार-परायणता देखकर उसके व्यक्तित्व की उसकी साधना की और उसके भीतर छिपी मानवता की परीक्षा की जाती है ।

सन्तो के विषय मे कहा जाता है 'संत शवदां परखिये' बोलने से सन्त की परीक्षा करनी चाहिए । इसके दो अर्थ हो सकते हैं दूसरो की कटु और अप्रिय वाणी सुनने पर यदि मन मे रोष-क्षोभ नही आता तो सन्त की साधुता की परीक्षा होती है । दूसरा अर्थ है, मधुर, प्रिय और शिष्ट भाषा बोलने पर सन्त की परीक्षा हो जाती है ।

पहली परीक्षा सन्त की क्षमाशीलता को प्रकट करती है । भगवान महावीर ने कहा है

'जिइंदिए जो सहइ स पुज्जो'

जो जितेन्द्रिय सव प्रकार के कष्ट-अपमान, ताडना-तर्जना, कटुवचन आदि को हँसता-हँसता सह लेता है, वह पूज्य है ।

वास्तव में क्षमा, सहिष्णुता, धैर्य और तितिक्षा यह सन्त का, श्रमण का श्रेष्ठ धर्म है। उसे 'पुढवी समो मुणी हवेज्जा' पृथ्वी के समान धीर-गम्भीर होने की शिक्षा दी गई है।

हमारे चरित नायक मुनि प्रवर श्री पन्नालाल जी महाराज अपने प्रिय गुरुदेव के वियोग के पश्चात् श्रमण धर्म की इस सार्थक साधना मे बडी लगन से जुट गये थे। बचपन मे ही उनकी गम्भीरता और तेजस्विता देखकर गुरुदेव श्री गजमल जी महाराज आदि मुनियो का ध्यान उन पर केन्द्रित हो गया था और वे पूरे मनोयोग से उनकी शिक्षा-दीक्षा, तितिक्षा आदि पर ध्यान देने लगे। उनका अगाध स्नेह और वात्सल्य पाकर मुनि पन्नालाल जी कृतार्थ हो रहे थे, गुरुदेव की स्मृति यद्यपि मन को कभी-कभी कचोटने लग जाती थी, किन्तु उनका अभाव खटकने-जैसा नही रहा। उनके वात्सल्य की पूर्ति पूज्य गजमल जी महाराज एव धूलचन्द जी महाराज ने करने का सफल प्रयास किया।

पूज्य मोतीलाल जी महाराज के स्वर्गारोहण के पश्चात् विक्रम सवत् १९५८ का चातुर्मास अजमेर श्री सघ के आग्रह पर वही किया गया। मुनि श्री पन्नालाल जी इस समय लगभग तेरह वर्ष के थे। इस समय एक विचित्र घटना घटी जो उनकी उत्कृष्ट तितिक्षा वृत्ति का परिचय देती थी।

पर्युषण के दिन नजदीक आ रहे थे। श्रमण परम्परा की विधि के अनुसार सवत्सरी के पूर्व केशलुचन करना अनिवार्य है। मुनि श्री पन्नालाल जी का केशलुचन हुआ। धूप चढने से पहले ही प्रात· केशलुचन कर मुनिश्री नगर के बाहर गुरुदेव जी के साथ शौच के लिए गये। लुचन किया हुआ मस्तक काफी चमक रहा था। वैसे ही उनका गौरवर्ण और भव्य ललाट काफी तेजस्वी दीखता था। लोच करने के बाद तो सोना और पालिश चढा जैसा चमकने लगा। बालक के दिव्य भाल और चमकते-दमकते ललाट पर दर्शक की आँखें सहसा ही जा टिकती थी।

मुनिश्री के चमकते भव्य ललाट को देखकर एक मुसलमान युवक का मन न जाने क्यो उद्वेलित हो उठा। उसे शरारत क्यों सूझी, पता नही। गुरु-शिष्य जैसे ही थोड़े आगे निकले, दबे पैरो से चुपके से वह पीछे-पीछे आया और उनके मस्तक पर पूरे जोर के साथ एक कडकोल (कडकोल्या) जमा दी और भाग गया।

तत्काल लुचित मस्तक पर इतने जोर की चोट लगते ही मुनिवर की आँखो मे अँधेरा छा गया। एडी से चोटी तक बिजली-सी चमक गई और वे घबडाकर वही जमीन पर बैठ गये। गुरुदेव को आवाज दी। गुरुदेव ने पीछे मुडकर देखा तो वे चकित रह गये बालक मुनि घबराया हुआ-सा रास्ते पर बैठा है, आँखें अश्रुपूर्ण हैं और एक हाथ से सिर को पकड रखा है। गुरुदेव ने कहा "पन्ना, क्या हुआ ?"

बालक मुनि ने व्यथित स्वर मे कहा "मेरे सिर पर किसी ने यह कडकोला से मारा है। किसने मारा, यह पता नही। भयकर वेदना हो रही है।" और उनकी आँखो से पीडा का पानी बह निकला।

गुरुदेव ने इधर-उधर देखा, कोई दिखाई नही दिया। शिष्य के मस्तक को वात्सल्य से पुचकारा और फिर धीरज बँधाते हुए कहा "पन्ना तू वीर पुत्र है। एक कडकोल की मार से ही घवरा उठा? अपने पूर्वजो की शान को तू कैसे ऊँची रख सकेगा? गजसुकुमार और खधक अनगार की चौपाई गाने वाला तू क्या उनकी सहिष्णुता, तितिक्षा और धीरज नही सीख सका? कडकोला की मार से घवराने वाला क्या खाक धधकते अँगारे सिर पर रखेगा? ऐसे प्रसंग तो जीवन मे आते ही है। उठ! सहनशीलता रख। तेरी आँखो मे आँसू नही हर्ष उमड़ना चाहिए, क्योकि आज कर्म निर्जरा के दो-दो प्रसग एक साथ आये हैं। हँसते-हँसते कष्ट सहन करने वाला वीर होता है। तू सिंह की सन्तान है, गीदडपन तुझे शोभा नही देता। फिर आज तो तेरी परीक्षा हुई है। घड़े की परीक्षा के समय उसे भी चोट सहनी पडती है। चोट सहने पर ही पक्के-कच्चे घड़े का पता चलता है। साधक यदि चोट, प्रहार और यातना न सहेगा तो उसकी साधुता की परीक्षा कैसे होगी? देख भगवान ने कहा है

हओ न संजले भिक्खू मणं पि न पओसए।
तितिक्खं परमं नच्चा भिक्खु धम्म विचितए॥

किसी के प्रहार करने पर भिक्षु क्रोध न करे। मन मे भी द्वेष न लाये। वह सोचे, तितिक्षा परम धर्म है। सहन करने वाला साधक श्रमणत्व की शोभा वढाता है।"

गुरुदेव श्री के सान्त्वना तथा साहस भरे वचन सुनकर वालक मुनि पन्नालाल जी अपनी शिरपीडा भूल गए। तुरन्त हंसते हुए नये जोश के साथ उठे और वोले "गुरुदेव! आप चलिए। अव मेरा मन स्वस्थ है। पीडा तो भूल ही गया और अधिक साहस एव सहिष्णुता से मन उमगने लगा है। अव तो कडकोला क्या वज्र भी सिर पर आ पड़े तो मुँह से चूँ नही निकलेगा।"

यह सुनकर गुरुदेव ने उन्हे अपनी छाती से लगा लिया और कहा "पन्ना, आज तू कसौटी पर कसा गया था। तू खरा उतरा। तू साधना मे पक गया है।"

मुनि पन्नालाल जी इस प्रकार श्रमण धर्म की तितिक्षा और सहिष्णुता की पहली परीक्षा मे ही शत-प्रतिशत अको से सफल हुए।

अजमेर का चातुर्मास सम्पन्न करने के वाद गुरुदेव श्री विजयलाल जी महाराज ने अनेक छोटे-वड़े क्षेत्रो मे विचरण कर सवत् १९५९ का चातुर्मास मसूदा मे व्यतीत किया।

विक्रम सवत् १९६० का भीलवाडा और १९६१ का किशनगढ मे हुआ।

अव तक मुनि श्री पन्नालाल जी महाराज ने साधना एवं श्रुताभ्यास मे काफी परिपक्वता प्राप्त कर ली थी। यद्यपि उनकी अवस्था सौलह वर्ष की ही थी, किन्तु **'तेजसां हि न वय समीक्षते',**[1] अर्थात् तेजस्वी पुरुषो का तेज देखा जाता है, उनकी

१ रघुवश

आयु की समीक्षा नही की जाती। साधु-समाज मे उनका अच्छा प्रभाव और वर्चस्व बढ रहा था। अनेक मुनिजन भी मुनिवर पन्नालाल जी की सम्मति लेकर ही निर्णय किया करते थे। अचानक चातुर्मास मे गुरुदेव श्री विजयलाल जी महाराज के स्वर्गवास के पश्चात् आप गुरुदेव श्री केशरीमल जी महाराज के साथ किशनगढ से विहार कर अजमेर पधार गये।

चमत्कार को नमस्कार

यह वही अजमेर है, जहाँ दो वर्ष पूर्व आपकी सहिष्णुता और तितिक्षा की कसौटी हुई थी। गुरुदेव श्री के उद्बोधन ने सुप्त सिंहत्व को जगाया और मुण्डित मस्तक पर लगी तेज चोट को भी भुलाकर तत्क्षण आप हँसते हुए अपने कार्य मे जुट गये थे। इस घटना के बाद पता नही और भी कितनी ही परीक्षाएँ हुई होगी। प्रकृति ने जब उनका नामकरण ही रत्न सज्ञक (पन्ना) कर दिया तो रत्न की भाँति बार-बार शाण पर चढना, तराश पाना तो होना ही था, और उस हर बार की परीक्षा मे कुछ-न-कुछ नया तेज-चमत्कार प्रकट होता था। इसी अजमेर मे एक घटना फिर घटी, इसने तो मुनिवर पन्ना-लाल जी के सुप्त प्रचण्ड आत्मविश्वास को जगा दिया, मन शक्ति के अनुकूल अद्भुत चमत्कार से सबको स्तम्भित कर दिया।

सर्दी का मौसम था। मध्याह्न का समय। सुहावनी धूप! मुनिवर पन्नालाल जी शरीर चिन्ता (शौच-बडी नीत) के निवारणार्थ गुरुदेव की आज्ञा लेकर नगर के बाहर लुगिया अस्पताल की तरफ गये। मुनिवर के हाथ मे एक झोली थी। झोली मे शौचार्थ जल-भरा पात्र था। लुगिया के मार्ग मे ही एक टेकडी पर कुछ मुसलमान भाई बैठे थे तथा कुछ खडे थे। एक मुर्दे को दफनाने के लिए गोर (कब्र) खोद रहे थे। जैसे ही उन्होने एक जैन साधु को अपनी ओर आते देखा तो उनमे से दो मनचले युवक उठकर आगे आये और मुनि को रोकते हुए बोले "ओ ढुढिये! हमने सुना है तुम्हारे पास बडी-बडी करामातें होती हैं, आज कुछ करामात दिखाओ।"

मुनिजी ने शान्त भाव से कहा "भाई, हम जैन साधु कभी जादू-टोना नही करते और न हम कभी करामात दिखाते हैं। हम तो सिर्फ अपनी आत्म-साधना और जप-तप मे लगे रहते हैं। चमत्कार और करामात से हमे क्या लेना-देना है।"

युवक बोले "नही-नही, तू बात को टाल रहा है। जब तक कुछ करामात नही दिखायेगा, तुझे न आगे जाने देंगे, न पीछे।"

मुनि बोले "भाई, मैं तो अभी आगे शौच के लिए जा रहा हूँ। मुझे पहले शरीर-चिन्ता से निवृत्त होने दो। ऐसे समय मे रोकना क्या इन्सानियत है?"

"नही, हम नही जाने देंगे। तू घुटा हुआ साधु लगता है। तेरा ललाट भी चमक रहा है। बातें बनाकर हमको बुद्धू मत बना।" युवको ने हठ पकड लिया। सामने टेकडी पर बैठे अन्य लोग भी युवको की बाते सुनकर तालियाँ पीटकर हँसने लगे। इस पर युवको का हौसला और भी बढ गया और वे मुनिजी का रास्ता रोक कर अड गये।

बड़ी विषम स्थिति थी। शरीर के प्राकृतिक वेग मल-मूत्र के वेग को नही रोका जा सकता। वलात् रोकने पर अन्य वीमारी होने का डर रहता है। परिस्थिति इतनी विकट थी कि लाख समझाने पर भी युवक टस-से-मस नही हुए। मुनि पन्नालाल जी एक वार तो घवराहट-सी महसूस करने लगे। पर दूसरे ही क्षण किसी अज्ञात शक्ति ने प्रेरित किया। उनका आत्मवल हुँकार उठा। वे सहसा मौन, आँखें वन्दकर ध्यानस्थ हो गये। मन-ही-मन नवकार मत्र का स्मरण करने लगे। कुछ देर वाद आँखें खोलीं तो वे युवक वही खडे वड़ी वेशर्मी से हँस रहे थे। मुनिवर ने ओजस्वी वाणी मे कहा "वोलो, रास्ता नही देते हो ?"

"नही, जव तक तू करामात नही दिखायेगा, हम तुझे रास्ता नही देंगे।" हठीले युवको ने कहा।

"अच्छा, तो करामात देखना ही चाहते हो।" मुनि पन्नालाल जी ने अपनी तेजोदीप्त आँखे युवको पर गाडते हुए कहा।

"हाँ, अव आया है रंग मे ढुँढिया। दिखा करामात !" युवक वोले।

"वोलो किस पर दिखलाऊँ करामात ?" मुनिश्री की जोशीली एव दृढ वाणी सुनकर युवक जरा घवरा गये। सोचने लगे 'यदि अपने पर दिखाने को कह देंगे तो यही चिपका देगा हमे। यह वला अपने सिर पर क्यो लें ? घर दूसरे का जले, मजा हम देखें।' यह सोचकर टेकडी पर खड़े अन्य लोगो की तरफ इशारा कर दिया।

मुनिजी ने अपनी तेज स्फूर्ति दृष्टि ज्यो ही उधर फेंकी, त्योंही कब्र खोदने वाला आदमी धडाम से कब्र के अन्दर जा पड़ा। दोनो युवक यह देखकर घवरा गये। मुनिजी ने पूछा "वोलो, अव तुम पर भी दिखाऊँ कुछ करामात ?"

युवक गिडगिडाकर मुनिजी के चरण पकडने लगे "वावा, माफ कर दो। हमने वहुत गुनाह किया है।"

"जैन साधुओ के साथ फिर कभी अडोगे ? फिर कभी करामात दिखाने के लिए कहोगे ?"

युवको ने कान पकड़ लिये -"ना वावा, ना ! अव हम कभी किसी साधु-महात्मा को तग नही करेंगे। हमे माफ कर दो।"

मुनिश्री पन्नालाल जी ने चेतावनी देकर युवको को क्षमा कर दिया। वास्तव मे 'महप्पसाया इसिणो हवति' ऋषिजन प्रसन्न और प्रसाद पूर्ण हृदय वाले होते हैं।

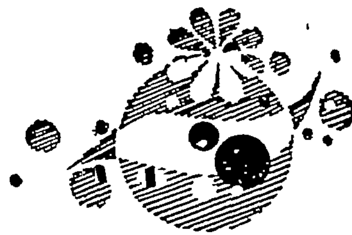
मुनिश्री वापस स्थानक लौटे। तव तक काफी विलम्व हो गया था। गुरुदेव को कुछ चिन्ता भी होने लगी थी। जव उन्हे आया देखा तो आश्चर्यपूर्वक गुरुदेव ने कहा—"पन्ना ! आज इतना विलम्व कैसे हुआ ?"

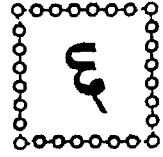
मुनिवर ने आपवीती सव घटना सुनाई। गुरुदेव ने विस्मित भाव से पूछा "तुमने क्या मत्र जपा ?

मुनिवर "गुरुदेव ! नवकार मंत्र के सिवाय तो मैं और कोई मंत्र जानता भी नहीं हूँ। यह सब कैसे हुआ, इस विषय में स्वयं मैं भी अज्ञात हूँ। पर सिर्फ इतना अनुभव हो रहा है कि उस समय मेरे भीतर एक प्रचण्ड आत्म-शक्ति जागृत हो गई थी। एक लौ की भाँति कोई दिव्य शक्ति प्रज्वलित हो उठी थी। आत्म-शक्ति या नवकार मंत्र की प्रभावी शक्ति कुछ भी समझें, इनके प्रभाव से ही यह सब हुआ।"

मुनिश्री की आँखों में अब भी एक दिव्य तेज दमक रहा था, जिसे देखकर गुरुदेव एवं अन्य संतगण चमत्कृत हो गये। गुरुदेव ने स्पष्ट देखा, यह श्रमण एक महान क्रान्तिकारी एवं तेजस्वी व्यक्तित्व के रूप में उभरेगा। जिन शासन की अद्भुत प्रभावना करेगा, किन्तु प्रकट में सिर्फ इतना ही कहा—"देखो, यों करामात दिखाना हम श्रमणों का काम नहीं है। भविष्य में ऐसा कभी मत करना।"

मुनिश्री ने विनयपूर्वक गुरुदेव की शिक्षा स्वीकार की और अपनी साधना-आराधना में जुट गये।





जनपद-विहार



भगवान् महावीर ने ऋषि-मुनियो के लिए कहा है **विहार चरिया इसिणं-पसत्था।**

श्रमण-ऋषियो के लिए विहार करना प्रशस्त है। उनकी यात्रा नदी-प्रवाह के समान है। नदी जिस नगर के परिपार्श्व से निकलती है, वह नगर धन-धान्य, व्यापार आदि की दृष्टि से विकास के शिखर पर चढता जाता है। नदी का किनारा सदा हरा-भरा रहता है और उसकी जलधारा से भूमि की उर्वरता वढती जाती है। गगा-यमुना आदि नदियो के किनारे वसे नगर आज समृद्धि की होड मे आगे वढ रहे हैं, इसका सवसे प्रमुख कारण नदियो का सान्निध्य ही है। सतो के सत्सग से भी जन-जीवन मे सत्सस्कार, सद्विचार और सदाचार की समृद्धि वढती है। जन-जीवन की अनेक आपदाएँ-विपदाएँ स्वत पलायन कर जाती हैं और भ्रातृत्व का विमल व्यवहार जीवन मे उतरने लगता है। कहा भी है

साधु, सलिला, वादली, चले भुजगी चाल।
जिण-जिण सेरी नीसरे, तिण-तिण करत निहाल॥

मुनि श्री पन्नालाल जी अपने गुरुजनो के साथ गगा की पावन धारा की भाँति जनपद मे विचरण करने लगे थे। उनकी वाणी मे माधुर्य तो था ही, शास्त्राभ्यास और अनुभव के साथ उसमे ओज और गाम्भीर्य भी व्यक्त होने लगा था। उनका व्यवहार मनोमुग्धकारी था। प्रथम सम्पर्क मे ही व्यक्ति चुम्वकीय जैसे आकर्षण से खिच जाता था। प्रभावशाली व्यक्तित्व के कारण दूर-दूर तक की जनता मुनि श्री के सम्पर्क मे आती। जैन व अजैन व्यक्ति भी उनके दर्शन करने को उत्सुक रहते और जो उनका उपदेश एक वार सुन लेता, वह वार-वार सुनने के लिए लालायित रहता।

विक्रम सवत् १९६२। चैत्रमास मे किशनगढ श्रीसघ के अत्याग्रह पर आप वहाँ पधारे और वहाँ वैरागी छीतरमल जी एव श्री छोटमल की दीक्षा सम्पन्न हुई। इस वर्ष के चातुर्मास्य के लिए आपने हरमाडा श्री सघ की आग्रह-भरी प्रार्थना स्वीकार की। यह चातुर्मास पूज्य गुरुदेव श्री केशरीमल जी महाराज के साथ सम्पन्न हुआ। अन्य अनेक विशिष्ट कार्यो मे इस चातुर्मास की एक विशेष महत्त्वपूर्ण उपलब्धि थी—मुनिश्री द्वारा 'रमल विद्या' का अध्ययन।

विद्या और ज्ञान कोई भी बुरा नही होता, यदि उनका उपयोग जनहित एव आत्महित मे किया जाए। यहाँ यह उल्लेखनीय है कि हमारे चरितनायक मुनि श्री पन्नालाल जी एक क्रान्तदर्शी सत होने के साथ-साथ शक्ति के विकास मे विश्वास रखते थे। प्राचीन विद्याएँ जो पात्र एव अनुभवी गुरु के अभाव मे लुप्त हो रही थी या जिनका दुरुपयोग किया जा रहा था, उन लुप्त-सुप्त विद्याओ का अनुसन्धान कर रहस्य प्राप्त करने की बलवती जिज्ञासा आप मे थी। आपने ज्योतिष विद्या, रमल विद्या, तत्र-मत्र विद्या आदि अनेक प्रकार की प्राचीन विद्याओ का अनुशीलन किया और उनका रहस्य भी प्राप्त किया। आपका कथन था ये विद्याएँ तो क्षयोपशम भाव हैं। इनका ज्ञान प्राप्त करना बुरा नही है, यदि दृष्टि मे विवेक और सयम का पुट है। भगवान महावीर का स्पष्ट कथन है

समियति मन्नमाणस्स समिया वा असमिया वा समिय हवइ।

आचारांग ५।५

सम्यग्दृष्टि के लिए सब ज्ञान सम्यग्श्रुत है। चाहे वह स्व-मत का हो या पर-मत का। चाहे वह तर्क-विद्या हो, तत्र-विद्या हो या रमलविद्या। क्योकि वह उसका प्रयोग विवेकपूर्वक ही करेगा। मध्ययुग की जैनयति परम्परा मे ज्योतिष, तन्त्र-मन्त्र विद्याओ का काफी प्रचार था, किन्तु जब उनके जीवन मे सयम का बन्धन शिथिल होने लगा तो विद्याबल का प्रवाह ऊर्ध्वगामी होने के बजाय अधोगामी होने लग गया। सयम एव सम्यग् विवेक के अभाव के कारण वाछित फलदा विद्यासुन्दरी पर भी उँगली उठने लग गई थी। दीर्घप्रज्ञ मुनि श्री पन्नालाल जी महाराज इतिहास की इस अक्षम्य भूल को पकड चुके थे, इसलिए उन्होने शक्ति के साथ सयम और सम्यग् विवेक का कडा बन्धन बाँधा और इसी कारण उनके जीवन मे समय-समय पर जहाँ आवश्यक हुआ, आत्मबल चमत्कार बनकर प्रस्फुटित हुआ किन्तु कही भी उसका अहितकर परिणाम नजर नही आया। अस्तु, ज्योतिष और रमल विद्या का ज्ञान भी इसी दृष्टि से उन्होने प्राप्त किया था।

हरमाडा चातुर्मास सम्पन्न कर मुनि श्री ने आस-पास के छोटे क्षेत्रो मे भ्रमण कर वि० स० १९६३ का चातुर्मास पादू रूपारेल मे, वि० स० १९६४ का चातुर्मास भीलवाडा मे, वि० स० १९६५ का जालिया मे और वि० स० १९६६ का पुन पादू रूपारेल मे सम्पन्न किया।

वि० स० १९६६ का चातुर्मास गुरुदेव श्री गजमल जी महाराज के साथ प्रारम्भ किया था। किन्तु कुछ विशेष कारणवश पूज्य गुरुदेव श्री केशरीमल जी महाराज के पास पादूरूपारेल मे पहुँचना पड़ा।

वि० सं० १९६७ का चातुर्मास मसूदा (अजमेर), वि० स० १९६८ का अजमेर, वि० स० १९६९ का किशनगढ, वि० स० १९७० का भिणाय, वि० स० १९७१ का पादूरूपारेल एव वि० स० १९७२ का मसूदा मे सम्पन्न हुआ।

वि० स० १९६९ किशनगढ मे गुरुदेव श्री केशरीमल जी महाराज का स्वर्गवास हो जाने के पश्चात् आप पूज्य गुरुदेव श्री धूलचन्द जी महाराज के सान्निध्य मे रहने लगे। सान्निध्य तो गुरुदेव का था, पर वास्तव मे व्याख्यान एवं जन सम्पर्क का दायित्व तो आपके ही कन्धो पर था।

कबिरा गरव न कीजिए

वि० स० १९७३ का चातुर्मास गुरुदेव श्री धूलचन्द जी महाराज के साथ आपने वाँदनवाडा मे किया। गुरुदेव श्री अस्वस्थ होने के कारण चातुर्मास के पश्चात् भी यही विराजते रहे।

इस वर्ष राजस्थान के इस अचल मे महामारी का भयकर आतक फैल रहा था। न्यूनाधिक रूप मे पूरा देश ही इस चपेट मे था। स्वस्थ और हृष्ट-पुष्ट दीखने वाला व्यक्ति भी एक-दो दिन मे धराशायी हो जाता था। साधारण रूप मे शरीर के किसी भाग पर एक गाँठ उठती और एक-दो दिन मे ही आदमी मृत्यु का ग्रास बन जाता। चारो ओर मृत्यु की काली छाया मँडरा रही थी, किन्तु कुछ क्षेत्र इस महामारी कि आतक से अब भी सुरक्षित थे। उनमे वाँदनवाडा और टाँटोटी का नाम लिया जा सकता है। टाटोटी मे उन दिनो आचार्य श्री नानकराम जी महाराज की सम्प्रदाय के आचार्य श्री अभयराम जी महाराज के आज्ञानुवर्ती स्वामी श्री छोटमल जी महाराज (बडे) स्थानापति थे। वे बडे उग्रतपस्वी थे, साथ ही चमत्कारी संत के रूप मे भी उनकी ख्याति थी। प्रतिवर्ष अनेको तेले करते और गाव के बाहर उत्तर दिशा मे डाई नदी के किनारे पर पीर जी की एक दरगाह थी, वही जाकर तीन दिन तक एकान्त मे ध्यान आदि किया करते थे। उनके तपोजन्य प्रभाव की दूर-दूर तक चर्चा थी। टाटोटी मे अब तक महामारी की छाया नही पडी थी। ग्रामवासी इसे धर्म का एव तपस्वी स्वामी छोटमल जी महाराज का ही प्रभाव समझते थे और उनका विश्वास सही भी था। जब आस-पास के क्षेत्रो मे प्रतिदिन महामारी अपना पंजा फैलाकर कोई-न-कोई भक्ष्य ले रही हो, तब बीच का एक छोटा-सा गांव उसके आतंक से सर्वथा सुरक्षित रहे यह चमत्कार नही तो और क्या था? ग्रामवासियों को स्वामी जी ने आश्वस्त भी कर रखा था, जब तक छोटू जिन्दा है, तुम्हें डरने की जरूरत नही।

इन्ही दिनों (वि० स० १९७४ के चातुर्मास के पूर्व) मुनि श्री पन्नालाल जी महाराज आपको सुख-साता पूछने के लिए टाँटोटी पधारे। पन्नालाल जी महाराज की

तेजस्विता और प्रभावशीलता की अनेक बाते भी जनता मे फैल चुकी थी। किन्तु उन्होने स्वय कभी अपने मुँह से इन घटनाओ की चर्चा तक नही की। वास्तव मे साधक के लिए यह उपयुक्त भी नही है कि वह अपने मुँह से मियामिट्ठू बने। मुनि श्री जब टाटोटी पधारे तब अनेक चर्चाओ के बीच महामारी की चर्चा आई और स्वामी छोटमल जी महाराज की आँखो मे जरा चमक आ गई। वे बोले देखो पन जी! चारो ओर प्लेग का भारी आतक छाया हुआ है, किन्तु टाटोटी मे उसका कुछ असर-वसर नही है। मैंने अपने प्रभाव से इसको गाँव मे घुसने से रोक रखा है। टाटोटी के एक कुत्ते का भी बाल बाका नही हो सकता, जब तक मैं हूँ! बोलो तुम मे है, ऐसी करामात?

मुनिवर पन्नालाल जी मौन और गम्भीर हो गये। साधक को अपनी शक्ति का अहकार कभी नही होना चाहिए और न वाणी द्वारा अपनी महानता व्यक्त करनी चाहिए। इसीलिए भगवान ने कहा है 'अत्ताण न समुक्कसे अपने मुँह अपना उत्कर्ष नहीं बताना चाहिए। जैसे शक्ति को छिपाना, दीनता दिखाना दोष है, वैसे ही शक्ति का प्रदर्शन करना और अपने मुँह मियामिट्ठू बनना भी दोष है। स्वामी छोटमल जी महाराज अपनी तप शक्ति के प्रभाव को हजम नही कर पाये और मुनि श्री पन्नालाल जी के समक्ष उसकी बडी-बडी बातें करने लगे। कुछ देर तो मुनि श्री मौन भाव से सुनते रहे, पर जब स्वामी छोटमल जी महाराज बार-बार उसी बात को दुहराने लगे तो मुनि श्री पन्नालाल जी ने गम्भीर स्वर मे कहा

ठीक है, आपका प्रभाव प्रबल है, पर गर्व नही करना चाहिए कौन जाने कब क्या होता है। .

कुछ दिन तक मुनि श्री स्वामी छोटमल जी के पास रहे और फिर लौटकर वापस बादनवाडा आ गये। समय की बलिहारी है, इसी १९७४ के चातुर्मास मे प्लेग का फिर जोर बढा और टाटोटी गाँव उसके चगुल मे फँस गया। आश्चर्य! महामारी का पहला आक्रमण स्वामी छोटमल जी पर ही हुआ। एक गाँठ उठी और देखते ही-देखते तपस्वी-राज स्वर्गवासी हो गये। कुछ दिन बाद उनके शिष्य श्री हरिलाल जी महाराज भी इसी के शिकार हुए और अब पूरे गाँव मे भगदड मच गई। दस-पन्द्रह मनुष्य प्रतिदिन कालकवलित होने लगे। कुछ ही दिनो मे टाटोटी सूना-सूना-सा हो गया। वह बीभत्स और हृदयद्रावक दृश्य आज भी बुजुर्गो के दिलो पर अकित है और उसकी स्मृति मात्र से रोमाच हो जाता है।

बादनवाडा मे स्थित मुनि श्री पन्नालाल जी ने टाटोटी की घटना सुनी तो उनके मन पर गहरी चोट लगी। साथ ही वे कुछ समय के लिए विचार-मग्न हो गए।

भगवान ने तपस्वी साधको को जहाँ जितेन्द्रिय कहा है, वहाँ **"गुत्तिदिए गुत्तबभयारी संखित्तविउलतेउलेस्से"** आदि विशेषण भी दिये है। उनका रहस्य इस घटना के प्रकाश मे स्पष्ट होने लगा। इन्द्रियो के विकारो को जीतना ही बस नही है, किन्तु इन्द्रिय-विजय से जो शक्ति प्राप्त होती है, उस शक्ति को गुप्त रखना, उस शक्ति का अहकार न

करना यह इन्द्रिय-विजय से आगे की साधना है। शक्ति प्राप्त होना उतना महत्त्व का नही, जितना उस शक्ति के दर्प को हजम कर लेना।" मुनि श्री बहुत देर तक इसी बात पर सोचते रह गये। वे स्वय शक्ति-सम्पन्न थे, पर उन्होने न तो कभी अपनी शक्ति का बखान किया और न उसके भरोसे पर किसी को आश्वासन दिया। बल्कि सदा सत्कर्म, सदाचार और तपाराधन की प्रेरणा देकर आपत्तियो से स्वय लड़ने का ही सन्देश दिया। आश्चर्य की बात है कि चारो ओर जहाँ महामारी की काली भयावनी छाया मँडरा रही थी, वहाँ बादनवाडा मे दो-चार छुटपुट घटनाओ के अतिरिक्त प्राय पूरा नगर ही सुरक्षित रहा।

शिक्षा-गुरुजी का विछोह

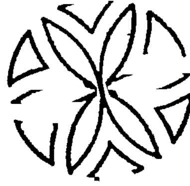
वि० स० १६७४ का चातुर्मास सम्पन्न होने के बाद पूज्य गुरुदेव धूलचन्द जी महाराज ने बादनवाडा से विहार कर अनेक नगरो मे भ्रमण किया और १६७५ का चातुर्मास भिणाय मे सम्पन्न किया। इस चातुर्मास के बाद आप टाटोटी पधारे। वहाँ पूज्य गुरुदेव श्री गजमल जी महाराज भी जालिया चातुर्मास कर विहार करते हुए पधार गये थे। सतो का मधुर मिलन उत्साहवर्द्धक रहा। वहा गुरुदेव श्री गजमल जी महाराज का स्वास्थ्य क्षीण होने लगा। सामान्य बीमारी मे भी उन्हे ऐसा अनुभव हुआ कि यह शरीर अब अधिक दिन टिकने वाला नही है। माघ शुक्ला १४ के दिन गुरुदेव श्री धूलचन्द जी महाराज के समक्ष नि शल्य भाव से आलोचना आदि कर सलेखना की इच्छा व्यक्त की। कुछ सतो ने कहा गुरुदेव अभी तो ऐसी कोई बात नही है? आपने स्थितप्रज्ञ की भाँति उत्तर दिया श्वास तो हवा है। इसका कोई भरोसा नही है

पवन तणो परतीत, किहि कारण काठो करी ?
इणही आहिज रीत, आवै के आवै नहीं॥

एक सास आई और दूसरी आयेगी कि नही, कोई पता नही। यह जीवन और यह शरीर 'फेणुवुव्बुय सन्निभ'—पानी के परपोटे के समान है। इसलिए इसका भरोसा कर अपना सलेखना-सथारा टालते जाना क्या उचित है?

आपका दृढ धैर्य और अंतिम आत्मशुद्धि की तीव्र अभिलाषा सभी को चकित करने वाली थी। वास्तव मे यही तो मृत्युकला है। जीने की कला, हर कोई जानना चाहता है। परन्तु मृत्युकला कोई विरला ही जानता है। गुरुदेव श्री गजमल जी महाराज ने सलेखना की और वे सम्पूर्ण समय अत्यन्त सावधानी के साथ आत्म-आराधना, चिन्तन-मनन आदि मे जागरूकता के साथ बिताने लगे। ऐसा लग रहा था कि वे मृत्यु की भीति से मुक्त होकर महाकाल का स्वागत करने की तैयारी कर रहे थे। मृत्यु-काल सामने खडा दिखाई दे रहा था और वे निर्भीकता के साथ अपनी तैयारी कर उस पर आरूढ होने को थे। आखिर फाल्गुन कृष्णा १३ के दिन अभयमूर्ति गुरुदेव श्री ने यावज्जीवन सथारा किया और उसी रात्रि में आपका स्वर्गवास हो गया।

गुरुदेव श्री गजमल जी महाराज के सान्निध्य मे मुनि श्री पन्नालाल जी ने अपना बाल्यकाल बिताया था और उनकी देख-रेख मे श्रुताभ्यास किया था। अत. उनके असीम उपकार की स्मृति कर दिल भर आना सहज ही था। पर मृत्यु नियति का अटल नियम है, अत इस पर आसू बहाना भी मन की दुर्बलता व्यक्त करना है। मुनि श्री पन्नालाल जी ने बडे धीरज के साथ शिक्षा-गुरु के वियोग का आघात सहन किया। नानक-सम्प्रदाय का शासन सूत्र अब तक गजमल जी महाराज के कुशल हाथो मे ही था। अब इसके सचालन का दायित्व पूज्य गुरुदेव श्री धूलचन्द जी महाराज के सक्षम कन्धो पर आ गया।



७

वाणी के जादूगर



जैनशास्त्रो मे तीर्थङ्कर देव की वाणी के पैंतीस अतिशय (वचनातिशय) बताये हैं। उनमे कुछ अतिशय इस प्रकार हैं

प्रस्तावौचित्यं प्रस्ताव, अर्थात् प्रसग के अनुसार इस प्रकार का हृदयहारी कथन करना कि श्रोता उसी भावधारा में बहने लग जाए।

अमोघ-वचन—तीर्थङ्कर देव की वाणी कभी निष्फल नही जाती। उसमे सहज चमत्कार रहता है कि श्रोता के हृदय पर अवश्य ही प्रभाव पडता है और उस वाणी के अनुसार, व्रत-नियम को ग्रहण करने के लिए श्रोता का हृदय स्वयं आतुर हो उठता है।

तीर्थङ्कर देव **देवाधिदेव** होते हैं। वे अनन्त पुण्यशाली होते हैं। किन्तु श्रमण निर्ग्रन्थ भी उन्ही के धर्मपुत्र हैं। इस कारण पूर्ण रूप मे न सही, किन्तु तीर्थङ्करो की विशेषता और अतिशय का आंशिक प्रभाव श्रमणो मे होना स्वाभाविक और सहज ही है।

प्रवर्तक मुनि श्री पन्नालाल जी महाराज की वाणी सुनने का जिन्हे अवसर मिला, वे उनकी वाणी मे उक्त दो विशेषताओ का बार-बार अनुभव करते रहे हैं। उनका आत्मबल प्रचण्ड था, शास्त्र-ज्ञान अद्‌भुत था और लोक-व्यवहार का भी खूब गहरा ज्ञान था। इस कारण भी तथा कुछ नैसर्गिक प्रतिभा के कारण भी उनकी वाणी में एक स्वाभाविक आकर्षण था। जो सुनता अथवा अपनी वाणी द्वारा जिसे वे प्रभावित करना चाहते, उस कार्य मे वे निश्चय ही सफल होते। ऐसे अनेक उदाहरण उनके जीवन मे घटित हुए हैं।

विरोध विदेशी कपड़े से नहीं, हिंसा से

मुनि श्री पन्नालाल जी महाराज की वाणी का चमत्कारपूर्ण प्रभाव इन घटनाओ से स्पष्ट समझ मे आ सकता है। उनकी वाणी में सत्य का अटूट बल होता था। सत्य-वक्ता कभी भयभीत नही होता। वह किसी भी परिस्थिति मे सत्य का सहारा लेकर,

न्याय का पक्ष लेकर आपत्ति-विपत्ति के समुद्र को लाँघ जाता है। अपना सत्य पक्ष रखने मे, सिद्धान्त के अनुकूल सत्य कथन करने मे वह कभी हिचकता नही, और आखिर उस निर्भीक पर-हित सत्य का जनता पर चमत्कार पूर्ण प्रभाव होता ही है।

गुरुदेव श्री धूलचन्द जी महाराज की जघा मे नाडी व्रण (नासूर) हो जाने के कारण १९७६-७७ का चातुर्मास मसूदा मे करना पडा। आप श्री भी उनकी सेवा मे थे। वि० स० १९७८ मे व्रण कुछ ठीक होने से गरमियो मे (मई, सन् १९२१) आप श्री नसीराबाद पधारे।

वि० सं० १९७८ का समय सम्पूर्ण भारत मे उथल-पुथल का समय था। अँग्रेजी-शासन के विरुद्ध गाधी जी ने जो क्रान्ति की लहर पैदा की, उससे सम्पूर्ण देश आन्दोलित था। विदेशी वस्त्रो का वहिष्कार करने की आँधी मे स्थान-स्थान पर विदेशी वस्त्रो की होली जलाई जा रही थी और जनता द्वारा विदेशी वस्तु का वहिष्कार कर विदेशी सरकार के प्रति आक्रोश और तिरस्कार के भाव प्रकट किये जा रहे थे। इधर नमक सत्याग्रह भी पूरे जोर पर था। सत्याग्रहियो के जत्थे अपने आपको सरकार के सामने प्रस्तुत कर रहे थे और उनको पकड-पकड कर जेलो मे भेड-बकरियो की तरह ठूँसा जा रहा था। विदेशी सत्ता के अमानवीय अत्याचारो के प्रति जन-आक्रोश भडक रहा था। सैनिक छावनी होने के कारण नसीराबाद बहुत महत्त्वपूर्ण स्थान था। वहाँ सुरक्षा की दृष्टि से बडे-बड़े प्रबन्ध थे। धारा १४४ तो लागू थी ही। वहाँ का प्रशासन भी एक कैप्टेन के हाथो मे था।

इधर नगर मे मुनि श्री पन्नालाल जी महाराज का पधारना हुआ था। आप श्री अभी युवक थे। राष्ट्रीय विचारधारा के क्रान्तिकारी सतो मे आप प्रसिद्ध थे। फिर ओजस्वी और प्रभावशाली वक्ता के रूप मे तो पूरे इस मण्डल मे आपकी ख्याति हो चुकी थी। स्थानीय नवयुवक मडल ने, जिसमे जैन, वैष्णव आदि सभी वर्गों के युवक थे एक दिन आग्रह किया कि आप गो-हिंसा के विरोध मे सार्वजनिक प्रवचन कीजिए, क्योकि स्पष्ट रूप से तो गो-हत्या का धधा कसाई लोग ही करते हैं, किन्तु उन कसाइयो को व्यापार के लिए जब धन की जरूरत होती है, तो वे स्थानीय सेठ लोगो से लेते हैं। ये जैन व वैष्णव गृहस्थ होते हैं, जो व्यवहार मे अहिसा का पालन करते हैं, गो-हिंसा के कट्टर विरोधी हैं, और गो-माता के भक्त भी हैं, किन्तु पिछले दरवाजे से वे कसाइयो को कर्ज देकर अपना धधा तो करते ही हैं, उनके व्यवसाय की वृद्धि मे भी सहायक होते हैं। अहिसा के उपासक और गोभक्त समाज के लिए यह बडी कलक की बात थी। मुनि श्री के सामने जब यह स्थिति आई तो उन्होंने युवको के इस आग्रह को स्वीकार कर सार्वजनिक प्रवचन देने की स्वीकृति दे दी।

सदर बाजार मे पुलिस स्टेशन के निकट ही सार्वजनिक व्याख्यान की व्यवस्था हुई। मुनि श्री ने प्रवचन प्रारम्भ किया। सभास्थल खचाखच भरा था। लगभग तीन हजार की जनमेदिनी के बीच आपने अहिसा के व्यापक स्वरूप पर प्रकाश डालना

प्रारम्भ किया। आगम-वेद, पुराण, कुरान, गीता, भागवत के अनेक संदर्भों को प्रस्तुत करते हुए आपने अहिंसा, उसमे पशुवध, पशुवध मे सहायक होने वाले व्यापार आदि पर जोशीला प्रवचन दिया। प्रवचन के बीच राष्ट्रीय समस्या 'विदेशी वस्त्र' भी आ गया। आपने उसे भी अहिंसा का प्रश्न लेकर काफी प्रभावशाली ढंग से श्रोताओं के हृदय को झकझोरा।

अहिंसा का यह प्रसग चल ही रहा था कि वहाँ का प्रशासक (अंग्रेज) कैप्टेन, कैण्टोनमेण्ट का मुख्य अधिकारी घोडे पर सवार होकर उधर ही सभास्थल की तरफ आ गया। और वही रुक गया।

यह वह जमाना था, जब भारतीय प्रजा पर अंग्रेजी शासको का एकच्छत्र राज्य था। लोग कहते थे कि अंग्रेज का कुत्ता भी शेर बना हुआ था। किसी अंग्रेज आफीसर का आदेश ही कानून माना जाता था और उसके विरुद्ध आवाज उठाना बन्दादी को बुलाना या मौत को निमन्त्रण देना था। अंग्रेजी सत्ता के विरोध मे आवाज उठाने वालो को दमन की चक्की मे पीसा जा रहा था। पूरे देश मे अंग्रेजो का दमनचक्र चल रहा था।

नसीरावाद तो फौजी छावनी थी। धारा १४४ लागू थी, जिसके अन्तर्गत पाँच या इससे अधिक व्यक्तियो का सार्वजनिक स्थान या मार्ग पर एकत्र होना भी अपराध था। ऐसी स्थिति मे अंग्रेजी सेना की नाक के नीचे सार्वजनिक स्थान पर यह सभा आयोजित हुई। उसमे अहिंसा और विदेशी वस्त्र के वहिष्कार की चर्चा, और सामने खडा है अंग्रेज कैप्टेन, नगर का प्रशासक स्वय। व्यवस्थापको के होश गुम हो गये, उनके चेहरे सफेद पड गये। अब करें तो क्या करें? इधर-उधर कानाफूसी होने लगी। मुनि श्री ने जनता की भयाक्रान्त स्थिति को भाँप लिया। १४४ धारा के अन्तर्गत यह आयोजन करने की व्यवस्थापको की भूल का उन्हे भी अफसोस हुआ। पर अब क्या है? जब ऊखल मे सिर दे दिया तो फिर डरना काहे का। उन्होने बचपन मे यही पाठ पढा था।

तावद् भयेषु भेतव्य यावद् भयमनागतम्।
आगतं तु भयं द्रष्ट्वा प्रहर्तव्यमशेकया॥

अर्थात् भय (विपत्ति) जब तक सामने नही आ जाए, तब तक उससे बचने का प्रयत्न करना चाहिए, किन्तु जब सिर पर भय आ जाए तो फिर निर्भय होकर उस पर प्रहार करना ही बुद्धिमानी है। यह विचार कर मुनि श्री ने निर्भीकतापूर्वक अपना प्रवचन चालू रखा और जनता को भी शान्ति के साथ सुनने का आह्वान किया।

इधर कैप्टेने घोड़े से नीचे उतरा। घोड़े की लगाम साथ के पुलिस इन्सपेक्टर को थमाई और स्वय मुनि श्री की ओर आगे आया। कैप्टेन को आगे बढा देखकर जनता का कलेजा धक्-धक् कर उठा। लोग देख रहे थे और मन मे आशकित थे कि कही मुनि श्री को गिरफ्तार न कर लें। कप्तान सीधा मुनि श्री के सामने पहुँचा और बोला तुम कौन हो?

मुनि श्री—मैं जीवात्मा हूँ।

अँग्रेज कप्तान तुम्हारे वल्द का नाम क्या है ?

मुनि श्री मेरे वल्द का नाम महावीर है।

कप्तान तुम्हारा घर कहाँ है ?

मुनि श्री सारा भूमण्डल मेरा घर है।

कप्तान तुम यहाँ क्या कर रहे हो ?

मुनि श्री मैं अहिंसा पर बोल रहा हूँ।

कप्तान विदेशी वस्त्र पर तो नही बोल रहे हो ?

मुनि श्री हमारा उपदेश तो अहिंसा का पालन करने का है। जिस काम मे हिंसा हो उसे छोड देने को हम कहते हैं, चाहे वह देशी हो या विदेशी।

कप्तान विदेशी वस्त्र का विरोध मत करना।

मुनि श्री हमारा विरोध हिंसा से है। हिंसा चाहे देश मे होती हो या विदेश मे, जहाँ हिंसा होती है, वही हमारा विरोध है।

अँग्रेज कप्तान ने मुनि श्री के साथ हुई सब बातें अपनी डायरी मे लिख ली और अन्त में वेल गुड (Well good) बोलकर चल दिया।

जनता आश्चर्य-मुग्ध आँखो से यह सब देखती रही। उसे पूरा शक था कि मुनिश्री को अब गिरफ्तार ही किया किन्तु बिना किसी व्यवधान के सभा शान्ति के साथ सम्पन्न हो गई।

दूसरे दिन प्रात काल से ही लोगो मे पुन कानाफूसी शुरू हो गई। अनुमान था कि कप्तान जो रिपोर्ट लिखकर ले गया है, उस पर अवश्य ही कुछ कार्रवाई करेगा। क्योकि उसका आतक वैसे भी काफी है और फिर धारा १४४ तोडकर इतनी बडी सभा का आयोजन करना तो सीधा ही सरकारी आदेश का उल्लघन था। वह इसके विरुद्ध कडा कदम उठाये विना चुपचाप कैसे रहेगा ? कुछ सज्जन इस बात की निगरानी भी रखने लगे कि कही गिरफ्तारी का आदेश न निकल जाए।

इस घटना के दो-तीन दिन बाद ही जेठ की दुपहरी मे, जब भयकर गरमी से धरती झुलस रही थी—लगभग दो बजे होगे, पुलिस सब इन्सपेक्टर पन्द्रह जवानो को साथ लेकर हथकडियाँ लिये बाजार की ओर बढा आ रहा था। लोगो ने जैसे ही उन्हे आते देखा, हृदय धडक उठा। आशका से भयभीत होकर वे स्थानक की ओर दौड़े और घबराते हुए मुनि श्री को सूचना दी पुलिस आपको गिरफ्तार करने आ रही है। बिजली की तरह यह अफवाह फैल गई और श्रावक लोग दौड-दौडकर स्थानक मे आ डटे। सभी ने मुनि श्री से कहा आप तत्काल किसी अज्ञात स्थान की ओर चले जाइए, अन्यथा आज हम सब पर भयकर आपत्ति आ जायेगी।

लोगो की भय भरी बाते सुनकर भी मुनि श्री विचलित नही हुए। साहस और धीरज के साथ उन्होने कहा- "आप लोग घबराये नही। जो होना है, वह होगा। भाग जाने और छिप जाने की बाते न करे। पहली बात यह कि मुझे दृढ आत्म-विश्वास है कि ऐसा कुछ भी नही होगा। पुलिस हमे गिरफ्तार नही करेगी, फिर कारण भी तो कुछ नही। अहिंसा मे हमारी दृढ आस्था है। **'अहिंसाप्रतिष्ठायां तत् सन्निधौ वैरत्यागः'** का सूत्र बोलते रहे हैं। इसकी आज परीक्षा है कि हमारे मन मे किसी के प्रति विरोध और विद्वेष नही है तो दूसरे के मन मे क्यो होगा। यदि उनके मन मे ऐसा कुछ हो भी, तब भी हमारी अहिंसा वीरो की अहिंसा है। क्षत्रिय मारना जानता है, पर साधु मरना जानता है। यदि हमे अहिंसा मे विश्वास है तो प्राणोत्सर्ग के लिए भी तैयार रहना होगा।"

मुनि श्री इस प्रकार भय और आशका से उद्वेलित उपस्थित जनसमूह को उद्-बोधन दे रहे थे, तभी पुलिस दल स्थानक के सामने आ गया। पर आश्चर्य ! महान् आश्चर्य !! वह रुका, नही सीधा आगे की सडक पर बढता चला गया और कुछ दूर जाकर अगले मोड से स्टेशन की तरफ मुड गया।

लोगो की मन स्थिति बडी विचित्र हो रही थी। कुछ लोगो को अब भी आशका थी कि पुलिस दल को स्थानक का पता नही है, अत. इधर-उधर खोज रहे हैं। शायद घूम-फिर कर वापस यही आयेंगे। पर मुनि श्री का अटल आत्मविश्वास अपना चमत्कार दिखा चुका था। लोगो को आश्वस्त करते हुए उन्होने कहा आप लोग व्यर्थ मे भय न खायें, अफवाहें न फैलायें। सब लोग शान्ति के साथ अपने काम मे लगे। जो कुछ भी होना है, हम सब स्थितियो मे अपने आत्म-बल पर विश्वास किये खड़े हैं।

कुछ देर बाद श्री बालचन्द जी पारख घटना का पता लेकर आये और मुनि श्री के आत्मबल की सराहना करते हुए बोले "गुरुदेव ! वास्तव मे हम लोग तो व्यर्थ ही घबरा गये थे। पुलिस तो रेलवे स्टेशन पर किसी अपराधी को पकड़ने के लिए जा रही थी। आपका अटल आत्मबल ही था जो ऐसी आशंकाओ से विचलित नही हुआ और बार-बार हमे भी धीरज बँधाता रहा। यदि हमारे कहने से आप किसी भी अज्ञात स्थान को चले जाते तो कैसा मजाक होता ?"

गुरुवर श्री ने गम्भीरता मे हँसी के साथ कहा 'बनिया डरता जल्दी है। लेकिन हम तो महावीर की सन्तान हैं। युद्ध के मैदान मे भी सीना तानकर चलने वाले हैं। हमें किसी भी परिस्थिति मे अपना आत्मबल और आत्म-विश्वास नही खोना चाहिए। वास्तव मे आत्म-बल ही मनुष्य की रक्षा करता है।"

नसीराबाद में मुनि श्री जितने दिन भी रहे, जब भी प्रवचन करते सी० आई० डी० पुलिस उनकी बातें नोट कर कैप्टेन को बराबर रिपोर्ट देती थी। लेकिन सब कुछ कहकर भी अपनी प्रवचन पटुता के कारण वे कभी भी सी० आई० डी० की पकड मे नही आये।

इस प्रकार मुनि श्री पन्नालाल जी महाराज के जीवन मे बार-बार ऐसे प्रसग आते रहे, जब उनकी वर्चस्विता और वाणी के जादुई प्रभाव से न केवल सामान्य जन ही, बल्कि कठोर शासक, क्रूर हिंसक और भयानक डाकू भी नतमस्तक हो गये।

वाणी द्वारा आत्मबल जगाया

मनुष्य के पास वाणी एक ऐसा अमोघ साधन है, जिसके द्वारा वक्ता चाहे तो दूसरे को हतोत्साह और निराश कर सकता है और चाहे तो प्रोत्साहित एव आशावादी बना सकता है। वक्ता चाहे तो गालियाँ देकर दूसरो को अपना दुश्मन भी बना सकता है और चाहे तो वाणी के द्वारा यथोचित प्रशसा एव प्रतिष्ठा देकर दूसरो को अपना भी बना सकता है। वाणी वह शस्त्र है, जिसके प्रयोग से व्यक्ति दूसरो को मौत के घाट उतार सकता है और चाहे तो दूसरो की पीडा के घावो पर सहानुभूति की मरहमपट्टी करके जिला भी सकता है। वाणी से श्रोता को विरक्त भी बनाया जा सकता है और उसी वाणी से दूसरो को भोगासक्त भी बनाया जा सकता है। वाणी का यथार्थ उपयोग करने की जिम्मेदारी सबसे अधिक त्यागी साधु-सन्तो पर आती है, जिनके वचनो पर दुनिया सर्वाधिक विश्वास करती है, जिनकी सत्यवादिता एव आप्तता पर विश्वास करके जगत् उनके वचनो के अनुसार चलता है। इसलिए साधु-सन्तो का कर्तव्य है कि वे अपने सम्पर्क मे आने वाले चाहे पुण्यवान हो चाहे तुच्छ, समभाव से यथायोग्य मार्गदर्शन दे, उन्हे गुमराह न करें और न मार्गदर्शन देने मे उपेक्षा करें। बल्कि श्रमण भगवान महावीर के अनेकान्तवाद सापेक्षवाद के दृष्टि-कोण से आत्मा मे निहित अनन्त शक्तियो की अभिव्यक्ति के लिए प्रत्येक व्यक्ति को वे प्रोत्साहन दें, उन्हे निरुत्साहित या निराश न करें, इसीलिए भगवान महावीर ने स्पष्ट शब्दो मे कहा

"पच्छा वि ते पयाया खिप्प गच्छति अमरभवणाइं।
जेसिं पिओ तवो सजमो य खतीय बंभचेर च॥"

'जीवन की पिछली अवस्था मे भी वे दीक्षित व्यक्ति शीघ्र अमर भवनो को प्राप्त कर लेते हैं, जिन्हे सयम, तप, क्षमा और ब्रह्मचर्य प्रिय है।'

इसीलिए भगवान् महावीर का साधु वर्ग के लिए खास आदेश है

जहा पुण्णस्स कत्थइ, तहा तुच्छस्स कत्थइ।
जहा तुच्छस्स कत्थइ, तहा पुण्णस्स कत्थइ।

'साधु वर्ग जैसे एक पुण्यवान् को उपदेश देता है, वैसे ही वह एक तुच्छ व्यक्ति को उपदेश या प्रेरणा दे। इसी प्रकार जैसे वह तुच्छ व्यक्ति को मार्गदर्शन देता है, वैसे ही पुण्यशील उच्च वर्ग को भी मार्गदर्शन दे।'

तात्पर्य यह है कि साधु के पास चाहे बालक आए, युवक आए, बूढा आए, महिलाएँ आएँ या जिन्दगी के किनारे से लगा हुआ व्यक्ति आए, फिर वह चाहे धनाढ्य

हो, नेता हो या उच्च अधिकारी हो, अथवा वह साधारण व्यक्ति हो, निर्धन हो या श्रमजीवी हो, उसे सबको समान भाव से मार्गदर्शन देना चाहिए।

हमारे चरितनायक की वाणी मे वह जादू था, उनकी वृत्ति मे वह समताभाव था कि उससे तुच्छ से तुच्छ उपेक्षित व्यक्ति को भी मार्गदर्शन मिलता था और बड़े से बड़े नेता को भी।

एक ज्वलन्त उदाहरण से पाठको को पता लग जायगा कि आपकी वाणी मे कितना आत्मबल जगाने वाला चमत्कार था।

वि० सवत् १९८७ का वर्षावास मसूदा मे पूर्ण करके गुरुदेव ग्रामानुग्राम पैदल विहार करते हुए अजमेर पहुँचे। वहाँ एक बार महात्मा गाँधी जी की सेवा में हर समय रहने वाले उनके अनन्य सेवक श्री महादेव भाई देसाई आपके दर्शनार्थ आये। बातचीत के सिलसिले मे महादेव भाई ने आपसे मार्गदर्शन लेने की दृष्टि से नम्रतापूर्वक निवेदन किया "महाराज साहब! आजकल नेता लोगो को बडी कठिनाई से गुजरना पडता है। नेताओ के सिर पर आजकल ब्रिटिश सरकार की दुधारी तलवार लटकी रहती है। वे अगर सरकार के खिलाफ उग्र आन्दोलन छेडते हैं तो उसको गिरफ्तार करके जेल मे डालकर सरकार उसकी कर्तृत्व शक्ति कुठित कर डालती है और अगर वे चुपचाप सरकार की अन्याय पूर्ण नीतियो को सहते है, कुछ भी प्रतीकार नही करते तो जनता उन्हे कोसती है, तथा अन्दर ही अन्दर अपने अन्तर मे घुटते रहते है। ऐसी स्थिति मे क्या किया जाय? कुछ सूझता नही।"

उत्तर मे आपने उन्हे प्रोत्साहित करते हुए ओजस्वी वाणी मे कहा "देसाई जी! यो इन मामूली हवा के झोंको से न घबराइये। ये तो मामूली झोके हैं। अभी तो आप लोगो को इनसे भी भंयकर कसौटियो से गुजरना होगा। आत्मा मे अनन्तशक्ति है। उस शक्ति की अभिव्यक्ति और विकास भी तभी होगा, जब आप इस प्रकार के संकटो का मजबूत मनोबल के साथ सामना करेंगे, आप अन्त तक अहिंसा-सत्यरूपी आत्मबल के साथ टिके रहेगे। अगर आप इतने छोटे-से संघर्ष या सकट से घबरा गए तो आपकी आत्मिकशक्तियो को जग लग जाएगा, यह आपका सबसे बडा नुकसान होगा।

दही को मथ कर मक्खन निकालते हुए तो आपने देखा ही होगा। दही बिलौने से पहले दही के बड़े मटके मे बीच मे एक लकडी का डडा लगाया जाता है, जिसे 'रई' कहते हैं, उस पर रस्सी का एक टुकडा लपेटा जाता है, जिसके दोनो सिरे पकड कर इधर से उधर, उधर से इधर खूब खीचा जाता है। उक्त रस्सी के टुकड़े को 'मारवाड में 'नेता' कहा जाता है। जब रस्सी का बेजान नेता भी खीचातानी का इतना कष्ट सहन करता है, तभी जाकर मक्खन निकाल पाता है, तब आप तो जानदार नेता (अगुआ) है, आप भी सरकार और जनता दोनो तरफ की खीचातानी से घबरा गए तो स्वातन्त्र्यरूपी मक्खन कैसे निकाल पायेंगे? आपको सघर्ष या संकट से नही घबराकर अपने मे सोई हुई आत्म-शक्ति को जगाने के लिए तपस्या, धैर्य और सयम से काम लेना आवश्यक है।"

आपके इस मार्गदर्शन का महादेव भाई पर बहुत ही अद्भुत प्रभाव पड़ा। वे बहुत ही प्रसन्न हुए और बोले "महाराज साहब! आपके आत्म-विश्वास भरे प्रेरक उपदेश से हमे बहुत ही सुन्दर मार्गदर्शन मिला है। इससे हमारा आत्मबल बढा है। हम आपके इस उपदेश को जिंदगी भर नही भूलेंगे। हमे यह सदा मार्गदर्शन देता रहेगा।"

स्वधर्म क्या है ?

गुरुदेव श्री की वाणी को प्रभावपूर्ण बनाने मे उनकी व्युत्पन्नप्रतिभा भी सदा सहायक सिद्ध हुई। उनकी विचार-चेतना इतनी प्रबुद्ध और सुस्पष्ट थी कि कभी भी किसी भी जटिलतम विषय को तुरन्त स्पष्ट और सरल अभिव्यक्ति के साथ प्रस्तुत करने मे सक्षम रही।

एक बार गुरुदेव श्री 'रायला' नामक गाँव मे पधारे। वहाँ जैन वसति नही थी, पर वैदिक ग्रन्थो के गहन अभ्यासी कर्मकाडी और शास्त्रार्थप्रिय ब्राह्मणो का वह गढ था। अनेक ब्राह्मण विद्वान विचार-चर्चा व तर्क-वितर्क करने गुरुदेव श्री के निकट आये। वह युग शास्त्रार्थ और वाद-विवाद का था, किसी भी परधर्मी को वाद-विवाद मे परास्त कर देना बहुत बडी गौरव की बात थी। समाज मे भी उसका सम्मान होता था।

एक ब्राह्मण विद्वान ने कहा गीता मे कहा है—**स्वधर्मे निधन श्रेय** अपने धर्म मे मर जाना अच्छा है, परन्तु पर-धर्म की ओर मुँह करना भयावह है (परधर्मो भयावह) इसलिए हम लोग आपके धर्म से डरते हैं।

गुरुदेव—पडित जी! आपने गीता तो पढी है, पर लगता है उसका हृदय नही पढा, सिर्फ शब्दो को पकड कर ही बैठ गये हैं।

पडित कैसे ?

गुरुदेव स्वधर्म और पर-धर्म का अर्थ क्या है, यह भी कभी आपने सोचा ? स्वधर्म का मतलब वैदिक धर्म और पर-धर्म का मतलब जैन-बौद्ध आदि यह मानना गलत है। स्व का अर्थ है आत्मा। जो आत्मा का धर्म है, जो चिदानन्द का धर्म है, वही वास्तव मे स्वधर्म है, आत्मा के अतिरिक्त जो अन्य मार्ग हैं, वह पर-धर्म है। आत्मा को स्वधर्म मे ही समर्पित हो जाना चाहिए, पर-धर्म (विषयो की तरफ) मे जाना उसके लिए भयावह है, दुखप्रद है, यह गीता का आशय है।

उपस्थित विद्वान् और श्रोतागण इस अद्भुत और सुन्दर अर्थ को सुनकर बहुत प्रसन्न हुए। वहाँ के अनेक विद्वान् आपके सपर्क मे आये और विविध प्रकार की भ्रातियो से मुक्ति पाई।

वाणी के बल से विरोध शान्त किया

वाणी मे चमत्कारिक शक्ति का सम्बन्ध आत्मबल से है। जिसमे जितना प्रखर आत्मबल होगा, उसकी वाणी का प्रभाव भी उतना ही शीघ्र और अधिक होगा। जिनमे आत्मबल नही होता, उनकी वाणी चाहे जितनी शुद्ध भाषा से युक्त हो, लच्छेदार हो, चाहे जितनी बुलद आवाज हो, उसका असर चिरस्थायी नही होता। आत्मबल सम्पृक्त वाणी मे चुम्बक की तरह दूसरो को खीचने की सम्मोहन शक्ति होती है। इसीलिए नीतिकार ने कहा—

'वाण्येका समलंकरोति सतत, वाग्भूषणं भूषणम्'

एकमात्र वाणी ही मनुष्य के व्यक्तित्व को विभूषित कर सकती है, इसलिए वाणी रूपी आभूषण ही वास्तव मे आभूषण है।

हमारे चरितनायक श्री के आत्मबल का परिचय हम पूर्व पृष्ठो मे पा चुके हैं। उनकी वाणी मे ओज और तेज भी आत्मबल के अनुरूप बढा-चढा था। यही कारण है, कि सासारिक दृष्टि मे बडे माने जाने वाले धनाढ्य और सत्ताधीशो पर भी उनकी वाणी का रामबाण-सा जादुई प्रभाव पड जाता था। विरोधी से विरोधी व्यक्ति भी उनकी वाणी के कारण हतप्रभ होकर अनुकूल बन जाता था। इसका प्रत्यक्ष उदाहरण है—भयकर विरोध के बावजूद मसूदा मे साध्वी जी की दीक्षा का होना।

बात सवत् १९९३ की है। आप भिणाय चातुर्मास व्यतीत करके मसूदा में मार्गशीर्ष कृष्णा १२ को आचार्य श्री जयमल्लजी महाराज साहब की आज्ञानुवर्तिनी महासती श्री पानकुँवरजी महाराज के निश्राय मे एक बहन (वर्तमान महासती श्री सुगनकुँवर जी) की दीक्षा सम्पन्न कराने हेतु मसूदा श्रावक सघ की विनति पर मसूदा पधारे। इधर उपर्युक्त सम्प्रदाय के मत्री मुनि श्री चौथमलजी महाराज एव आचार्य श्री स्वामीदास जी महाराज की सम्प्रदाय के मत्री मुनि श्री छगनलाल जी महाराज तथा मत्री श्री मिश्रीलाल जी महाराज आदि अपने मुनिमण्डल सहित मसूदा पधार गये थे।

उन दिनो मसूदा राव साहब बाल-दीक्षा के विरुद्ध थे। उनके दिमाग मे किसी ने यह ठसा दिया था कि जैनसाधु छोटे उम्र के लडके-लडकियो को मूंड लेते हैं। तब से उन्होने यह पक्का विचार कर लिया था कि किसी भी लडके या लडकी की दीक्षा अपने राज्य मे न होने दी जाय।

हमारे चरितनायकजी का मसूदा-राव साहब, पर अत्यधिक प्रभाव था। मसूदा राव साहब विजयसिहजी आपकी समझाने की उत्तम शैली के कारण आपके अनन्य भक्त बने हुए थे। स्थानीय श्रावक सब इसी उद्देश्य से उक्त बहन की दीक्षा निर्विघ्नरूप से सम्पन्न करा देने हेतु आप श्री को सम्मानपूर्वक विनति करके लाया था।

आप एक दिन, मुनिमण्डल के साथ प्रात काल शौचक्रिया के लिए जंगल मे पधार रहे थे, उधर से मसूदा रावसाहब विजयसिह जी प्रात भ्रमण करके शहर की

ओर लौट रहे थे कि अकस्मात् आपको देखकर वन्दना की और एक ओर ले जाकर आपसे एकान्त मे निवेदन किया "आप यहाँ कब पधारे ?"

मुनिश्री ने उचित अवसर देखकर कहा "राव साहब, मैं कुछ दिन हुए, स्थानीय जैन श्रावक सघ की विनति से यहाँ आया हुआ हूँ। यहाँ सघ की ओर से एक बहन की दीक्षा होने जा रही है, उसी निमित्त से मैं और ये मुनिगण आए हुए हैं।"

दीक्षा का नाम सुनते ही राव साहब के भावो मे परिवर्तन होने लगा, जो उनके चेहरे पर परिलक्षित होता था। फिर भी अपने को सयत करके वे बोले "गुरुदेव! आप जैसे सुधारक सत का ऐसी दीक्षा मे भाग लेना कहाँ तक उचित है ? मैं तो ऐसी दीक्षाओ का विरोधी हूँ, और यहाँ इस दीक्षा पर प्रतिबध लगवा रहा हूँ और आप इसमे सम्मिलित होने के लिए पधारे है ?" बडा आश्चर्य है।"

इस पर मुनिश्री पन्नालाल जी महाराज ने अपनी तेजोयुक्त वाणी मे उनसे कहा—"राव साहब! आप दीक्षा का विरोध क्यो करते हैं ?"

राव साहब "इसलिए कि छोटी उम्र की लडकियाँ बहका कर मूँड ली जाती हैं। जब वे वयस्क और समझदार होती हैं तो या तो अन्दर ही अन्दर घुटती रहती हैं, अथवा साध्वीजीवन छोडकर आवारागर्द फिरती है।"

मुनिश्री—"सभी साध्वियाँ ऐसी नही होती, राव साहब! कोई एकाध केस हो जाय, उस पर से सारे ही साध्वी समाज को वैसा ही मान लेना, उचित नही है। यो तो गृहस्थवर्ग मे कई परिवारो मे भी ऐसे केस होते देखे जाते हैं। फिर भी वर्तमान-काल के अशान्त और भोग-विलास पूर्ण गृहस्थजीवन मे व्यक्ति स्व-पर कल्याण की साधना तो दूर रही, स्वकल्याण की साधना भी निश्चिन्ततापूर्वक नही कर सकता, जबकि साधुजीवन मे त्याग-वैराग्य का वातावरण सहजरूप से मिलता है, फिर समय और निश्चिन्तता रहती है, इसलिए स्व-कल्याण के साथ-साथ हजारो व्यक्तियो का कल्याण भी कर सकता है। गृहस्थ वर्ग मे दोनो ही प्रकार की नीति चलती हैं कई गृहस्थ कम से कम देकर बदले मे अधिक लेते हैं, कई जितना देते हैं, उतना ले लेते हैं। परन्तु साधुवर्ग मे सच्चे त्यागपरायण साधु-साध्वियो मे कम से कम और वह भी उपकृतभाव से लेकर बदले मे ज्यादा से ज्यादा देने की नीति प्रचलित है। सच्चा साधु वर्ग ससार पर भारभूत नही, अपितु ससार के लिए वरदानरूप है। धर्मात्मा साधु वर्ग के अस्तित्व पर ही सारा ससार टिका हुआ है। आप अगर मुझे अपने (स्वय के) लिए कुछ मानते हैं, तब तो आपको समस्त सुविहित साधुवर्ग को भी मानना चाहिए। मैं स्वय कुछ नही था, परन्तु गुरुदेव की कृपा से आज इतना योग्य बन सका हूँ। इसी प्रकार साधु जीवन अगीकार करने वाले भले ही आज सर्वथा प्रभाव शून्य दीखें, परन्तु उनकी अन्तरात्मा मे छिपी हुई ज्ञान ज्योति एक दिन प्रगट होती ही है। इसलिए आपको दीक्षा जैसे मगल कार्य मे बाधक नही बनना चाहिए। बल्कि दीक्षा ग्रहण करने वाले व्यक्तियो को अपनी ओर से प्रोत्साहन और सहयोग देना चाहिए।"

आपके द्वारा युक्तिपूर्वक दीक्षा का महत्व समझाने का राव साहव पर वहुत गहरा प्रभाव पडा। वे निरुत्तर होकर कहने लगे—गुरुदेव ! आपने मुझे दीक्षा का जो महत्व वताया, उससे मैं अपने विचार वदल रहा हूँ। फिर आप यहाँ पर विराजमान हैं, और यह दीक्षा आपके सान्निध्य मे होने जा रही है, इसलिए मैं इस दीक्षा कार्य मे वाधक नही वनूंगा। मैं आपके व्यक्तित्व से कायल हूँ। अत दीक्षा का विरोध नही करूँगा। आप खुशी से यह दीक्षा दें।" यो कहकर वन्दना करके राव साहव शहर की ओर वढ गए और आप मुनिवृन्द सहित लिए जंगल की ओर चले गए।

समाज मे व्याप्त अन्धविश्वास, भय, अन्याय एवं साम्प्रदायिक तनावो को दूर कर प्रेम और अभय का वातावरण वनाने मे आपकी वाणी ने सचमुच ही जादू का कार्य किया।

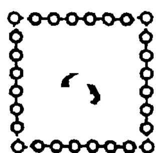
डा मेकलान भक्त वने

मसूदा चातुर्मास के वाद गुरुदेव श्री नसीरावाद छावनी पधारे। अंगरेजो ने राजस्थान मे शासन-व्यवस्था को सुचारु रूप से चलाने के लिए अजमेर को मुख्य केन्द्र वना रखा था। अजमेर से कुछ दूर नसीरावाद मे अँगरेज सेना का वहुत वड़ा कैम्प था। वहाँ डा. मेकलान सेना के प्रमुख चिकित्सा अधिकारी थे। गुरुदेव श्री के एक भक्त श्रावक वालचन्द जी पारख का सेना के उच्च अधिकारियो के साथ अच्छा सम्पर्क था। डा मेकलान अंगरेज होते हुए भी हिन्दी अच्छी तरह समझ लेते थे और वोलते भी थे। मुनि श्री पन्नालाल जी के प्रवचनो की प्रशसा सुनकर एक दिन वे भी श्री पारखजी के साथ स्थानक मे पहुँचे। विशाल जनसभा मत्रमुग्ध हुई उनकी अमृत वाणी सुन रही थी। डा मेकलान भी एक श्रोता के रूप मे वैठ गये। उनका जन-हितकारी प्रवचन सुनकर वे वहुत प्रभावित हुए। व्याख्यान के पश्चात् गुरुदेव श्री के निकट आकर भावविभोर होकर डा मेकलान वोले आपका प्रवचन (लेक्चर) वहुत मीठा और वहुत सुन्दर लगा। आप वास्तव में ही मानवता का कल्याण कर सकते हैं। आपके लेक्चर मे सच्चाई और अच्छाई है।

मुनि श्री ने कहा यह वाणी तो उस परम वीतराग परमात्मा की है, उन्ही का उपदेश है। मैं तो सिर्फ इसे सुनाने वाला हूँ, इसलिए यह महिमा मेरी नही, उस प्रभु की है, जिसने हमे सत्य-अहिसा, करुणा और सेवा का उपदेश दिया है। हम यदि इसे जीवन मे उतार लेते हैं तो कोई कारण नही कि यह पृथ्वी स्वर्ग न वने।

मुनि श्री के साथ तत्व चर्चा करके डा मेकलान वहुत प्रभावित हुए। उनकी वाणी का ऐसा जादू उन पर हुआ कि जव तक मुनि श्री वहाँ रहे, वे अपने सव कार्यक्रम छोड़कर भी प्रतिदिन प्रवचन सुनने के लिए आते। मुनि श्री के प्रति उनकी श्रद्धा-भक्ति प्रतिक्षण वढती गई और उन्होंने सतो की निस्स्वार्थ सेवा के लिए स्वय को समर्पित कर दिया।

□



डाकू की गुरु-भक्ति



राजनीति निग्रह और संग्रह मे विश्वास करती है। दुष्ट-दुर्जन का निग्रह और सज्जन-सुनागरिको का संग्रह-संरक्षण करना राजनीति का मूल-मंत्र है, किंतु धर्मनीति इन दोनो से ऊपर उठकर अनुग्रह का मंत्र देती है। वह मनुष्य मे दुर्जन-सज्जन का अन्तर मौलिक नही मानती। सज्जन मनुष्य भी परिस्थितिवश, वातावरण और संस्कारो के कारण दुर्जन बन जाता है, जैसे कि गंगाजल भी गंदी नाली के पानी के साथ मिलकर गंदाजल हो जाता है। और दुर्जन सत्संग एवं सत्संस्कारो के परिणामस्वरूप सज्जन बन सकता है। धर्मनीति मूलत. मनुष्य की शुद्धि एवं पवित्रता मे विश्वास करती है। डाकू रत्नाकर भी ऋषि वाल्मीकि बन सकता है, तस्कर प्रभव भी आचार्य प्रभव बन सकते हैं। चाहिए मानव-मात्र के प्रति अनुग्रह दृष्टि ! उसकी मनुष्यता मे आस्था रखकर सुप्त-संस्कारो को उत्प्रेरित करने वाला स्नेह, वात्सल्य और अनुग्रह भाव होना चाहिए।

गुरुवर्य श्री पन्नालालजी महाराज अनुग्रह भाव के जीवंत प्रतीक थे। स्नेह और सद्भावना के अक्षय स्रोत थे। उन्होने अनेक हिंसको, विधर्मियो और आततायियो को अपने अनुकूल बनाया, अधर्म से धर्म की ओर मोडा, हिंसा व पाप से दया और पुण्य के क्षेत्र मे उतारा। इसका मूल कारण था उनका असीम अनुग्रह भाव। विधर्मी और आततायी के साथ भी वे बडा स्नेह और आत्मीय भाव पूर्ण व्यवहार करते थे। इससे उसकी मानवता स्वत उत्प्रेरित होकर चरणो मे विनत हो जाती।

गुरुदेव श्री की अनुग्रह-दृष्टि के अनेक चमत्कार प्रसिद्ध हैं जिनमे एक की चर्चा हम यहाँ करते हैं।

राजस्थान का तत्कालीन प्रसिद्ध डाकू मोडसिंह आज भी एक भयावह स्मृति बना हुआ है। उनके आतंक से अजमेर राज्य एवं उसके पार्श्ववर्ती क्षेत्रो की प्रजा

थर्राती थी, घरो से यात्रा व बारात आदि जाते समय शकुन मनाती थी कि कही मोडसिंह का सामना न हो जाय। प्राय: प्रतिदिन ही मोडसिंहजी द्वारा डाका डालने के समाचार भी लोग कलेजा थामे सुनते रहते थे।

डाकू मोडसिंह खरवा राज्य परिवार से सम्बन्धित भवानीपुर के जागीरदार थे। वे गुरुदेव श्री पन्नालालजी महाराज के सम्पर्क मे कई बार आए। उनका उपदेश सुना और उनकी कुछ शिक्षाओ को भी जीवन मे उतारा था। गुरुदेव श्री की कुछ महत्वपूर्ण शिक्षाओ मे से एक शिक्षा जो मोडसिंहजी ने अपनाई वह थी वचन पालन। किसी को झूठा आश्वासन नही देना, यदि वचन व आश्वासन दे दिया तो उसका पालन करना। गुरुदेव श्री के सत्सग के कारण ही उनमे दया भाव, गरीबों और आपद-ग्रस्तो के प्रति सहयोग की भावना का सचार हुआ था। यद्यपि डाका डालना अपने आप मे ही एक क्रूर व निर्मम कर्म है, किन्तु उसमे भी करुणा रखना, एक विचित्र और आश्चर्यकारी बात होते हुए भी राजपूत डाकुओ मे प्राय: कम-ज्यादा रूप मे मिलती है।

हाँ, तो यह घटना वि० स० १९८० की है।

आचार्य श्री जयमलजी महाराज की सप्रदाय के प्रभावशाली सत स्वामी जोरावरमलजी महाराज उन दिनो मरुधरा के प्रभावशाली सतो मे अग्रणी थे। आपके पास तिवरी के एक होनहार बालक मिश्रीमलजी (श्री मधुकर मुनि जी) उन दिनो विद्याध्ययन करते थे और दीक्षा ग्रहण करने की तीव्र अभिलाषा लिए हुए थे।

वैरागी श्री मिश्रीमलजी के कुछ निकट के रिश्तेदार इस दीक्षा से अप्रसन्न थे। उनका कहना था कि इस परिवार मे 'मां और बेटा' यह दो ही सदस्य हैं, अगर ये दीक्षित हो गए तो तिवरी से ओसवालो का एक प्रमुख घर उठ जायेगा। उस युग मे बड़ा परिवार एक शान की बात थी। रिश्तेदारो ने वहाँ के जागीरदार ठाकुर केशरीसिंहजी से यह बात कही, हालाकि जैन मुनियो की दीक्षा से उनको कोई विरोध नही था, किंतु उनका स्वार्थ सिर्फ यही था कि गाँव से एक ओसवाल घर न उठे। बस, राजा कानो के कच्चे होते ही हैं, तुरत ठाकुर साहब ने जोधपुर के प्रशासक सर प्रतापसिंहजी से कह कर श्री मिश्रीमलजी की दीक्षा का प्रतिबन्धक आदेश जारी करवा दिया। यह आदेश पूरे जोधपुर राज्य मे लागू हो गया।

स्वामी श्री जोरावरमलजी महाराज निर्विघ्न दीक्षा महोत्सव करना चाहते थे। काफी सोच-विचार के बाद आपने गुरुवर्य श्री पन्नालालजी महाराज के पास सन्देश भेजा। इस परिस्थिति से निबटने का उपाय भी पूछा। गुरुदेव श्री जो हर समय किसी भी शुभ कार्य मे सहयोग देने को तत्पर रहते थे, ऐसे प्रसग पर पीछे कैसे रहते! आप श्री ने अजमेर के सेठ साहब श्री उम्मेदमलजी लोढा को इस समस्या का समाधान करने हेतु प्रेरणा दी। लोढा साहब का सरकारी क्षेत्र पर काफी प्रभाव था। उनके प्रयत्न से जोधपुर-दीवान साहब ने पुन इस प्रकरण की जाच करने के लिए मेडता के न्यायाधीश श्री बादरमलजी गधैया को आदेश दिया। जाच के बाद, अनेक प्रकार की समस्याएं

तये। उग्र वातावरण को देखकर न्यायाधीश महोदय ने स्वामी श्री जोरावरमलजी को निवेदन किया। कि आप यह दीक्षा मारवाड़ राज्य से बाहर करें तो ठीक रहे।

गुरुदेव श्री पन्नालालजी महाराज को श्री लोढा साहब ने भी सब स्थिति सूचित की। तभी आप श्री ने स्वामी श्री जोरावरमलजी महाराज को सुझाव दिया—"आप श्री यह दीक्षा 'भिणाय' (अजमेर राज्य सीमा) मे आकर करे, सब जिम्मेदारी मेरी है। मुझे पूरा विश्वास है कार्यक्रम निर्विघ्न सानन्द सम्पन्न होगा।

गुरुदेव का उत्साहप्रद प्रस्ताव स्वीकार कर स्वामी श्री जोरावरमलजी शिष्य-परिवार के साथ 'भिणाय' पधार गये।

इधर मुनिश्री पन्नालालजी महाराज के पास भी एक वैरागी थे शकरलालजी। उनकी दीक्षा का भी आग्रह चल रहा था, अत इसी अवसर पर उनकी दीक्षा की घोषणा भी करदी गई और गुरुदेव श्री भी 'भिणाय' की ओर प्रस्थित हुए। भिणाय का श्रावक-सघ दीक्षा-महोत्सव की जोरदार तैयारियो मे जुट गया। एक दिन स्वामी श्री जोरावरमलजी ने गुरुदेव श्री से कहा "कही तिंवरी वाले सज्जन यहाँ भी विघ्न उपस्थित करने का प्रयत्न न करे।"

निर्भीक और दृढ स्वर मे गुरुदेव ने आशका निर्मूल करते हुए कहा "आप निश्चित रहिए। इस शुभ कार्य मे कोई भी शक्ति बाधा उपस्थित नही कर पायेगी। सब कार्य निर्विघ्न सानन्द सपन्न होगा।"

इसी प्रसग पर क्षेत्रीय सब पुलिस इन्सपेक्टर गुरुदेव श्री के दर्शन करने आगये। वार्तालाप के प्रसग मे गुरुदेव ने कहा "हमारे स्वामीजी को आशका है, कही सज्जन लोग खीर मे मूसल न पटक दे।" (उनका इशारा तिंवरी के लोगो की तरफ था)।

इन्सपेक्टर साहब ने हँसते हुए कहा "आप क्यो चिंता करते हैं, आपके भक्त हम किसलिए हैं ? पहले कोई भी सूचना मेरे पास आयेगी, मैं सब समझ लूँगा।"

इन्ही दिनों अजमेर राज्य एवं उसके निकटवर्ती राज्यो मे डाकू मोडसिंहजी की डकैतियाँ चालू थी। आज यहाँ, कल वहाँ यो प्रतिदिन उनकी डकैती के समाचार सुने जाते थे और जनता एक भय एव आतक से सिहर उठती। भिणाय-सघ के प्रमुख व्यक्तियो ने भी इस समस्या पर विचार किया। दीक्षा महोत्सव पर सैकडो हजारो दर्शनार्थी आयेंगे। उनमे पुरुष भी होगे महिलाएँ भी होगी। महिलाओ के शरीर पर आभूषण, जेवर आदि रहते ही हैं। डाकू मोडसिंहजी यदि इस सुनहले अवसर पर हाथ साफ करने आ गये तो समाज की लाखो की सम्पत्ति तो जायेगी सो जायेगी, किन्तु दूर-दूर तक वदनामी भी हो जायेगी। श्री सघ के अतिथि-बधुओ पर डकैती होना श्री सघ के सिर पर एक कलक का टीका होगा ? इस समस्या पर श्रावक सघ ने गभीरता से सोचा। सुरक्षा-प्रवघ के लिए पुलिस इन्सपेक्टर साहब का सहयोग तो मागा ही साथ ही अपनी ओर से भी दस-पन्द्रह अच्छे राजपूत सरदारो की व्यवस्था करली। पूरी

स्थिति पर श्रावक सघ नजर रखे हुए था और हर तरह से सावधानी वरती जा रही थी।

मोडसिहजी को भी इस महोत्सव की पूरी सूचना मिल गई थी। उनके साथियो के मुँह मे पानी भी छूट आया। चलो एक ही साथ इस वार वर्षभर का काम हो जायेगा। मोडसिहजी ने जब यह सुना कि मेरे आतक से भयभीत होकर वहाँ के जैन-सघ ने १०-१५ राजपूत सरदारो को लाठियाँ देकर तैनात किया है तो उन्हे वडी हँसी आई। वे गुरुदेव श्री पन्नालालजी महाराज के भक्त थे, और इस प्रसग पर अपनी गुरु-भक्ति का प्रदर्शन करना-चाहते थे, पर अपने मन की यह वात गुरुदेव तक कैसे पहुँचाये ? आखिर अचानक अवसर आ ही गया।

मोडसिहजी उस दिन एकलसिगा के जगलो मे अपने साथियो के साथ वैठे दीक्षा महोत्सव की चर्चा कर रहे थे कि वही से जाते भिणाय के मार्ग पर एक वनिया दिखाई दिया। मोडसिहजी स्वय उठे, हाथ मे वंदूक, मूछें तनी हुई रौवीला चेहरा। वनिये के सामने आकर जैसे ही गर्ज कर पूछा "तुम कौन हो ?" तो वस वनिया की घिग्घी वध गई। उसके होश उड गये, गला सूखने लगा। दो क्षण कुछ वोला नही गया। देखते ही रहे, मोडसिह ने फिर जरा धीमी आवाज मे कहा "डरो मत ! वताओ तुम कौन हो ?"

"मैं एकलसिगा का रहने वाला महाजन हूँ। मुझे मोडूलाल पोखरणा कहते हैं, पर मेरे पास कुछ नही है। मुझे मारना मत !"

डाकू मोडसिह "तुमने सच्चा-सच्चा नाम वता दिया इसलिए हम तुम्हे कुछ नही कहेंगे, डरो मत ! मेरा नाम डाकू मोडसिह है · ·····।"

पोखरणाजी का कलेजा तो धक्-धक् करने लगा। भय के मारे उनके हाथ-पैर काँपने लग गये। जिस मोडसिह के नाम से मिलट्री कापती है, वड़े-वड़े पुलिस अधिकारी जिसका सामना करने मे हिचकिचाते हैं वह डाकू मोडसिह वन्दूक लिए सामने खड़ा है, महाकाल की तरह · · ··पोखरणाजी दो मिनट तक कुछ वोल नही पाये, देख भी नही पाये।

डाकू ने पूछा "वताओ, कहाँ—भिणाय जा रहे हो ?"

"हाँ, हाँ हुजूर !" पोखरणाजी ने कहा।

"महाजन हो तो पन्नालालजी महाराज को भी जानते होगे ?" मोडसिह ने पूछा।

पोखरणाजी "हाँ ! वे तो हमारे गुरुजी हैं। उन्ही के दर्शन करने भिणाय जा रहा हूँ।"

मोडसिहजी पोखरणाजी के कुछ पास आ गये और कधे पर हाथ रख कर वोले "देखो, वे मेरे भी गुरु हैं। उनको मेरी एक वात कह दोगे ? वहाँ दीक्षा होने वाली है, वहुत-से यात्री आयेंगे। सुना है यात्रियो की रक्षा के लिए दस-पद्रह कादे खाने वालो को

इकट्ठा कर लिया है, महाराज को कह देना इन बनियो का धन क्यो पानी मे बहा रहे हो ? मोडसिंह इन कवकडधजो से कभी डरने वाला नही है । मैं चाहूँ तो इनको चुटकियो मे उडा दू, किंतु महाराज को मैं गुरु मानता हूँ, इसलिए कोई भय नही खाये, मुझे ऐसा कुछ काम नही करना है, जिससे किसी को तकलीफ हो। आप सब निर्भय रहे, सुख की नीद सोयें और यह भी कह देना कि दीक्षा के एक दिन पहले, दीक्षा के दिन और दीक्षा के दूसरे दिन यो तीन दिन भिणाय और उसके आस-पास कही भी कोई घटना नही होगी। होगी तो मोडसिंह जिम्मेदार है। इसलिए सब लोग बेफिक्र होकर दीक्षा महोत्सव का काम करें। मौका लगा तो दीक्षा के दिन मैं स्वय समारोह मे उपस्थित होऊँगा।"

यह कहकर मोडसिंहजी ने पोखरणाजी की ओर देखा, उनका भय अब उत्सुकता मे बदल गया था। वे हाथ उठाकर मुजरा कर ही रहे थे कि मोडसिंहजी अपने साथियो के साथ जा मिले और क्षणभर मे कही गायब !

पोखरणाजी ने अब सतोष की सास ली। दो मिनट रुककर विश्राम लिया, पसीना पोछा और फिर नया उत्साह और उमग लेकर भिणाय की तरफ रवाना हो गये। उनके मन मे आज बडी गौरवानुभूति जग रही थी कि एक बनिया डाकूमोडसिंह से दो बातें कर आया भिणाय पहुँच कर गुरुदेव की सेवा मे उन्होने मोडसिंहजी का सवाद सुनाया। सभी का मन आश्वस्त हो गया।

मोडसिंहजी के विषय मे यह आम धारणा थी कि वह जबान का धनी है। जो बात मुँह से कह देता है वह पत्थर की लकीर है। लोभ के वश होकर आज तक उसने कभी थूक कर नही चाटा। गुरुदेव श्री मोडसिंहजी के इस सदेश पर भी चकित रहकर सोच रहे थे कि दीक्षा समारोह के दिन वे स्वय यहाँ कैसे उपस्थित होंगे। उसी प्रसग पर तो पुलिस इन्स्पेक्टर एव जनरल मैनेजर कोर्ट ऑफ वार्डस आदि उच्च राज्याधिकारी उपस्थित होगे। इन लोगो को उनकी तलाश है तो कैसे वे सबकी आँखो मे काजल फिराकर उपस्थित रहेगे।

वैशाख शुक्ला दशमी का दिन आया। दीक्षा महोत्सव का जुलूस प्रारम्भ हुआ। आस-पास के क्षेत्रो से आये हजारो नर-नारियो का विशाल जन-समूह राण दरवाजे के बाहर रामदेवजी के मदिर के पास एकत्र हुआ। वही वटवृक्ष के नीचे गुरुदेव श्री विराजे। अहिसा और मुनिधर्म पर गुरुदेव का ओजस्वी प्रवचन हुआ। उनका हृदयस्पर्शी प्रवचन सुनने पुलिस के अनेक उच्च अधिकारी तथा लगभग पाँच हजार का जन-समूह उपस्थित था। धारा-प्रवाह प्रवचन चल ही रहा था कि अचानक एक सिपाही बेतहाशा दौडता हुआ सभा-मडप मे सबसे आगे बैठे पुलिस इन्स्पेक्टर के पास पहुँचा। डरे-डरे उसने कहा अभी-अभी डाकू मोडसिंह और उसके साथी तीन ऊँटो पर बैठे पुलिस स्टेशन के सामने से होकर निकल गये हैं।

इन्स्पेक्टर साहब व्यग्र हो उठे। सभा छोडकर वे सीधे पुलिस स्टेशन की ओर चल पड़े। सभा मे एक बार खलबली मच गई, लोगो ने सुना कि डाकू मोडसिंह दीक्षा देखने

आया था और यही से उठकर वह सबकी आँखो के सामने से निकल गया। पुलिस ने दूर-दूर तक तलाश की, पर मोडसिंह उनके हाथो नही लगा।

दीक्षा-समारोह निर्विघ्न सोल्लास सपन्न हो गया। सर्वत्र गुरुदेव श्री के अद्भुत प्रभाव की जय-जयकार हो रही थी। लोगो को पता चल गया था कि मोडसिंहजी ने तीन दिन तक सब यात्रियो को अभय कर दिया है तो वे धर्म के और धर्म-गुरु के पुण्य-प्रताप की महिमा गाने लगे।

वैशाख शुक्ला ११ को प्राय सभी यात्री अपने-अपने स्थानों को चले गये। उसी दिन ब्यावर से एक बारात आई थी जो बादनवाडा होकर बैलगाडियो से राताकोट जा रही थी। मार्ग मे डाकू मोडसिंहजी के दल ने बारात को घेर लिया। बराती भयभीत हो गये, अपने जेवर इधर-उधर छुपाने लगे और मन-ही-मन ईश्वर को याद करने लगे। तभी एक बराती को कुछ सूझा और वह उच्च स्वर से बोला हमे क्या पता था कि मोडसिंहजी भी अपनी जबान बदलना सीख गये हैं। हमने तो सुना था कि मोडसिंहजी ने वचन दिया है कि दीक्षा मे आने-जाने वालो को तीन दिन तक हम कुछ भी नही कहेंगे, और अब हम लोगो को आज घेर लिया? यह तो विश्वासघात की बात होगई। हम नही जानते थे कि गुरुदेव के दर्शन कर दीक्षा मे जाकर भी हम यो लुट जायेंगे?

मोडसिंहजी ने यह तानाकशी सुनी तो उनका खून गर्मा गया। अपनी जबान का उन्हे बड़ा गौरव था। वे आगे आये और बोले "भले आदमी, क्यो झूठ बोल रहे हो कि हम महाराज के दर्शन करने आये, दीक्षा-महोत्सव मे आये! सामने तो दुल्हा (बीद) बैठा है और कहते हो कि दीक्षा देखने आये। मोडसिंह की आँखो मे भी धूल झोक रहे हो? मैं देख रहा हूँ कि तुम लोग दर्शनार्थी नही, किंतु तुमने झूठ-मूठ ही मेरे गुरु जी का नाम ले लिया है तो जाओ, मैं तुम्हे छोड देता हूँ। निर्भय होकर चले जाओ, कोई तुम्हे हाथ नही लगायेगा।

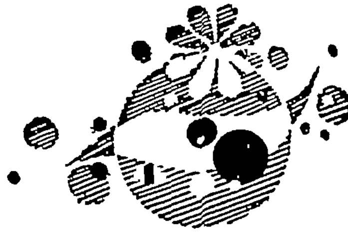
मोडसिंहजी के साथी और बराती भी यह देखकर दग रह गये कि एक डाकू कहे जाने वाला व्यक्ति भी गुरु-भक्ति के नाम पर हाथ चढी सोने की मुर्गी को भी यो छोड रहा है, लाखो का लालच छोड दिया उसने एक गुरु-भक्ति की टेक पर! वचन की आन पर!

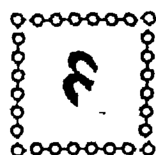
गुरुदेव के अद्भुत वचनातिशय और प्रभावशीलता का यह साक्षात् चमत्कार आज भी लोगो की स्मृति को गुदगुदा रहा है कि एक डकैती का जघन्य अपराध करने वाला व्यक्ति भी उनके प्रति इतनी उत्कट श्रद्धा रखता था कि लाखो का माल हाथ-चढने पर भी उसे छुआ तक नही। गुरु के नाम पर श्रीमतो को अभय दे दिया। यह गुरुदेव श्री के प्रति भक्ति का एक आदर्श उदाहरण है, उनके मानवीय सद्भाव का जन-जन पर छाया हुआ प्रभाव स्पष्ट सूचित होता है।

यहाँ हमे यह भी स्मरण रखना है कि आपके ही प्रयत्न व उपदेश से मोडसिंहजी ने कुछ समय बाद डाका डालना छोडकर शातिमय जीवन बिताना प्रारम्भ कर दिया था। और इस परिवर्तन का प्रभाव धीरे-धीरे राजस्थान के अन्य नामी डकैतो पर भी पडा। मोडसिंहजी के ही पुत्र प्रसिद्ध डाकू लक्ष्मणसिंहजी ने वि० स० १६६६ के गोविन्दगढ चातुर्मास मे गुरुदेव श्री के दर्शन किये, उपदेश सुने और उन उपदेशो का डाकू के मन पर ऐसा जादुई असर हुआ कि बस एक क्षण मे जीवन ही बदल गया। गुरुदेव के चरणो मे बैठकर ही उन्होंने भविष्य मे डाका न डालने की प्रतिज्ञा ली और एक सद्-गृहस्थ व सभ्य नागरिक का शातिपूर्ण जीवन बिताने लगे। यह सब सत्सग का चमत्कार देखकर सहज ही मुँह से निकल जाता है

सत्सगतिः कथय किं न करोति पसाम् ?

डाकू की गुरुभक्ति और गुरु का उनके प्रति अनुग्रह वास्तव मे ही व्यक्ति, समाज और देश के लिए एक वरदान के रूप मे व्यक्त हुआ।





अभय के देवता



भगवान महावीर अभय के परम मन्त्रदाता थे। उनका उद्घोष था अभय के विना अहिंसा अधूरी है। अभय के विना भावना लगडी है। गृह-त्याग कर प्रव्रजित होते समय उन्होने यही वज्र सकल्प लिया था "मेरे साधना-काल मे देव, मनुष्य एव तिर्यंच सम्बन्धी जो भी उपसर्ग आयेंगे, मैं उन्हे परम साहस एव अटल धैर्य के साथ सहन करूँगा। विकट से विकट सकट मे भी मन को निर्भीक और निश्चल वनाये रहूँगा।" घटनाएँ साक्षी हैं कि भगवान महावीर को साधना-काल मे दैत्यो के दारुण उपसर्ग, कलेजा कपाने वाले भय, पशुओ के प्राणातक उपद्रव और मनुष्यो की घोर ताडना-यातनाएँ उन्हे सहनी पडी, पर वे कभी विचलित नही हुए। सदा 'अभय' वने रहे। अभय वनकर भय को जीता ही नही, जगत के भय को भी समाप्त करने का प्रयत्न किया। साधना सिद्धि के वाद अपने प्रवचनो मे वार-वार उन्होने यही कहा

न भाइयव्व, भीतं खु भया अइति लहुय।

कभी भी भयभीत नही होना चाहिए। भयभीत मनुष्य के पास शीघ्र ही भय आ जाते हैं। एक भय दूसरे भय को वुलाता है, मनुष्य की आत्मा को खाने लगता है, और धीरे-धीरे भय मनुष्य का सर्वनाश कर डालता है। इसलिए साधना मे सवसे पहली शर्त है अभय वनो! भगवान महावीर का यही घोष था—तुम स्वय अभय वनो और अपने आत्मवल-आत्म तेज के द्वारा दूसरो को भी अभय करो। **'अभयकरे'** यही श्रमण का सार्थक विशेषण है। उसे यही सदेश दिया गया है—**अभय दाया भवाहि य'** स्वय अभय रहकर दूसरो को अभय दान देने वाले वनो।

गुरुदेव श्री पन्नालालजी महाराज का जीवन वृत्त पढने पर यह स्पष्ट ज्ञात होता है कि वे अभय के साक्षात् देवता थे। भय की भावना कभी उनके मन मे नही जगी। किसी भी परिस्थिति मे, किसी भी सकट मे, और तो क्या भयकर सिंह की दहाड और

क्रूर दैत्यो के अट्टहास मे भी वे स्वय तो निर्भय रहे ही, दूसरो को भी निर्भय बना दिया। उपद्रव ग्रस्त पामर मनुष्यो को भी उन्होने आत्म-बल प्रदान कर 'अभय' कर दिया। उनके जीवन की कुछ घटनाएँ इस प्रकार हैं।

सिंह ने चरण स्पर्श किया

वि० स० १९८२ के चैत्र का महीना था, शुक्ल पक्ष ! महावीर जयन्ती का समय निकट आ रहा था। गुरुदेव श्री धूलचन्द्रजी महाराज की अनुमति प्राप्त कर गुरुवर्य श्री पन्नालालजी महाराज, मुनि श्री देवीलालजी को साथ लेकर भिणाय से भीलवाडा की ओर विहार कर रहे थे। मार्ग मे आप वनेडा मे रुके। वनेडा नरेश श्री अमरसिंहजी गुरुदेव के परम भक्त थे।[१] जब भी उन्हे गुरुदेव के आगमन का पता चलता सेवा मे उपस्थित होते, प्रवचन सुनते और गुरुदक्षिणा के रूप मे कुछ न कुछ त्याग प्रत्याख्यान की भेंट भी चढाते। गुरुदेव के आगमन पर श्री अमरसिंहजी ने एव स्थानीय श्रावक समाज ने विराजने के लिए अत्यधिक आग्रह किया, पर गुरुवर्य को आगे जाना था। 'चरैवेति चरैवेति' के मत्र गायक को विश्राम कहाँ ? रुकना कहाँ ?

एक दिन अचानक ही गुरुदेव ने वनेडा से सायकाल लगभग ५ वजे विहार कर आगे कदम वढा दिए। वनेडा से करीब १½ मील पर भीलवाडा-सागानेर मार्ग पर ही राजा जी का वाग था। आपने रात्रि विश्राम वही करने का निश्चय किया। वागवान से ठहरने के स्थान के विषय मे पूछा गया तो उसने वताया कोठी पर ताला लगा है और चावी किले मे ही है। वागवान भी वेचारा घवरा गया सतो को इस जगल मे रात भर कहाँ ठहराये ! उसकी घवराहट देखकर गुरुदेव ने कहा हम रात को किसी वृक्ष के नीचे या दरवाजे मे छत के नीचे ही ठहर जायेंगे। हमारी चिन्ता मत करो ! हम सर पर कफन बाँध कर चलने वाले हैं। हम

सुसाणे सुन्नागारे वा रुक्खमूले व एगओ

कभी श्मशान मे, कभी शून्यागार मे तो कभी वृक्ष के नीचे ही बैठकर अपना ध्यान चिन्तन करने लग जाते हैं। वस आप आज्ञा दे दें ठहरने की

वागवान ने हाथ जोडकर कहा गुरुदेव ! यहाँ रात को सिंह आता है। इसलिए वाहर ठहरना तो ठीक नही है, हम लोग मकान की छत पर सोते हैं, आप भी रात्रि मे छत पर ही ठहर जाइए।"

गुरुदेव जैन साधु रात को खुले आकाश के नीचे नही ठहर सकते। कुछ-न-कुछ छाया चाहिए, चाहे वह वृक्ष की हो, छप्पर की हो। इसलिए आप हमे यहाँ नीचे दरवाजे मे ही ठहरने की अनुमति दे दीजिए। रही वात रात मे सिंह आने की, तो इसकी हमे कोई चिन्ता नही, कोई भय नही। हम अहिंसक हैं, प्राणिमात्र के प्रति मैत्री-भाव रखते हैं। किसी भी प्राणी को कष्ट नही देते, सताते नही तो सिंह हमे क्यो

१ वर्तमान मे भीलवाडा क्षेत्र के ससद सदस्य श्री हेमेन्द्रसिंहजी आप ही के प्रपौत्र हैं।

सतायेगा ? आचार्यों ने "**अहिंसा प्रतिष्ठायां तत् सान्निधौ वैरत्याग.**" कहा है तो इसका कुछ रहस्य होगा, आज इसी का अनुभव कर लेंगे।"

बागवान गुरुदेव की अभय और साहस भरी बातें सुनकर स्तब्ध रह गया। फिर भी उसने कहा महाराज! आपका कहना तो ठीक है, पर वह क्रूर जानवर है, उसे क्या पता आप अहिंसक है, साधु है। जो भी उसकी चपेट मे आ जाता है उसी को अपना भोजन बना लेता है। अत आप जहाँ मन हो भले ही ठहरें, पर हमारा कहना तो यही है कि रात को छत पर सो जाइये।"

गुरुदेव ने उसे समझाया तुम्हारा डर भी ठीक है, पर अब इतनी सध्या हो गई है कि हम आगे किसी गाँव मे भी नही जा सकते और न खुली छत पर सो सकते हैं। अब तो जो भी होगा देखा जायेगा, रात भर इसी दरवाजे मे ही ठहरना चाहते हैं। और बागवान की स्वीकृति पाकर आप दोनों मुनिवर अपने प्रतिक्रमण आदि मे सलग्न हो गये। ध्यान आदि साधना करते हुए आनन्द पूर्वक रात्रि व्यतीत हो रही थी।

पिछली रात्रि के करीब तीन बजे होगे। आप हमेशा की भाँति जगकर जप एव स्वाध्याय मे लीन हो गये। उसी समय एक विकराल सिंह जगली झाडियो से निकल कर धीरे-धीरे चलता हुआ बाग के दरवाजे मे घुसा। जहाँ आप बैठे थे वही आ गया। कुछ देर खडा-खडा आपकी ओर देखता रहा, आप भी शाति और निर्भयता के साथ मौन भाव से वनराज का आगमन देख रहे थे। वनराज को शातिपूर्वक खडा देखकर आपने उच्च एव मधुर स्वर मे पुकारा "**अभयदाया भवाहि य**"[1] इस अभय मत्र का बार-बार उच्चारण करते देखकर पता नही, वनराज के मन पर क्या जादुई प्रभाव पडा, दो-चार क्षण इधर-उधर झाककर आपके चरण अगुष्ठ की तरफ मुह किया, गध ली और जैसे उसे किसी मित्र व उपकारी की गध मिली हो। प्रणाम-मुद्रा मे सिर झुकाकर वापस शातिपूर्वक लौट गया। बाग मे आगे गया, किन्तु गुरुदेव के 'अभयदान' की शिक्षा पर आचरण करता हुआ-सा भक्ष्य लिये बिना ही वापस जंगल की ओर बढ गया।

गुरुदेव ने अपने साथी मुनिश्री देवीलालजी को पुकार कर पूछा देवीलालजी यह कौन था ?

देवीलालजी ने अनजाने भाव से ही कहा कोई गीदड (श्रृगाल) आदि होगा।

सिंह को श्रृगाल कहलाना कब बर्दाश्त हो सकता है। जैसे इसी का उत्तर देते हुए कुछ कदम आगे जाकर उसने खूब जोर की दहाड लगाई। सिंह-गर्जना सुनकर आस-पास की पहाडियाँ, झाडियां और दीवारें भी काप कर प्रतिध्वनि करने लग गई। आपने तत्काल मुनिजी को टोक कर कहा—देखा, वनराज को श्रृगाल कहने का परिणाम! अब कभी सिंह को श्रृगाल मत कह देना।"

---

१ उत्तराध्ययन १८।११

सिंह की दहाड सुनते ही बागवान आदि कर्मचारियो मे खलबली मच गई। उन्होने ऊपर से ही गुरुदेव को आवाज लगाकर कहा महाराज! सिंह आ गया है। आप ऊपर पधार जाइये! नही तो वह नुकसान कर जायेगा।

गुरुदेव ने उन्हे सान्त्वना देते हुए फरमाया घबराओ नही! वनराज आगया और चला भी गया। तुम निश्चित रहो, किसी भी जीव को कोई कष्ट नही दिया।

प्रात. बागवान आदि चपरासी नीचे आये। गुरुदेव से सब घटना सुनी। बाग मे भी आज सब जानवर सुरक्षित थे। बागवान ने बड़े आश्चर्य के साथ कहा गुरुदेव! आज यह पहला अवसर है, जब सिंह आया और किसी जीव को कष्ट दिये बिना यो ही चला गया। हमेशा ही वह अपना भक्ष्य लेने आता है और एकाध पशु का काम-तमाम करके ही जाता है। पर आज तो साक्षात् आपका तपस्तेज ही था कि सब जीव सुरक्षित रहे। हिंस्र सिंह ने भी आपका चरणस्पर्श कर हिंसा छोड दी।"

सूर्योदय होने पर गुरुदेव श्री बाग से आगे भीलवाडा की ओर प्रस्थान कर गये।

मन में मैत्रीभाव है तो सांप क्या करेगा?

साप सबसे क्रूर प्राणी होता है। जरा-सा स्पर्श होते ही वह डस लेता है। यह सज्जन है या दुर्जन, इस बात को साप नही देखता। परन्तु मुनि श्री पन्नालालजी महाराज साप से भी नही डरते थे। इस सम्बन्ध मे आपकी निर्भीकता की कई बार परीक्षा भी हुई। और हर बार आप परीक्षा मे खरे उतरे।

विक्रम स० १९८० का आपका चातुर्मास भीलवाडा था। चौमासे मे एक बार सेठ ज्ञानचन्दजी नागौरी ने आपकी निर्भीकता व अविचलता की परीक्षा करने की दृष्टि से कुतूहलवश पाच फीट लबे एक काले भुजग को अपने साथ थैले मे छिपा कर स्थानक मे ले आये और आप जिस पट्ट पर विराजमान थे, उसके पास चुपके से छोड दिया। उसके बाद वे स्वाभाविक रूप से आपके साथ ज्ञान-चर्चा मे लग गये। सर्पराज अपने स्वभावानुसार पट्टे के सहारे रखे हुए रजोहरण पर होता हुआ पट्टे पर चढ गया! तभी नागौरीजी ने सहसा हल्ला मचाया—गुरुदेव! सर्प सर्प!! परन्तु आपने मुस्कराते हुए अविचल-भाव से उत्तर दिया—"नागौरीजी! घबराओ मत! मैं इसे नही डराता तो यह मेरा कुछ भी नुकसान नही करेगा। यह भी पचेन्द्रिय जीव है। यहाँ आया है तो प्रभु-वाणी का रसास्वादन करेगा।" और इतने मे वह सर्प गुरुदेव के शरीर पर चढ गया। इस पर नागौरीजी ने कहा "यह काट खायेगा, गुरुदेव!" आपने फरमाया "क्यो बेचारे सर्प को बदनाम करते हो? यह तो इस समय आपके द्वारा मत्र-कीलित है। यदि मत्रकीलित न हो तो भी हमारा इसके साथ मैत्रीभाव हैं, तब हमे क्यो काट खाएगा? सर्प भी प्राय उसी को काटता है, जो या तो इसे डराता है या इसके साथ छेडखानी करता है, इस पर द्वेष-वश प्रहार करता है। मेरे मन मे इसके प्रति कोई

द्वेष-भाव या छेड़ने का भाव नही है, और न मैं इसे डराता हूँ। तब इस सर्पराज से डरने की मुझे क्या आवश्यकता है ?"

आपकी निर्भीकता एव निश्चलता जानकर सेठ नागौरीजी[1] बहुत ही प्रभावित हुए और आपके चरणो मे नतमस्तक होकर कहा "गुरुदेव ! मुझे क्षमा करे ! आपकी निर्भीकता की परीक्षा करने के लिए ही मैंने ऐसा किया था। आप इस परीक्षा मे पूर्ण उत्तीर्ण हुए हैं। धन्य है आपके धैर्य एव साहस को !" सर्पराज भी मानो आपको नमस्कार करता हुआ धीरे-धीरे वहाँ से चला गया।

भूत को प्रतिबोध

गुरुदेव श्री की अभयवृत्ति के परिचायक अनेक सस्मरण सुनने को मिलते हैं जिनसे पता चलता है कि उन्होने भय को सर्वथा जीत लिया था। भगवान महावीर जिस प्रकार साधना-काल मे भयभैरव स्थानो पर जाकर साधना की ज्योति प्रज्ज्वलित करते थे और दुर्दमनीय दैत्यो को प्रबोध देकर उनका उद्धार करते थे, उसी पथ का अनुसरण मुनिश्री ने कई बार किया। भय के स्थान 'भूतहा' घरो मे जाकर मुनिश्री ठहरे, भूतो के उपद्रव भी हुये पर उन झझावातो मे भी अविचल रहकर भी भूत का हृदय बदला, जनता का आतक दूर किया।

घटना वि० स० १९९१ की है। वैशाख का महीना। सूर्य की प्रचड किरणो के ताप से धरती तवे की भाँति तप रही थी। लू की भीषण ज्वालाओ से भू-खड जल रहा था। उस प्रचड गर्मी मे गुरुदेव श्री नसीराबाद पधारे। नसीराबाद मे ठहरने के लिए कोई अनुकूल स्थान प्राप्त नही हुआ। जो स्थान मिला, वह इतना बन्द था कि ठडी हवा क्या, गर्म हवा का एक झोका भी वहाँ नही लगता था। दिन भर की धूप व गर्म लू से दीवारें लाल हो रही थी और मकान भडभूजे की भट्टी की तरह तपने लगा था। दिन तो किसी तरह बिताया भी जा सकता था, पर रात बिताना तो दुसभव था। बाहर खुले मे सोना या बैठना भी जैन साधु का कल्प नही। गुरुदेव श्री ने श्रावको को सकेत किया कि रात्रिवास के लिए कोई दूसरा अनुकूल स्थान मिल सके तो ठीक रहे। सभी ने प्रयत्न किया पर 'रेवडी का नाम गुलप्सपा' सफलता हाथ न लगी। सभी को चिन्ता थी। इस अत्यन्त कष्टदायी स्थान पर गुरुदेव श्री रात्रिवास कैसे कर पायेंगे। जहाँ न हवा और न प्रकाश। तभी एक भाई ने गुरुदेव से कहा "महाराज ! मकान तो एक मैं बता दूं। लेकिन ठहरने की हिम्मत चाहिए।"

गुरुदेव ने मधुर हास्य के साथ कहा "हिम्मत-किम्मत तो फिर देखेंगे, तुम मकान तो बताओ।" वह सज्जन गुरुदेव को अपने साथ ले गया। एक लम्बा-चौडा मकान था। बिल्कुल खाली, हवादार, लेकिन भयावना ! वर्षो से शायद किसी मनुष्य

१ यह घटना सेठ शोभालालजी नागौरी से जो सेठ श्री ज्ञानचन्द्रजी नागौरी के पौत्र हैं और जो उस समय उनके साथ मे थे ज्ञात हुई। —सम्पादक

का पाँव भी नही रखा गया होगा। मिट्टी की तहे जमी थी। सज्जन ने बताया। यह मकान है ताराचन्दजी अग्रवाल का। इसे भूतहा मकान कहते हैं, आपकी हिम्मत हो तो देख लो।"

गुरुदेव ने मकान देखा, वैसे साधु-जीवन के अनुकूल निर्दोष व ध्यान आदि करने के लिए ठीक था। आपने कहा 'ठीक है, मकान हमे पसन्द है। इसका स्वामी आज्ञा दे तो हम यहाँ ठहर सकते हैं।'

गुरुदेव मकान देखकर जैसे ही वापस लौटे तो अनेको श्रावक घबराये हुए से आये और बोले "महाराज! आप कहाँ पधार रहे हैं? वह भूतो का मकान है। रात मे वहाँ रहना मृत्यु का आलिगन करना है। वर्षों से सूना पडा है। भूत के भय से दिन मे भी वहाँ झाडू लगाने वाला नही घुसता। आप रात मे कैसे ठहरेंगे?" लोगो ने कई दिल-दहलाने वाली घटनाएँ सुनाई और भूत का आतक-उपद्रव बता कर वहाँ न जाने की सलाह दी।

गुरुदेव ने कहा "वह मरा भूत है, हम महावीर के जिन्दे दूत है। अगर हम मुर्दा भूतो से भय खायेंगे तो बस हो गयी साधना! महावीर की सन्तान अगर वीर भी नही होगी तो फिर यह धर्म चल नही सकेगा। फिर जिसके मन मे भय होता है उसे ही भूत अपना शिकार बनाते हैं। **"भीतो भूएहिं घिप्पइ"** निर्भीक को भूत कुछ नही कहता। यदि भूत कुछ उपद्रव करेगा तो हम साधुओ का क्या बिगाडेगा? जीये तो लाख के, मरे तो सवा लाख के।" साधु तो

मौत सिरहाने लेयकर चले हसत-हसत।

"साधु होकर मरने से डरे वह कैसा साधु?" गुरुदेव की इस साहस भरी कथनी का प्रतिरोध कौन करता? सायकाल अपने वस्त्र-पात्र आदि उपकरण लेकर गुरुदेव उस भूतहा मकान मे पधार गये। मकान मालिक श्री अग्रवाल ने भी डरते-डरते आज्ञा दे दी। मकान मे जाने तक कुछ श्रावक भी साथ थे पर रात होते-होते वे भी खिसकने लगे। गुरुदेव ने उनको आश्वस्त किया भोले बधुओ! हमारे पास मत्राधिराज महामत्र नवकार जैसा मत्र है, जो सब मगलो मे उत्कृष्ट मगल है, तो किसी अमगल की कल्पना ही आप क्यो करते हैं? उसके दिव्य प्रभाव से उपद्रव भी शात हो जाता है। अमगल भी मगल बन जाते हैं तो फिर भूत का भय क्यो खा रहे हैं? आप लोग निश्चिंत रहे और दृढता-पूर्वक यह दिखादे कि

देवा वि त नमसंति जस्स धम्मे सया मणो

जिसका मन धर्म मे अनुरक्त है, उसके चरणो मे देवता भी नतमस्तक होते हैं।

गुरुदेव के साहस भरे वचनो से श्रावको को कुछ धीरज बधा। फिर भी सामायिक-प्रतिक्रमण आदि करके अधेरा गहराते तक वे लोग भी चले गये। अब उस भूतहा-मकान मे थे गुरुदेव, साथी मुनि श्री छोटमलजी महराज, वैरागी पृथ्वीराजजी और

पंडित विशम्भरदत्तजी शास्त्री। रात का प्रथम प्रहर बीता। गुरुदेव ने ध्यान स्वाध्याय आदि करके अपना बिछौना लगाया और शांति के साथ शयन किया। आप ही के पास वैरागी एवं पंडितजी ने भी बिस्तर लगा लिए।

रात का दूसरा पहर भी शांति के साथ करीब-करीब बीत गया। लगभग बारह बजने को थे कि एक पत्थर आया और छप्पर के टीन पर धडाम से गिरा। उसकी जोरदार आवाज सुनकर सभी जग गये। पास-पडोस के मकान वाले भी जाग गये। इतने ही में सनसनाता एक दूसरा पत्थर आया और वैरागी के सिर के पास गिरा। तभी तीसरा पत्थर आया और गुरुदेव के पाट के पास आकर टकराया। अब तो जैसे ओलों की वर्षा होती है, वैसे ही सनसनाते पत्थर बरसने लगे। टीन के चद्दरों पर, आंगन में पत्थरों की धडाधड आवाज से सभी पडोस वाले, मुहल्ले वाले जग गये और अपनी छतों से गुरुदेव को पुकारने लगे महाराज ! सावधान रहिये ! किसी ने कहा महाराज ! बाहर आ जाइये नहीं तो अनर्थ हो जाएगा। जितने मुँह उतनी ही बात। पूरा मोहल्ला इस पत्थर वर्षा को कलेजा थामे देख रहा था और गुरुदेव के अति साहस को कोस रहा था।

इस विकट परिस्थिति में वैरागी, पंडितजी और साथी मुनि भी घबराये बिना कैसे रहते ! गुरुदेव ने उन्हें अपने पास में बिठाया और उदात्त स्वर से शास्त्र-पाठ बोलकर पुकारा। हे पत्थर वर्षाने वाले बंधु ! तुम्हारे पत्थरों से हमारा कुछ भी अनिष्ट होने वाला नहीं है, लेकिन याद रखो, इससे तुम्हारा ही बुरा होगा। हमने तुम्हारा कभी बुरा नहीं किया, तुम हमसे क्यों द्वेष करते हो। त्यागी साधुओं पर ये पत्थर वर्षा-कर तुम अपने लिए बहुत ही अनिष्ट कर रहे हो ! हम जैन-साधु हैं, महावीर की संतान हैं, कच्चे-पच्चे छोकरे नहीं जो तुमसे डर कर भाग जायें। हम प्राणों का उत्सर्ग करने को भी तैयार हैं लेकिन डरेंगे नहीं, भगेंगे नहीं। तुम अपना हित चाहते हो तो तुरंत यह उत्पात बंद कर दो और द्वेष-भाव दूर कर शांति धारण करो। ॐ शांति ! ॐ शांति ! तुम्हें सद्बुद्धि प्राप्त हो।"

गुरुदेव की यह पुकार पास-पडौस के लोगों ने सुनी तो वे सोचने लगे महाराज डर कर चिल्ला रहे हैं। पर उनकी इस घोषणा का बडा ही चमत्कारी असर हुआ। दूसरे क्षण पत्थर आने बन्द हो गये और मुहल्ले भर के लोग चकित रह गए। अभी एक क्षण पहले जहाँ दनादन पत्थर बरस रहे थे। आंगन और छत जहाँ पत्थरों से पट गयी वहाँ एक-ही आवाज पर सब उत्पात बंद ! एक दम शांति !

गुरुदेव श्री की तपस्या, साधना और अमोघवाणी का चमत्कार देखकर सभी लोग मकान के बाहर एकत्र हो गए। गुरुदेव ने उन्हें सांत्वना दी "आप लोग अब निर्भय रहिये। आज से आपका यह कष्ट दूर हो गया। यहाँ का भूत सदा-सदा के लिए भाग गया है।"

प्रातःकाल हुआ। श्रावक-गण अनेक आशकाएँ और अमगल कल्पनाएँ लिए भारी हृदय से उस ओर आये। मुहल्ले वालो से जब रात्रि की घटना सुनी तो सब की नसो मे जैसे नया खून दौड़ गया। चेहरे पर उल्लास और प्रसन्नता की लहरे उमड़ने लगी। श्रावक-गण गुरुदेव श्री के तपस्तेज की यशोगाथा गाते हुए सेवा मे उपस्थित हुए। मुहल्ले के ही नही, किंतु नसीराबाद के सैकडो जैन जैनेतर जैसे-जैसे रात्रि की घटना सुनते गये, दौड-दौड कर गुरुदेव के चरणो मे उपस्थित होने लगे। उस सुनसान भूतहा मकान मे मेला-सा लग गया। भक्ति-भाव के साथ सभी लोग गुरुदेव की स्तुति करने लगे। मकान मालिक ताराचन्दजी अग्रवाल भी दौडकर आये, उन्होने विनती की गुरुदेव! आपके अपूर्व तपोबल का ही यह चमत्कार है कि हमारा सुनसान मकान आज आबाद हो गया और भूतो का भयकर उपद्रव भी शात हो गया। कृपा कर अब आप कुछ दिन यही विराजे ताकि हम सबको आपके पावन सत्सगका लाभ प्राप्त हो। श्रावको ने तथा नगर के सभी वर्णो के सैकडो भावुक लोगो ने गुरुदेव से वहाँ विराजने का बडा आग्रह किया। यद्यपि गुरुदेव उसी दिन वहाँ से विहार करना चाहते थे किंतु जनता की अत्यधिक भावभीनी भक्ति का आग्रह उन्हे वही रोके रहा।

गुरुदेव श्री ने जनता को सम्बोधित करके कहा बन्धुओ! यह उपद्रव शात होने मे आप मेरा प्रभाव कुछ भी न समझें, यह तो सब धर्म का प्रभाव है। महामत्र नवकार का चमत्कार है। हम तो उसी की आराधना करते हैं, उसी शक्ति से हमे साहस और आत्म-बल प्राप्त होता है। यह बात निश्चित है कि भूत-प्रेत कमजोर और कायर मनुष्यो को ही बाधा उपस्थित करते हैं, जो साहसी एव दृढ-सकल्पी होते हैं उनके पथ की बाधाएँ भी अनुकूल हो जाती हैं। कवि ने कहा है

राही, साहस से बढ़ता जा!
पथ की शूल फूल बनेगी
बाधाएँ अनुकूल बनेगी,
उफनाती गहराती नदियाँ
शांत सरित का कूल बनेगी
खड़ी सफलता देख शिखर पर
धीरज धर कर तू चढता जा।
राही! साहस से बढता जा!

तो जीवन मे सफलता के शिखर पर चढने के लिए साहस, अभयवृत्ति और आत्म-विश्वास की आवश्यकता है।

गुरुदेव श्री के उद्बोधक वचनो ने उपस्थित जनता के आत्म-विश्वास को जगा दिया, उसकी धर्म-श्रद्धा को और सुदृढ बना दिया।

इस प्रकार 'भय-भैरव' स्थान पर पहुँच कर भी अभय के देवता गुरुवर्य ने सर्वत्र अभय की दुदुभि बजा दी।

प्रेत बाधा एवं मांगलिक

गुरुदेव श्री के जीवन के साहस, धैर्य और अभय-व्रत की चर्चा करने पर उनके जीवन की ऐसी अनेक चमत्कारी घटनाएँ आँखों के सामने नाचने लग जाती हैं। जहाँ भी उन्होंने जनता को भयत्रस्त देखा वहाँ अपने उद्दाम आत्म-विश्वास के द्वारा उसकी भय-बाधा दूर की। उनका यह विश्वास था कि भूत-प्रेत की बाधाएँ अधिकतर उन्हीं व्यक्तियों को पीड़ित करती है जिनका मनोबल कमजोर होता है और जो धर्म में दृढ़ श्रद्धा-सम्पन्न नहीं होते। सुदृढ़ धर्मश्रद्धा मनुष्य को सभी भयों पर विजय प्रदान करती है। एक उदाहरण और देखिए

वि० सं० २००५ में गुरुदेव श्री ने मसूदा में चातुर्मास किया। वहाँ पर रिखब-चंदजी डोसी को कुछ प्रेत बाधा चल रही थी। शांति के लिए अनेक प्रयत्न किये। यंत्र-मंत्र-तंत्र सभी पापड़ बेले पर सफलता नहीं मिली। प्रेत-बाधा के कारण काफी परे-शान रहते थे। स्वयं तथा सम्बन्धी जन भी निराश हो गये कि अब यह उपद्रव जान-लेकर ही मिटेगा। एक दिन उनके किसी सम्बन्धी ने गुरुदेव श्री से निवेदन किया "महा-राज! आपके श्रावक बिचारे बहुत कष्ट पा रहे हैं, आप जैसे तपोधनी और अभयमूर्ति गुरु यहाँ विराजमान होते हुए भी यदि उनका कष्ट दूर नहीं हुआ तो घर आई गंगा में भी बिना नहाये हम अभागे रह जायेंगे। आप कोई शांति-पाठ या मांगलिक सुनाइए।"

एक दिन प्रातःकाल गुरुदेव डोसीजी के घर पर पधारे। उस समय प्रेत-बाधा का भयंकर उत्पात हो रहा था। जैसे ही आपने द्वार में प्रवेश किया, उपद्रव कुछ शांत हुआ, पर भीतर ही भीतर डोसीजी को भयंकर कष्ट अनुभव हो रहा था। आप श्री ने उसे सम्बोधित कर मांगलिक पाठ सुनाया तो कुछ शांति अनुभव होने लगी! मांगलिक के साथ आपने कुछ आगम गाथाएँ पढ़ीं। प्रेतबाधा अपने आप शांत हो गई। आपने लल-कार के शब्दों में कहा—'बस, अब कभी किसी को कष्ट नहीं पहुँचाना! ॐ शांति!

आज भी देखने सुनने वाले लोग कहते हैं कि उस दिन के उस घड़ी के बाद उन्हें कभी प्रेत बाधा नहीं हुई। वे पूर्ण शांति और सुख के साथ जीवन बिताने लगे।

पाठक यह न समझें कि गुरुदेव कोई भूत-बाधा- दूर करने वाले वैतालिक या तांत्रिक व्यक्ति थे। उनका कहना था कि उनके पास कोई भी मंत्र नहीं है, मंत्र है तो सिर्फ 'नवकार मंत्र'। जनता जो कुछ चमत्कार देखती है वह और कुछ नहीं सिर्फ-उनकी आत्मशक्ति और दृढ़ संकल्प शक्ति का चमत्कार है। नवकार के प्रति दृढ़ श्रद्धा, अद्भुत साहस और मनोबल में ही वह चमत्कार है कि सिंह आकर शृगाल की भांति चरण स्पर्श कर जाते हैं, भूत-प्रेत अनुचर की भांति उनकी आज्ञा स्वीकार कर जनता का उत्पीडन बंद कर देते हैं। शताब्दी बाद शायद ये संस्मरण किंवदन्ती भी मान लिये जाय, पर आज प्रत्यक्ष द्रष्टा इस सत्य घटना को कैसे झुठला सकते हैं। निश्चित ही ये अभयमूर्ति गुरुदेव की अजेय इच्छा शक्ति और मानसिक बल की फलश्रुतियाँ थी।

१०

अहिंसा के अग्रदूत



अहिंसा साधको की जननी है । वह अपने उपासक पुत्र को निर्भय, प्रभावशाली और वज्रमय बना देती है । अहिंसा के पथ पर चलने वाले साधक की वाणी मे ओज पैदा हो जाता है, उसके विचारो मे अभूतपूर्व बल आ जाता है, उसके व्यक्तित्व का प्रभाव दूर-दूर तक फैल जाता है । क्रूर से क्रूर व्यक्ति भी अहिंसक के सामने नम्र हो जाता है । अहिंसा के कोमल स्पर्श को पाकर सिह सर्प, क्रूर व्यक्ति आदि सभी उसके अपने बन जाते हैं । अहिंसा का उपासक कायर नही होता तो वह क्रूर भी नही होता । वह निर्भय और नि शक होकर क्रूर और हिंसक व्यक्ति को प्रभावित कर देता है, उस पर इतना दबाव डाल देता है कि उसे बरबस सभावित हिंसा को छोडना ही पडता है । किन्तु अहिंसा का वह देवता जब देखता है कि किसी हिंसा परायण व्यक्ति पर इतना दबाव पड रहा है कि वह और उसके परिवार का जीवन खतरे मे पडने जा रहा है, तब वह मानवता की सीमा लाघती हुई उस अहिंसा को आन्तरिक हिंसा की ओर जाने से रोक देता है । यानी अहिंसा मे कठोरता होती है, पर वह होती है अपने लिये, और कोमलता भी होती है, पर वह होती है दूसरो के लिए ।

गुरुदेव श्री पन्नालाल जी महाराज का सारा जीवन अहिंसा के उदात्त सस्कारो मे पला था । वे किसी भी प्राणी के प्राण सकट मे पडे देखकर अहिंसा के महामत्र से उसकी प्राण रक्षा के लिए तत्पर हो जाते थे, परन्तु साथ ही सरकारी कानूनो के शिकजो मे फसाकर जब वे यह देखते थे कि उनके अहिंसा के प्रभाव के कारण हिंसा करने वाले व्यक्ति अथवा उसके परिवार को घोर सकट मे डाला जा रहा है तो वे इसे सहन नही कर सकते थे ।

बात सवत् १९८३ के वर्षावास की है । गुरुदेव श्री पन्नालाल जी अपने गुरुदेव श्री धूलचन्द जी महाराज के साथ गुलाबपुरा मे वर्षावास बिता रहे थे । इस वर्षावास

अहिंसा का पूर्णव्रती केवल अपने जीवन मे होने वाली हिंसा से ही विरत होने का प्रयत्न नही करता, अपितु अपने समक्ष दूसरो के द्वारा होती हुई हिंसा को भी रुकवाने का वह भरसक प्रयत्न करता है। इसी प्रकार जिन प्रवृत्तियो से भविष्य मे हिंसा की परम्परा चलती हो, उन्हें भी बन्द करवाने का प्रयत्न करता है। हिंसा का समर्थन भी जिन-जिन प्रवृत्तियो से होता हो, उन्हे भी रोकने-रुकवाने की चेष्टा करता है। इस प्रकार का प्रयत्न केवल शरीर से या वाणी से ही नही, मन से भी रोकने-रुकवाने एव समाज मे अहिंसा का वातावरण बनाने का प्रयास करता है।

गुरुदेव श्री पन्नालाल जी महाराज अहिंसा के अग्रदूत थे। वे सदा-सर्वदा इस बात का ध्यान रखते थे कि हिंसा का जहाँ भी वातावरण हो, उसे मन, वचन, काया से शुद्ध करने-कराने का प्रयत्न किया जाय। एक दूसरा उदाहरण इस प्रकार है—

हिंसा-परिहार

वि स, १९७२ का चातुर्मास आपने पूज्य गुरुदेव श्री धूलचन्द जी महाराज के साथ मसूदा में किया। मसूदा से लगभग तीन मील की दूरी पर कोलपुरा (कुशलपुर) एक छोटा-सा ग्राम है। वहाँ के रावत जाति के भाई माता जी के नाम पर भैंसे की बलि चढाया करते थे। कुछ श्रावको ने आपसे इस बात की चर्चा की तो आपका परम कारुणिक मानस तुरन्त द्रवित हो उठा। अवसर पाकर आप सीधे कोलपुरा उन रावत भाइयो के बीच पहुँचे। रावत बन्धुओ ने जैन साधुओ को अपने बीच खडा देखकर आश्चर्य किया। पर आपने बडी निर्भीकता और आत्मीयता के साथ लोगो से बातचीत की। दया, करुणा और अहिंसा की महिमा के साथ-साथ माताजी के नाम पर भैंसे की बलि चढाने का प्रश्न उन लोगो के सामने रखा। आपके उपदेश का वह जादुई प्रभाव पडा कि कुलपरम्परा से चली आ रही प्रथा को तिलाजलि दे दी। कानून और प्रलोभन से जो हिंसा बन्द नही हो पा रही थी, वह आपके उपदेशो से एक ही बार मे बन्द हो गई।

एक हजार को जीवनदान

वि स १९७६ की ग्रीष्म ऋतु मे आप पूज्य गुरुदेव श्री धूलचन्द जी महाराज के साथ भिणाय में स्थित थे। एक दिन प्रात काल शौचनिवृत्ति से लौटते समय मार्ग मे बकरो का एक विशाल झुण्ड देखा। आपने निकट आकर उनके रक्षको से पूछा यह झुण्ड कहाँ लिये जा रहे हो?

रक्षक महाराज! ये एक हजार बकरे शाहपुरा नरेश के हैं, नसीराबाद छावनी मे जा रहे हैं।

किसलिए? गुरुदेव ने पूछा।

यह तो आप जानते ही हैं। वहाँ के कसाइयो के हाथ ये बिक जायेंगे और अँगरेज सेना की पाकशाला मे…

एक हजार मूक प्राणियो का क्रूर वध ! मुनि श्री का करुणाशील हृदय काँप उठा। कहाँ वे एक चीटी की हिंसा से भी बचने का प्रयत्न करने मे स्वय अनेक पीडाएँ सह लेते हैं, और कहाँ यह क्रूर हत्याकाण्ड ! जहाँ जिह्वा की लोलुपता और शरीर की पुष्टि के लिए मूक पचेन्द्रिय प्राणी के गले पर छुरी चलाई जा रही है। उन मूक पशुओ के आर्तनाद ने मुनि श्री के हृदय को उद्वेलित कर दिया। आपने रक्षको को समझाया। इस महाहिंसा से बचने के लिए उपदेश दिया, पर वे तो बिचारे विवश थे। राजाजी का आदेश है। उन्हे तो कसाइयो को बकरे बेचकर उसकी रकम राजकोष मे जमा करानी है। मारने और बचाने का उन्हे क्या अधिकार था।

मुनि श्री उद्विग्न हृदय लेकर सीधे स्थानक पहुँचे। श्रावको को एकत्र किया और इन एक हजार मूक प्राणियो की रक्षा का प्रश्न सामने रखा। श्रावक समाज ने तुरन्त इस जीवहिंसा को रोकने का प्रयत्न किया। वधशाला की ओर ले जाते हुए उन मूक प्राणियो को जीवनदान देने के लिए श्रावक समाज ने कठोर प्रयत्न किया। पुलिस की सहायता लेकर बकरो को वही रुकवाया और मुनि श्री ने श्रावक समाज की ओर से एक उद्बोधन पत्र शाहपुरा नरेश को सम्बोधित कर लिखवाया, जिसमे मुख्य बात थी एक हिन्दू नरेश द्वारा एक हजार प्राणियो को कसाइयो के हाथ बेचना क्या शास्त्र सम्मत है ? जिनके पूर्वजो ने एक-एक प्राणी की रक्षा के लिए अपना सर्वस्व होम दिया, उन यादव एव रघुकुल के वशज क्षत्रिय आज इस प्रकार तुच्छ लाभ के लिए दयाविहीन हो जाएँ—यह कैसी विचित्र बात है ?

भिणाय सघ के इस पत्र का शाहपुरा नरेश पर गहरा असर पडा। वे कुछ लज्जित से भी हुए। उनकी अन्तर भावना बदल गई। तब भिणाय सघ ने उन एक हजार बकरो को अपनी ओर से अमरशाला मे भेज देने का प्रस्ताव रखा और राजाजी ने सहर्ष स्वीकार कर लिया। मृत्यु के मुख मे जाते हुए उन मूक पशुओ को जीवनदान देकर जब छोडा गया तो उनकी आत्मा कितनी प्रसन्न हुई होगी और उस करुणावतार सत्पुरुष को मन-ही-मन शत-शत वन्दन किये बिना नही रही होगी।

गुरुदेव के जीवन मे ऐसी अनेक घटनाएँ हुई, जिनमे उन्होने सदैव अपने अहिंसा-महाव्रत के त्रिकरण, त्रियोग से पालन का परिचय दिया, केवल निषेधात्मक रूप मे ही नही, विधेयात्मक रूप मे भी अहिंसा-पालन करने-कराने तथा अनुमोदन करने मे वे पीछे नही रहे।

थानेदार को अहिंसा बोध

बात सवत् १९८७ के चातुर्मास काल की है। आपका वर्षावास मसूदा था। मसूदा मे आपके त्याग, तप, वैराग्य, अहिंसा आदि का पर्याप्त प्रभाव था। जैनो के अतिरिक्त जैनेतर लोग भी आपके व्यक्तित्व से प्रभावित थे। कस्बे मे कही भी कोई हिंसाजनक अशोभनीय घटना होते देखकर आप उसके खिलाफ आवाज उठाते तो उसकी तुरन्त सुनाई होती थी, जनता और शासक दोनो आपके सकेत पर चौकन्ने हो जाते थे।

में समाजहित के अनेक कार्य सम्पन्न हुए थे। प्रतिदिन जनप्रवाह बरसाती नदी की तरह उल्लासपूर्वक धार्मिक क्रियाएँ करने, गुरु दर्शन करने एवं प्रवचन-श्रवण करने के लिए उमडता था। ऐसे ही प्रसंग मे, एक दिन दोपहर मध्याह्नवेला मे जैनस्थानक के द्वार पर आप विराजमान थे। आपके ठीक सामने ही विजयनगर के सुप्रसिद्ध वैद्य महादेवजी उपाध्याय बैठे हुए थे। तत्त्वचर्चा हो रही थी। अकस्मात् वैद्य जी ने गुरुदेव श्री का ध्यान खीचा। "गुरुदेव ! देखिये, नजदीक मे ही रेल्वे लाइन मे होकर एक व्यक्ति वध करने के लिए एक बकरा लिये जा रहा है।" सुनते ही गुरुदेव सहसा के चौंके और करुणार्द्र होकर बोल उठे- "वैद्यजी ! क्या कहा ? बकरा लिये जा रहा है, मारने के लिए और आप ब्राह्मण होकर चुपचाप बैठे हैं ? आपको तो पता लगते ही यथाशीघ्र इसे बचाने का प्रयत्न करना चाहिए था। मनुष्य का जीवन दूसरे प्राणियों की रक्षा, दया और कष्ट-निवारण के लिये है। इसीलिए तो मनुष्य को समस्त प्राणियो मे शिरोमणि, सर्वोपरि कहा है। सर्वोपरि होने के नाते उसकी जिम्मेवारी है कि वह प्राणो की बाजी लगाकर भी अपने मे हीन या छोटे प्राणियों को बचाए।"

आपकी वाणी का उपस्थित श्रोताओ पर जादू-सा असर हुआ। आपने श्रावको को भी इस मूक जीव की रक्षा करने की प्रेरणा दी। आपकी प्रभावशाली प्रेरणा पाकर वैद्यजी और भक्तगण तत्काल उस बकरे को बचाने के प्रयत्न मे जुट पडे। सभी लोग रेल्वे लाइन के पास से जाती हुई सडक पर घटनास्थल पर पहुँच गए। वहाँ जाने पर मालूम हुआ कि बकरे को ले जाने वाला खारी नदी तट पर स्थित जलप्रदायसयन्त्र का सचालक है। और वह इस समय रेल्वे की सीमा में चल रहा है। ऐसी स्थिति मे उससे बकरा छुडाना आसान नही है। अत उसे रेल्वे की सीमा से मेवाडराज्य की सीमा मे किसी तरह ले आया जाय तो फिर उस पर हमारा वस चल सकता है। फिर भी गुरुदेव के द्वारा प्रोत्साहित भक्तजन हताश नही हुए। उन्होने मेवाड राज्य की गोरक्षा पुलिस की टुकडी लाने का प्रयत्न किया। उधर कुछ नागरिक बकरा ले जाने वाले उक्त मुसलमान को समझा-बुझाकर गोरक्षा पुलिस का दस्ता पहुँचने से पहले ही बकरे सहित मेवाड राज्य की सीमा मे ले आये। अब क्या था ! नियमानुसार अब वह मेवाड राज्य का अपराधी बन चुका था। अत. गोरक्षा पुलिस की टुकडी उक्त मुसलमान का पीछा करती हुई वहाँ आ पहुँची। पुलिस आरक्षी को देखते ही उक्त मुसलमान घबराने लगा। वह कहने लगा। 'भाई ! मुझे बचाओ। मेरा अब क्या होगा ? उपस्थित श्रावकवर्ग ने उसे सकट में पड़े देख कर आश्वासन दिया- "मियांजी, घबराओ मत ! तुम अगर इस बकरे को बचाओगे, तो तुम्हे भी सरक्षण मिलेगा। लोगो ने पुलिस-आरक्षी को भी सारी परिस्थिति से अवगत किया। अतः उसने भी उसे सान्त्वना दी। फिर भी उसकी घबराहट कम नही हुई। जैन श्रावक लोग उसे गुरुदेव श्री के चरणो मे लाए। वस्तुस्थिति यह थी कि बकरे का वध कराने मे कई सम्भ्रान्त व्यक्तियो व मुसलमानो का उसे सहयोग था। वे उक्त मुसलमान भाई के गिरफ्तार किये जाने की आशंका से घबरा उठे और येन-केन-प्रकारेण उसे छुडाने

के लिए दौड-धूप करने लगे। जब उन्हे पता लगा कि उक्त मुसलमान भाई को लोगो ने जैन साधु के सामने पेश कर दिया है तो वे सब एकत्रित होकर गुरुदेव के पास पहुँचे और कहने लगे "महाराज! यह बेचारा गरीब आदमी है। अगर इसकी गिरफ्तारी हो गई और इसे सरकार की ओर से सजा मिली तो इसके पीछे इसका सारा परिवार चौपट हो जायगा। घर मे कमाने वाला यही अकेला है। घर मे बुढिया माता है, कई नन्हे-नन्हे बच्चे हैं, इसकी स्त्री है। वे सब सकट मे पड जायेंगे। इन सबका जीवन-निर्वाह दूभर हो जायगा।"

गुरुदेव श्री को सारी स्थिति समझते देर न लगी! गुरुदेव विचार-मन्थन मे पड गये। वे सोचने लगे एक ओर तो मैं इस मुसलमान भाई से बकरे की रक्षा कराना चाहता हूँ, दूसरी ओर बकरे की हिंसा छोडने वाला यह और इसका सारा परिवार प्राण-सकट मे पड जाएगा। मेरी अहिंसा क्या इतनी कठोर होकर मानवता की सीमा तोड सकती है कि वह हिंसक व्यक्ति द्वारा पशुहिंसा छोड देने पर भी उस पर इतना दबाव डाले कि परिवार सहित उस पर प्राणो का सकट आ जाय। एक पशु को अभयदान दिलाकर क्या वह एक मनुष्य को प्राणभीति मे डाल दे? मेरा मुख्य ध्येय तो प्राणिमात्र को अभय बनाने का है। एक को भय से छुडा कर दूसरे को भय मे डालना मेरा अहिंसामत्र उचित नही समझता।"

इस मनोमन्थन के बाद आपने आगन्तुक मुसलमान भाइयो से कहा "भाइयो! जैसे आप इस भाई को सपरिवार प्राणसकट मे पडने की आशका से दुखी हैं, वैसे ही अन्य प्राणियो के प्राण खतरे मे डालते हुए भी दुखी हो, इसी मे आप सबका और इन प्राणियो का हित है, सुख भी अपने और अपनो के प्राणो को बचाने की तरह सभी प्राणियो को बचाने मे है। अतः आज से आप सब लोग खुदा की साक्षी से जिंदगी भर के लिए यह कसम खाएँ कि आइन्दा आप गुलाबपुरा राज्य की सीमा मे किसी भी प्राणी का वध नही करेंगे।[१]"

गुरुदेव की युक्तिपूर्ण बातो से आगन्तुक मुसलमान भाई निरुत्तर और हतप्रभ होकर क्षणभर विचार मे पड गये। फिर उन सबने हाथ जोड कर यह मजूर किया कि भविष्य मे हम किसी भी प्रकार से किसी भी प्राणी का वध गुलाबपुरा की सीमा मे नही करेंगे।"

इससे गुरुदेव के मन मे और इस प्राणिवध त्याग के लिए प्रयत्न करने वाले सब लोगो मे हर्ष की लहर छा गई। सबके अन्तर्हृदय से यही स्वर फूट पडा "अहिंसक राजाओ के राज्य मे सर्वत्र इस प्रकार की हिंसात्याग की प्रतिज्ञा ले लें तो कितना अच्छा हो! अहिंसा देवी की सर्वत्र जय-जयकार होने लगे और उसके फलस्वरूप सर्वत्र सुखचैन की बासुरी बजने लगे।"

१ जब तक महाराणा साहब का शासन गुलाबपुरा मे रहा, तब तक यह जीवहिंसा प्रतिबन्ध सुचारु रूप से जारी रहा। —सम्पादक

एक दिन आप शौचक्रिया के लिए जा रहे थे। प्रात.काल का समय था। ज्यो ही आप पानी के नाले पर बने हुए पुल (एनीकट) पर से गुजरे, आपने वहाँ के पुलिस के थानेदार को जलजन्तुओ का शिकार करते हुए देखा। आपने फौरन थानेदार के पास जाकर उसे सम्बोधित करते हुए कहा "थानेदार जी! आप पुलिस थानेदार हैं! पुलिस तो कानूनरक्षा के लिए सरकार द्वारा तैनात की जाती है। उसका कर्तव्य होता है जनता से कानून पलवाना, उसमे भी आप तो पुलिस-अधिकारी हैं, आपको स्वय तो कानून का पालन करना ही चाहिए। मगर आप स्वयं कानून तोड रहे हैं। इस दृष्टि से भी कि यहाँ किसी भी जीव के वध की जो निषेधाज्ञा जारी है, उसका पालन आपको करना चाहिए। दूसरे, मानव और उसमे भी अधिकारी पुरुष होने के नाते भी आपको अपनी स्वादपूर्ति अथवा प्राणधारण के लिए दूसरे जानवरो का वध करना किसी भी प्रकार योग्य नही है। जब खाने-पीने के लिए इतने-इतने शाकाहारी साधन हैं, तब इन निर्दोष मूक पशुओ की गर्दन पर प्रहार करना और इस शिकार से अपनी आजीविका चलाना या अपना पेट भरना बिलकुल नाजायज है, अन्याययुक्त है। आप दूसरो के लिए इन्साफ करते हैं तो अपने लिए भी इन्साफ करिए।"

गुरुदेव की अहिंसागर्भित वाणी का थानेदार पर अचूक असर हुआ। वह अपने सामने एक महात्मा को खड़े देख सहसा सहम गया। अपनी झेंप मिटाने के लिए थानेदार ने पहले तो दूसरे तर्क प्रस्तुत किए, लेकिन गुरुदेव श्री की अकाट्य युक्तियो के आगे तर्क के तरकश छिन्न-भिन्न हो गए। थानेदार जी ने विनम्र होकर अपनी गलती स्वीकार की और जब गुरुदेव ने उसे प्रण लेने को कहा तो उसने सदा के लिए शिकार न खेलने का नियम ले लिया।

हमारे चरितनायकजी इतना ही करके नही बैठ गए, अपितु उन्होंने दूरदर्शिता पूर्वक सोचा—आज तो हमारे कहने से थानेदार श्री ने शिकार करने का त्याग कर दिया, लेकिन भविष्य मे और कोई अन्य अधिकारी जल जन्तुओ का शिकार करने को ललचा सकता है। बेचारी जनता उस अन्य अधिकारी के सामने भीगी बिल्ली बनकर चुपचाप इस अन्याय को सह लेगी, वह जरा भी विरोध नही कर सकेगी। अत सदा के लिए और सभी के लिए जलाशय आदि सार्वजनिक स्थलो पर हिंसा बद कराने हेतु तत्कालीन मसूदा राव साहब से कहा "रावसाहब! मेरी एक तुच्छ मांग है, क्या आप मुझे थोडी-सी भिक्षा देंगे?"

मसूदा राव "गुरुदेव! फरमाइए न क्या आज्ञा है? जो भी यथोचित भिक्षा आप चाहेंगे, वह अवश्य दी जाएगी।"

चरितनायक जी "मैं यही चाहता हूँ कि जलाशय आदि सार्वजनिक स्थानो पर किसी भी जीव की हिंसा न हो।"

मसूदाराव "ऐसी निषेधाज्ञा तो मैंने पहले से ही जारी कर रखी है, गुरुदेव! और कोई आज्ञा हो तो फरमाइए।"

चरितनायक "हिंसानिषेधाज्ञा का आपने कानून तो बना दिया होगा, लेकिन कानून तो कानूनकायदो की पोथियो मे लिखा है न ! आम आदमी को क्या पता कि कौन-सा कानून किस अपराध को रोकने के लिए बना हुआ है, उसका भग करने के अपराध मे वह दण्डित किया जा सकता है। अत आप द्वारा उन-उन जलाशय आदि सार्वजनिक स्थलो पर सरकारी निषेधाज्ञा का पट्टा लगा होना चाहिए ताकि प्रत्येक आदमी उसे पढकर या सुनकर उस कानून को और उसके भग के दण्ड को भी जान-समझ सके।"

मसूदाराव साहब ने आपकी बात को स्वीकार करते हुए कहा "हाँ, आपकी बात यथार्थ है कि उक्त कानून का पालन अनभिज्ञ जनता से कराने के लिए निषेधाज्ञा पट्ट लगाना अनिवार्य है। मैं आज ही आपके इस उपदेश का पालन करूगा और जगह-जगह जीव-वध के खिलाफ निषेधाज्ञापट्ट लगवा दूंगा।"

आपके प्रभाव से मसूदाराव साहब ने मसूदा-ठिकाने (रियासत) के सभी जलाशय आदि सार्वजनिक स्थानो पर जीवहिंसा न करने का पट्टा लगवाने की व्यवस्था कर दी।

यह था अहिंसा के पालन करने के साथ कराने का एव तदनुकूल अहिंसानुमोदक वातावरण बनाने का आप का अद्भुत प्रयत्न !

अहिंसा के सम्बन्ध मे सूक्ष्म-भ्रान्तियाँ और उनका निवारण

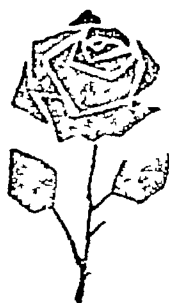
अक्सर लोग प्रत्यक्ष होने वाली हिंसा को ही हिंसा समझते हैं, परोक्ष मे चाहे उससे भी भयकर हिंसा हुई हो, वे यही मानते हैं कि यह हिंसा हमने नही की है, इसलिए इस हिंसा का पाप हमे क्यो लगेगा ? यह भ्रान्ति वर्षों से समाज मे घर किये हुए थी। इस मान्यता के फलस्वरूप बहुत से परोक्ष हिंसाकाण्ड फैले। जैसे कई लोग यह मानते हैं कि हमे तो रेशमी कपडा सीधा बना बनाया मिलता है। इसके बनाने मे शहतूत के कीडो को उबाल कर उनकी हिंसा होती है, वह हमने (प्रत्यक्ष) नही की है। इसलिए इसके पहनने मे हमे हिंसा क्यो लगेगी ? हलवाई के यहाँ अविवेक के कारण अनेक जीव मिठाई बनाने मे मर जाते हैं, पर वहाँ बनी हुई मिठाई सीधे लाने मे पाप ही क्या है, जबकि घर पर विवेकपूर्वक मिठाई बनाने मे प्रत्यक्ष हिंसा है, तज्जन्य पाप है। इस प्रकार की भ्रान्त मान्यताए हिंसा के बारे मे प्रचलित थी। परन्तु प्रवर्तक श्री पन्नालाल जी महाराज हमेशा दीर्घदर्शी रहे, उन्होने इस पर शास्त्रीय दृष्टि से गहराई से विचार किया और निश्चित किया कि रेशमी वस्त्रो मे जो असख्य त्रस जीवो की हिंसा होती है, वह उस वस्त्र के पहनने वाले को भी अवश्य लगती है। वह यो कहकर छूट नही सकता कि मैंने तो हिंसा (प्रत्यक्ष मे) की ही नही है। इस कारण रेशमी वस्त्र, अल्पारम्भी श्रावक के लिए पहिनने योग्य नही है। यह बात उन्हे भलीभाति हृदयगम हो गई।

चरितनायकजी ने सवत् १९९२ के भीलवाडा चातुर्मास मे अपने प्रवचनो मे स्पष्ट उद्घोषणा की "रेशमी वस्त्र के निर्माण मे असख्य त्रस जीवो का सहार होता

है। और इस भयकर हिंसा के पाप से रेशमी वस्त्र पहिनने वाला बच नही सकता। अतः रेशमी वस्त्र अल्पारम्भी श्रमणोपासक के लिए कतई पहिनने लायक नहीं हैं। जिन्हें मेरे वचनो पर विश्वास है, प्रवचनो पर श्रद्धा है, वे यह नियम ले कि हम आज से रेशमी वस्त्र का कतई उपयोग नही करेगे।"

आपके अन्तर की गहराई से निकली हुई एव अनुभूति की आंच मे तपी हुई वाणी का श्रोताजनो पर अचूक प्रभाव पडा। तत्काल ही बहुत-से भाई बहनो ने आपसे रेशमी वस्त्रो का उपयोग न करने की प्रतिज्ञा ली।

यह थी अहिंसा के अग्रदूत मान्यवर प्रवर्तक मुनी श्री पन्नालाल जी महाराज के द्वारा अहिंसा-पालन की दूरदर्शिता-पूर्ण प्रेरणा ! अहिंसा की इस अपूर्व प्रेरणा ने जनता के हृदयो को झकझोर दिया और उसने परोक्षहिंसा के त्याग का ऐसा समा बांध दिया कि आसपास के सारे इलाके मे रेशमी वस्त्रो के त्याग की लहर फैल गई।



११

करुणा की पावन धारा

□

सत्पुरुषों की मन स्थिति का वर्णन करने वाली एक सूक्ति बहुत प्रसिद्ध है

वज्रादपि कठोराणि मृदूनि कुसुमादपि ।
लोकोत्तराणां चेतांसि को हि विज्ञातुमर्हति ।।

लोकोत्तर पुरुषों के हृदय को कौन पहचान सकता है ? उनका अन्त करण वज्र से भी अधिक कठोर होता है तो फूलो से अधिक कोमल भी। कोमलता और कठोरता का, मोम और पत्थर का विचित्र सगम महापुरुष के लोकोत्तर स्वरूप की एक अभिव्यक्ति है । वह स्वय के कष्टो मे, स्वय के जीवन मे आने वाली विपत्तियो और वेदनाओं मे वज्र-हृदय बनकर मुस्कराता रहता है **'सहिओ दुक्खमत्ताए पुट्ठो नो झझाए'** चारो ओर से दु खो से घिरा रहकर भी घबराता नही है, विचलित नही होता है। धैर्य की अग्नि मे कष्टो के खर-पतवार को जलाकर भस्म कर देता है। मगर पराया दु ख देखकर शीघ्र ही द्रवित हो जाते हैं।

आगमो मे करुणाशील साधक का नाम ही **'दविए'** द्रविक बताया है। दूसरे के दुख: से द्रवित होने वाला, दूसरो का कष्ट देखकर पसीजने वाला करुणावतार सत्पुरुष ही मोम-सा मुलायम होता है। वह चाहता है

दर्द जिस दिल मे हो उस दिल की दवा बन जाऊँ ।
दु.ख मे हिलते हुए लब की दुआ बन जाऊँ ।।

और इसी ध्येय की पूर्ति मे उसका सम्पूर्ण जीवन निछावर हो जाता है। वह न सिर्फ मानव जाति के कष्टो से ही द्रवित होता है किन्तु सम्पूर्ण-प्राणि जगत के प्रति, चर-अचर के प्रति उसके अन्त करण मे करुणा की पावन-धारा सतत प्रवाहित रहती है।

भगवान् नेमिनाथ ने जब पशुओ का करुण-क्रन्दन सुना तो उनका अन्तर हृदय करुणोद्वेलित होकर मचल उठा था। जीवन के सुख-भोग की समस्त आकाक्षाओ को

त्याग कर मूक पशुओ की दया के लिए अनव्याहे ही वापस मुड गये। करुणा की यह अनन्त धारा भारतीय संत मानस मे सदा-सदा से बहती आई है।

गुरुवर्य श्री पन्नालाल जी महाराज करुणा के साक्षात् देवता थे। पिछली घटनाओं मे उनकी उत्कट सहिष्णुता और साहसिकता की एक झलक हम देख चुके हैं। किन्तु यह भी एक विचित्र सयोग है कि वे जितने बड़े वीर और कठोर (कष्टसहिष्णु) थे उससे भी अधिक पर-दुख कातर थे। उनकी अनन्त आत्मीय करुणा ने ही उन्हे समाज सुधार की ओर गतिशील बनाया, मृत्युभोज जैसी क्रूर कुप्रथाओः से प्रताडित हजारो अबलाओ के आँसुओ ने, और बलिवेदी पर तड़फडाकर प्राण त्यागते मूक-पशुओ की पुकार ने उन्हे अहिंसा और जीव दया के विविध पहलुओ पर सोचने को और कठोर कदम उठाने को विवश किया, जिसका वर्णन भी पाठक पढ चुके है। यहाँ पर उनकी सहस्रमुखी करुणाधारा का ही एक प्रवाह, एक स्रोत उमडता हुआ दिखाई देता है, जो यदुकुल दिवाकर भगवान नेमिनाथ की अनन्त स्रोतवाहिनी करुणा की स्मृति को सजीव करा देती है।

पुजारियो की हिंसावृत्ति में परिवर्तन

वि० स० १९८४ मे गुरुदेव श्री धूलचन्द्र जी महाराज के साथ आपने भीलवाडा चातुर्मास सम्पन्न किया। चातुर्मास के पश्चात् बनेड़ा, शाहपुरा आदि क्षेत्रो मे विहार करते हुए आप धनोप पधारे। फागुन का महीना था। मीठी-मीठी सर्दी। सुहावना मौसम। खेतो मे फसल लहलहा रही थी। कुओ के पानी से सीची जाने वाली भूमि दूर-दूर तक हरी सुनहरी साडी पहने हुए मस्ती मे झूम रही थी।

घनोप से कुछ ही दूर सघन वृक्ष कुँजो के बीच 'माताजी' का प्रसिद्ध मन्दिर था, जहाँ पर दूर-दूर के हजारो भक्त अपनी मनोतिया पूरी करने आते हैं। वह वृक्ष निकुंज 'माताजी की वनी 'के नाम से प्रसिद्ध है।

एक दिन प्रात.काल के समय गुरुदेव श्री पन्नालाल जी महाराज शौच निवृत्ति हेतु माताजी की वनी की ओर चले गए। वनी के रेत के छोटे-छोटे टीले सोने की पहाडियो जैसे लगते थे। बीच-बीच मे छोटी-छोटी पहाडी घाटियाँ भी थी। उनके बीच आम, नीम आदि वृक्षो के कुंज बड़े ही मनभावने लग रहे थे। पक्षियो के चहचहाने के मधुर सगीत से सारी वनी गूज रही थी। शीतल मंद पवन बह रहा था। टीलो की चोटियो पर चढकर देखने से आस-पास दूर-दूर तक छोटे-छोटे खेत, उनमे चलते कुँए, छोटे-छोटे गाँव सागर के बीच हरे-भरे टापुओ की तरह बड़े मनोहर दीख रहे थे। प्रकृति की इस सुरम्य स्थली मे साधक के मन मे ध्यानस्थ होकर साधना करने की प्रेरणा जगती थी। वातावरण मे एक अजीब शान्ति और सुषमा का अनुभव होता था।

वृक्षो के झुर-मुट के बीच भोले-भाले हरिण तथा वन्य पशु पक्षी निर्भय हो मस्ती के साथ क्रीड़ा करते हुए बड़े भले लगते थे। उनकी मस्ती देखकर प्रतीत होता था कि वे इस क्षेत्र मे बडी स्वतन्त्रता और निर्भयता के साथ विचरण कर रहे हैं। साधको

की प्रिय और माताजी की अधिष्ठान स्थली मे भय और परतन्त्रता की आशका हो भी क्यो ?

गुरुदेव श्री उस रमणीय वनस्थली मे से होकर सघन वृक्ष कुंजों के मध्य मे स्थित माता जी के मन्दिर के निकट चले गये। वहाँ उपस्थित भक्तो ने बताया। "माताजी का यह मन्दिर बहुत प्राचीन और चमत्कारी है। इसमे पाँच भव्य प्रतिमाए हैं। जिन पर ढेर सारी फूल-पत्तिया चढी रहती हैं। माताजी की प्रसन्नता से कार्यसिद्धि हो जाती हैं।"

गुरुदेव ने पूछा माता जी को प्रसन्न कैसे करते हैं और प्रसन्न होने का पता कैसे लगता है ?

लोगो ने बताया "भक्तजन अपनी मनोकामना पूर्ति के लिये खोपरा-मिठाई आदि प्रसाद चढाते हैं। यदि प्रसाद पर माताजी के शरीर पर का फूल या पत्ती गिर जाती है तो प्रसाद चढाने वाला यह समझ लेता है कि कार्य सिद्धि निश्चित होगी। प्रसाद पर फूल-पत्ती न गिरने पर समझा जाता है कि कार्य सिद्ध न होगा। इस प्रकार कार्य सिद्धि के इच्छुक व्यक्तियो का यहाँ दिन भर तांता लगा रहता है।"

गुरुदेव मन्दिर के भीतर गये और वहाँ माता जी के पुजारी से भेंट हो गई। पुजारी ने गुरुदेव का स्वागत किया। गुरुदेव ने कहा पुजारी जी! इस वनी मे पशु-पक्षी बड़ी मस्ती के साथ और निर्भय होकर घूम रहे है ? इतनी आजादी और आनन्द का वातावरण क्वचित् ही देखने को मिलता है। यह बताइए कि यह वनी किसकी है ? क्या इसमे पशु-पक्षियो को शिकार करने की कोई मनाही नही है ? क्या राज्य की ओर से इसमे पशु पक्षी वध पर प्रतिबन्ध लगा हुआ है ?"

पुजारी "महाराज! यह वनी माता जी की है, राज्य की ओर से यह सुरक्षित क्षेत्र घोषित किया हुआ है। यहाँ पशु-पक्षियो पर गोली चलाना, उनका शिकार करना तो बहुत बडी बात है, किसी हरे वृक्ष की शाखा तक को भी काटना निषिद्ध है। यह माता जी की वनस्थली पशु-पक्षियो के लिए माता की गोद के समान है। इसीलिए ये चरिंदे परिंदे निर्भय होकर विचर रहे हैं। सभी को माता जी का अभयदान प्राप्त है।

अभयदान की बात सुनकर गुरुदेव के मन पर एक सहज प्रसन्नता चमक उठी। अभयदान और जीव दया के लिये सर्वस्व निछावर करने वाले करुणार्द्र व्यक्ति जब जीवदया की घोषणा सुनते हैं तो उनका मन-मयूर उसी प्रकार नाच उठता है जैसे सघन घनाघन का गर्जारव सुनकर वन मे मोर नाचता है। गुरुदेव श्री एक गहरे उल्लास के साथ पुजारी जी की ओर देखने लगे और बोले "वाह! यह तो आपने बड़ा ही अच्छा कार्य करवाया है।" किन्तु प्रसन्नता की यह लहर अधिक समय तक नही टिक सकी। गुरुदेव ने थोडा-सा मुडकर देखा तो मन्दिर के निचले भाग पर एक सफेद पत्थर पर उनकी दृष्टि टिक गई। वे यह देखकर स्तम्भित रह गये कि वृक्षो की हरी डाली काटना भी जहाँ अपराध है उस मन्दिर के एक पत्थर पर रक्त के छीटे बिखरे हुए हैं।

पत्थर रक्त-रंजित सा हो रहा है। वे क्षणभर के लिए विचारों में गहरे डूब गये अभयदात्री माता के मन्दिर में ठीक उसकी मूर्ति के सामने यह रक्त की धारा! उन्होंने पुजारी से पूछा "पुजारी जी! यह पत्थर खून से कैसे सना है?"

पुजारी "महाराज! यह तो भैरव का स्थान है। यहाँ पर भैंसों और बकरों की बलि चढाई जाती है, उनका खून यहाँ गिरता है, इसी कारण पत्थर जरा लाल हो गया है..।"

गुरुदेव ने बडे दु:ख के साथ कहा यह कैसी विडम्बना है? कितनी विचित्र बात है? एक ओर तो माता जी की बनी में पशु-पक्षियों को अभयदान मिला हुआ है, वृक्ष की हरी शाखा तक नही काटी जाती और दूसरी ओर उसी माता के मन्दिर में, उसी अभय की अधिष्ठात्री देवी के समक्ष भैंसों और बकरों के सिर काटे जाते हैं। मूक पशुओं की यह निर्मम बलि! पुजारी जी! आप इस नृशंस हत्याकाण्ड को बन्द क्यों नहीं करवा देते?

पुजारी ने लापरवाही के साथ ही कहा महाराज! यह तो पीढियों से चला आ रहा है। बलिप्रथा आज की नही, वर्षों से चली आ रही है। इसे बन्द करने का अर्थ है माताजी और भैरोंजी को रुष्ट करना। यह हम से कैसे हो सकता है?

गुरुदेव पुजारी जी! ऐसी तो कोई बात नहीं है कि जिसे मनुष्य चाहे और छोड न सके। खैर, यह बताइए कि आप यह बलि कैसे देते हैं?

पुजारी बलि चढाने वाला बलि के पशु को मन्दिर के पास ले आता है। फिर पुजारी उस पर माता जी के चरणामृत का छींटा डालता है। और फिर एक झटके से उसका सिर काट कर इस पत्थर पर रखकर भैरोंजी को चढाता है। चरणामृत का छींटा देने वाले पुजारी को बकरे के दो पैसे और भैंसे के चार पैसे (एक आना) मिलता है।

पुजारी जी! यदि बलि के पशु पर चरणामृत न छिडका जाये तो क्या वह बलि वैध (पवित्र) नही मानी जाती? गुरुदेव ने पूछा।

पुजारी नही!

गुरुदेव तो आप चरणामृत छिडकना बन्द क्यों नहीं कर देते? ताकि बलि अपने आप बंद हो जाये।

पुजारी हम ऐसा नहीं कर सकते! माताजी का यही हुक्म है।

गुरुदेव आप क्या ब्राह्मण हैं?

पुजारी हाँ, माताजी के सभी पुजारी ब्राह्मण ही होते हैं।

गुरुदेव आप स्वयं अपने हाथ से पशु की बलि क्यों नही चढाते?

पुजारी नहीं! यह हमारा कर्त्तव्य नहीं है।

गुरुदेव जिसे आप स्वयं अपना कर्त्तव्य नही मानते अर्थात् अकर्त्तव्य समझते हैं उसे बंद करने में आपको क्या हानि है?

गुरुदेव श्री की पैनी तर्कों से पुजारीजी चिढ गए और बोले आपको हमारी इन बातो से क्या लेना-देना है ? हमे तो अपने पूर्वजो के आदेश पर चलना है, जैसा वे करते आये वैसा ही हमे करना है।

गुरुदेव ने देख लिया, ये लकीर के फकीर कोई भी ऐसा कार्य नही कर सकते जिससे इनके स्वार्थों की हानि होती हो। फिर स्वार्थ भी तो कितना तुच्छ ? प्रति बकरे के दो पैसे ? दो पैसे के लिए ये ब्राह्मण इतना क्रूर कर्म भी नही छोड सकते ? मनुष्य की स्वार्थान्ध-वृत्ति पर उन्हे बडी ग्लानि हुई। साथ ही उन्हे यह अनुभव हुआ कि पुरानी गलत परम्पराओ को तोडने के लिए साहस चाहिये। सघर्ष करने की हिम्मत और स्वार्थो का बलिदान देने की उमग ही मनुष्य को क्राति के पथ पर अग्रसर कर सकती है। कमजोर, स्वार्थी और मूर्ख व्यक्ति सदा लीक पर ही चलते हैं। कहा है—

लीक लीक तीनो चले कायर कुलच्छ कपूत।
लीक छांड़ि तीनो चले सायर सिंह सपूत।

गुरुदेव ने वही दृढसकल्प कर लिया इस बलि-प्रथा को बद करा कर ही चैन की सास लूँगा। इस प्रकार पशु-हिंसा जन्य-व्यथा एव उसे बद कराने के उत्प सकल्प की उमग एक साथ हृदय को करुण एव वीर रस से आप्लावित करने लगी।

गुरुदेव वनस्थली से लौट कर वापस धनोप के उपाश्रय मे आ पहुँचे। उन्हे प्रवचन करना था—और आज प्रवचन का विषय भी उनके मस्तिष्क मे एक नया जोश पैदा कर रहा था। सभा-स्थल पर पहुँच कर उन्होने सर्वप्रथम आज का ताजा प्रसग छेडा। अहिंसा की महिमा बता कर देवी-दवता के नाम पर होने वाली हिसा और बलि-प्रथा को बंद करने के लिए उन्होने जनता को जगाया।

मुनिश्री के ओजस्वी प्रवचन से जनमत जाग उठा। बलि-प्रथा बद करने के लिए सभी ने सकल्प किया। नगर के प्रमुख प्रभावशाली व्यक्ति एकत्र हुए और सभी ने मुनिश्री के चरणो मे बैठकर यह सकल्प दुहराया—"हम माताजी के नाम पर होने वाली पशु-बलि सर्वथा बद कर देंगे।"

पुजारीजी को बुलाया गया, उन्हे दया और करुणा की बात समझाई, मानवता की बुद्धि भी जगाने का प्रयत्न हुआ, पर जैसे उनका दिल तो पत्थर का था। उनका एक ही स्वर था "बलि बद कर देने से जगदम्बा माता रुष्ट हो जायेगी और आप सबका अनिष्ट कर देगी।"

समझदार जनता ने पुजारी की धमकी का बडा शालीन उत्तर दिया "सच्ची माता कभी अपने पुत्रो पर रुष्ट नही होती और न अपनी सतान का ही अनिष्ट करती है, माताजी की दृष्टि मे समस्त पशु-पक्षी उनकी सतान है, और माँ अपनी सतान का भोग कभी नही चाहती! जगदम्बा अर्थात् समस्त जगत की अम्बा माता—क्या कभी अपने पुत्रो का भक्ष लेगी! नही! नही! यह सब तुम्हारा ढोग है। पाखण्ड है। जगदम्बा के नाम पर तुम्हारा स्वार्थ है। इसे बन्द करो।"

जनता की भावना मे रोष भी था और जोश भी तथा वलि वद करने का तीव्र आग्रह! किन्तु पुजारी फिर भी टस से मस नही हुआ। उसने अपनी हठ नही छोडी। इस कारण जनता ने रुष्ट होकर उसके हाथ लेन-देन आदि व्यवहार वद करने की घोषणा की। गुरुदेव श्री को पुजारी के प्रति कुछ करुणा आई इसलिए उन्होने ऐसा कठोर कदम न उठाने की सलाह दी। जनता ने वताया हमने इनका वहिष्कार नही, किन्तु असहयोग किया है, जो कि शुद्ध अहिसा का मार्ग है। पुजारी ने जादू-टोने और मूठ (मारक मत्र) आदि का प्रयोग कर जनता को आतकित करने का भय वताया, किन्तु गुरुदेव श्री ने इन अध-विश्वास मूलक भयो से जनता को सर्वथा अभय वना दिया। वास्तव मे जनमत तो धर्म के पक्ष मे था और "**धर्मो रक्षति रक्षित**' के अनुसार धर्म की रक्षा करने वाले स्वय सुरक्षित थे।

जनता और पुजारियो के वीच कुछ तनाव का वातावरण चलता रहा। आखिर इस वात पर चिन्तन किया गया कि पुजारी, जो जन्मना अहिसा-प्रेमी व्राह्मण है, इस हिसा-मूलक-प्रथा को क्यो पकड़े बैठा है? वहाँ के एक प्रमुख श्रावक श्री भूरालालजी लोढा ने जो अधिकाश पुजारियो के वोहरा थे इस वात की खोजवीन शुरू की। वे एक दिन गुरुदेव के पास आये। वातचीत के प्रसग मे वताया पुजारियो के मन मे दो वातें हैं। प्रथम प्रत्येक वकरे की वलि के दो पैसे और भैंसे की वलि के एक आना पुजारियो को मिलता है, उन्हे प्रति दिन दो-चार आने मिल जाते हैं जिसका मूल्य पाच सेर गेहूँ के वरावर होता है। वलि वद होने से यह हानि उन्हे उठानी पड़ेगी। दूसरी वात वलिदान करने वाले राजा-महाराजा आदि नाराज भी होंगे और उनकी ओर से चढावा जो मिलता है वह भी वद हो जायेगा।

मानव-मन की दुर्वलता को पहचानने वाले गुरुदेव तत्काल इस चीज को जान-गए कि लोभ ही पाप का वाप है। पुजारी अपने लोभ के कारण ही इस प्रथा को चालू रखना चाहते हैं। उन्होंने पहले शाहपुरा के राजाजी से इस विषय मे वात की। वे भी वलि वद करने के लिए सहमत हो गए और इस वात के लिए भी तैयार हो गए कि पुजारी यदि वलि का पैसा लेना वद कर देगे तो उन्हे राज्य की ओर से प्रतिमास एक निश्चित रकम का मनीआर्डर नियमित मिलता रहेगा।

इस भूमिका के वाद गुरुदेव श्री ने पुजारियो को वुलाया। "वलि का पैसा हिसा का प्राणिवध का पैसा है। यह महा अनर्थ का कारण है" आदि विषयो पर गभीरता के साथ उन्हे समझाया गया। पुजारियो ने जव प्रतिदिन होने वाली आय-हानि का जिक्र किया तो गुरुदेव ने शाहपुरा राजाजी का प्रस्ताव उनके समक्ष रख दिया। वस, 'नेको और पूछ-पूछ' वाली वात हुई। पुजारी वर्ग स्वय भी मन मे इस क्रूर कर्म से खिन्न था और इस कसाई के पैसे से भी प्रसन्न नही था। किन्तु 'मुँह लगा खून छूटता नहीं' जैसी वात थी। अव गुरुदेव श्री का प्रस्ताव आने पर वे प्रसन्नतापूर्वक वलि वद करने को प्रस्तुत हो गये। पुजारियो के सहर्ष निर्णय से नगर की जनता मे तो खुशी की

लहर दौड़नी ही थी, किन्तु हजारो-लाखो उन निरपराध जीवो की आत्मा मे भी आनन्दानुभूति हुई होगी जिनका वध सदा के लिए बद हो गया। इसीलिए तो श्रमण-सतो को निष्कारण पर-उपकारी और जगत् बाधव कहा गया है। **'णवणीय तुल्लहियया'** नवनीत के समान उनका हृदय अत्यत कोमल होता है। करुणा-रस से सदा आर्द्र रहता है। वे जगत जीवो को अभयदान देने के लिए प्राणो को भी हथेली मे ले लेते है। यही श्रमण-विरुद गुरुदेव श्री पन्नालालजी महाराज के जीवन मे साकार हुआ था। उनकी करुणा की पावन धारा जिधर भी बही, जीव जगत मे आनन्द और उल्लास की लहर पैदा कर गई।

पशुबलि के विरुद्ध करुणा प्रदीप्त हो उठी

गुरुदेव श्री पन्नालाल जी महाराज धर्म के नाम पर या देवी-देवताओ के समक्ष होने वाले मूक पशुओ की बलि के खिलाफ सदा से बगावत करते रहे। उनकी यह खिलाफत अपने किसी स्वार्थ से या प्रतिष्ठा से प्रेरित नही थी। वह सिर्फ प्राणिमात्र के प्रति करुणा को लेकर थी। मनुष्य की रक्षा जैसे अनिवार्य है, वैसे ही मूक पशुओ की रक्षा भी अनिवार्य थी इस दृष्टि से अपने सामने दीन-हीन मूक पशुओ की हत्या और वह भी धर्म या देवी देवताओ के नाम पर होती देख कर किस करुणाशील अहिंसा के देवता का हृदय क्षुब्ध नही होगा ? यही कारण है कि अज्ञानतावश होने वाली पशुबलि प्रथा को देखकर गुरुदेव की करुणा प्रदीप्त हो उठी।

देवी-देवताओ के नाम पर बलि देने की प्रथा का प्रारभ कब हुआ, क्यो हुआ ? यह एक खोज का विषय हो सकता है, किन्तु जिस किसी ने जब कभी इसे पशु बलि के रूप मे प्रचारित किया, देवता के नाम पर निरीह मूक पशु की हिंसा करने का रूप दिया तब उसने मानवता के साथ ही नही, किन्तु सपूर्ण जीव जाति के साथ एक बहुत बडा षड्यत्र रचा, एक निर्दय क्रूर परम्परा को जन्म दिया यह कहा जा सकता है। भगवान महावीर के युग मे पशुबलि और नर-बलि तक का खुलमखुल्ला प्रचार था, उनकी अहिंसा-करुणामूलक देशना से और यज्ञ मे पशु-हिंसा विरोधी सशक्त प्रचार से इस प्रथा पर गहरा प्रतिबध लग गया था। पशु हिंसा के विरुद्ध मे व्यापक जन-मानस जागृत हो गया था। किन्तु उनके परिनिर्वाण के पश्चात फिर से यज्ञो मे, देवताओ को प्रसन्न करने के नाम पर स्वार्थान्ध धर्म-गुरु, पुजारी और वासना लोलुप महत वर्ग इस प्रथा के जोरदार प्रचार मे जुट गये। अज्ञान से हिंसा बढती है, इस सिद्धान्त के अनुसार अज्ञान और अधविश्वासी भारतीय प्रजा दिनोदिन बलिप्रथा की शिकार होती गई। यज्ञ मे, कुलदेवी के लिए कुल देवता के लिए भैसा, बकरा, भेड आदि की बलि चढाने की प्रथा क्षत्रिय राजपूतो मे तथा अन्य जातियो मे जोर-शोर से घुसी हुई थी। खासकर पर्व दिनो, त्यौहारो और नवरात्र जैसे अवसरो पर तो मूक पशुओ के रक्त से धरतीमाता का हृदय रक्त-रजित हो उठता था। कितना क्रूर ! कितना निर्दय व्यवहार था यह मानव का अपनी निकटतम उपकारी पशु जाति के प्रति !

पर चूंकि क्षत्रिय शासक जाति थी; और वह इसे धार्मिक कृत्य मानती थी। इसलिए इस प्रथा के विरुद्ध आवाज उठाना भी एक गुनाह था। और वलि का विरोध करने वाले को स्वय की भी वलि देनी पडती, इसीलिए सामान्य रूप मे अहिंसा के अनुयायी जैन-वैष्णव भी मूक भाव से आँख वद कर यह हत्याकाड देख लेते। कोई तेजस्वी श्रमण इस प्रथा के विरुद्ध मे गर्जना करता तो वहुमत का वल, तथा शस्त्रवल उसे भी दवाने की कोशिश करता फिर भी आचार्य हेमचन्द्र जैसे महान आत्मवली श्रमणो ने मध्ययुग मे वलिप्रथा के विरुद्ध एक वातावरण अवश्य तैयार किया था, उनके उपदेश से प्रतिवुद्ध सम्राट कुमारपाल ने अपनी कुलदेवी के मदिर मे वलिप्रथा को सर्वथा वद भी कर दिया था। मुसलमान वादशाहो के जमाने मे कुछ प्रभावक आचार्यो ने पुन वलि-प्रथा तथा जीव-हिंसा के विरुद्ध प्रभावशाली आवाज उठाई थी, परिणामस्वरूप अनेक मुगलशासको ने समय-समय पर पशुहिंसा रोकने के फरमान निकाले थे। इनका तात्कालिक प्रभाव भी हुआ, पर स्थायीरूप से शासकीय आदेश कामयाव कम होते हैं। जनता ने जागृत होकर अपनी तरफ से पशुहिंसा त्याग दी हो ऐसे प्रसग कुछ विरले ही होते हैं। गुरुदेव श्री पन्नालाल जी महाराज के जीवन मे ऐसे भी प्रसग आये जव जनता ने प्रेरित होकर हिंसा का त्याग किया।

मुनिश्री पन्नालालजी जिस समय मे राजस्थान के अचलो मे घूमते थे उस समय तो अनेक जन-जातियो, क्षत्रियो एव अन्य जातियो मे पशुहिंसा, वलिप्रथा का वोल-वाला था। मुनिश्री समाज सुधार की अन्य प्रवृत्तियो मे जव क्रियाशील थे तव अचानक ही वलिप्रथा की ओर उनका ध्यान आकृष्ट हुआ। उनका ध्यान इस ओर खीचने वाला एक प्रसग इस प्रकार वना।

घटना वि स १९८२ की है। फाल्गुन मास मे विहार करते हुए मुनिश्री हिन्दुओ के प्रसिद्ध तीर्थक्षेत्र पुष्कर पधारे। पुष्कर मे जैन समाज वहुत कम है, किन्तु आपके प्रवचन प्राय सार्वजनिक होते थे, जैन-अजैन सभी उसमे समान रूप से रस लेते। वहाँ के पण्डे भी अच्छी सख्या मे आते थे। प्रतिदिन प्रवचन मे उपस्थिति वढती गई, तव जनता ने निवेदन किया पुष्कर के 'गउघाट' जैसे सार्वजनिक स्थान पर अपना प्रवचन फरमाइए।"

यह तो स्पष्ट ही हो चुका है कि मुनि श्री पन्नालाल जी महाराज एक स्पष्ट वक्ता, निर्भीक श्रमण थे। उनका स्वभाव उस वैद्य के समान था, जो रोगी को रुचिकर दवा देकर केवल उसके मन को प्रसन्न करने के वजाय, कटु परन्तु हितकारी दवा देकर स्वस्थ वनाने का प्रयत्न करते थे, फिर भले ही अरुचिकर क्यो न लगे। अपनी इसी वृत्ति के अनुसार यहाँ भी मुनिश्री जी ने धर्म एव गुरु का शास्त्र-सम्मत विवेचन प्रस्तुत किया जिसमे धर्म की अहिंसा प्रधानता का वर्णन कर गुरु की निस्पृहता एव सदाचार-परायणता का वर्णन किया। "'गुरु' नामधारी व्यक्ति का जीवन दर्पण की भाँति स्वच्छ व निर्मल होना चाहिए। उसमे दुराचार दुर्व्यसन का प्रवेश सपूर्ण समाज के लिए दूषण व चेपी रोग का कारण वन सकता है।"

मुनिश्री की यह स्पष्ट और सटीक उक्ति पण्डो को अखर गई। उन्हे लगा मुनि जी हम पर ही सीधी चोट कर रहे हैं। सभा के बीच मे ही एक पण्डा उठा, जो भंग के नशे मे धुत था, बोला। महाराज! हम पडे पीते हैं तो भंग ही, भैंसे तो नही मारते, फिर हम मे क्या बुराई हैं। आप मे कुछ शक्ति है, चमत्कार है तो जहाँ भैंसे मारे जाते हैं वहाँ जाकर वह हत्याकांड रुकवाइए।"

पडे ने भग के नशे मे भी बात कुछ इस ढंग से कही कि वह मुनिजी के मन को लग गई। उन्होने तुरन्त जानकारी चाही कि भैंसे कहाँ मारे जाते हैं? लोगो ने बताया। "यहाँ से एक मील दूर पर ही गनाहेड़ा नाम का गाँव है, वहाँ बहलोल जाति के रावतो का परिवार है। उनमे यह रिवाज है कि भैंसो के जितने पाड़े (भैंसे) होते हैं उन सबको माता जी की बलि चढा देते हैं।

बलि की यह बात सुनकर गुरुदेव श्री का करुणा-स्निग्ध मानस द्रवित हो उठा। उनका हृदय वज्र-सा कठोर था तो फूलो से भी अधिक कोमल था। मनुष्य क्या, पशु और पक्षी की आँखो मे भी आँसू देखना उनसे बर्दाश्त नही होता

किसी, का रंज देखूँ यह नहीं होगा मेरे दिल से।
नजर सैय्याद[1] को झपके तो कुछ कहदूं अनादिल[2] से।

वे इसी प्रकृति के थे। सभा मडप मे ही मुनिश्री ने हृदय मे वज्र-सकल्प कर लिया इस निर्मम हिंसा को रोकना चाहिए। आपने पण्डे से कहा "बधु! तुमने पाड़े बचाने की बात कही वह ठीक है, मैं गनाहेडा पहुँचकर भैंसो की बलि बद कराने का पूरा प्रयत्न करूँगा।"

मुनिश्री के अदम्य आत्मबल का परिचय पाकर सभा ने एक स्वर से जयध्वनि की। अनेक पडो ने भग आदि दुर्व्यसनो का त्याग किया।

मुनि श्री के मन मे अब एक बेचैनी अनुभव होने लगी। जब तक वे गनाहेडा मे भैंसो की बलिप्रथा बद न कराए, मन को शाति कैसे मिले? दूसरे ही दिन अपने साथी सतो को पुष्कर मे ही रखकर आप श्री अकेले ही गनाहेडा की तरफ प्रस्थान करने लगे। आपके साथ पुष्कर के कुछ प्रमुख उत्साही श्रावक भी चल पडे। गनाहेडा पहुँचकर गुरुदेव श्री माता जी के मन्दिर मे ही ठहरे। श्रावको ने रावत भाइयो को मुनिश्री के प्रवचन सुनने की प्रेरणा दी। मुनिश्री ने अपने प्रवचन मे माता के करुणा-मय स्वरूप का वर्णन करते हुए कहा

माता तो वह है जो अपनी सन्तान का पालन-पोषण-सवर्धन करे। उसकी रक्षा करे। वह अपनी सतान को अपने सामने मरते देखकर दुखी होती है। मनुष्य की तरह पशु भी माता जी की सतान है, भैंसे की माता जी के सामने बलि चढाने से माता जी

१ शिकारी २ बुलबुल

प्रसन्न नही होती, अपितु उसे दु:ख ही होता है। अत माता जी के भक्तो का कर्तव्य है कि वे इस क्रूर वलि-प्रथा को वद करे।"

मुनिश्री ने इस प्रकार अहिंसा करुणा आदि का महत्व वताकर वलि-प्रथा को वद करने की हृदयग्राही शिक्षा दी। गुरुदेव श्री के उपदेश से अनेक रावत भाइयो का हृदय वदल गया और वे इसके लिए सहमत हो गये।

गनाहेडा मे एक भगवा वेशधारी महात्मा भी रहते थे जो स्वय को रावतो का कुलगुरु वताते थे। उन्हे जव मुनिश्री के आगमन का और उनके उपदेश का पता चला तो वे भी अपने भक्तो मे विरोधी प्रचार करने लगे। भोले भक्तो को एकत्र कर उन्होने कहा देवी को वलि चढाना रावतो का परम्परागत कुलाचार है, यदि तुम लोग किसी के वहकावे मे आकर इस प्रथा को वद कर दोगे तो माता जी कुपित हो जायेंगी, तुम्हारा सर्वनाश कर देंगी।।"

कुलगुरु की कुयुक्ति से भोले ग्राम्य लोगो मे भय व आतक का वातावरण छा गया। मुनिश्री जी के करुणा-प्रधान, उपदेश का जो असर हुआ था, वह उनकी कुयुक्तियो से दव गया। इधर मुनिश्री ने अपनी प्रेरणा चालू रखी और उधर कुलगुरु अपना आतक वरावर फैलाता रहा। जव रावत भाइयो की असमजस दशा का मुनिश्री का पता चला और कुलगुरु की चालवाजी का भडाफोड हुआ तो उन्होंने सकल्प किया अव तो इस कुप्रथा को वद कराके ही यहाँ से विहार करूँगा। माता जी के मन्दिर मे पद्मासन लगाकर मुनिश्री दृढसंकल्प के साथ वैठ गये "वलि वद होने पर ही यहाँ से उठना है।"

एक दिन वीत गया, दूसरा दिन भी वीता, तीसरा दिन भी आया, मध्याह्न होगया। मुनिश्री पद्मासन लगाये निराहार वैठे थे। पर समस्या ज्यो की त्यो उलझी हुई थी। रावत भाइयो का दिल मुनिश्री के उपदेश से प्रभावित हो चुका था, वे वलि-प्रथा को वद करना चाहते थे, पर कुलगुरु के भय से हिचकिचा रहे थे। तीसरे दिन मध्याह्न मे मुनिश्री ने वावाजी को अपने पास वुलाया। गाँव मे उसका काफी आतक था। लोगो ने कहा "वावा से आप मत अडिए। वह कई प्रकार के मत्र-तंत्र जानता है। जादू टोना करता है मूठ[1] भी चलाना जानता है।"

गुरुदेव श्री तो सर्वथा अभय थे। उन्होने गभीर होकर कहा "वीर की सतान कभी कायर नही होती। जिसका देव अरिहन्त है, उसका 'अरि' कौन हैं? फिर ऐसी मलिन और क्षुद्र-विद्याओ से साधुओ को क्या भय है?

मुनि श्री ने स्वयं ही उस वावा को आवाज दी। उनके सम्वोधन मे एक प्रकार की दहाड-सी थी। वावा भीगी विल्ली की तरह चुपचाप वहाँ आया और सामने खडा होकर कहने लगा—"क्या कहते हो?"

१ शत्रु को मारने के लिए मन्त्रित वाण्य फेंकने की एक मलिन विद्या-शक्ति।

गुरुदेव ने मधुर शब्दों मे कहा "मैं तुम्हारे यहाँ अतिथि आया हूँ। अतिथि-सत्कार भारतीय संस्कृति का मुख्य रूप है। तुम्हे मालूम है?"

बाबा "जी हा ! फरमाइये ! मैं आपका क्या आतिथ्य करूँ?"

गुरुदेव मैं जिस कार्य को सम्पन्न करने आया हूँ, उसमे सहयोग देना ही आपका आतिथ्य मानूँगा।"

बाबा—"आप किस कार्य के लिए यहाँ आये हैं?"

गुरुदेव माताजी के यहाँ पर जो पशु-बलि दी जाती है, मैं उसे बद करवाना चाहता हूँ, क्योकि कोई भी धर्म हिंसा को उचित नही मानता। जीव-दया ही परम-धर्म है। जीव-दया के प्रसार मे और पशु-हिंसा को रोकने मे मैं आपका सहयोग चाहता हूँ। रावत-बधुओ पर आपका प्रभाव है। आप अपने प्रभाव का उपयोग कर इस कार्य को पूर्ण करवाइए।"

बाबा "मैं भी इन्हे यही समझा रहा हूँ?"

गुरुदेव—"यह बात आप हृदय से कह रहे हैं, या केवल मुंह से?"

बाबा—"केवल मुँह से ! हृदय से तो मैं यह चाहता हूँ कि बलि-प्रथा सदा चालू रहनी चाहिए। मेरा वश चले तो मैं इसे कदापि बद नही होने दूँ?"

गुरुदेव "क्या तुम बलि देना अच्छा मानते हो?"

बाबा "हाँ।"

गुरुदेव "क्यो?"

बाबा "बलि-प्रथा प्राचीन काल से चली आ रही है। इससे देवता प्रसन्न होते हैं। इसलिए बहुत प्राचीन काल मे लोग भैसो की बलि देते थे। जब भैंसे मँहगे मिलने लगे तो लोग देवता को नारियल चढाने लगे। यह भैंसे का ही प्रतीक है उसके दो आँखें, उनके बीच नाक और मुह होता है। नारियल भैसो की बलि का ही प्रतीक है। यदि आप बलि-प्रथा बंद करवाना चाहते हैं तो नारियल चढाना भी बद करवाइए, अन्यथा यह प्रथा बद नही हो सकती।"

गुरुदेव "यदि यहा उपस्थित पुष्कर के लोग नारियल चढाना बन्द कर दें तो ठीक है।"

बाबा नही ! सारे ससार के लोग नारियल चढाना बन्द करेगे, तभी बलि-प्रथा बन्द होगी।"

गुरुदेव ने जरा उच्च स्वर से कहा "यह तो ऐसी ही बात हुई, न नौ-मन तेल होगा न राधा नाचेगी।"

बाबा "हाँ, यही तो बात है।

गुरुदेव—"बाबा ! तुम भ्रांति मे हो। नारियल के साथ भैंसे की तुलना करना और उसे भैंसे की आकृति का मानना सर्वथा अज्ञान है, यह गलत है। भोले-भाले लोगो को इस प्रकार गुमराह करना ठीक नही है। इसमें तुम्हारा कुछ भी स्वार्थ हो, किन्तु मूक पशुओ की हत्या माताजी के नाम पर कभी नही होनी चाहिए

बाबा भी जरा तैश मे आकर बोला "होनी चाहिए ! होगी ! बलि बंद नही हो सकती !"

बाबा की इस गलत हठधर्मी पर मुनिश्री की आखो मे एक अपूर्व तेज चमक आया। उनकी वाणी मे गर्जना-सी ध्वनि होने लगी और उच्च स्वर से कहा "बाबा ! मैं एक जैन साधु के नाते तुम्हे कहता हूँ कि तुम्हारा हित इसी मे है कि तुम बलि का प्रचार बंद कर दो ! अन्यथा तुम्हारा बड़ा अहित हो जाएगा।"

बाबा "तो क्या तुम जादू-टोना करते हो ? मत्र, मूठ आदि जानते हो ? ऐसी कौन-सी शक्ति है, अहित करने की तुम मे ?"

गुरुदेव "शक्ति ! मेरे में बहुत बडी शक्ति है ! जानता है मुझे, मैं एक मिनट मे तुम्हे फना करने की शक्ति रखता हूँ। और तुझे चेलेज के साथ कहता हूँ कि ५ मिनट के अदर-अदर इस गनाहेडा की सरहद को छोड दे। वरना यही पर फना कर दूँगा।"

यो जोश मे गर्जते हुए मुनिश्री ने फरमा दिया। मुनिश्री की ओजस्वी वाणी और आँखो की अद्भुत दीप्ति का बाबा के मन पर विचित्र प्रभाव पड़ा। वह भयभीत-सा हो गया। पैरो तले से धरती खिसकती दिखाई दी। वह वहाँ से उसी क्षण अपना बोरिया-बिस्तर बाधकर गनाहेडा छोडकर चला गया।

बाबा के गाँव छोडने की खबर चारो ओर बिजली की तरह फैल गई। लोगो के मुँह पर सर्वत्र एक ही प्रश्न था यदि बाबा सच्चा होता तो इन महात्मा के सामने टिका क्यो नही ? जरूर उसकी बातें गलत थी, वह झूठा था। गाँव के सभी रावत-बन्धु मुनिश्री के चरणो मे उपस्थित हुए और नम्रता पूर्वक बोले आपकी आज्ञा हमें शिरोधार्य है। हम गनाहेडा मे सर्वथा बलि बंद करने को तैयार है।

गुरुदेव श्री ने हर्ष-विस्मित होकर कहा आप लोगों ने बडा सही निर्णय किया है, धन्यवाद ! मेरा सकल्प सफल हुआ। अब आप अपनी सभा करके सर्व-सम्मति से यह निर्णय कर लें, और उसे लिखकर एक शिलालेख के रूप मे माताजी के मन्दिर पर लगा दें।

रावत-बंधुओ ने इस प्रस्ताव को लिखकर सर्व सम्मति से बलि बदी की घोषणा कर दी और शिलालेख राज्य-सरकार से रजिस्टर्ड कराकर माताजी के मदिर पर लगाने का निर्णय भी कर लिया।

अपना उद्देश्य व संकल्प सिद्ध होने पर गुरुदेव ने पद्मासन खोला। गनाहेड़ा के बन्धुओ ने मुनिश्री से दो दिन के उपवास का पारणा वही करने का आग्रह किया।

भक्तो की भक्ति कभी ठुकराई नही जाती। मुनिश्री ने कुम्भकारो के यहाँ से मक्के की घाट एव छाछ लाकर पारणा किया और फिर पुष्कर वापस पधारे।

बलि-प्रथा बद करने का यह करुणा प्रेरित अभियान अब एक आन्दोलन का रूप बन गया। गुरुदेव ने चावडिया और तिलोरा गाँव मे भी जनता को उद्बोधित कर माताजी के नाम पर होने वाली बलि बद करवाई। वहाँ पर भी मदिरो पर शिला-लेख लगवा दिये गये, जो आज भी गुरुदेव श्री की अगाध सकल्प बल की गरिमा के साथ-साथ करुणा की महिमा का जयघोष कर रहे हैं।

करुणा का कार्य भी आत्म-शुद्धि के साथ

प्रसगवश यहाँ यह भी बता देना चाहते है कि गुरुदेव श्री भक्ति के साथ कभी-कभी शक्ति मे भी अपना सकल्प निविष्ट कर देते थे। यद्यपि हृदय-परिवर्तन का मार्ग बडा कोमल, प्रेमपूर्ण और स्थायी प्रभाव वाला है, किन्तु वह सिर्फ उपदेशात्मक है, चिरकालसाध्य है, उसमे आदेश की तथा मारक धमकियो की सभावना कम है।

उत्तराध्ययन सूत्र मे गर्दभिल्लमुनि और सयती राजा से सम्बन्धित अभयदान का एक वर्णन आता है। सयती राजा के हाथ से शिकार करते समय एक मृग के तीर लग जाता है। वह मृग घायल होकर मुनिवर के पास जाकर लहुलुहान अवस्था मे बैठ जाता है। सयती राजा मुनिराज के पास उस मृग को देखकर मन-ही-मन घबराते हैं कि हो न हो, यह मृग मुनिराज का है, इसी से यह इनके पास आकर बैठा है। मुनि के मृग पर मैंने प्रहार किया, यह बहुत बुरा हुआ। अब न जाने यह मुझे श्राप देकर भस्म कर दें। इस विचार से सयती राजा ध्यानस्थ मुनि गर्दभिल्ल के सामने हाथ जोड कर भयभीत मुद्रा मे बैठ गया। ज्योही मुनिवर का ध्यान खुला, त्यो ही उसने हाथ जोड कर अपने लिए अभयदान देने की प्रार्थना की। तब मुनिवर ने राजा सयती को आश्वासन देते हुए कहा

'अभओ पत्थिवा! तुज्झ, अभयदाया भवाहि य!'

हे राजन्! मेरी ओर से तुम्हे मैं अभयदान देता हूँ, किन्तु तू आज से अभयदाता बने!" इस प्रकार के उपदेश से तथा मुनिराज के प्रभाव से सयती राजा के हृदय ने पलटा खाया और वह सदा के लिए समस्त प्राणियो का अभयदाता स्वपरकल्याण-पथिक मुनि बन गया।

हाँ, तो यहाँ भी बाबा को अनुकूल बनाने एव जनता को अहिंसा के अनुकूल प्रभावित करने के लिए गुरुदेव श्री ने आत्मन्तेज दिखाकर धमकी से भी कभी-कभी काम लिया। उस धमकी से बाबा प्रभावित हुआ। बाबा का शीघ्र ग्राम परित्याग कर देना भी धमकी का ही परिणाम था। यद्यपि वह उपदेशात्मक ही था, परन्तु उसमे सावद्यभाषा का पुट आजाने से वह मुनि मर्यादा के लिए एक विचारणीय प्रश्न बन गया। स्वय मुनिश्री को भी यह खटकने लगा। पूज्य गुरुदेव श्री बूलचन्दजी महाराज को

भी मुनि श्री के इस साहस-पूर्ण कदम के समाचार मिले । वे सुन कर गहरे मनोमथन मे पड गए ।

महावीर से गुरु गौतम से शिष्य

जब आप बलिदान (हिंसा) निरोध के अभियान मे विजयी बन कर पूज्य गुरुदेव श्री धूलचन्दजी महाराज साहब की सेवा मे अजमेर स्थानक मे पधारे । साथ मे पुष्कर के कुछ प्रतिष्ठित प्रमुख श्रावक भी आपको पहुँचाने आए हुए थे । रास्ते मे आपके मानस मे हर्ष की लहरें उछल रही थी, कि जाते ही गुरुदेव मेरे मस्तक पर हाथ धर कर पीठ थपथपाते हुए शाबाशी देंगे । किन्तु वहाँ पहुँचते ही आपने आशा के विपरीत स्थिति देखी । आपके द्वारा वन्दना करने पर भी न तो गुरुदेव श्री बोले और न ही दीक्षालघु साधुओ ने आपको वन्दन किया । आपने गुरुदेव के चरणो मे शीश झुकाकर पूछा "गुरुदेव ! यह क्या ! ऐसा मुझसे कौन-सा अपराध हो गया ? इतनी नाराजगी क्यो है, इस शिष्य पर ?"

गुरुदेव "पन्ना ! तूने गनाहेडा मे उस बाबाजी से क्या कहा था ? तूने उसे फना कर देने का चेलेंज दिया था न ! मान लो, यदि वह गाँव छोडकर नही भागता, तो तू क्या करता ? क्या तू उसे मार देता ?"

मुनि श्री ने कहा "गुरुदेव ! यह तो उस पर प्रभाव डालने के लिए कहा था । वह तो मेरे साहसपूर्ण कथन से प्रभावित होकर भाग गया, गुरुदेव ! उसी समय उसने गाँव छोड दिया ।"

गुरुदेव—"वह तो भाग गया, पर न भागता तो तू क्या करता ? क्या तू उसे फना कर देता ? क्या किसी को मारना या मारने का वचन कहना साधु के लिए कल्पनीय है ? तेरी धमकी भरी भाषा से बाबा भयभीत तो हुआ, लेकिन भयोत्पादक वचन भी अहिंसक एव सत्यवादी साधक के लिए वाँछनीय नही है । ऐसी कठोर और भूतोपघाती भाषा बोलना क्या तेरा धर्म है ? **'अणवज्जमकक्कस'** निरवद्य और मृदु-भाषा बोलने की प्रतिज्ञा धारण करने वाला तू **'भूओवघाईणी भास'** प्राणियो का उपघात करने वाली भाषा का उपयोग करे, यह अहिंसा एव सत्य की मर्यादा के प्रतिकूल है । किसी के हृदय को आघात पहुँचाने वाला वचन भी साधु को कदापि नही कहना चाहिए । यह तेरे जीवन की बहुत गम्भीर भूल है । पहले इसका प्रायश्चित लेकर आत्म-शुद्धि कर लेने के बाद ही तुम्हारे साथ सभी व्यवहार पूर्ववत् रखे जा सकेंगे ।"

पास मे खडे हुए पुष्कर तथा अजमेर के प्रमुख श्रावको ने गुरुदेव से निवेदन किया—"गुरुदेव ! मुनिश्री ने तो बहुत उपकार का काम किया है, फिर इसके लिए प्रायश्चित क्यो ?"

गुरुदेव "श्रावको ! यह प्रायश्चित पशु-बलि बद करवाने का नही है । वह तो महान् उपकार का कार्य इसने किया है । उसे सुनकर तो मेरा हृदय भी खुशी से बांसो

उछल रहा है, पर इसने वहाँ जो सावद्यभाषा का प्रयोग किया, उसका प्रायश्चित्त तो इसे लेना ही चाहिए।"

यह सुनते ही मुनिश्री ने तुरत हाथ जोड कर सविनय निवेदन किया। "गुरुदेव आपकी बात न्याय-सगत है। मुझे अपनी आत्मा पर लगी हुई भाषा-सम्बन्धी अशुद्धि के लिए खटक है। आपने मुझ पर बडी कृपा की है, मुझे सावधान करके सयम-साधना मे लगे हुए दोषो का परिमार्जन, भूलो का शुद्धिकरण, आपसे प्रायश्चित्त ग्रहण करके मुझे करना ही चाहिए। धन्य है, आप जैसे गुरुदेव को। गौतम को महावीर की भाँति मुझे भी आप सरीखे सच्चे गुरु मिल गए। फिर मेरे जीवन मे स्खलना कैसे रह सकती है? इस स्खलना के लिए मेरे मन मे पश्चाताप है। आप मुझे प्रायश्चित्त देकर शुद्ध कीजिए। फरमाइए प्रायश्चित्त!

गुरुदेव "इसका प्रायश्चित्त है एक तेले (तीन उपवास) की तपस्या!"

श्रावकगण गुरुदेव! तेले का प्रायश्चित्त!! अभी-अभी तो मुनिश्री ढाई दिन की तपस्या का पारणा करके पधारे हैं। योग्य एव सघ-प्रभावक शिष्य पर जरा अनुग्रह कीजिए।"

गुरुदेव "भाइयो! अनुशासन मे कोई रियायत नही दी जाती, अगर यह आत्म-शुद्धि अभी नही करेगा, तो इसके जीवन मे अशुद्धि (भूलें व त्रुटियाँ) बढती ही जाएगी और आगे चलकर यह कुछ भी स्थायी प्रभावक कार्य नही कर सकेगा। चारित्रिक दोषो की शुद्धि से ही साधक का तप, तेज, आत्म-बल और प्रभाव बढता है।"

उसी समय आपने गुरुदेव से सविनय अर्ज किया "पूज्यवर! महोपकारिन्! इसमे उधार की क्या आवश्यकता है? आप श्री मुझे अभी तेले (तीन उपवास) का प्रत्याख्यान (पच्चक्खाण) देने की कृपा कीजिए। आपका शिष्य कभी तपस्या से डर सकता है,? विलम्ब न कीजिए। बस, '**शुभस्य शीघ्रम्**' के अनुसार मुझे तपस्या करवा दीजिए।"

मुनिश्री ने सरल हृदय से अपनी भूल स्वीकार की और उसके लिए मन मे जो खटक थी, उसे निवेदन करके गुरुदेव के समक्ष अपनी आलोचना की और प्रायश्चित्त लेकर संयम-शुद्धि की।

गुरुदेव ने भी शिष्य की आत्म-शुद्धि के लिए जरा कठोर बनकर उपस्थित श्रावको के समक्ष उसी समय मुनिश्री को तेले की तपस्या का पच्चक्खाण (प्रत्याख्यान) करवा दिया।

आज के अनुशासनहीन शिष्यो के लिए मुनि श्री का यह आदर्श उदाहरण प्रेरणादायक है!

गोरक्षा का पुनीत कार्य

गुरुदेव श्री पन्नालाल जी महाराज का हृदय करुणा रस से ओतप्रोत रहता था। जब वे कही भी किसी प्राणी की हिंसा का समाचार सुन लेते या अपने सामने हिंसा

होती देख लेते तो उनका करुणार्द्र हृदय पसीज उठता था। पिछली कई घटनाओ मे पाठक उनके करुणापूर्ण हृदय का परिचय पा चुके हैं। नीचे हम उनके निमित्त से सम्पन्न गोरक्षा का एक ज्वलन्त उदाहरण प्रस्तुत कर रहे हैं

विक्रम सवत् २००२ का आपका वर्षावास विजयनगर गुलाबपुरा मे ठा० ५ से हुआ था। आश्विन मास था, लगभग ५ बजे का सुहावना प्रभात का समय था। गुरुदेव, अन्य सन्त तथा कुछ धर्मशील श्रावक बोल-थोकड़े सीखने मे एवं परमात्म गुण कीर्तन मे सलग्न थे। प्रात काल का समय वैसे ही धर्म-जागरण का होता है। अत' आप उस समय स्वाध्याय मे थे। तभी आपको समाचार मिले कि 'नसीराबाद के कसाई लोग लगभग १२५ गायें मेवाड से ले जा रहे हैं। वे लोग कत्लखाने ले जाकर उन्हे बेच देगे। इस प्रकार ये सब गाये कटेगी और बडा अनर्थ होगा।' गुरुदेव ने ज्यो ही सुना त्यों ही उनका हृदय करुणा से विह्वल हो उठा। आपने स्थानीय नवयुवक मण्डल के प्रमुख युवको को प्रेरणा दी "आप लोगो के होते हुए इस प्रकार से गाये काटने के लिए कत्ल-खाने ले जाई जायँ, यह शोभास्पद बात नही है।"

युवक बोले "गुरुदेव ! हमे तो पता ही नही चला था, अब जब पता चला, तभी हम आपके पास दौडे हुए आए हैं। आप बताइए, हम क्या करें ? जब तक सरकारी सरक्षण उनको प्राप्त है, तब तक हमारा क्या बस चलेगा ? हमारी बात वे कब मानेंगे ? यहाँ तो आप श्री के तप-तेज से युक्त वाणी का ही असर हो सकता है।"

गुरुदेव ने कहा "देखो, तुम लोग युवक होकर इस तरह से कायरता की बाते मत करो। चाहे सरकार ने उन्हे सरक्षण दे रखा हो, परन्तु जनमत के आगे सरकार को भी झुकना पडता है। जनता का अगर विरोध हो, और वह महात्मा गाँधीजी की पद्धति के अनुसार अहिंसक ढग से और सामूहिक रूप से हो तो सरकार को भी उसे मानना पडेगा। आखिरकार सरकार भी जनता के रुख को देखकर चलती है। मेरा विश्वास है कि तुम लोगो से ही यह कार्य हो जायगा ! मेरा पृष्ठबल एव मगल भावना तो तुम्हारे साथ है ही। तुम्हे कोई उपद्रव, मारपीट या गालीगलौज नही करना है। सिर्फ नि शस्त्र, निर्भय और साहसी होकर वे कसाई लोग जिस मार्ग से गायें ले जा रहे हो, उस मार्ग को रोक कर खड़े हो जाना है। वे पूछें तो जरा भी क्रोध किये बिना शान्ति से जवाब दे देना है। या तो वे स्वय ही गायो को मुक्त करके तुम्हारे हवाले कर देंगे, या फिर कोई कानून ही ऐसा निकल आएगा, जिसके दबाव से उन्हे गायो को छोडना ही पड़ेगा। युवको ! तुम सामूहिक रूप से सगठित होकर गोरक्षा का यह बीडा उठाओ, सफलता अवश्य ही तुम्हारे चरण चूमेगी।"

चरितनायक श्री की जोशीली, किन्तु शुद्ध मार्गदर्शन से युक्त वाणी सुन कर युवको की भुजाएँ फडक उठी। युवक हृदय श्री कपूरचन्द जी कास्टिया के नेतृत्व मे तुरन्त ही बीस युवक तैयार हो गए। सभी युवको ने पवित्र खादी का श्वेत वेष धारण किया और गुरुदेव श्री से मगलपाठ सुन कर मार्चिंग सोंग (प्रयाण गीत) गाते हुए वहाँ

से प्रस्थान किया। सभी युवक ऐसे मालूम हो रहे थे, मानो सत्याग्रही सार्थक अभिनिष्क्रमण करके सोये हुए समाज को उद्बुद्ध करने जा रहे हो। वे सब उस मार्ग पर पहुँच गये, जहाँ से होकर गायें जा रही थी। सब मिल कर उस मार्ग को रोक कर खड़े हो गये। गाये भी चुपचाप वही खडी हो गई, मानो इन सत्याग्रही युवको को अपनी रक्षा के लिए आये हुए देख हृदय से मूक आशीर्वाद दे रही हो। कसाई लोग भी इस प्रकार के सौम्य सत्याग्रही युवको के झुंड को देखकर एकदम सकपका गए। अगर उन्हे गालीगलौज करते या उनसे वे कोई झगडा अथवा मारपीट करते तो शायद कसाई लोग भी गाली-गलौज, मारपीट या लडाई-झगडा करने पर उतारू हो जाते, लेकिन यहाँ तो अहिंसा के देवता, शान्ति दूत गुरुदेव श्री पन्नालाल जी महाराज की अहिंसक ढग से ही कार्य सिद्ध करने की प्रेरणा थी। इसलिए अहिंसक वातावरण के कारण कसाइयो के दिलो मे भी प्रेम-भाव से युवको को गाय सौंप कर चले जाने की स्फुरणा हुई।

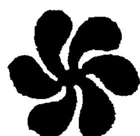
सच है, जहाँ अहिंसा अपने पैर मजबूती से जमा लेती है, वहाँ उसके आसपास हिंसा, वैर विरोध, कत्ल आदि पलायन कर जाते हैं। दूसरी ओर गुलाबपुरा के कुछ लोगो ने मेवाड राज्य के सीमाधिकारी को सूचित कर दिया कि 'मेवाड राज्य से बाहर गायो का ले जाना निषिद्ध है। फिर भी कुछ लोग चोरी-छिपे से गैर रास्ते से राज्य के बाहर गाये ले जा रहे हैं। इन्हे रोका जाना चाहिए।" अत सूचना मिलते ही कस्टम (चुगी) अधिकारियो ने इसकी जाच के लिये भाग-दौड की और दलबल सहित वे घटना-स्थल पर पहुँच गए। मेवाड राज्य से बाहर गाये ले जाने के अपराध मे वे सभी कसाई राज्य के अपराधी सिद्ध हो चुके थे। यद्यपि वे कसाई काफी सख्या मे थे, किन्तु इधर जनता की भीड भी काफी थी, कई कस्टम अधिकारी थे, कुछ युवक भी थे। अपराध एव राज्य शक्ति की गिरफ्त मे आने तथा जनता का प्रबल विरोध होने के कारण विकट परिस्थितियो से जूझना कसाइयो के वश की बात नही रही, अत वे सब घबराकर तमाम गायो को वही छोड गए और नौ दो ग्यारह हो गए। अनायास ही कार्य सिद्ध हुआ देख कर कस्टम अधिकारियो ने उन युवको से कहा "कसाई ये तमाम (१२५) गायें यहाँ छोड गए हैं, अत आप लोग हमे सहयोग दो, ताकि इन गायो को हम गुलाबपुरा ले चलें।" नवयुवको ने सहायता देने का वचन दिया। फलस्वरूप गुलाबपुरा के उक्त युवको के सहयोग से वे सब गाये राज्याधिकारियो ने गुलाबपुरा के बाजार मे जैन स्थानक के बाहर लाकर खडी की।

चरितनायकजी को जब यह पता चला कि गायें कसाइयो के हाथ से छूट कर आ गई हैं और युवको के अहिंसक ढग से सामाजिक दबाव तथा राज्य शक्ति के राजकीय दबाव के कारण कसाई लोग स्वत गायो को छोडकर चले गए हैं, तब आपको अतीव प्रसन्नता हुई। आपने उसी समय नगर के व्यापारी वर्ग को जीव दया की जबर्दस्त प्रेरणा दी- "धर्म प्रेमीजनो! आप अहिंसक हैं। अहिंसक वीर शरणागत मे आए हुए की रक्षा करता है। इतिहास प्रसिद्ध शिवी और मेघरथ राजा शरण मे आए हुए कबूतर की रक्षा के लिए अपने प्राण देने को तैयार हो गए थे। वे बाज को कबूतर के बराबर

अपने शरीर का मास देने को तैयार हो गये थे। शरणागत रक्षा की परीक्षा मे वे पूर्णतया उत्तीर्ण हुए थे।

उसी प्रकार आप सबको भी शरणागत रक्षा की परीक्षा मे उत्तीर्ण होना है। ये गायें जैन स्थानक के सामने खडी हैं, इसका मतलब है ये गाये आप सभी अहिंसा प्रेमी लोगो की शरण मे आई हैं। इन शरणागत गायो की रक्षा करना आप लोगो का कर्तव्य है। आप लोग जैसे किसी शरण मे आए हुए व्यक्ति के खाने-पीने, रहने आदि का सब प्रबन्ध करते हैं, वैसे ही आपको इन गायो के रहने, खाने-पीने आदि का समुचित प्रबन्ध करना चाहिए। अगर आप इस कर्तव्य से मुख मोड़ते है तो एक तो आप धर्म-पालन के लिए अनायास प्राप्त अवसर को खोते हैं, दूसरे अपने अहिंसक पूर्वजो के नाम को लज्जित करते हैं। इस उपदेश का उपस्थित भाई-बहनो पर अचूक असर हुआ। तत्काल वहाँ के व्यापारी वर्ग ने एक गौशाला की स्थापना का निश्चय किया और इन गायों को इसी गौशाला मे लेने का निर्णय लिया।

अब उन गायो को बाकायदा सरकार के कब्जे से अपने कब्जे मे लेने का काम बाकी था। राज्य के नियमानुसार वे तमाम गायें जब्त की गई थी। अत जब व्यापारी वर्ग ने सरकार से अपील की कि ये गाये हमे दी जायँ, तब राज्य के द्वारा वे गाये नीलाम की गईं। व्यापारी वर्ग ने नीलाम मे उचित मूल्य पर वे तमाम गाये गौशाला के लिए खरीद ली। इस प्रकार करुणाकर गुरुदेव श्री पन्नालाल जी महाराज की प्रेरणा से गुलाबपुरा मे गायो की रक्षा हुई और गौशाला का श्रीगणेश हुआ। आपकी प्रेरणा से स्थापित की गई गुलाबपुरा की गौशाला तब से अभी तक सुचारु रूप से गायो की सुरक्षा कर रही है। इस प्रकार करुणा की पावन-धाराओ मे आपका जीवन अवगाहन करता रहता था।



१२

धीरज, धर्म; विवेक

☐

किसी अनुभवी कवि ने कहा है-

> **विपदा ही महापुरुष को करती है सरनाम।**
> **सिया-हरण बिन राम का, कौन जानता नाम ॥**

राम के जीवन मे यदि सीता-हरण का प्रसग न बनता तो शायद भूमण्डल मे राम की उतनी ख्याति नही फैलती, जितनी आज तक फैली है। महावीर के जीवन में गोपालक, गोशालक, चण्डकौशिक और सगम जैसो के प्रसंग नही बनते तो महावीर की महावीरता प्रकट नही हो पाती और उनका अद्वितीय आत्मबल जन-जन के समक्ष आदर्श बनकर नही चमकता। महापुरुषो के जीवन मे आने वाली बाधाएँ विकट प्रसग उनके जीवन की कसौटियाँ बनती हैं, और उन पर घिसा जाकर उनका पौरुष-स्वर्ण अपनी सत्यता व श्रेष्ठता सिद्ध करता है।

विपत्ति, सकट और बाधाएँ वह अग्नि है जिसमे कायर व अविवेकी व्यक्ति घास-फूस की भाँति जलकर भस्मसात हो जाता है, और साहसी तथा विवेकवान् व्यक्ति कुन्दन बनकर चमक उठता है। इसलिये धीर-गम्भीर विवेकयुक्त सतपुरुष विपदा से कभी घबराते नही, बल्कि डटकर उसका मुकाबला करते हैं और धीरज एव सद्विवेक द्वारा उन पर विजय प्राप्त कर विपदा को सम्पदा मे बदल देते हैं। कष्ट के क्षण उनकी परीक्षा के क्षण होते हैं, पर उन तूफानो और झझावातो मे भी उनका साहस, धैर्य एव विवेक दीपक सदा प्रज्वलित रहकर आलोक रश्मिया बिखेरता रहता है।

हमारे चरितनायक गुरुदेव श्री पन्नालाल जी महाराज साहस व विवेक के एक ज्योति पुरुष थे। अपने साहस, अभयवृत्ति व धैर्यबल के द्वारा जहाँ उन्होने समाज की कुप्रथाओ के विरुद्ध सघर्ष किये, भूत-प्रेत बाधा से पीडित-आतकित जनता को अभय किया, वहाँ धार्मिक-विवाद, द्वन्द्व एव सघर्षो के ज्वालामुखी-विस्फोट पर जलधार बनकर शान्ति की तीव्र वृष्टि भी की। समय-समय पर उनके जीवन मे ऐसे विकट सघर्ष प्रसग

आये, कुटिल धर्मान्ध व्यक्तियो द्वारा ऐसे द्वन्द्व रचे गये जिन्हे यदि वे धीरज और गभीर विवेक के साथ हल नही करते तो शायद धर्म के नाम पर रक्त की होलियाँ खेली जाती और मनुष्य के धर्मोन्माद का राक्षसी रूप इतिहास पट पर काले अक्षरो में लिख दिया जाता। किन्तु उनकी दूरदर्शिता, समयज्ञता, जागृत विवेकशीलता और गहरी सहिष्णुता ने कटुता को भी मधुरता मे बदल दिया। अग्नि को भी पानी बना दिया। ऐसे एक-दो प्रसग यहाँ चर्चणीय हैं।

ज्येष्ठ मास बड़े दिनो के कारण ही ज्येष्ठ नही, किन्तु उष्णता मे भी वहसबसे ज्येष्ठ (बड़ा) ही होता है शरीर को झुलसा देने वाली गर्म लू और दीवारो को तवे की भाति तपा देने वाली प्रचण्ड धूप। वि० स० १९८५ के इस ज्येष्ठ मास मे गुरुदेव श्री सरवाड पधारे। गुरुदेव श्री के प्रवचन प्राय सरल-सुबोध और उपदेशात्मक होते थे। उनकी शैली रोचक व आकर्षक थी। वाणी मे एक जादू था। जो भी एक बार प्रवचन सुन लेता वह स्वय खिचा आता। सरवाड मे प्रवचन सभा मे इतनी भीड होने लगी कि व्याख्यान मडप मे जनता को खड़े रहने का भी स्थान नही मिलता। अत. जनता ने आप श्री से अनुरोध किया कि बाजार मे सार्वजनिक स्थान पर यदि आपका प्रवचन हो तो जनता को अधिक लाभ मिले। जन-आग्रह स्वीकार कर आपने वैसा ही कार्यक्रम किया।

सरवाड मे हिन्दुओ की भाँति मुसलमानो की जनसख्या भी अच्छी है, दोनो मे परस्पर प्रेम व सद्भाव भी है। आपके व्याख्यानो मे मुसलमान जनता की अच्छी उपस्थिति होती थी।

मुनिश्री ने एक दिन 'अहिंसा' पर व्यापक विश्लेषण किया। जैन आगम, हिन्दू पुराण व मुसलमानो के कुरान के अनेक उद्धरण देते हुए अहिंसा का भाववाही उपदेश दिया। आपने अपनी स्वरचित गीतिका भी गाई

हिन्दु और मुसलमां सबको हम समझायें।
दयाधर्म है सबसे आला इसमे फर्क नहीं है।
वेद-पुरान-कुरान के अन्दर जाहिर दर्ज सही है।
देखलो, खोल किताब ॥

चार सिफ्ते कही दीन के सात इमान ही जान।
इसको तुम अमल मे लावो, देखो खास कलाम।
मुसलमां बने दिल जान ॥

शराब पीना रवा नहीं है, देखो कुरान के मांही।
जीना कारी का करना बुरा है सुनो मुसलमां भाई।
मालिक का पढ़ो कलाम ॥

पन्नालाल यो कहे अजीजो, राखो अपना दिल पाक।
सभी खलक के अन्दर प्यारे पड़े अजल की धाक।
एक दिन होगा चलान ॥

इस्लामी-धर्म ग्रन्थो के अनुसार आपने अहिंसा व जीवदया का प्रतिपादन करते हुए अनेक उद्धरण दिये और कुरान-शरीफ की निम्न चार आयतें भी सुनाई

जाबिहुल बकर गो आदि पशुओ की हत्या करनेवाला

दायमुल खुमर शराब आदि का नशा करने वाला।

बाये-उल बशर मनुष्य को बेचने वाला।

कातिल-उल शजर हरे पेड-पौधो को काटने वाला

उक्त चारो गुनाह करने वाला दोजख (नरक) मे दुख भोगता है ऐसा मुहम्मद साहब ने कहा है।

आपके इस सर्वधर्म समन्वय प्रधान तथा तटस्थ विवेचन को सुनकर जनता अत्यधिक प्रभावित हुई। किन्तु अयोध्या मे मथरा भी मिलती है। कुछ कुटिल व धर्मान्ध व्यक्ति जैन सतो की इस प्रशसा और प्रभावशीलता से जल-भुन गये। उन्हे तो कलह कराने मे ही मजा आता है। परिणामस्वरूप उन्होने मुसलमान भाइयो को भडकाना शुरू किया—देखो, जैनियो ने तुम्हारे कुरान की कितनी बडी तौहीन कर दी, जिस कुरान-शरीफ को तुम पाक मानते हो, उसी के आधार पर वे तुम लोगो पर व्यग्य व आक्षेप करते हैं, और तुम्हे दोजख मे जाने वाला बताते है।

कहते हैं "धर्म मे अधा हुआ व्यक्ति आँखो के अधे से भी बुरा होता है।" बस, ईमान खतरे मे, का नारा लगा और मुसलमान भाई आ गये जोश मे। दरगाह मे एकत्र हुए और लगे एक स्वर से पुकारने "हम बदला लेगे हमारी कौम मुर्दा नही है, जैनी साधुओ ने सदर बाजार मे हमारे पवित्र धर्म ग्रन्थ का अपमान किया है, हम हीजड़े बने रहकर इसे बर्दाश्त नही कर सकते। कुरान के अपमान का बदला जरूर लेंगे। काफिर को जिन्दा नही छोडेंगे।"

बस, इस नारे पर सैकडो मुसलमान होशोहवास भूलकर जोश मे आ गये और हाथो मे लट्ठ लेकर हमला करने को तैयार हो गये। तभी एक बूढे मौलवी, जो काफी समझदार थे, बोले "देखो बिना विचारे काम करने का अजाम बुरा होता है। जोश मे होश नही खोना चाहिए। अत 'उतावला सो बावला' इस बात को ध्यान मे रखकर पहले असलियत का पता लगाना चाहिए। हमला तो हम जब चाहे तभी कर सकते हैं, लेकिन पहले हम दो मौलवी और दो नवयुवक उनके पास जाते हैं, पता लगाते हैं कि वास्तव मे ही उन्होने कुरान शरीफ की तोहीन की है क्या ? यदि वे गुनहगार पाये गये तो हम तुम्हे इशारा भेज देंगे, फिर तो उन्हे सजा देनी ही है।"

दरगाह मे एकत्र हुए मुसलमान बन्धु जब हमला करने की योजना बना रहे थे तभी किसी एक हितैषी मुसलमान भाई ने एक जैन श्रावक को सावधान कर दिया कि आज यह काण्ड होने वाला है। उस श्रावक ने जनता को यह समाचार सुनाया तो सभी के होश उड गये। सभावित भयकर दुर्घटना की आशका से जनता मे खलबली मच गई।

कुछ प्रमुख व्यक्ति दौड़े-दौड़े गुरुदेव के पास आये। उनकी सास फूल रही थी और हाथ-पैर थर-थर काँप रहे थे। उनकी दयनीय स्थिति देखकर गुरुदेव भी आशंकित हो गये। श्रावकों ने लडखड़ाती आवाज मे कहा गुरुदेव! गजब होने वाला है। आज के व्याख्यान से मुसलमान भाई बहुत नाराज हो गये हैं और वे सैकडो की सख्या मे एकत्र होकर हमला करने के लिए यहाँ आ रहे हैं।

गुरुदेव ने स्थिति की विकटता को भाप लिया, किन्तु उनका आत्मबल भीतर-ही-भीतर प्रदीप्त हो उठा। विकट से विकट वेला मे भी वे धीरज और विवेक से काम लेना जानते थे। श्रावकों को धैर्य बँधाते हुए उन्होने कहा घबराने की कोई बात नही है। देव-गुरु और धर्म की कृपा से सब आनन्द मगल होगा। आप लोग साहस मत खोइए और न ही जल्दबाजी मे कोई गलत कदम उठाए। हमने प्रात: जो कुछ कहा वह सत्य था, सत्य के लिए उत्सर्ग होना, जहर का प्याला पीना, और शूली पर चढ जाना हमारा पुश्तैनी गुण है। हम ससार त्यागी साधु है, सत्य कहना हमारा धर्म है। वह साधु ही क्या जो सत्य कहने से डरे। कहा गया है—

मनुष्य क्या, अदृष्ट की जो ठोकरें न सह सके।
मनुष्य क्या जो सकटो के बीच खुश न रह सके॥
मनुष्य क्या, जो चम-चमाते खंजरो की छाह मे
हां, मुस्कराके, गर्ज के न सत्य बात कह सके।

आप निश्चित रहे, सत्य पर डटे रहने वाला कभी भी मर नही सकता। भगवान महावीर ने कहा है—

सच्चस्स आणाए उवट्ठिए मेहावी मारं तरइ।

—सत्य की आराधना करने वाला मृत्यु को भी जीत लेता है, फिर हमे मृत्यु का भय क्यो? आप घबराइए नही!

स्थानक मे इस प्रकार का वार्तालाप चल ही रहा था कि दोनो मौलवी साहब और दो छात्र वहाँ आ पहुँचे। मुनिश्री ने उनके हाव-भाव से सब स्थिति समझ ली। फिर भी स्थिति का जायजा लेते हुए पूछा "मौलवी साहब! आज कैसे तशरीफ लाये?"

मौलवी "आपने आज जो कुरान शरीफ का हवाला देकर अहिंसा की बात कही वह ठीक नही है!"

मुनिश्री "सो कैसे? क्या कुरान शरीफ हिंसा करने की मनाही नही करता?"

मौलवी "यह तो ठीक है, लेकिन कुरान मे तो हिंसा करने का भी विधान है इसका आपके पास क्या जवाब है।"

मुनिश्री यह सवाल तो आपको खुदा से ही पूछना चाहिए, क्योकि कुरान तो उन्ही का फरमान माना जाता है। हाँ, हम भी इस पर विचार करेंगे। मैं आपसे ही पूछता हूँ, आपका एक रिश्तेदार विदेश गया, और वहाँ से पत्र मे आपको दूसरे समाचारो के साथ लिखता है कि 'यह पत्र पढते ही तुम मेरे छोटे लडके को खत्म कर देना' और उसी

खत में आगे लिखता है कि 'तुम मेरे छोटे लडके को खूब-खूब प्यार करना।' बताइये जब ये एक-दूसरे की विरोधी दो बातें लिखी हो तो आप उसे मारेंगे या प्यार करेंगे ?

मौलवी हम उसे प्यार करेंगे, क्योंकि अगर मार डालेंगे तो प्यार किससे करेंगे जब उसने प्यार करने का लिखा है।"

मुनिश्री छोटे लडके को मारने का भी लिखा है, उसकी यह बात आप नही मानेंगे ?

मौलवी "यदि यह बात मानेंगे तो फिर अगली बात पूरी कैसे होगी ? उसने मारने के साथ-साथ प्यार करने का भी लिखा है, और यह तभी संभव है जब हम उसे न मारें।"

मुनिश्री तो, इसका मतलब यह जाहिर हुआ कि जब मारना और प्यार करना दो बातें लिखी हो तो मारने की बजाय प्यार करने की बात ही माननी चाहिए।

मौलवी सो तो है ही।

मुनिश्री—तो जब कुरान शरीफ मे प्राणी की हिंसा करने वाले को दोजख (नरक) मे जाना लिखा है, हिंसा का अजाम बुरा बताया है, और पशुओ का मारना एव वृक्षों को काटना गुनाह बताया है तो आपको खुदा का यह फरमान मानकर उन प्राणियो से प्यार नही करना चाहिए ?

मौलवी वो तो करना ही चाहिए।

मुनिश्री तो, मौलवी साहब ! हमने तो यही बात आज कही थी, बतलाइए इसमे क्या बुरा कहा, और कुरान शरीफ की तोहीन की या तारीफ की ?

मुनिश्री की प्रेमपूर्ण वाणी ने मौलवी साहब के मन को झकझोर दिया। वे बहुत प्रभावित हुए और बोले आपने कुछ भी बेजा नही कहा। लोगो की समझ की भूल है। आप बड़े सच्चे आलिम (ज्ञानी) और बेडर फकीर हैं। हमने आपका कीमती वक्त जाया किया, मुआफ कीजिए, हमे जाने की इजाजत बख्शिए।

मुनिश्री ने जरा गभीर होकर कहा मौलवी साहब ! आपने हमारा दो घटे का समय लिया है, क्या उसकी कुछ कीमत भी नही चुकायेंगे ?

मौलवी साहब चौंककर बोले क्या बातचीत करने व समय लेने की भी फीस लगती है ?

मुनिश्री बेशक ! आप ही सोचिए, हमारी साधना का यह बहुमूल्य समय क्या फालतू है ? किसी का भी अमूल्य समय लेकर उसकी कीमत तो चुकानी ही चाहिए।

मौलवी अच्छा, तो कितनी फीस है !

मुनिश्री मुस्करा कर बोले—मौलवी साहब ! हर बात को धन से नही तोला जाता। त्यागी साधुओं के समय की कीमत तो त्याग से ही होती है। जैन साधु धन की एक कौडी भी नही रखते। इसलिए आप कुछ न कुछ त्याग (नियम) लीजिए !

मुनिश्री की सूफियाना ढग की बातें सुनकर मौलवी साहब जरा सकपका गये। फिर बोले, फरमाइए क्या त्याग करू ?

मुनिश्री ने स्नेह-पूरित शब्दो मे कहा आपकी जैसी इच्छा हो वही त्याग कर दीजिए। यदि मुझसे पूछते हो तो आप जीवनभर के लिए 'मांस-भक्षण' का त्याग कर दीजिए।

मौलवी इतना त्याग तो कर पाना मुश्किल है, लेकिन मैंने आपका दो घटा का समय लिया, इसलिए दो महीने के लिए मास खाने का त्याग कर देता हूँ।

मुनिश्री श्री ने हंसकर कहा ऐसे नही चलेगा, आपको इस्लाम धर्म की विधि के अनुसार तोबा करना चाहिए।

मौलवी (सकुचाते हुए) वह तो

मुनिश्री तो क्या आप इस स्थानक को मस्जिद नही मानते ? देखिए, सब जगह मस्जिद मौजूद है। मस्जिद मे पाच गुम्बज होते हैं। इस शरीर मे भी एक मस्तक, दो कधे और दो पैर ये पांचो अग गुम्बज ही तो हैं। इन्ही के आधार पर तो मस्जिद का आकार अकित हुआ है।

मौलवी जी हाँ, हम भी ऐसा ही मानते हैं।

मुनिश्री—तब कहिए यहाँ 'तोबा' करने मे आपको सकोच क्यो हो रहा है ?

मुनिश्री की बात मौलवी साहब की समझ मे आगई। वे मुस्करा कर बोले आपका फरमाना ठीक है। और उसी समय पश्चिम मे मुंह करके दोनो कान दोनो हाथो से पकडकर तीन बार घुटने भूमि पर टेक कर दो महीने के लिए मास आदि दुर्व्यसनो का 'तोबा' (त्याग) किया।

चारो सज्जन आये थे कुछ और ही भाव लिये, लेकिन गुरुदेव श्री के जादुई व्यक्तित्व, स्नेहिल स्वभाव और गभीर ज्ञान-गरिमा से इतने प्रभावित हुये कि श्रावक की भाति त्याग-प्रत्याख्यान लेकर स्तुति करते-करते गये।

दरगाह मे एकत्र सैकडो लट्ठधारी मौलवी साहब के इशारे की इतजार मे बेताब हो रहे थे। लगभग ढाई घटे बाद जब वे लौटे तो पूछने लगे—कहिए। चले ! क्या हाल है ?

मौलवी साहब ने उनको डांटते हुए कहा भाइयो ! तुम क्या करने जा रहे हो ? वे तो बड़े आलिम (ज्ञानी) हैं। दरअसल उन्होंने कुरान शरीफ की तौहीन नही, तारीफ की। ऐसे औलिया फकीर से तो हमारा भला होगा।

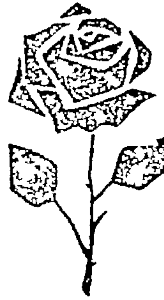
मौलवी साहब के समझाने पर सभी का जोश ठडा हो गया और कुटिल धर्मान्ध व्यक्तियो की चाल नाकामयाब हो गई।

वास्तव मे गुरुदेव के जीवन का यह एक स्वर्णिम-प्रसंग है कि हमले के लिए उमडती हुई मुसलमान बिरादरी को उन्होने अपने सत्यपक्ष, साहस और विवेक बल से स्तब्ध ही नही किन्तु अपना भक्त भी बना लिया। बहस करने आने वाले मौलवी साहब मास आदि दुर्व्यसनो की कान पकड़ कर घुटने टेक कर तोबा करके गये।

इसीलिए तो कहा गया है

> विपदि धैर्यमथाभ्युदये क्षमा,
> सदसि वाक् पटुता युधिविक्रमः।
> यशसि चाभिरुचिर्व्यसनं श्रुतौ
> प्रकृतिसिद्धमिदं हि महात्मनाम्।

संकट के समय मे धैर्य, उत्कर्ष के समय मैं क्षमा-गाभीर्य, सभा मे वचन की चतुरता, युद्ध व संघर्ष के समय पराक्रम, यश के प्रति निस्पृह, शास्त्र-श्रवण मे रुचि (लगन) ये गुण महापुरुषो की प्रकृति मे जन्मजात ही होते हैं।



१३

जैनों की पूजा : वैष्णवों की मौज

□

स्वर्ण को कुन्दन वनने के लिए एक वार अग्नि-परीक्षा में से गुजरना पड़ता है। हीरे को निखार पाने के लिए एक दो वार शाण पर चढ़ना पड़ता है, पर पता नहीं, सतो को कितनी वार ऐसी अग्नि-परीक्षाएँ देनी पड़ती हैं, जिनमे उनका आत्मवल, धीरज, धर्म-श्रद्धा, सूक्ष्म-विवेक एव सहिष्णुता को वार-वार निखरना पड़ता है। गुरुदेव श्री पन्नालाल जी महाराज का जीवन तो इस प्रकार की अग्नि परीक्षाओं की एक लम्बी कहानी ही वन गई। गांधीजी की तरह वार-वार उनके जीवन मे ऐसे विकट प्रसग आये जिन पर सामान्य व्यक्ति धीरज खोकर कुछ ही कर वैठता। पर उन्होने हर ऐसे प्रसग पर वड़ी समयज्ञता, सहिष्णुता, उदारता और विवेकशीलता का परिचय दिया जिससे न केवल उनके निर्मल व्यक्तित्व मे चार चाँद लगे अपितु जैन धर्म की गरिमा भी असाधारण रूप से वढी। सरवाड का एक प्रसग पिछले पृष्ठो पर अंकित है ही। उसके दो वर्ष वाद मसूदा मे उससे भी विकट प्रसग उपस्थित हुआ जिसमे गुरुदेव श्री की अद्भुत समयज्ञता ने चमत्कार दिखाया, और जैनधर्म के समन्वय-प्रधान जीवन दर्शन का साक्षात् अनुभव कराया।

गुरुदेव श्री धूलचन्द जी महाराज के साथ आपका वि० स० १९८६ का चातुर्मास थांवला में निश्चित हुआ था, लेकिन जव गुरुदेव श्री आषाढ महीने मे पुष्कर पधारे तो श्री धूलचन्द जी महाराज साहव के पैर मे अत्यधिक दर्द वढ गया। वाध्य होकर चातुर्मास पुष्कर मे करना पड़ा। चातुर्मास मे आपको श्वास का प्रकोप हो गया जिसके कारण भाद्रपद शुक्ला १४ को आपका स्वर्गवास हो गया। हमारे चरितनायक जी श्री पन्नालाल जी महाराज ने गुरुदेव को अन्तिम समय मे हर प्रकार का आध्यात्मिक सहयोग दिया, जिस कारण संलेखना-संथारा युक्त समाधिमरण की कृतार्थता उन्हे प्राप्त हुई। श्री धूलचन्द जी महाराज के स्वर्गवास के पश्चात् सम्प्रदाय मे आपसे वड़े

अन्य कोई सन्त नही रहे, अत· विधि रूप मे भी शासन सूत्र आप श्री को ही सभालना पडा।

आप श्री ने वि० स० १९८७ का स्वतन्त्र चातुर्मास मसूदा मे स्वीकार किया। मसूदा के राव साहब श्री विजयसिंह जी आपके परम भक्त नरेश थे। आपकी प्रेरणा से उन्होंने मसूदा ठिकाने मे सभी जलाशयो व सार्वजनिक स्थानो पर जीव-हिंसा न करने के पट्टे लगवा दिये थे। जिसका उल्लेख पहले किया जा चुका है।

गुरुदेव श्री के प्रवचन प्राय· सार्वजनिक होते थे। उनमे धार्मिकता के साथ सामाजिक एव राष्ट्रीय चेतना का स्वर भी मुखरित रहता था। वे मनुष्य को सम्प्रदाय के दायरे मे नही बाँधकर विशुद्ध धर्माचरण की प्रेरणा देते जिस कारण जैन-अजैन अग्रवाल, माहेश्वरी, राजपूत, जाट (किसान) और अन्य सभी वर्गो के लोग विशाल सख्या मे प्रवचन सभा मे उपस्थित होते थे।

तुलसा-बिन्दौली

चातुर्मास मे आश्विन-कार्तिक मास मे आप रात्रि मे प्रवचन करते थे। दिन मे अपने-अपने कार्यो मे व्यस्त रहने वाले भावुक लोग रात्रि को निवृत्त होकर शान्तिपूर्वक प्रवचन श्रवण का लाभ लेते थे। आपका प्रवचन जैन मन्दिर के नीचे होता था। सभा-स्थल मे हजारो नर-नारी खचाखच भरे रहते थे। पीछे भी अनेक श्रोता खडे-खडे प्रवचन सुना करते थे। रात्रि-प्रवचन मे आपका मुख्य विषय 'रामायण' था। मर्यादा पुरुषोत्तम राम के आदर्श जीवन को प्रतीक बनाकर आप जनता को कर्तव्य की प्रेरणा दिया करते थे।

चातुर्मास के आनन्द और प्रवचन के सरस प्रवाह मे जनता आकण्ठ निमग्न थी। साढे तीन महीने क्षण जैसे व्यतीत हो गये। कार्तिक मास का शुक्लपक्ष चल रहा था। वैष्णव समाज मे इन दिनो 'तुलसा-विवाह' का कार्यक्रम प्रारम्भ हुआ। विवाह मे जिस प्रकार बिंदौली निकलती है, उसी प्रकार तुलसा जी की भी बिंदोली रात को बडी धूम-धाम से निकलने लगी।

कार्तिक शुक्ला अष्टमी की रात्रि को गुरुदेव का रामायण के 'आदर्श चरित्र' पर भावपूर्ण प्रवचन हो रहा था। उपस्थित हजारो की जन मेदिनी भाव-विभोर होकर सुन रही थी। उसी समय तुलसा जी की बिन्दौली भी वहाँ होकर निकली। बाजे बज रहे थे और भक्तजन नाच रहे थे। बिन्दौली जैसे ही सभास्थल के पास आई तो वही रुक गई और खूब जोर से बाजे बजने लगे। फलस्वरूप ही श्रोताओ को प्रवचन सुनने मे व्यवधान हुआ। पर, कुछ लोग शान्त रहे। कुछ लोगो को यह व्यवधान अखरा। एक बन्धु ने उन सज्जनो से कहा "इससे हमे व्याख्यान सुनने मे बाधा होती है, आप यहाँ पर बाजे न बजाये, बिन्दौली को जल्दी आगे ले जाये तो ठीक हो'।" परिणामस्वरूप उस समय बाजे बन्द कर दिये गये।

जिस समाज मे विश्वामित्र और वशिष्ठ होते हैं, उसमे 'नारद' भी मिल ही जाते हैं। कलहप्रिय व्यक्ति हमेशा ऐसे अवसरो की ताक मे ही रहते हैं कि दो दलो, दो सप्रदायो मे कुछ झगडा हो तो उन्हे मजा आये। शाति और प्रेम उनके लिए शोक का प्रसग होता है, झगड़े-फिसाद का प्रसग ही उनके लिए पर्व और आनन्द का अवसर होता है। वैष्णव समाज के कुछ नारद व्यक्तियो ने अव यह मौका देखा। वे जनता मे यह भ्रामक प्रचार करने लगे "जैनो को हमारे धार्मिक रीति-रिवाज पसन्द नही है, उनके मन मे ईर्ष्या है, जलन है, और वे हमारी धार्मिक गरिमा को नीचा करना चाहते हैं। इसीलिए तो तुलसा-विन्दौली वन्द करने को कहा और अव जुलूस निकालने पर भी आपत्ति करते हैं।"

इस प्रचार का धर्म-प्रेमी जनता पर असर होना ही था, उनका धर्मोन्माद जाग उठा, वे जोश मे आकर बोले "हम अपने धर्म पर यह अन्याय नही सहन कर सकेंगे, भले ही हमारा रक्त वहे, सर फूटे या कुछ भी हो, किन्तु जैनो का यह अत्याचार वर्दाश्त नही करेंगे।" वस, वात का वतगड वन गया। तिल का ताड वनाने वाले लोगो ने नगर का वातावरण क्षुब्ध व उत्तेजनापूर्ण वना दिया।

गुरुदेव श्री के कानो तक नगर की यह हलचल पहुँची। धर्मान्ध और कलह-प्रिय लोगो की मूर्खता-भरी इन वातो से गुरुदेव का हृदय भी कुछ खिन्न हुआ, पर साथ ही इन अज्ञान लोगो की स्थिति पर उनके कोमल हृदय मे करुणा भी उमड आई। कुछ क्षण तक पूरी परिस्थिति पर गम्भीरतापूर्वक विचार किया और फिर नगर के उन वैष्णव वन्धुओ को बुलाया, जिनके अत्याग्रह पर ही बाजार मे रामचरित्र का व्याख्यान प्रारम्भ किया था। गुरुदेव ने उनसे कहा आप लोग अपने समाज के प्रतिनिधि हैं। आपके चाहने पर हमने रामचरित्र पर सार्वजनिक व्याख्यान देना आरम्भ किया। रामायण मे राम के आदर्श जीवन का ही प्रकरण है। हम वास्तव मे राम की यशोगाथा का गान करते हैं, और इधर तुलसा जी की बिन्दौली भी उसी से सम्वन्धित है। अत: मेरे विचार में दो-चार दिन जव तक तुलसा जी की विन्दौली चल रही है, व्याख्यान वन्द रखा जाये तो ठीक रहेगा। यह कार्यक्रम पूर्ण होने के पश्चात् पुन· व्याख्यान प्रारम्भ किया जा सकता है।'

नगर के प्रमुख वैष्णव वन्धुओ ने गुरुदेव से प्रार्थना की—"ऐसी कोई बात नही है। फिर आपका मधुर और प्रेरणादायी प्रवचन सुनने को दूर-दूर से सैकडो ग्रामीण वन्धु भी आते हैं। सभी को प्रवचन रुचिकर लगता है, इसे बन्द नही करायेंगे।"

गुरुदेव प्रवचन प्रेरणाप्रद है, यह तो ठीक है किन्तु समाज मे उसे कारण बनाकर मनमुटाव व साम्प्रदायिक भेदभाव पैदा करने की कुचेष्टा की जा रही है, यह मुझे कतई पसन्द नही है। मैं ऐसा नही चाहता कि एक शातिप्रिय समन्वय धर्मी सत को लेकर जैन-वैष्णव का भेदभाव खडा करने की कोशिशे हो·

सभी वन्धुओ ने गुरुदेव को विश्वास दिलाया कि हम वातावरण को विगडने नही देंगे। दोनो ही सम्प्रदायो मे परस्पर प्रेम-भाव का जो वातावरण वना है उसे स्थिर रखेंगे,

रहा, तुलसा जी की बिन्दौली का प्रश्न, तो व्याख्यान समाप्त होने के पश्चात् बिन्दौली निकल जायेगी।"

मसूदा के राव साहब भी गुरुदेव के भक्त थे, वे उन दिनो बाहर थे, और राज-काज तहसीलदार भूरालाल जी पुरोहित ही चला रहे थे। नगर के गर्म वातावरण की उनको भी सूचना मिली। गुरुदेव के कार्यक्रम मे किसी भी प्रकार की बाधा उपस्थित हो यह उन्हें कतई बर्दाश्त नही था। कुटिल लोगो की चाल वे समझ रहे थे, अत उन्हे अपने कार्यालय मे बुलाकर जरा डाटा-डपटा और बिन्दौली बन्द रखने का सरकारी आदेश दे दिया।

म्याऊँ के सामने कौन चू करे! वहाँ तो सभी भीगी बिल्ली बन गये, और बिदौली बन्द रखने पर सहमति देकर आ गये। किन्तु इस आदेश से उनके मन मे विद्वेष की आग और अधिक भडक उठी। साधारण जनता को भी बरगलाना शुरू किया "देखो, जैनो ने हमारा धार्मिक उत्सव भी बन्द करवा दिया है।" बस, धर्म खतरे मे, का नारा लगा और जनता भडक उठी। फल यह हुआ कि सरकारी आदेश की अवज्ञा कर बिदौली निकालने का निर्णय हुआ, और सैकडो लोगो को धर्म की रक्षा के लिए लाठी आदि शस्त्रो से सज्ज कर दिया गया। ईंट का जवाब पत्थर से देना भी कुछ बात होती है, किन्तु बिना ककर उठाये ही गोली चलाने की बात कितनी मूर्खतापूर्ण है? सामान्य जनता को इसी मूर्खता की राह पर चलने को विवश किया जा रहा था।

नगर की इस विषम परिस्थिति से जैन समाज भी बेखबर नही था। कुछ लोग घबराये हुए से गुरुदेव के पास आये और बोले महाराज! अब क्या होगा?

गुरुदेव ने उनको आश्वस्त करते हुए कहा आप लोग घबराते क्यो हैं? समस्या उलझने पर उसका कोई-न-कोई हल भी निकलेगा ही। सबसे पहली बात यह है कि यह हमारी नही, किन्तु आप लोगो के धीरज और विवेक की परीक्षा का समय है। आप सब शांत रहे, विचलित न हो और सब कुछ तटस्थ भाव से देखते रहे। हम द्वेष और विरोध फैलाना नही चाहते तो कोई दूसरा चाहे जितना प्रयत्न करे, हमे उसमे घसीट नही सकता। मुझे मालूम है, वातावरण काफी दूषित हो गया है, स्थिति काफी विस्फोटक बन रही है लेकिन हमे पानी बनकर रहना है।

गुरुदेव श्री ने स्थानीय जैन समाज को पूर्ण अनुशासित रहकर सयम से काम लेने की शिक्षा दी। फिर वे एकान्त मे बैठकर स्थिति पर चिन्तन करने लगे। उन्हे बडा आश्चर्य हो रहा था, जिस जनता के प्रति उनके मन मे सदा ही स्नेह, प्रेम और उपकार की पावन धारा बहती रही, वह अकारण-द्वेषी बनकर हिसा और तोड-फोड पर उतारू हो रही है, यह कितनी विचित्र बात है। किन्तु यह सच है कि सत्य हमेशा कडवा होता है। दूसरो के रुष्ट-तुष्ट होने की परवाह किये बिना जो सत, भलाई और सुधार की बात करता है उसे इस प्रकार के सघर्षों और तूफानो का सामना करना पडता ही है। भगवान महावीर ने जिन लोगो के कल्याण के लिए प्रयत्न किया है उनमे से किसी ने

उन पर पत्थर फेंके, किसी ने उनके पीछे शिकारी कुत्ते लगाये तो किसी ने उन पर क्रूर प्रहार किये। इतिहास का यह कटु सत्य है कि साधु जीवन मे, और विशेषकर उन साधुओ के जीवन मे, जिन्होंने समाज-सुधार का बीडा उठाया, जो मानवता के नव-जागरण का झडा लेकर चले उन्हे इस प्रकार के सत्रास और अपमान भोगने ही पड़े, वास्तव मे ये कठोर प्रसग उनके धीरज, धर्म और विवेक की परीक्षा की कसौटी सिद्ध हुए हैं। आज भी एक सुधारक सत की अग्नि-परीक्षा का समय है फिर घबराने की तो बात ही क्या थी।

कहा गया है

> घृष्टं घृष्टं पुनरपि पुनश्चन्दनं चारुगन्ध,
> छिन्न छिन्नं पुनरपि पुन स्वादु चैवाक्षुदण्डम्।
> तप्त तप्तं पुनरपि पुनः काञ्चनं कान्तवर्णं,
> व्याघातेऽप्युज्ज्वलति हि महा मानवानां महत्त्वम्।

बार-बार घिसा जाने पर भी चन्दन सुगन्ध देता है, टुकड़े-टुकड़े किये जाने पर भी इक्षुखड मधुरता ही देता है। सोना बार-बार अग्नि मे डालने पर भी और अधिक निखरता है। महामानव बार-बार विघ्नो से लडकर ही जीवन मे अत्यधिक गौरवास्पद होते हैं।

इस प्रकार दिन हलचल और क्षोभ भरे वातावरण मे गुजर गया। संध्या हुई। रात का गहन अन्धकार काली चादर की भाँति पृथ्वी पर छा गया। व्याख्यान के समय पर मुनि श्री प्रवचन सभा मे पहुँचे। अन्य दिनो से आज उपस्थिति कुछ अधिक थी और श्रोताओ मे उत्सुकता व अकुलाहट भी। गुरुदेव ने सदा की भाति शांत एव स्थिर चित्त के साथ व्याख्यान प्रारम्भ किया। उनकी वाणी मे वही गर्जना और वही स्थिरता थी। रामचरित के प्रसग को लेकर उन्होने राम की सहिष्णुता और धैर्य की अभ्यर्थना करते हुए श्रोताओ को उस आदर्श पर चलने की सबल प्रेरणा देना प्रारम्भ किया।

लगभग आधा घन्टा हुआ होगा कि तुलसा जी की बिंदौली के बाजे धूम धमाका करने लगे। आज की बिन्दौली भी आम दिनो की भाँति निकलने वाली साधारण बिन्दौली नही थी, उसकी सजावट कसावट कुछ विशेष थी और उसके साथ लगभग पाँच सौ लट्ठधारी युवक चल रहे थे किसी विशेष तैयारी के साथ

बिन्दोली व्याख्यान स्थल पर आ पहुँची, बड़ी धूमधाम से बाजे बज रहे थे। उत्तेजना और तनाव की स्थिति अपनी चरम बिन्दु पर पहुँच चुकी थी, यही क्षण घटना का निर्णायक क्षण था, और अहिंसा व शांति-प्रेमियो के धैर्य व धर्म की परीक्षा का काल था। ऐसी उत्तेजनापूर्ण स्थिति मे मस्तिष्क का सन्तुलन खो देने से व जोश मे आ जाने से हजारो व्यक्तियो के सिर फूटने व कितने ही निरपराधो के धराशायी हो जाने की सभावना थी। साम्प्रदायिक द्वेष की आग प्रचण्ड होकर धधकने की पूरी सभावना बन रही थी, प्रतीक्षा थी इस सूखी घास को कोई चिनगारी दिखा दे या पानी बनकर बर्षे पड़े।

गुरुदेव श्री ने स्थिति का जायजा ले लिया। उनके चेहरो पर हिंसा, द्वेष और प्रतिशोध के भाव उभर रहे थे। हाथो मे लाठियाँ चमक रही थी। शस्त्रो से शस्त्र भिडने मे कोई देर नही थी, किन्तु देर थी शस्त्र से अशस्त्र की लडाई मे, आग से जूझने के लिए पानी बरसने मे। हिंसा की लपलपाती चडालिनी को विजय करने गुरुदेव ने अहिंसा का मत्र पाठ प्रारम्भ कर दिया। सबसे पहले आपने श्रोताओ से कहा

"आप सब लोग शांत रहेंगे, कोई भी कुछ न बोलेगा। बिंदोली निकालने वाले भी आपके भाई-बद हैं, भाई-भाई के साथ झगडना शोभा नही देता। आप महाभारत नही, रामायण सुन रहे हैं, भाई-भाई के प्रेम की कहानी आपको सुनाई जा रही है। भाई यदि अपने भाई के साथ अभद्र, अशिष्ट और अप्रिय व्यवहार भी करे तो भी उत्तेजित नही होना, उसका अहित न सोचना, यह भाई का कर्तव्य है। मुझे पूरा विश्वास है आप लोग भाई के इस आदर्श को आज सजीव करेंगे।"

तब तक पाँच सौ शस्त्रधारियो के साथ उत्तेजित भीड बिंदोली के रूप मे गुरुदेव श्री के प्रवचन मच के बहुत नजदीक आ गई थी। बाजो का कर्णभेदी कोलाहल गगन को भेद रहा था। उत्तेजित लोग नाच-नाच कर गा रहे थे, और गाना गाने मे तानाकशी भी करते जा रहे थे। गुरुदेव मौन थे, सभा शांत थी। भले ही श्रोताओ के हृदय सागर मे तूफान उठ रहा हो, पर ऊपर से सब शांत थे सिनेमा घर मे बैठे मूक दर्शको की भाँति।

लगभग ३० मिनट तक उस भीड ने खूब शोरगुल मचाया, बाजे बजे, नाच-गाने होते रहे, पर उस नाच-गान मे भक्ति की बजाय, उन्माद और पर-पीडन की भावना ही अधिक थी, किन्तु वह सफल कैसे हो पाती ? एक हाथ से ताली नही बजती। समुद्र मे फेंका हुआ ककर-पत्थर आवाज नही करता। उसी प्रकार गुरुदेव एव सभागत श्रोताओ की ओर से उस प्रदर्शन एव उत्तेजनापूर्ण नृत्य का कोई भी प्रत्युत्तर नही दिया गया। उनकी लाठियाँ झुकी ही रही और भुजाओ की खुजली भी नही मिटी। कुटिल जनो की सिर फुटौवल करने की चाल असफल हो गई। उनके बुरे इरादो पर पानी फिर गया। उदास, बेबस और मन-ही-मन बुदबुदाते वे लोग थके-हारे आखिर आगे चले गये। क्रोध पर क्षमा की विजय दुदुभि बज उठी। अविवेक का राक्षस विवेक देवता के समक्ष टिक नही पाया।

इस घटना का उपस्थित जनसमूह पर तो अद्भुत प्रभाव पडा ही, किन्तु बिंदोली मे आने वाले सैकडो सज्जनो की धूमिल सज्जनता पुन उज्वल हो उठी। उनके हृदयो मे भी भारी पश्चात्ताप हुआ, एक महान् सत को हमने व्यर्थ ही परेशान और पीडित किया। उनकी कटुता अब भक्ति मे बदलने लग गई और कुटिल कलहप्रिय लोगों को पूरा नगर थू-थू कर दुत्कारने लगा और गुरुदेव की शांति-सहिष्णुता का मुख-मुख पर जयगान होने लगा। एकादशी को तुलसा जी का विवाह कार्यक्रम भी सपन्न हो गया। और अब सैकडो वैष्णव भाई तथा नगर के अन्य नागरिक गुरुदेव के प्रवचन सुनने आये। सभी के

मुँह पर गुरुदेव की दीर्घदृष्टि, विवेकशीलता और अद्भुत सहिष्णुता की महिमा मुखर हो रही थी।

गुरुदेव ने जनता को सम्बोधित कर कहा क्षमा ही मनुष्य को महान बनाती है, कायर और मूर्ख व्यक्ति क्षमा नही कर सकता। **'क्षमा वीरस्य भूषणं'**—के अनुसार यह स्पष्ट ही है कि वीर ही क्षमा कर सकता है, वही प्रतिकूल परिस्थितियो मे आत्म-सयम रख सकता है, विकट से विकट परिस्थिति मे भी अपना ज्ञान दीपक, विवेक की ज्योति प्रज्वलित रखकर वह ज्योति-पथ पर अविरल चलता रहता है। जैनो ने क्षमा के आदर्श को जीवन मे उतारा है इसका प्रमाण आप परसो देख ही चुके होगे, मैं अपने सभी वन्धुओ से इस वीर-धर्म को अपनाने की प्रेरणा देता हूँ।

क्षमा के बाद जीवन मे भक्ति का स्थान है। प्रतिकूल स्थितियो मे मनका सतुलन बनाये रखने मे क्षमा जितनी सहायक है भक्ति भी उतनी ही बलप्रदा है, भक्ति हमे आत्म-रमण की ओर खीचती है, इष्टदेव के प्रति सर्व समपर्ण करने की शक्ति प्रदान करती है। भक्त अपना अस्तित्व प्रभु मे विलीन कर देता है। मैं अपने वैष्णव बन्धुओ से कहना चाहता हूँ कि उन्होने दो दिन पूर्व इस सभास्थल पर जिस प्रकार की उदग्र भक्ति का प्रदर्शन किया, भजन मे जिस तल्लीनता और मस्ती का परिचय दिया यदि वैसी भक्ति उनके जीवन मे, अन्तर मन मे समा जाये तो आत्म-कल्याण का द्वार ही खुल जाय।"

गुरुदेव श्री के इस मधुर भाषण से श्रोता दंग रह गये। जिस अवाछनीय घटना पर सबको रोष-क्षोभ आया था और वे गुरुदेव से भी यही सुनने की प्रतीक्षा कर रहे थे, वहाँ उसी घटना को लेकर रोष के स्थान पर तोष, क्षोभ के स्थान पर प्रशसा करते हुए गुरुदेव को देखकर वे भाव-विभोर हो उठे। यही तो सत का स्वभाव है **'विषादप्यमृतं ग्राह्यं अमेध्यादपि कांचनं'** विष मे से भी अमृत खींचना और गन्दगी से भी सोना ग्रहण करना यही तो है सत जीवन का चमत्कारी स्वभाव!

गुरुदेव के भाषण ने चमत्कार दिखाया। प्रदर्शन का आयोजन करने वाले और उसमे भाग लेने वाले लोग मन-ही-मन लज्जित हो उठे। पश्चात्ताप की प्रबल हुँकार ने उनकी मानवता को जागृत कर दिया। वे उसी सभा के बीच उपस्थित होकर गुरुदेव से क्षमा मागने लगे महाराज! हमारी नादानी ने एक भयकर वातावरण का निर्माण कर दिया था, मगर आपने अपूर्व सहिष्णुता शाति और विवेकशीलता का परिचय देकर हमे एक अक्षम्य अपराध से बचा लिया, अन्यथा कितने मनुष्यो के सिर फूट जाते, कितना नर रक्त बहता।

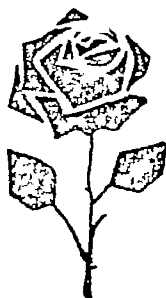
आपकी शांति ने हमारे अन्तर हृदय को बदल दिया है, हमारे हिंसा दैत्य को अहिंसा की देवी के चरणो मे झुका दिया है—हम आप से क्षमा मागते हैं, हमारा अपराध अक्षम्य है, आप जो चाहे हमे दण्ड दें।

गुरुदेव श्री ने वैष्णव बधुओ को सम्बोधित कर इतना ही कहा खैर, आप लोगो ने जो किया मैं उसके मूल मे भी आपकी भक्ति-प्रेरणा ही मानता हूँ, फिर भी आप दण्ड

की बात करते हैं तो दण्ड भी देना ही चाहिए पर यह दण्ड व्यक्ति को न देकर उस अहकार और द्वेष के दैत्य को मिलना चाहिए जिसने आप लोगो को भटका दिया था, इसके लिए मैं यही चाहता हूँ कि आपके नगर मे जैन-वैष्णव साथ-साथ रहते है, दोनो ही भाई-भाई हैं, पर कुछ कारणो से मनो मे मालिन्य और विचारो मे तनाव आ गया है, उसे मिटा कर प्रेम का वातावरण निर्माण करें, एकता और बधुता की भावना जगायें यही दण्ड आपके लिए उपयुक्त होगा…!

गुरुदेव की प्रेरणा से दोनो समाज का वर्षों पुराना मनोमालिन्य धुल गया, द्वेष और अहकार की गांठे खुल गईं। तेरा-मेरा का जहर समाप्त हो गया और पुन नगर मे प्रेम, एकता और बधुता की मधुर शीतल पवन ने जन-जीवन को आनन्दित बना दिया।

यही तो है सतो की महिमा। जहाँ आग बरसने वाली है वहाँ शीतल जलधारा बहा देते हैं, जहाँ नर-रक्त की होली जलने वाली हो, वहा प्रेम की वृष्टि कर देते हैं। गुरुदेव श्री ने ऐसे अनेक अलौकिक कार्य किए जिनमे उक्त घटना का ऐतिहासिक महत्व सम्पूर्ण मानवता के लिए वरदान रूप मे स्मरण किया जाता रहेगा।



१४

धर्माधिकारी का दायित्व



विश्व मे प्रत्येक धर्म मानव-समाज मे आई हुई विकृतियो- बुराइयो और अनिष्टो को मिटाने के लिए आता है। गाधीवादी तत्व-चिन्तक श्री किशोरलाल मश्रुवाला के शब्दो मे, धर्म का लक्षण ही यह है, 'जो समाज का धारण, पोषण और सत्व-सशोधन करता हो।' इस परिभाषा के अनुसार यह स्वाभाविक है कि धर्म आपस मे होती हुई सिरफुटौव्वल को रोके, कलह-सघर्ष और विवादो का अन्त करे और मनुष्यो के टूटे हुए या टूटते हुए दिलो को जोड़े। जहाँ कही भी, किसी भी कारण से अशान्ति पैदा हो रही हो, आपस मे मनमुटाव होने से लोग अदालतो मे हजारो रुपये फूक कर, वकीलो के चक्कर मे पडकर, सत्य-असत्य की मर्यादा को लांघ कर वर्षो तक आपस मे मुकद्मा लड रहे हो, वहाँ धर्म का यह दायित्व हो जाता है कि उस अशांति की आग को बुझाये, मुकद्मेबाजी से जनता को बचाकर आपस मे सुलह कराए, विवाद आपस मे निपटाकर दिल मे हुए घावो पर सान्त्वना की मरहमपट्टी करे।

धर्म का काम यह नही है कि जनता को परस्पर लड़ाए-भिडाए और तमाशा देखता रहे। वह धर्म, धर्म नही है, जो बढती हुई सघर्ष की आग को खडा-खड़ा देखता रहे, समाज मे बढते हुए पारस्परिक झगड़े को देखकर उपेक्षा करदे या उदासीन बन कर चुपचाप रहे। जो धर्म बहन-बेटियो पर अत्याचार होते देख कर या गरीबो पर अन्याय होते देखकर अथवा परस्पर सघर्ष होते देख कर हाथ-पर-हाथ धरे बैठे रहने की आज्ञा देता है, वह धर्म कायरो और स्वार्थियो का धर्म है। ऐसा धर्म देवलोक के देवो या नरक के निवासियों के लिए कदाचित् उपयोगी हो सकता है, परन्तु मानवलोक के निवासियो के लिए वह किसी भी काम का नही है। इसीलिए ऐसे धर्म को कार्लमार्क्स ने 'अफीम' की सज्ञा दी थी, जो मनुष्यो को साम्प्रदायिकता का नशा चढा कर या जाति, कौम या सम्प्रदाय की उत्कृष्टता की शराब पिलाकर आपस मे लड़ा-भिडादे, मगर लडते हुए लोगो को शान्त न कर सके।

सचमुच धर्म अमृत की तरह मानवजाति को सजीवित करने वाला, लड-भिड कर नष्ट होने से बचाने वाला, आपस मे भ्रातृत्व और बन्धुत्व से रहना सिखाने वाला है। इसकी आवश्यकता मनुष्य जाति को सदा-सदा के लिए रही है, और रहेगी।

परन्तु धर्म अपने-आप कोई सचेतन व्यक्ति न होने से धर्म का जो भी दायित्व है, वह आता है धर्म के पालन करने वाले धर्म-धुरधरो पर, धर्म के सर्वोच्च आचरण करने वाले धर्मात्माओ व धर्म-गुरुओ के कधो पर।

'न धर्मो धार्मिकैविना' अर्थात् धर्मात्माओ के बिना धर्म रहता नही, टिकता नही। युग-युग मे ऐसे धर्मधुरीणो ने धर्म के पूर्वोक्त दायित्वो का बखूबी निर्वाह किया है, उन्होने समय-समय पर परस्पर सघर्परत मानवो को एकसूत्र मे जोडा है और कलहपरायण एव क्रुद्ध इन्सानो को लडते हुए रोक कर शान्ति का पाठ पढाया है, टूटे हुए दिलो को प्रेम के सूत्र से जोडा है और धर्म की महिमा बढाई है। उन्होने इस प्रकार के महत्त्वपूर्ण शान्ति के कार्य करके भी उसका श्रेय स्वय न लेकर धर्म को ही दिया है। स्वय निरभिमानी, नम्र, नि.स्पृही और निर्मोही रहे हैं।

धर्म के इन सब दायित्वो को निभाने वालो मे से एक थे हमारे चरितनायक श्री पन्नालालजी महाराज। आप जब भी यह सुन लेते कि अमुक जगह दो पार्टियाँ बन गई हैं, अमुक जगह लोगो मे परस्पर मनमुटाव, खीचातानी, सघर्ष और मुकद्दमेबाजी है, उसके कारण अशान्ति बढ रही है तो आप शीघ्र ही वहाँ पहुँच जाते और अपने त्याग, तप, वचन और व्यक्तित्व के प्रभाव से दोनो पक्षो का समाधान करके आपस मे सुलह और शान्ति स्थापित करा देते। इतना सब कराने के बावजूद भी आप उसका श्रेय स्वय न लेकर धर्म को ही देते। आपके साधु-जीवनकाल मे ऐसी अनेको घटनाएँ घटित हुई हैं, जिनमे आपने धर्मधुरधर बन कर धर्माधिकारी का दायित्व निभाया है, पारस्परिक झगडो को मिटा कर।

दो धड़े मिट कर एक हुए

इसका एक ज्वलन्त उदाहरण वि० सवत् १९८७ के मसूदा चातुर्मास मे जैनो और वैष्णवो के बीच तुलसा-विवाह के निमित्त निकाली जाने वाली बिंदौली को लेकर होने जा रहे उग्र कलह को गुरुदेव श्री द्वारा सहिष्णुता और शान्ति से निपटाने का था। इसी चातुर्मास मे गुरुदेव श्री के निमित्त से एक और झगडा शान्त हुआ।

बात यह थी कि मसूदा मे माहेश्वरी समाज मे किसी छोटी-सी बात को लेकर वर्षो से परस्पर वैमनस्य चला आ रहा था। असल मे वैमनस्य का बीज बहुत ही सूक्ष्म होता है, परन्तु समाज के कुछ पदलोलुप या निहित स्वार्थी लोग उसे बढावा देते रहते हैं। यही बात इस मामले मे थी। कुछ निहित स्वार्थी एव पदप्रतिष्ठालोलुप लोगो ने अपने-अपने पक्ष के लोगो को उभारना शुरू किया। इस कारण बाजी सुधरने के बजाय, बिगडती ही चली गई। और अन्त मे माहेश्वरी समाज मे दो धड़े (गुट) हो गये। दोनो धडो मे यदा-कदा विवाह-शादी या अन्य पर्वो, या उत्सवो पर ठन जाती थी।

दोनो पक्षो के अगुआ लोग स्वार्थलिप्त होकर उस फूट को और ज्यादा प्रोत्साहन देते रहते थे। दोनो पक्षो के दिलो मे वैमनस्य की आग घर कर चुकी थी। जो भी शान्त करने जाता, उसे दोनो पक्ष के नेता उलटी-सीधी सुनाकर हतोत्साहित कर देते थे।

गुरुदेव श्री के कानो मे दोनो पक्ष के कुछ सरल-हृदय लोगो ने आकर इस झगड़े को शात करा देने के लिए प्रार्थना की। गुरुदेव ने दोनो पक्ष के अगुआओ को अलग-अलग बुलाकर सारी बातें उनसे सुनी। दोनो पक्षो की एक-दूसरे के प्रति शिकायत केवल अपने अह की थी। गुरुदेव ने दोनो की नब्ज टटोल ली। और दोनो पक्षो के नेताओ से कहा "भाइयो! बात मामूली-सी है। तुम दोनो मेरे समक्ष पहले यह प्रतिज्ञा कर लो कि मैं जो फैसला दूँगा, उसे हम मान्य करेगे।"

दोनो पक्ष के अग्रगण्यो को गुरुदेव पर पूरा विश्वास था। वे इस चातुर्मास मे गुरुदेव की धीरता, गभीरता सहनशीलता, शान्तिपरायणता एव प्रवचनपटुता से प्रभावित हो चुके थे। अत. दोनो पक्ष के अगुआओ ने खड़े होकर हाथ जोड कर स्वीकार किया कि आप जो भी फैसला देंगे हम उसे सहर्ष स्वीकार करेगे और उसका पालन करेंगे।" वस, अव क्या था! संवत् १९८७ के चातुर्मास की समाप्ति पर आपने निष्पक्ष न्याययुक्त फैसला दे दिया। फैसला सुनकर दोनो पक्षो मे हर्ष की लहर फैल गई। दोनो धड़े के लोग एक-दूसरे को गले लगा कर मिले। एक-दूसरे के यहां भोजन किया। और इस तरह यहाँ के माहेश्वरी समाज मे वर्षों से चल रहे वैमनस्य को आपने अपने प्रभाव से मिटा दिया। कषायो की भडकी आग को कुशलता-पूर्वक शान्त किया।

यह था आपका धर्माधिकारी के रूप मे दायित्व निर्वाह का नमूना!

वास्तव मे इस प्रकार की पारस्परिक शान्ति स्थापित करने का कार्य वडा कठिन है। इसे वही साधक सफलतापूर्वक सम्पन्न कर सकता है, जिसमे युक्ति, लगन वाणी और तप का प्रभाव हो। गुरुदेवश्री पन्नालालजी महाराज इस कार्य मे सिद्धहस्त थे। उन्होंने अपने जीवन-काल मे कई जगह वड़े-वड़े पेचीदा झगड़े वात-की-वात मे मिटा दिये थे।

ऐसी ही एक घटना कवलियास गाँव की है। सवत् १९९२ का चातुर्मास भीलवाडा मे विता कर आप श्री विचरण करते-करते कवलियास पधारे। आप जहा भी पधारते, लोगो मे नवचेतना जागृत हो जाती। आपकी धाक और वाणी की तेजस्विता चुम्बक की तरह इतनी अद्भुत थी कि लोग वरवस खिचे चले आते थे। कवलियास की भावुक जैन-जैनेतर जनता ने आपका भावभीना स्वागत किया। परन्तु जैन लोगो के चेहरो पर मायूसी छाई हुई थी। वे अन्यमनस्क-से होकर आपश्री के प्रवचन सुनने आते थे। गुरुदेव श्री मानवमन के पारखी थे। उन्होने लोगो के चेहरो पर से भाप लिया कि यहाँ कुछ-न-कुछ दाल मे काला है। अत दूसरे ही दिन गुरुदेव श्री ने प्रवचन के वाद कुछ अगुआ लोगो को एकान्त मे बुलाकर पूछा—"भाइयो! गुरुओ के सामने झूठ

बोलना और उनसे कोई बात छिपाना महापाप है। मैं आपसे जो कुछ भी पूछूँ उसके बारे मे सच-सच बताओगे न ?"

वे बोले "हा, गुरुदेव ! जो भी बात होगी, हम आपसे सत्य कहेगे। आप गुरु है, आपके सामने हम झूठ नही बोलेंगे।"

गुरुदेव "तुम्हारे चेहरो पर से ऐसा लगता है कि तुम्हारा उत्साह बहुत ही मद पड गया है। तुम्हारे चेहरो पर कोई रौनक, कोई प्रसन्नता या कोई उमग नही दिखाई देती। व्याख्यान मे भी तुम लोग बहुत थोडे-से आते हो। व्याख्यान सुनते भी हो तो सूने मन से। ऐसी क्या बात हो गई, जिससे तुम लोग इतने उत्साह-हीन हो रहे हो ?"

श्रावक लोग गुरुदेव ! आपका अनुमान सही है। हम लोग कई वर्षो से इस प्रकार अनमने से और बुझेदिल के हो रहे है। इसका कारण यह है कि हमारे यहा वर्षो से समाज मे आपसी मनमुटाव के कारण दो धडे (गुट) पड़े हुए है। हमने बहुत प्रयत्न कर लिये, लेकिन यह झगडा किसी तरह नही मिटता है। इसी कारण न तो हमारा धर्म-कार्य मे उत्साह है, न किसी साधु-साध्वी का चौमासा कराने की कोई पहल करता है और न ही व्याख्यानादि-श्रवण मे ही हमारा चित्त लगता है। यहाँ तक कि विवाह, मृत्यु-भोज या अन्य किसी उत्सव प्रसग पर एक-दूसरे पक्ष के व्यक्तियो का एक-दूसरे के यहाँ जाना-आना तक भी बन्द है, परस्पर बोलना भी प्राय कम है। क्या करें, हमारा दुर्भाग्य है !"

गुरुदेव भाइयो ! अपने दुर्भाग्य का रोना क्यो रोते हो ? तुम्हे वीतरागदेव मिले हैं, निर्ग्रन्थ नि स्पृह धर्मगुरु मिले हैं, और उत्तम जैन-धर्म मिला है। प्रयत्न करने से सभी समस्याओ का हल निकल आता है। तुम लोग हतोत्साहित मत बनो। और इस वैमनस्य को आपस मे बैठ कर निपटा लो।"

श्रावक लोग—"गुरुदेव ! जाति-बिरादरी के पचो से यह झगडा निपट जाता, तब तो बात ही क्या थी ! हमारे साधारण आदमियो के परस्पर मिलकर बैठने से तो यह समस्या कतई हल नही होती। उलटे, पास मे बैठते ही व्यर्थ का वितडावाद बढा कर लोग झगड़े को उग्र रूप दे देते है। आप ही इस झगडे को शान्त कराने की कृपा करें। हमने सुना है कि आपने कई जगह जटिल से जटिल विवादो का सर्व स्वीकार्य समाधान कराया है। बडी कृपा होगी, यदि आप इस मामले को सुलझा दें। हम आपके बहुत ही एहसानमन्द होगे।"

गुरुदेव "देखो भाइयो ! प्रयत्न करना मेरा धर्म है। मैं शान्ति का उपासक हूँ और भरसक प्रयत्न करूँगा, जिससे तुम्हारे दोनो धडो (पक्षो) मे चल रहा आपसी मनमुटाव समाप्त हो जाय और तुम दोनो महावीर के पुत्र प्रेमभाव से मिल कर रहो।"

गुरुदेव श्री ने पहले तो दोनो पक्ष के लोगो से अलग-अलग बातचीत करके झगडा मिटाने के लिए समझाया। परन्तु यहाँ तो भेद (फूट) का पक्का रग लगा हुआ था, अभेद (प्रेम) होता कैसे ? कोई भी अपनी पकडी हुई बात छोडने को तैयार न था।

दोनो पक्ष के अगुआओ का प्राय. यही उत्तर होता अगर वे हमारी अमुक वात मान लें तो हम अपनी वात छोडने को तैयार है।" दोनो ही पक्ष के लोग अपनी जिद पर अड़े हुए थे। कोई भी अपनी पकडी हुई वात को विना शर्त छोडने को तैयार न था। आखिर गुरुदेवश्री ने सोचा कि इनके लिए रामवाण उपाय यही है कि ये लोग कुछ दिन लगातार व्याख्यान सुनें। तव कही जाकर इनके दिल-दिमाग मे एकता की वात जम सकती है। अत उन्होने दोनो पक्ष के अगुआओ तथा कुछ खास खटपटियो से कहा "मेरी एक वात मानोगे ?"

वे वोले "क्यो नही मानेगे ? अवश्य मानेंगे ! कहिए क्या वात है महाराज ?"

गुरुदेव "यह नियम लो कि जव तक मैं यहाँ रहूँ, तव तक किसी अनिवार्य कारण के विना प्रतिदिन व्याख्यान सुनना।"

सव लोग "गुरुदेव ! हम गृहस्थ हैं, कई इधर-उधर के काम आ जाया करते हैं, फिर भी हम आपको विश्वास दिलाते हैं, हम प्रतिदिन आपका व्याख्यान सुनने का प्रयत्न करेंगे।"

दूसरे ही दिन से गुरुदेव श्री के व्याख्यान मे प्रतिदिन अधिकाधिक संख्या मे दोनो पक्ष के भाई-वहन आने लगे। गुरुदेव अपनी ओजस्वी वाणी से संगठन पर प्रवचन देने लगे। दोनो ही पक्ष के लोगो पर आपके प्रवचन का सीधा असर होता था। एक दिन तो गुरुदेव ने प्रवचन मे यहाँ तक कह दिया कि जो अपने साधर्मी भाइयों के साथ छोटी-छोटी वातो को लेकर कलह करता है, वैमनस्य वढाता है और सघ मे फूट वनाये रखता है, एकता के लिए किये गये प्रयत्नो मे रोड़े अटकाता है, उसके सम्यक्त्व मे सन्देह है, वह एक प्रकार से सघ का द्रोही वनता है, और महापाप का भागी होता है। कई दफा अपनी-अपनी झूठी वात की पकड एव खीचातानी से महामोहनीय-कर्म बध जाता है। भाइयो ! अव तुम ही सोच लो कि तुम्हे अपने सम्यक्त्वरत्न को खोना है या रखना है ? जानवूझ कर पापकर्म मे पडना है या धर्म-कार्य मे उत्साहपूर्वक जुटना है ? अगर तुम्हे महादुर्लभ सम्यक्त्वरत्न को सुरक्षित रखना है और आपसी मनमुटाव एव अनैक्य के कारण ठप्प हुए धर्मकार्यो को उत्साहपूर्वक आगे वढाना है तो आज ही दोनो पक्षो (धडो) के अगुआ लोग मुझसे मिल कर परस्पर प्रेमभाव और शान्तिभाव स्थापित कर लो।"

गुरुदेव के ओजस्वी प्रवचन ने सवका हृदय झकझोर दिया। दोनो पक्षो के लोगो ने खड़े होकर व्याख्यान के वाद गुरुदेव की सेवा मे एकत्र होना एकस्वर से स्वीकार किया। फलत· व्याख्यान के वाद जैनस्थानक मे ही दोनो धडो के अगुआ लोग गुरुदेव की सेवा मे उपस्थित हुए।

गुरुदेव ने दोनो पक्ष के अग्रगण्यो को सम्वोधित करते हुए कहा "भाइयो ! तुम सव भाई-भाई हो, एक गाँव के होने के नाते भी और एक धर्म होने के नाते भी परस्पर भाई हो। तुम्हें पारस्परिक कलह या मनोमालिन्य चिरकाल तक रखना शोभा नही

देता। एक भाई की कदाचित् गलती हो जाय, तो उसे उस गलती को स्वीकार कर लेना चाहिए और दूसरे भाइयो को शीघ्र ही उसे क्षमा देनी चाहिए। किसी भी बात को गाठ बाँध कर लम्बे समय तक रखना या किसी क्रोध या मान को लम्बे समय तक टिकाये रखना अपने सम्यक्त्व-जीवन का या चारित्रिक-जीवन का अपने हाथो से गला घोटना है। इसलिए आज ही यही और अभी इस झगड़े को शान्त कर लो। क्यो तुम्हे मेरी बात यथार्थ लगती है न ?"

दोनो पक्षो के लोग "जी गुरुदेव ! आपकी बात हमे सोलहो आने सच्ची लगती है, हमे जँचती भी है, पर हमारे अकेले के करने से क्या होगा ?"

गुरुदेव "सभी, यो कहने लगेगे तब तो कोई भी अपनी बुराई को छोड कर अच्छाई को पकडने से रहा।"

कुछ लोग—"गुरुदेव ! तब फिर बताइए, हम क्या करें ? हमारी आत्मा को आपके उपदेश ने झकझोर दिया है। अब हमे समाज मे वर्षों से चली आ रही यह फूट खटकती है। अब तो एक दिन भी इसे टिकाये रखना हमे असह्य लगता है। हमारे गाँव पर और हमारे धर्म पर यह कलक का टीका है कि आप सरीखे नि:स्पृह त्यागी मुनिराज पधारें और हम एकता न करें।"

गुरुदेव "भाइयो ! मेरी एक बात मानो। अगर आप सब लोगो के दिलो मे मेरी बात बस गई है तो खडे होकर यहाँ उपस्थित सभी लोग परस्पर एक-दूसरे के पक्ष के लोगो से क्षमा माग लें, पिछली गलती, चाहे वह इस पक्ष से हुई हो या उस पक्ष से, रफा-दफा कर दे। पिछली सब बातो को भूल जाएँ और परस्पर एक-दूसरे से प्रेमभाव से मिलें। हृदय मे किसी प्रकार गाठ न रखें। और यह नियम ले कि आयदा हम कभी पिछली बातो को नही कुरेदेंगे और न ही शान्ति और सुलह के किसी काम मे रोडा अटकायेंगे।"

उपस्थित सभी लोगो ने गुरुदेव की बात मान ली और खड़े होकर उपर्युक्त नियम ले लिया, और परस्पर क्षमायाचना करली, अब क्या था ! गुरुदेव ने शीघ्र ही दोनो पक्षो मे सुलह करा दिया, जिससे दोनो पक्षो के लोगो को सतोष हुआ, वे परस्पर वात्सल्य भाव से एक दूसरे से गले लगा कर मिले।

सयोगवश एकता का यह मधुर-मिलन एव प्रसग जब सम्पन्न हो रहा था, तब एक भाई अनुपस्थित था। वही ज्यादा खटपटिया था। वह उस समय ब्यावर गया हुआ था। जब वह ब्यावर से लौट कर आया तब उसने लोगो से इस आपसी एकता की घटना सुनी तो मन ही मन बहुत तिलमिलाया। वह लोगो से कहने लगा "मैं इस सुलह को नही मानता, क्योकि इसमे एक पक्षीय न्याय हुआ है। हमारे पक्ष के प्रति न्याय नही हुआ है।"

जिन लोगो ने उदार हृदय से इस सुलह को मान्य किया था, उनके दिलो को वहुत ही धक्का लगा। वे उसे समझाने लगे "इसमे तुम्हारा क्या विगड गया ? इस एकता से तो समाज को फायदा ही है। फूट से समाज को वहुत हानि उठानी पडी है।"

वह वोला "क्या फायदा है इससे हमारे पक्ष को ! अव तो आए दिन दूसरे पक्ष के लोग हम पर चढ वैठेंगे और पहले की तरह नाको चने चववायेंगे। क्योकि उसी पक्ष के लोगो मे से ही अधिकतर पदाधिकारी चुने जाने की सम्भावना है, और तव उन्ही का ही वोलवाला होगा। हमे उनके आगे भीगी विल्ली की तरह दुम दवा कर चुपचाप रहना होगा। हमारी वात तो कही भी नही चलेगी। इसलिए मेरी गैरहाजरी मे हुए इस सुलह को मैं और मेरे धड़े के लोग मान्य नही करेगे।" उसके धड़े के कुछ लोगो ने समझाया "ऐसी वात नही होगी। अव तो दोनो धड़े एक हो गये हैं। जो जिस पद के योग्य होगा, वही चुना जायगा, फिर वह चाहे किसी भी धड़े का हो। दरअसल अव तो धड़े का सवाल ही नही रहा। जव धडा ही हमने तोड दिया है, तव अल्पसख्यक-वहुसख्यक का भी सवाल खत्म हो गया। और गुरुदेव के सामने नियम ले लेने पर अव न तो किसी के दिलदिमाग मे रजिश की वू रह गई है और न ही कोई पिछली वातो को दोहरा कर वदला लेने की भावना से कोई जघन्य कृत्य करेगा।"

इस पर वह तुनक कर वोला "तुम भले ही इस सुलह को मान लो ! मैं खुद नही मानूंगा। भले ही सव लोग मुझे वुरा कहे। मुझे अभी तक लोगो के दिल साफ नही लग रहे हैं।"

लोगो ने सोचा "अगर यह अकेला भी अलग रह गया तो फिर लोगो को उकसा कर सघ मे तोड-फोड करने की कोशिश करेगा। यह खटपटिया कम नही है। अगर ऐसा हुआ तो गुरुदेव की की-कराई मेहनत पर पानी फिर जाएगा।" अत. कुछ लोग गुरुदेव की सेवा मे पहुँचे और उनको सारी स्थिति से अवगत किया। गुरुदेव इसे सुन कर क्षणभर के लिए गम्भीरता मे डूव गये। फिर सहसा उन्हे ध्यान आया कि आज एक श्रावक के यहाँ मृतकभोज होने वाला है। इसमे शामिल होने-न-होने की वात को लेकर ही इसे समझाना है।"

गुरुदेव ने आगन्तुक लोगो को आश्वासन देते हुए कहा "तुम लोग अपनी वात पर डटे रहो और सभी लोगो को यह हिदायत कर दो कि कोई इसके वहकावे मे न आए। मैं इसे ऐसी युक्ति से समझाऊँगा कि इसे वह वात माननी ही पडेगी। मेरा दृढ विश्वास है कि उसे मेरी वात माननी ही होगी। हम भी कच्चे गुरु के चेले नही हैं। पूरी कोशिश करेंगे। फिर भी अगर न माना तो और कोई उपाय अजमायेंगे, जिससे वह इस समझौते को मानने के लिए कायल हो जाय।"

सव लोग गुरुदेव के वचन पर विश्वास रख कर वापिस लौटे।

थोडी ही देर वाद वह भाई गुरुदेव के दर्शन के लिए आया। गुरुदेव ने उससे कहा "धर्मप्रेमी वन्धु ! तुम्हे यह तो पता चल ही गया होगा कि भगवान् महावीर की

कृपा से वर्षो से जैन समाज मे चल रही फूट का आज अन्त हो गया है। सब लोगो ने एक दिल होकर पिछली बातें रफा-दफा कर दी हैं, परस्पर माफी माग ली है, अब तुम्हे भी इसी सूत्र पर चलना है।"

वह बोला। "मैं तो यहाँ था ही नही। मेरी अनुपस्थिति मे ही इन लोगो ने सुलह कर ली, परन्तु मुझे अब भी दाल मे काला लगता है। इन लोगो के दिल अभी तक साफ नही मालूम होते मुझे।"

गुरुदेव ने प्रभावशाली ढग से कहा "नही, ऐसा कदापि नही हो सकता। जिन लोगो ने एकता की बात मानी है, वे कदापि अपनी बात से पीछे नही हटेंगे। वे अपनी बात पर मजबूत रहेगे। तुम्हे अपने दिल मे शका को कोई स्थान नही देना चाहिए। रही बात तुम्हारी अनुपस्थिति की। उसमे क्या फरक पड गया? भाइयो ने मिलकर बहुत सोच-विचार के बाद किसी हितकर बात को और वह भी धर्मगुरु की आज्ञा समझ कर मानली है तो तुम्हे भी उसे स्वीकार कर लेना चाहिए, उसी रूप मे। अन्यथा, सारे कलक का टीका तुम्ही पर आएगा और तुम ही सघ मे पुन फूट डालने के लिए जिम्मेदार होओगे। पता है तुम्हे, इस फूट से जैन समाज का कितना नुकसान हुआ है? दूर-दूर तक इसके छींटे उछले हैं। बहन-बेटियो का आना-जाना तक भी बन्द हो गया था। तुम तो इसे शुभ शकुन समझो कि यह पाप खत्म हो गया।"

परन्तु इतना कहने पर भी वह नही माना और अनमने भाव से कहने लगा "हाँ हाँ, आपने जो कुछ भी कर दिया है, अच्छा है। मेरी आत्मा इसे मानने से इन्कार कर रही है।"

गुरुदेव ने प्रेम से, किन्तु जरा सख्त शब्दो मे उससे कहा "देख, भाई! ज्यादा अकडना ठीक नही होता। पाँच भाई जो बात अच्छी समझ कर करलें, उससे आनाकानी करने का नतीजा बहुत ही भयकर होता है। अगर इतनी अच्छी और समाज के हित की बात को भी तुम नही मानते हो तो समाज से तुम अलग पड जाओगे। क्या तुम समाज मे अकेले अलग-थलग रह कर टिक सकोगे? 'अकेला चना क्या भाड फोड सकता है?' इस कहावत के अनुसार तुम क्या कर सकोगे अकेले रह कर? फिर तुम्हारे लड़के-लडकियो के रिश्ते भी तुम्हे करने हैं, समाज से किनाराकसी करके या सम्बन्ध तोड कर कैसे कर सकोगे इन्हे?"

वह जरा अकड कर बोला। "गुरुदेव! माफ करे। मैं इन सबकी परवाह नही करता। अब भी क्या मुझे समाज वाले रोटी-रोजी देते हैं? मैं अपने पुरुषार्थ के बल पर ही जी रहा हूँ। और तब भी अकेला अपने ही बलबूते पर मैं जिन्दा रह सकूँगा।"

गुरुदेव "मुझे तुम्हारी हिम्मत का पता है! मैं यह दावे के साथ कह सकता हूँ कि तुम समाज से विरोध मोल लेकर अकेले कभी नही टिक सकोगे। आज ही एक श्रावक के यहाँ मृतकभोज का प्रसग है। अगर तुम समाज से तोड कर अकेले रहोगे तो उसमे भी तुम्हे अपने परिवार सहित कतई सम्मिलित नही होना होगा। ऐसी स्थिति मे भविष्य

में जिन्दगी भर तक तुम्हे समाज के सहयोग से वचित रहना पड़ेगा। यह तो झूठी शेखी बघारना है कि समाज से मुझे क्या वास्ता है, मैं अपने पुरुषार्थ पर जीता हूँ ? मनुष्य को कब, कैसी परिस्थिति मे पता नही किसी भी व्यक्ति या वर्ग से सहयोग लेना पड जाय, इसके लिए कुछ नही कहा जा सकता ! क्योकि समाज के साथ व्यक्ति का हिताहित जुडा हुआ है, इससे कतई इन्कार नही किया जा सकता। समाज से ही व्यक्ति को जन्म से लेकर मृत्यु तक अनेक सुसस्कारो, अच्छे विचारो व धर्मपालन मे सहयोग, सकट मे साहस और परस्पर सहयोग का लेन-देन करना पडता है। अतः अगर तुम समाज का बहिष्कार करते हो तो फिर इस मृतकभोज मे भी तुम्हे और तुम्हारे परिवार के लोग सम्मिलित होने से रोकेंगे और तुम भी अपने मिथ्याभिमानवश यदि ऐक्य विरोधी बनने के नाते इसमें शरीक नही होओगे तो सोच लो, क्या नतीजा आएगा ? यदि तुम इस मृतकभोज मे शरीक नही होओगे तो समाज से आजीवन तुम्हारा सम्बन्ध टूट जायगा, सहयोग की आशा सदा के लिए समाप्त हो जाएगी। और यदि तुम समाज से अपने को अलग मानकर इस मृतकभोज मे सपरिवार शामिल भी होने जाओगे तो लोग तुम्हे टोके बिना और तुम्हारा अपमान किये बिना नही रहेगे। इसलिए अच्छा तो यही होगा कि समाज मे हुए इस ऐक्य पर अपनी स्वीकृति की मुहर छाप लगाने के लिए तुम इस सुलह को मान्य करने के बहाने आज ही इस अवसर मे शामिल हो जाओ। आज का निर्णय सारी जिन्दगी का निर्णय होगा। आज अगर इस शुभ अवसर को चूक गये तो सारी जिन्दगी पछताना पड़ेगा।"

गुरुदेव की अचूक प्रभावशाली वाणी का उस भाई पर सीधा असर हुआ। पहले जहाँ वह अकड के साथ बोल रहा था, वहाँ अब उसकी वाणी मे नम्रता आ गई। वह सहसा बोल उठा "गुरुदेव ! अब मेरी समझ मे आपकी बात आ गई। मैं अपने कुविचारों के कारण इधर-उधर भटक रहा था। आपने मुझे सँभाल लिया और युक्तियो से समझाकर सही राह पर आने को प्रेरित कर दिया। मैं आपके इन विचारो से सहमत हूँ और आपकी प्रेम भरी आज्ञा को शिरोधार्य करके इस सुलह को मान्य करता हूँ। भविष्य में मैं कभी सघ से अलग होने या समाज मे फूट डालने की बात नही करूँगा और न किसी को समाज से सम्बन्ध तोडने के लिए उकसाऊँगा।"

सयोगवश यह चर्चा चल रही थी, तभी समाज के बहुत से अगुआ वहाँ एकत्रित हो गए थे। गुरुदेव ने उन्हे इस भाई को प्रेम से गले लगाने का सकेत किया। तुरन्त ही ४-५ भाई उक्त विरोधी भाई से गले मिले और अपनी गलतियो के लिए दोनो ओर के लोगो ने परस्पर हृदय से क्षमा का आदान-प्रदान किया। उस भाई ने भी गुरुदेव के सामने सबको आश्वासन दिया कि मैं भविष्य मे समाज मे फूट डालने का कदापि प्रयत्न नही करूँगा।"

इतने मे जिनके यहाँ मृतकभोज का प्रसग था, वे लोग भी वहाँ आ पहुँचे और उस भाई को सप्रेम न्योता देकर ले जाने लगे। उसने गुरुदेव से अपने अविनय के लिए क्षमा माँगी और उन्हें वन्दना करके मगल पाठ सुनकर उन भाइयो के साथ चला गया।

यह था धर्माधिकारी के रूप मे गुरुदेव का अद्भुत कार्य !

वास्तव मे धर्माधिकारी का दायित्व निभाने से दोहरा लाभ होता है। एक तो समाज मे धर्म-जागृति, धर्माचरण का उत्साह एव पारस्परिक प्रेम, सहयोगभाव और सद्भाव बढता है, जोकि अनैक्य, मनोमालिन्य या फूट के रहते कदापि सम्भव नही होता। दूसरे, समाज मे प्रेम भाव स्थापित हो जाने से व्यक्ति को सुरक्षा की गारण्टी मिल जाती है, तन-मन स्वस्थ रहते हैं और फूट के कारण ठप्प पड़े हुए समाज हित के कार्य प्रगति के पथ पर अपनी दौड प्रारम्भ कर देते हैं। यह पुण्य लाभ कोई मामूली नही होता ! इस प्रकार के मनमुटाव को मिटाने से गुरुदेव का प्रभाव भी दूर-सुदूर अपने कदम बढा रहा था। ऐसी ही एक घटना आगूंचा गाँव मे हुई।

बात संवत् १९९४ के विजयनगर-गुलाबपुरा चातुर्मास के बाद की है। गुरुदेव हुरडा आदि आस-पास के क्षेत्रो को अपने चरणो और वचनो से पावन करते हुए आगूचा गाँव मे पधारे। गाँव के सभी धर्म-सम्प्रदायो के लोग आपके व्याख्यान सुनने आते थे। परन्तु व्याख्यान मे उनके बैठने के ढग से ऐसा मालूम होता था कि जैनो और वैष्णवो मे अलगाव है।

गुरुदेव श्री पन्नालालजी महाराज मनोविज्ञान शास्त्र पढे तो नही थे, परन्तु भिन्न-भिन्न वर्गो के लोगो के सम्पर्क मे आने से तथा उनके जीवन व्यवहारो का बार-बार सूक्ष्म अध्ययन करने से उन्हे सहज स्वाभाविक रूप से स्वतः ही मनोविज्ञान का अनुभव हो गया था। उन्होने भिक्षाचरी के मौके पर भी जैनो और वैष्णवो के व्यवहारो तथा बातो पर से भाप लिया कि इनके पारस्परिक मतभेद है। जैन लोग तो व्याख्यान के अतिरिक्त समय मे भी गुरुदेव के पास आया करते थे। इसलिए एक दिन प्रसगवश गुरुदेव ने कुछ जैन श्रावको से पूछ लिया "क्या वैष्णवो के साथ तुम्हारी कोई तकरार है ?"

वे बोले "उनके साथ तो हमारी तकरार आज से नही, वर्षों से चली आ रही है। हमारी उनसे पटती ही नही।"

गुरुदेव "तुम्हे जैन होने के नाते तकरार रखनी नही चाहिए। उनसे मिल-बैठ कर आपस मे समाधान कर लेना चाहिए।"

वे "गुरुदेव ! समाधान की कोई आशा हमे नही दिखाई देती। आप कहते हैं, तकरार नही रखनी चाहिये, पर वे तो तकरार रखना चाहते हैं न ! एक हाथ से तो ताली बज नही सकती। दोनो हाथ मिलें तभी तो ताली बज सकती है।"

गुरुदेव "वैष्णव लोग तकरार न मिटाना चाहे तो भी तुम्हे तो अपनी ओर से इस तकरार को मिटाने मे पहल करनी चाहिए।"

वे "वे हमारी बात कतई नही सुनते, न मानते हैं और न ही हमे आदर देते हैं। ऐसी स्थिति मे हम इस तकरार को कैसे मिटा सकते हैं ? अगर हम चला कर उनके पास जायेंगे और उन्हे तकरार मिटाने का कहेंगे तो वे हमारे सिर चढ जायेंगे, हमे उनसे हमेशा दब कर रहना पडेगा।"

गुरुदेव "नहीं, ऐसी बात नहीं है। अभिमानी का सिर हमेशा नीचा होता है। जो व्यक्ति शान्तिप्रिय हैं, जैन धर्मोक्त क्षमा के आराधक हैं, जिन्हें वीतराग देव के वचन प्रिय हैं, वह अपने मानापमान की परवाह नहीं करते। जैन शास्त्र में बताया है कि दो व्यक्तियों या पक्षों में किसी बात पर कोई तकरार हो गई हो, उनमें से एक व्यक्ति या पक्ष, भले ही उसकी बात सचाई के नजदीक हो, दूसरे व्यक्ति या पक्ष से शान्ति, समाधान विवाद समाप्ति या सुलह करना चाहता है, और इसके लिए नम्र बन कर क्षमायाचना करने जाता है, मगर सामने वाला व्यक्ति या पक्ष उससे बात ही नहीं करना चाहता, न आँखें उठा कर ही उसकी ओर देखता है और न ही उस व्यक्ति या पक्ष को आदर-सत्कार देता है, न उसकी बात सुनता है, ऐसी स्थिति में शान्ति के उपासक, आत्मसाधक एवं वीतराग मार्गगामी को चाहिए कि वह पहल करे। उस व्यक्ति या पक्ष (वालों) के पास चला कर जाए। वे उसकी बात सुने या न सुने, वह उसे आदर-सत्कार दे या न दे, उसे अपनी ओर से नम्रता-पूर्वक क्षमायाचना कर लेनी चाहिये, अपनी बात प्रेम से कह देनी चाहिए। जो इस प्रकार पहल करता है, वह शान्ति का आराधक है, वीतराग प्रभु की आज्ञा का पालक है, अपने सम्यक्त्व का रक्षक है। जो इस बात को जानते हुए भी कषायों की आग को अन्तर में दबाये रखता है, वह भूल करता है, भगवान की आज्ञा की अवहेलना करता है, सुन्दर अवसर को हाथ से खो देता है। और परिणामस्वरूप एक दिन वह कषायों की आग इतनी तेजी से भड़कती है कि उसकी लपलपाती हुई भयंकर लपटों से सारा समाज झुलस जाता है, धर्म-कर्म की ऐसी विनाश-लीला से समाज निःसत्व हो जाता है। अतः मेरी बात मानो, तुम्हें ही आगे होकर इस तकरार को मिटाने में पहल करनी चाहिए, तुम्हें ही आगे होकर उनसे क्षमायाचना कर लेनी चाहिए। वे चाहे तुमसे बोलें या न बोलें, तुम्हारी बात मानें या न मानें; तुम्हें अपनी ओर से मन में प्रविष्ट पूर्वाग्रह को निकाल देना चाहिए। तुम्हारे इस व्यवहार का उन पर अवश्य ही प्रभाव पड़ेगा।"

वे बोले "गुरुदेव! यह अन्याय तो हमसे सहा नहीं जाता कि गलती करें वे, और माफी माँगें हम! हम इतने वीतराग तो हो नहीं गए कि वे हमारी बात पर जरा भी गौर न करें या हम पर हावी हों जायँ तो भी हम उनसे दबे रहें उनके सामने नाक रगड़ते रहें या उनके सामने अपनी सच्ची बात भी न रख सकें। क्षमा की पहल करने से उनके अन्याय को ही बढ़ावा मिलेगा। गुरुवर! अतः हमारी नम्र प्रार्थना है कि आप इस पर गम्भीरता से सोचें और कोई अन्य रास्ता निकालें। हम भी चाहते हैं कि यह विवाद समाप्त हो जाय, पर उसका उपाय ऐसा न हो कि एक पक्ष अन्याय के सामने घुटने टेक दे और दूसरे पक्ष को अधिकाधिक अन्याय करने का प्रोत्साहन मिले।"

गुरुदेव "तुम्हारी बात तो किसी हद तक ठीक है। मैं भी यह नहीं चाहता कि अन्याय को बढ़ने का बल मिले। मैं भी यही चाहता हूँ कि दोनों पक्षों को न्याय मिले। मैं ऐसा प्रयत्न भी करूँगा, जिससे विपक्ष वाले लोग अपनी भूल समझें और इस तकरार

को मिटाने के लिए तैयार हो जायँ। परन्तु इसमे पहल मैं तुम्हारी ओर से ही कराना चाहता हूँ। बाकी भूमिका तो मैं तैयार करूँगा ही।"

"आपकी आज्ञा शिरोधार्य होगी, गुरुदेव! परन्तु आपको उभयपक्षीय वातावरण को सौम्य बनाने के लिए प्रयत्न करना होगा। इस समय तो वातावरण बहुत ही गर्म है। तालाब के पानी मे जरा-सा ककर डालते ही जैसे वह विक्षुब्ध होकर लहरो मे परिवर्तित हो जाता है, वैसे ही इस ग्राम रूपी तालाब मे इस समय जरा-सा सद्वचन का ककर डालते ही समाज मे वातावरण विक्षुब्ध हो उठने की आशका है। अत पहले आप दोनो ओर की बात सुन कर, उसकी पक्की जाँच-पडताल करा ले, तदनन्तर कौन दोषी या निर्दोष है, इसका निर्णय करने के बाद ही किसी प्रकार का कदम उठाएँ या किसी को कहे-सुने।" वहाँ के श्रावको ने कहा।

गुरुदेव "तुम्हारी बात तो मैंने सुन ली है, अब वैष्णवो की बात मैं आज ही खास-खास व्यक्तियो को बुला कर सुन लूंगा। तभी आगे की कार्यवाही चलाऊँगा। मुझे तो विश्वास है कि वे भी मेरी बात मान जायेंगे।"

गुरुदेव श्री मे यह विशेषता थी कि वे जब यह सुन लेते कि जिस गाँव मे मैं टिका हुआ हूँ, उसमे यदि आपसी फूट और तकरार के कारण अशान्ति है, तो वे चुपचाप या उदासीन होकर रह नही सकते थे। वे यह मानते थे कि साधु केवल अपने स्वार्थ के लिए ही नही जीता, उसके जीवन मे परमार्थ का भी हिस्सा होना चाहिए। बल्कि 'जीओ और जीने दो' से ऊपर उठ कर 'जिलाओ और जीओ' का ही उसका मुख्य सिद्धान्त होना चाहिए। साथ ही अगर परिवार, राष्ट्र एव समाज मे फूट, कलह, वैमनस्य और अशान्ति होगी तो उसका असर भी साधुवर्ग पर पडे बिना रह नही सकता। चारो ओर अशान्ति या उपद्रव की आग लगी है, वहाँ साधु कहाँ तक अशान्ति और उपद्रव के प्रभाव से दूर रह सकता है? उस आग की लपटे देर-सबेर उसे भी छुए बिना नही रह सकती।

भगवान महावीर के द्वारा स्थानाग सूत्र मे वर्णित दस धर्मो मे श्रुत चारित्र धर्म से पहले ग्राम-धर्म, नगर धर्म, राष्ट्र धर्म और सघ धर्म आदि को स्थान दिया है। यदि ग्राम धर्म आदि सुरक्षित नही होगे तो साधु-श्रावक वर्ग का श्रुत-चारित्र, धर्म कहाँ तक टिका रह सकता है? इसलिए **'ग्राम धर्म'** आदि के पालन कराने और करने का दायित्व धर्म के उच्च आराधक साधु वर्ग पर है। जैसे एम० ए० मे पढने वाले छात्र के लिए नीचे की कक्षाओ का ज्ञान और नीचे दर्जे की पाठशालाओ के नियमो का पालन जरूरी होता है, वैसे ही धर्म की सर्वोच्च कक्षा के साधु वर्ग के लिए भी प्राथमिक माध्यमिक श्रेणी के धर्मों का ज्ञान तथा उनका पालन करना-कराना भी आवश्यक है।

हमारे चरितनायक अपने व्याख्यानो मे प्राय इस बात को दोहराया करते थे कि साधु स्व-परकल्याण साधक होता है। जो साधु परकल्याण के मौके आने पर उपेक्षा कर जाता है, वह कोरी स्वकल्याण साधना के नाम पर स्वार्थी और रूखा बन जाता है। हाँ, जिनकल्पी जैसी उच्च भूमिका पर आरूढ हो जाय तो बात दूसरी है।

भगवान् महावीर वीतराग साधक थे, अपने आप मे कृतकृत्य थे और केवलज्ञानी भी थे, फिर भी श्रेणिक को चेलणा रानी पर पर-पुरुषासक्त होने का सन्देह होने से सारे अन्तःपुर को फूंक देने पर उतारू होते देख कर उन्होने श्रेणिक राजा का वह निराधार सन्देह दूर करके उसका मन समाधान किया था। और इस गृहकलह से होने वाले अनर्थ को मिटाया था। इसी प्रकार क्रूर और जहरीले चडकौशिक सर्प के कारण होती हुई अपार जनहानि और पशुपक्षी सहार को रोकने हेतु उन्होने स्वयं की जान जोखिम मे डाल कर भी चडकौशिक की वावी पर जाकर उसे प्रतिवोध दिया और सुधारा। कौशाम्बी पर घेरा डाले चड प्रद्योत को भी रणभूमि मे जाकर प्रतिवोध दिया और सती मृगावती का उद्धार किया। और भी अनेक घटनाएँ भगवान महावीर के जीवन मे हुई हैं, जिनसे यह प्रमाणित होता है कि अहिंसा के अवतार श्रमण भगवान महावीर पारस्परिक अशान्ति, फूट, अन्याय, सहार आदि को दूर करके शान्ति, न्याय और धर्म को सस्थापित करने के लिए कटिवद्ध रहते थे।

हमारे चरितनायक श्री पन्नालालजी महाराज भी भगवान महावीर के ही तेजस्वी वीरपुत्र थे। वे ऐसी अशान्ति को देखकर उदासीन और मौन कैसे वैठे रह सकते थे।? उन्होने जैनो को टटोलने के वाद वैष्णव भाइयो को भी टटोला। वैष्णव भाइयो ने आपश्री के मुख से जैनो के साथ परस्पर वैमनस्य की वात सुनकर पहले तो इस प्रश्न को साफ ही उड़ाने की कोशिश की। कहने लगे "महाराज! आप साधु हो गए हैं। आपको इन ससारी झगड़ो से क्या लेना-देना है? यह तो हम सासारिक लोगो की आपसी वातें हैं। आप इनसे दूर रहिये।"

इस पर आपने मुस्कराते हुए कहा—"अगर हम समाज से आहार-पानी, कपडे, दवा, मकान तथा जीने के अन्य आवश्यक साधन आदि की अपेक्षा कतई न रखें तव तो हमे आप लोगो के झगडो मे पडने की जरूरत नही। परन्तु अभी तो हमे जीवन के लिए सभी आवश्यक साधन आप लोगो से लेने पडते हैं। और हम अपनी साधना भी समाज के वीच मे रह कर करते हैं, तव हम समाज से निरपेक्ष और उदासीन कैसे रह सकते हैं? हमे अपनी साधना और सयम यात्रा निरावाध रखने के लिए गृहस्थ समाज को शुद्ध और स्वधर्म मे स्थिर रखना जरूरी होता है। और यह मत समझो कि हम जैन-साधु हैं तो हमे वैष्णव या अन्य समाज से क्या लेना-देना है? जैन साधु भले ही किसी एक सम्प्रदाय-परम्परा मे दीक्षित हुआ हो, परन्तु होता है वह सारे ससार का। वह प्राणिमात्र का मित्र, वन्धु और वत्सल होता है, उसे शास्त्र मे षड्जीवनिकाय (ससार के सभी प्राणियो) का माता-पिता और रक्षक कहा है। इसलिए यह हर्गिज नही हो सकता कि समाज मे अशान्ति तथा तकरार हो, और वह उसे मिटाने के लिए यथाशक्ति प्रयत्न न करे। तुम्हारे वैष्णव अवतार जितने भी हुए हैं, वे परोपकार के लिए ही दुनिया मे आए थे। भगवान् कृष्ण ने कौरव-पाण्डवो का गृह-कलह देख कर उदासीनता धारण नही की, वल्कि वे शान्ति दूत वन कर दुर्योधन की राजसभा मे पहुचे थे, शान्ति के

लिए। इसी प्रकार भगवान राम ने राजा दशरथ द्वारा कैकयी रानी को दिये गए वरदान को लेकर राजपरिवार मे गृह-कलह की सम्भावना होती देख कर स्वय वनवास का कष्ट स्वीकार किया था।

ये सब घटनाएँ बताती हैं कि साधु किसी भी हालत मे समाज मे होने वाली अशान्ति को मिटाने से उदासीन रह नही सकता।"

गुरुदेव के अकाट्य तर्क और युक्तियाँ सुन कर वैष्णव लोग हतप्रभ एव निरुत्तर तो हो गए, किन्तु अपनी गलतियो पर पर्दा डालने के लिए उनसे असलियत को छिपाने और बात को दूसरे मोड पर चढाने का प्रयत्न कर रहे थे। गुरुदेवश्री से यह बात छिपी न रह सकी। वे उनकी इस चालाकी को समझ गये। किन्तु वैष्णवो को अपने प्रति किसी तरह का परायापन तथा आघात-सा महसूस न हो, इसलिए युक्ति से समझाने लगे "देखो भाइयो! मेरे लिए तो जैसे जैन हैं, वैसे ही आप लोग हैं। सभी मेरे अपने हैं। मुझे दोनो ही प्यारे हैं। मैं दोनो की आत्म-शुद्धि चाहता हूँ। मैं चाहता हूँ, दोनो समाजो मे बिगाड़ दूर हो, दोनो अहिंसा, सत्य, दया, नीति, न्याय, मानवता आदि धर्म की राह पर चलें। धर्म की राह से भटकते हुए लोगो को धर्म की शुद्ध पगडडी पर लाना हमारा काम है। इसलिए हमसे तुम्हारे आपस मे वर्षो से चल रही यह तकरार देखी नही जाती। मैं चाहता हूँ, जिस किसी से जो भी भूल या गलती हुई हो, वह मेरे सामने एकान्त मे खुले दिल से स्वीकार कर ले और एक-दूसरे से क्षमा माग कर पिछली बातो को दफना दें। भविष्य मे दोनो समाज के लोग प्रेम से भाई-भाई की तरह रहें।"

वैष्णव-भाई पहले तो गर्म होकर बोले "महाराज! आप हमे दबा रहे हैं। पहले अपने जैनियो को समझाइये न! हम तो बाद मे समझ ही जाएँगे।"

गुरुदेव- "भाइयो! मैंने तुम लोगो से पहले जैनो को समझाया है। दबाने का काम मेरा नही, मेरा काम प्यार से तुम्हारा हृदय जीत कर तुम्हे सच्ची राह पर लाना है। जैन लोगो ने इतना कबूल कर लिया है कि अगर वैष्णव भाई मान जायेगे तो हम मानने को तैयार हैं। अब बोलो, आप लोग क्या कहना चाहते हैं?"

वैष्णव लोग "जैनी लोगो ने आपके लिहाज मे आकर यो ही हाँ भरली होगी। हमे शक है कि उनका मानस अभी स्वच्छ नही हुआ है।"

गुरुदेव "आप लोग अपनी बात बताइये। जैनो को समझाना मेरा काम है। मुझे विश्वास है कि वे मेरा कहना मानने से इन्कार नही करेगे।"

वैष्णव लोग "महाराज साहब! एक बात है, आप जैन साधु हैं। इसलिए शायद जैनो की बात मानेंगे, उन्ही के पक्ष मे फैसला देंगे।"

गुरुदेव यही तो आपके समझने मे भूल है। मैं जैन साधु हुआ तो क्या हुआ? क्या मैं जैनो के हाथ बिका हुआ हूँ? मैं स्वतन्त्र हूँ। मैं समस्त मानव-जाति का हूँ, इतना

ही नही प्राणिमात्र का हूँ। क्या मुझे अपनी आत्मा का खटका नही है कि मैं जैनो का पक्षपात करूगा। मैंने पाँच महाव्रत लिये हैं। जीवनभर के लिए सामायिक व्रत (समता का व्रत) लिया है। मेरे लिए जैन-वैष्णव का कोई अन्तर नही है।"

वैष्णव लोग "आपके व्याख्यान मे तो हम उदारता की बातें प्रतिदिन सुनते हैं, आप समभावी साधु हैं, यह भी सुनते आए है। परन्तु हमारे मामले को आप कैसे सुलझाएँगे ?"

गुरुदेव "आप लोग मुझ पर विश्वास रखो। मैं किसी के साथ अन्याय नही करूँगा और न किसी का पक्ष लूगा। मेरा काम किसी भी अहिसक उपाय से तुम दोनो पक्षो मे आपस मे वात्सल्यभाव स्थापित करना है।"

इस तरह गुरुदेव के द्वारा सारे दिन विभिन्न युक्तियो और तर्कों से वैष्णव भाइयों को समझाये जाने पर भी वे न माने। कहने लगे—"हमारे अमुक-अमुक भाइयो को आने दीजिए। वे मान जायेंगे तो हम भी विचार करेंगे।"

गुरुदेव ने कहा "देखो, आप लोग तो अपने हृदय से यह नियम ले लो कि हम इस शान्ति के काम मे रोडा नही अटकाएँगे और मुझ पर विश्वास रख कर चलेंगे।"

इस पर वहाँ उपस्थित वैष्णव लोग काफी रस्साकसी के बाद यो कहकर जाने लगे "अच्छा, आप हमे अपने बुजुर्गो से सलाह लेने और सोचने का मौका दीजिए। वैसे हम आपके साथ हैं। पर हम अकेले ही कोई बात मान बैठें और हमारे बुजुर्ग उसे न मानें तो ठीक नही रहेगा।"

यो उलटी-सीधी चर्चाएँ काफी रात तक चलती रही। जब गुरुदेव ने देखा कि कही शान्ति का ओर-छोर ही नही दिखाई दे रहा है अभी तो पैसे दो पैसे भर ही काम हुआ है। मेरे इतने कहने-सुनने से ये नरम तो पड़े हैं परन्तु जैसे तपे हुए लोहे पर घन की चोट तुरन्त न मारी जाय तो बाद मे ठडा हो जाने पर उससे यथेष्ट काम नही लिया जा सकता। इसलिए इन्हे भी अभी ही बार-बार कहने पर सम्भव है, इन्हे यथेष्ट रूप से मोड़ा जा सके। मगर अपनी साधुचर्या का भी ध्यान था। आज सुबह से कुछ भी खाया न था, और सूरज डूबने से फिर कल सुबह तक नियमानुसार कुछ भी लिया नही जा सकेगा। इस प्रकार उपवास भी हो गया था। रात काफी बीत चुकी थी। आपको अपनी साधुचर्यानुसार स्वाध्याय, ध्यान करके शयन भी करना था, ताकि प्रातः तरोताजा होकर फिर से साधुचर्या मे लग सकें। अतः अपने वैष्णव भाइयो से कहा "जितनी बातें मैंने आपको समझाई हैं, और जितनी बाते आप लोग मान गए हो, उतनी हद तक तो उस पर दृढ रहना, किसी के बहकावे मे आकर उन्हे मत छोडना। उससे आगे की बातो पर कल सुबह हम फिर विचार करेंगे।" वैष्णव भाइयो ने हाथ जोड़कर कहा "जितनी बातें हमारे गले उतर गई हैं, उन बातो मे हम पीछे नही हटेंगे। जो बातें आगे की हैं, वे कल करेंगे। अभी तो हम आपसे मंगल-पाठ सुनकर विदा होते हैं। हमे आपके समझाने का तरीका पसंद है।" यो कहते हुए मगलपाठ सुनकर एक आशा की किरण लिये हुए विदा हुए।

दूसरे दिन का सूर्य उदय हुआ। आप अपने दैनिक कृत्य सम्पन्न करके बैठे थे। इतने ही मे कल जो लोग नही आ पाये थे, वे भी आ गए। कल जो वैष्णव भाई आए थे, उन पर गुरुदेव के वचनो का गहरा प्रभाव पड चुका था। किन्तु जो लोग कल नही आए थे, उन्हे फिर नये सिरे से समझाना था। अत गुरुदेव श्री ने उन्हे कल की तरह फिर समझाना शुरू किया। तर्क-वितर्क होते रहे। काफी बहस-मुबाहिसे के बाद गुरुदेव ने उनसे कहा—"भाइयो ! अब आप लोग मेरी बातें बहुत हद तक समझ चुके हैं। अब तर्क-वितर्क बन्द करें और कुछ सकल्प करे। क्योकि तर्कों का कोई अन्त ही नही होता। वे प्याज के छिलके की तरह एक के बाद एक छीलते रहने पर भी नये-नये उभरते रहेंगे।" इस पर सबने एक स्वर से कहा "गुरु जी ! आप हमसे क्या चाहते हैं ? सौ बात की एक बात है, अगर आप निष्पक्ष न्याय की बात कहेगे तो हम उसे अवश्य मान्य करेंगे। किन्तु यदि आपने कही जैनो का पक्ष लिया तो हम उस बात को कतई नही मानेगे।"

गुरुदेव 'मुझे न जैनो का पक्ष लेना है, न आप लोगो का। मुझे तो निष्पक्ष न्याययुक्त बात कहकर तुम्हारे आपस मे हुए वैमनस्य को मिटाना है। रोग को मिटाने के लिए डाक्टर रोगी को कड़वी दवा भी पिलाता है, और कभी-कभी उसे लघन भी कराता है, खाने-पीने की कई चीजो से परहेज कराता है। ऑपरेशन करते समय रोगी चिल्लाता, है, फिर भी डॉक्टर के दिल मे रोगी के हित की बात रहती है, उसी प्रकार मुझे भी आपका वैमनस्य का रोग मिटाना है। उसके लिए आपको मुझे कडवी बात भी कहनी पड़े, दबाना-फटकारना और जोर देकर भी कहना पडे तो भी वह आपके हित के लिए होगा। मेरा उसमे कोई स्वार्थ या पक्षपात नही होगा। आप मेरी कठोर बातें सुनकर नाराज न होना, और न ही घबराना।"

वैष्णव लोगो ने जरा आश्वस्त होकर कहा "स्वामीजी ! आप पर हमे विश्वास है कि आप हम पर अन्याय नही करेंगे। कड़वी बात भले ही कह ले, वह होगी आखिर हमारे ही कल्याण के लिए। आप बताएँ तो सही कि क्या करना चाहते हैं ?"

गुरुदेव ने धीर गम्भीर वाणी मे वैष्णवो से कहा "भाइयो ! आपसे सबसे पहली बात तो मैं यह कहना चाहता हूँ कि आप जैन लोगो से माफी मांगने मे पहल करे। भगवान श्री कृष्णजी की छाती पर भृगुजी ने लात मार दी तो भी उन्होने उनसे क्षमा ही मागी कि भगवन् ! आपके पैर मे कही चोट तो नही लगी ? इसी प्रकार भगवान् राम ने भी गृहकलह की सभावना के मौके पर बहुत ही क्षमा धारण करके वनवास स्वीकार कर लिया था। क्या आप भगवान कृष्ण और भगवान् राम के अनुयायी होकर इस बात से पीछे हटेगे ?

वैष्णव लोग "हम जैनो से माफी मागने मे पहल तो करे, लेकिन वे लोग हमारी क्षमायाचना पर गौर करे तब न ? यदि वे हमारी ओर नजर उठा कर भी न देखें तो उस एकतरफी क्षमा से यह मसला कैसे हल हो जायगा ?"

गुरुदेव ने कहा "मैंने आप लोगो को समझाने से पहले काफी लम्बे टाइम तक समझाया है वे और मेरी वात मान गये हैं। इसलिए वे समस्त लोग तो तैयार वैठे है, माफी मागने के लिए। पर तुम उनको आदर-सत्कार तो दोगे न ? उनकी क्षमायाचना पर ठूंठ की तरह अकड कर या मुह मोडकर एक ओर चुपचाप वैठ जाओ, तव तो काम नही वनेगा। मेरा इतना किया-कराया सव प्रयत्न काता-पीजा कपास हो जायगा। कल पूरे दिन भर और रात को भी वहुत ज्यादा रात बीतने तक हमारी चर्चा चली। आज दूसरा दिन है, अव सूरज डूवने जा रहा है, इसलिए मेरी वात मान कर सूर्य की साक्षी मे ही आप दोनो ओर के लोग पिछली वातो को भुला दो, परस्पर शान्ति और समाधान कर लो।"

"और उसके वाद क्या करना होगा ?" सभी वैष्णव गुरुदेव की वातो को उत्सुकतापूर्वक मंत्रमुग्ध होकर सुन रहे थे। अत. उन्होने उपर्युक्त सवाल पूछा। गुरुदेव ने उन्हे कहा "अगर वे आपसे मधुरता-पूर्वक सलाप करते हैं तो आपको भी उतनी ही मधुरता के साथ उनके साथ वात करनी चाहिए। नम्रता से आप लोगो का कुछ घट नही जाएगा, वल्कि आपका सम्मान वढेगा। आपका वडप्पन भी इसी मे है। आप लोग वुरा मत मानना, मैंने दोनो ओर की वातें सुनी है, कुछ तटस्थ लोगो से भी पूछताछ की है और अपने अनुभव के आधार पर इस प्रश्न पर मनोमन्थन करके कुछ निष्कर्ष भी निकाला है। मुझे तुम्हारी गलती कुछ अधिक लगती है। क्योकि इस तकरार मे पहल तुम्हारे लोगो की ओर से हुई है, खैर, अव उस पर कोई विचार न करो, जो हो चुका सो हो चुका। अव तो तुम दोनो पक्ष के लोग गले से गला लगाकर प्रेमपूर्वक मिलो और उदारतापूर्वक अपनी भूलो को मजूर कर लो। यह तुम्हारी आत्मा की शुद्धि ही तुम्हे आत्म-विकास और परमात्मा के निकट ले जाने मे सहायक होगी।"

गुरुदेव के वचनो को प्यासे चातक की तरह सभी वैष्णव लोग सुन रहे थे। वे एकदम खड़े हुए और वहाँ समागत जैनो से परस्पर गले लगा कर मिलने लगे और अपनी पिछली भूलो के लिए क्षमा मागने लगे। अव क्या कसर थी, तकरार का मुह काला होने मे। देखते ही देखते जैन लोगो ने भी उदारतापूर्वक गले लगकर हाथ जोडकर क्षमा मागनी शुरू की, वैमनस्य का भूत वहाँ से कुछ ही मिनटो मे पलायित हो गया। सहोदर भाई की तरह दोनो पक्ष के लोग प्रेम से मिलकर गुरुदेव के सामने वैठे। शीघ्र ही वहाँ शरवत की ग्लासे आ गईं। जैन लोग अपने हाथ से ग्लासो मे शरवत भरकर वैष्णवो को पिलाने लगे। वैष्णव लोग भी जैनो को अपने घर मधुर-रस पूर्ण भोजन कराने ले गए। सवके चेहरे पर प्रसन्नता थी। भाई, वहन, वालक, वूढे सव मानो आज गांव मे कोई उत्सव मना रहे हो, इस प्रकार हर्ष से उछल रहे थे। शैतान शर्मिंदा होकर गांव से भाग गया था। गुरुदेव श्री को भी अपनी सफलता पर सन्तोष था।

अन्त मे सवने गुरुदेव श्री से माफी मागते हुए कहा "गुरुवर! हमने दो दिनो तक आपकी नींद हराम कर दी। आपको वहुत तकलीफ दी। हमे इस अपराध के लिए क्षमा कर दें।"

गुरुदेव ने मुस्कराते हुए कहा "बालक अपने माता-पिता के सामने बहुत तूफान मचाता है और कई दफा तो उन्हे हैरान भी कर देता है, फिर भी माता पिता उसे क्षमा कर देते हैं। वैसे ही हम-आप सबको क्षमा देते है। मुझे इस बात का कोई रज नही है कि मुझे इतनी परेशानी उठानी पडी, क्योकि आखिर सफलता के दर्शन हो गए, इसी ने मेरी सारी थकान और परेशानी को मिटा दिया है।"

सब लोग इस शाति-समाधान से सतुष्ट होकर विदा हुए। गुरुदेव ने भी वहाँ से सुखपूर्वक विजयनगर की ओर कदम बढाया।

इस प्रकार गुरुदेव जहाँ भी अशान्ति और वैमनस्य का नाम सुन लेते, वहाँ भरसक प्रयास करके उसे मिटा कर ही छोडते। प्रभु कृपा से आपके वचनो मे ऐसा जादू था, इतना प्रभाव था कि सामने वाला व्यक्ति बरबस आपकी बात मान लेता। अब तो आपको इस प्रकार के झगडो, गुटबाजी और वैमनस्यो को मिटाने की कला हस्तगत हो गई थी।

ऐसी ही एक घटना रीया की है। सवत् १९९८ का चातुर्मास पूर्ण करके आप श्री अपने शिष्यो सहित पुष्कर आदि आस-पास के क्षेत्रो मे विचरण करते हुए बडी पादू पधारे। वहाँ आप लगभग मासकल्प तक विराजित हुए। वहाँ प्रतिदिन दया एव दान विषय पर आपके प्रभावशाली व प्रेरणादायक प्रवचन होते थे, जिसे सुनने के लिए स्वर्णकार, जिनगर, जाट आदि जैन जैनेतर जनता एकत्र होती थी। वहाँ से छोटी पादू जाटियावास होते हुए आप बडी रीया पधार गए।

यहा माहेश्वरी भाइयो मे लगभग ६० वर्षो से आपस मे क्लेश चल रहा था, जिसके कारण उनमे आपस मे दो दल हो गये थे। एक दल अपनी ओर खीचता था और दूसरा अपनी ओर। दोनो ही अपने-अपने पक्ष को सच्चा सिद्ध करने की चेष्टा करते थे। गुरुदेव के व्याख्यानो तथा कार्यों से वे परिचित थे। कई जगह गुरुदेव के द्वारा कराये हुए समाधान, विवादशमन, झगडे का निपटारा, न्याययुक्त फैसले आदि बातें उनके कर्णकुहरो मे पड चुकी थी। फलत गुरुदेव का आगमन बडी रीयाँ मे सुनकर माहेश्वरी समाज के दोनो पक्षो के लोगो ने आपसे इस दीर्घ सघर्ष को मिटा देने के लिए प्रार्थना की।

हमारे चरितनायक जी का इस बात मे अटूट विश्वास था कि सामान्य मनुष्य शाँति से रहना चाहते हैं, पर कुछ अगुआ लोग अपना दबदबा समाज मे स्थापित करने के लिए दलबदी या फूट डालने का प्रयास किया करते हैं। अत. उन्होने दोनो दलो के अगुओ से अलग-अलग बात की इस सम्बन्ध मे। एक दल के तो अगुओ ने आपसे यहाँ तक कह दिया—"महाराज! आप इसमे पड़े तो हैं, दोनो दलो मे आपस मे प्रेमभाव स्थापित हो जाय तो अच्छा है, परन्तु यह मामला बहुत ही पेचीदा है। इसमे अनेक उलझनें और विकटतायें भरी पडी हैं। हमे तो आशा कम है। हम तो आपसे यही कहेगे कि आपको कही इस मामले मे दूसरे पक्ष के लोग बदनाम न कर दें। ऐसा होने से तो लेने के देने पडेंगे। स्वार्थ मे अधा होकर मनुष्य क्या-क्या नही कर बैठता! अत. हमारी तो आपसे यही प्रार्थना है कि आप इस झमेले मे न पडें।"

चरितनायक जी बोले "भाइयो ! आपकी बात सही है कि मामला बडा पेचीदा है। परन्तु मैंने तो अपने जीवन मे इससे भी बढकर पेचीदा मामले निपटाये हैं। मैं यह दावा नही करता कि मैं इस मामले को निपटा ही दूंगा। मगर मैं निराशावादी नही हूँ। मुझे आशा है कि प्रयत्न करने से कठिन से कठिन काम आसानी से बन जाते हैं। मेरा धर्म उदासीन बनकर बैठने का ही नही है। जब मैंने आप लोगो से इस मामले के बारे मे सुना, तभी से मेरा धर्म हो गया कि मैं दोनो पक्षो से मिलकर आपस मे सुलह और शांति स्थापित कराऊँ।"

दल के अगुआ "आपने इस गाँव मे माहेश्वरी जाति के दोनो दलो की बातें सुन ही ली होगी। आपको उसमे क्या कोई तथ्य मिला है, जिससे आपस मे हमारे टूटे दिल जोड़े जा सकते हैं ? हमारे पारस्परिक वैमनस्य दूर हो सकते हैं ? हमारे अन्दर एक-दूसरे की जड काटने की वृत्ति समाप्त हो सकती है ?"

चरितनायक जी देखो, भाइयो ! मैं कोई सर्वज्ञ तो हूँ नही, कि इस विषय मे किसी प्रकार की भविष्यवाणी करूँ और न ही किसी के दिल की तह मे घुसा हूँ। जिससे यह बता सकूँ कि किसी के दिल मे क्या है ? परन्तु इतना जरूर मैं अपने अनुभव के आधार पर कह सकता हूँ कि इस झगड़े मे खास कोई तत्त्व नही है, जिसको लेकर इसे लम्बा खीचा जाय। सिर्फ दोनो दलो के अगुआओ के समझने की बात है। अगर आप लोग समझ जाय तो यह मामला कुछ ही घण्टो मे सुलझ सकता है।"

दल के अगुआ महाराज साहब ! हम तो आपसे साफ-साफ बात कहेगे कि अभी तक दूसरे दल के अगुओ के मन मे बहुत ही गदगी भरी हुई है, उसे आप श्री निकाल सके तो, यह मामला बहुत ही शीघ्र निपट सकता है। अगर उस दल की ओर से हमारे दल के प्रति कोई अन्याय होगा तो हम उसे कतई बर्दाश्त नही करेंगे। हाँ, हमारे दल की ओर से जो कुछ भी बात इस एकता के लिए छोडनी होगी, उसे हम छोड़ने मे कभी पीछे नही रहेगे।"

हमारे चरितनायकजी ने देखा कि दूसरे दल वाले लोग झगडा निपटाने की प्रार्थना तो कर गए, लेकिन अभी तक उनके अगुआ एकमत नही हैं। उनमे भी कई निहित स्वार्थी हैं, जो यह सोचते हैं कि अगर दोनो दलो मे आपस मे एकता हो गई तो फिर हमे कोई पूछेगा नही, हमारी कुछ भी चलेगी नही, और न ही माहेश्वरी समाज की सार्वजनिक जमीन-जायदाद या मकानो पर हमारा कोई आधिपत्य चलेगा। इसी कारण दूसरे दल के लोग अन्दर से खिचे-खिचे से रहते हैं। अत चरितनायकजी ने दूसरे दल के अगुआओं को अलग-अलग बुला कर सौगन्ध दिला कर पूछा। उनमे से एक व्यक्ति, जो बहुत ही जिद्दी था, उसे उन्होंने सहज-भाव से कहा—"तुम्हे मैंने बचपन से देखा है। तुम्हारे पिता तो बहुत ही धार्मिक वृत्ति के उदार हृदय भक्त थे, तुम इस प्रकार से अनुदार और इस शुभकार्य मे विघ्न डालने वाले क्यो बन रहे हो ?"

उसने कहा "गुरुदेव ! मैंने अपने पिताजी की संरक्षकता मे बहुत-से समाज के अनुभव प्राप्त किए है। अपने अनुभव के आधार पर मुझे ऐसा लगता है कि एकता होते

ही दूसरे दल के अगुआ माहेश्वरी समाज की सारी प्रोपर्टी को अपने कब्जे में करके इस पर आधिपत्य जमा लेंगे। अभी तक हम लोग किसी तरह इनसे लड-भिडकर भी इस सार्वजनिक सामाजिक सम्पत्ति को बचाते आ रहे थे ऐसे लोगो के हाथो मे जाने देने से। परन्तु अब आप हम पर दबाव डालकर एकता करा देंगे तो समाज की जो सम्पत्ति है, वह तहस-नहस हो जायगी, ऐसे लोगो के हाथो मे पड कर। इनका बस चलता तो ये लोग कभी के उसे बेच कर खा जाते। इसीलिए हमे एकता न होने मे ही लाभ नजर आता है।"

चरितनायकजी ने उसकी बात पर आश्चर्य प्रगट करते हुए कहा "तुम्हारी दृष्टि उस दल के प्रति ऐसी बन गई है, जिसके कारण तुम्हे ऐसा लगता है कि उस दल के अगुआ समाज की प्रोपर्टी हजम कर जायेगे, परन्तु ऐसा होना कठिन है। जब सार्वजनिक प्रोपर्टी है और उसकी रजिस्ट्री हो चुकी है, तब कोई एक व्यक्ति या एक दल उसका मालिक कैसे बन जाएगा? वह अकेला या उसके दल के लोग अगर उस प्रोपर्टी को अपने कब्जे मे करना चाहेंगे तो भी नही कर सकेंगे? सरकार के कानून-कायदे, भी तो उन्हें रोकेंगे? और उनके दल के लोग भी उन्हे रोकेंगे। इसलिए ऐसी अतिकल्पना करके तुम एकता होने मे जो रोडा अटका रहे हो और अपने दल के लोगो को उकसा कर शान्ति होने मे बाधा डाल रहे हो, यह ठीक नही है। तुम अपनी ओर से तटस्थ रहो और समाज मे एकता होने दो। नेता सभी तो हो नही सकते। समाज का नेतृत्व उन्ही के हाथो मे सर्व सम्मति या बहुमत से सौपा जाएगा, जो समाज हितैषी, योग्य एव ईमानदार होगे।"

चरितनायकजी की सीधी और स्पष्ट बाते सुनकर वह भाई जरा सहम गया और धीरे से कहने लगा "मेरे पास उस दल के अगुओ के विषय मे रिपोर्ट मिली थी कि वे माहेश्वरी समाज के दोनो दलो को एक करवा कर सारी प्रोपर्टी अपने कब्जे मे कर लेना चाहते हैं। इस पर से मुझे उनकी नीयत साफ नही मालूम देती।"

चरितनायकजी ने उसे आश्वासन देते हुए कहा—"भाई! तुम इतना घबराते क्यो हो? केवल सुनी-सुनाई बातो से किसी के बारे मे अनुचित आशका कर बैठना ठीक नही है। कई लोगो की यह मनोवृत्ति होती है, कि वे एक दूसरे को लडते देखकर प्रसन्न होते हैं, उन्हें सगठित होकर रहना फूटी आखो नही सुहाता। इसलिए तुम्हे उक्त दल के अगुओ के विषय मे कहने वाला व्यक्ति कुछ ऐसी ही प्रकृति का होगा। तुम मुझ पर विश्वास रखो। मैं कुछ भी अनुचित या अन्याय युक्त नही होने दूंगा।"

चरितनायकजी की बातो से आगन्तुक भाई बहुत प्रभावित हो गया। अत उसने अन्तिम तीर छोडते हुए कहा "गुरुदेव! आप बडे हैं, पूज्य हैं। आप तो हम लोगो का हित ही चाहते हैं। फिर भी आप कही किसी चालाक आदमी के भुलावे मे न आ जाएँ, इस बात का पूरा ध्यान रखें। वैसे मेरा अपना कोई दुराग्रह नही है कि झगड़े को समाप्त न किया जाय। अगर यह झगडा समाप्त हो जाय तो बडा अच्छा है। और फिर

आप सरीखे त्यागी, महात्माओं के निमित्त से यह विवाद शान्त हो, यह तो और भी उत्तम होगा। कोई भी कुछ गडवड़ नही कर सकेगा, क्योकि आपकी साक्षी रहेगी, दोनो दलो की एकता स्थापित करने मे।"

चरितनायकजी ने उस युवक पर कर्त्तव्य भार डालते हुए कहा "केवल इतना कह देने भर से काम नही चलेगा, तुम्हे इस दलबन्दी को मिटाने के लिए अपने दल के सब लोगो को अलग-अलग समझाना होगा, मैं इसका उत्तरदायित्व तुम पर डालता हूँ। बोलो, इस काम को कब तक पूरा करके आओगे ?"

उसने जिम्मेवारी से छिटकने की दृष्टि से कहा "गुरुवर ! यह काम तो किसी और योग्य व्यक्ति को सौंपते तो अच्छा होता। मेरा प्रभाव समाज में इतना नही है। समाज मे और भी योग्य व्यक्ति हैं। मुझे तो आप तटस्थ ही रहने दें ! मैं वैसे आपके साथ हूँ और एकता के इस शुभ कार्य में रोड़ा नही अटकाऊँगा।"

चरितनायक जी ने उक्त युवक से कहा "भाई ! तुम अब इस जिम्मेवारी से छिटक नही सकते। यह काम मेरा ही है ऐसा समझकर जल्दी से जल्दी इस कार्य को करके आओ। मुझे तुम पर विश्वास है कि तुम इस कार्य को अच्छे से अच्छे ढग से करके आओगे। समाज मे प्रभाव तो कार्य करने से ही बढता।"

युवक ने हाथ जोडकर अपनी सफाई पेश की और आनाकानी करने के पश्चात् आखिरकार यह स्वीकार कर लिया कि "मैं आपके चरण छू कर कहता हूँ कि अब मैं लोगो को भडकाना छोड कर एकता के लिए भरसक प्रयत्न करूँगा। आशा है, आपके आशीर्वाद से मेरे दल के लोगो को तो मैं एकता के लिए तैयार कर दूँगा। आप प्रतिपक्षी दल के लोगो को किसी तरह समझा कर एकता की राह पर ले आइए। फिर हमारा कार्य सम्पन्न होते देर नही लगेगी।"

चरितनायक जी ने प्रसन्नता व्यक्त करते हुए कहा—"अच्छा है, प्रयत्न करने के बाद तुम सही राह पर आगए। अब कोई चिन्ता की बात नही, प्रतिपक्षी दल के अगुआओ से तो मैंने बात कर ली है। वे बहुत हद तक सहमत मालूम होते हैं। फिर भी मैं उन्हें फिर टटोलूँगा और एकमत करने का प्रयास करूँगा।"

युवक चरितनायक जी मंगलपाठ सुनकर विदा हुआ। उसने अपने दल के सभी अगुओ से बात की और उन्हे इस बात का विश्वास दिलाया कि एकता से हमे लाभ है। उसने पिछली अफवाहो और गलतफहमियो का खण्डन किया। दल के अगुओ को पहले तो तसल्ली नही हुई। उन्होने पहले चरितनायकजी के सम्बन्ध मे शका व्यक्त की कि कही वे हमे फँसाकर समाज का सारा नेतृत्व प्रतिपक्षी दल के अगुओ के हाथो मे तो नहीं सौंप देंगे ? ऐसा हुआ तो हमारा सब किया कराया गुड-गोबर हो जायगा।"

युवक ने उन्हें आश्वासन दिया कि मैंने महाराज साहब को भलीभाति टटोल लिया है, तर्क-वितर्क करके। वे इस विषय में मेरी परीक्षा में सोलह आना खरे उतरे

है। वे पूरे जागरूक हैं, इस मामले मे। अब तो ऐक्य के लिए हमारे-तुम्हारे अनुकूल होने की बात है। इसलिए मेरा सुझाव है कि आज अपने दल की एक मीटिंग बुलाकर हम सबको इस बारे मे तैयार कर लें। कार्य जितना जल्दी हो सके, उतना अच्छा है।"

अगुओ ने और भी शंकाएँ प्रस्तुत की, लेकिन इस युवक ने सबका समाधान इस खूबी से किया कि वे सबके सब निरुत्तर हो गए। युवक की आशा फलित हुई। उसके दल के अगुओ ने मीटिंग बुलाई, उसमे जोशीले वक्तव्य दिये, उनका प्रभाव यह हुआ कि सबके दिलों मे एकता की बात बस गई। सबने एक स्वर से स्वीकार किया कि दोनों दलो को एक होकर प्रेमभाव से रहना चाहिये।" सभी लोग उसी समय इस खुशखबरी को लेकर हमारे चरितनायकजी के पास पहुँचे और समाज मे शीघ्र एकता कराने और परस्पर प्रेम, सहयोग एव सद्भाव बढाने की प्रार्थना की।

चरितनायकजी ने सबको प्रेमभरा आश्वासन दिया।

इधर प्रतिपक्षी दल के अगुओ को बुलाकर चरितनायक जी ने समझाना शुरू किया। पहले तो उन्होने इस विषय मे अपनी निराशा प्रगट करते हुए कहा "महाराज साहब! हमे तो यह काम होता नही, दिखता, क्योंकि इसमे बहुत बड़े-बड़े विघ्न हैं। तभी तो इतने वर्ष हो गए इस मामले को उलझे हुए। आपका कोई प्रभाव दूसरे दल पर पड जाय तो बात दूसरी है।"

चरितनायकजी ने प्रेम से समझाया "भाइयो! आप लोग निराश न हो। हमने इस सम्बन्ध मे काफी प्रयत्न किया है। दूसरे दल वाले लोग एकता के लिए तैयार हो गए हैं। अब तो आपके दल की बारी है। आप अपने दल के लोगो को किसी तरह मना कर एकता के लिए तैयार कर ले। अब तो नैया किनारे पर आ गई है। आप लोग यह प्रण करें कि हम अपने दल वाले लोगो को दूसरे दल के खिलाफ उकसा कर लडायेंगे नही, उन्हे एकता के लिए सहमत कर लेगे।"

प्रतिपक्षीदल के लोग जरा सहमते हुए-से बोले- "गुरुदेव! क्या सचमुच आपने दूसरे दल के नेता लोगो को समझा कर तैयार कर लिया है? अगर दूसरे दल के अमुक-अमुक नेता मान गये हैं, तब तो शीघ्र ही काम होगा। हम तो तहेदिल से यही चाहते हैं कि किस तरह से यह आपसी मनमुटाव खत्म हो, सबके दिल जुडें और समाज मे उन्नति के काम हो। हमे कोई पद या लीडरी नही चाहिए। वास्तव मे एकता होती हो और आप कहते हो तो हम तो आज ही अपने-अपने पदो से इस्तीफा देने को तैयार हैं। इन पदो को चाहे जो सभाले। परन्तु इतना जरूर चाहते हैं कि योग्य हाथो मे समाज की बागडोर रहे और पद भी योग्य व्यक्तियो को दिये जायँ जिससे समाज मे पुन. बखेडा पैदा न हो। हमारा मतलब इतना ही है कि सब काम न्याय-युक्त हो। कोई भी व्यक्ति तिकडमबाजी से पद प्राप्त करके समाज का नेता बन जायगा तो उससे एकता स्थायी नही होगी, कुछ दिनो के बाद पुन. वही दलबदी समाज मे आ-धमकेगी। एकता के बाद के सभी अरमान मिट्टी मे मिल जायेंगे।"

चरितनायकजी ने उन्हे विश्वास दिलाते हुए कहा "भाइयो ! आप लोग मुझ पर विश्वास रखें। मैं अपने वस चलते तो किसी भी अयोग्य व्यक्ति को किसी योग्य पद पर नही आने दूगा और न ही किसी प्रकार का अन्याय होने दूगा। मुझे तो स्थायी एकता मे विश्वास है। मेरा तो यह सिद्धान्त है देर भले ही हो, अधेर न हो। मैंने दूसरे दल के लोगो को इन सव वातो के लिए सहमत कर लिया है। वे मेरे अनुकूल वन कर चलेंगे। अव तो आप लोग मुझे वचन दे कि हम एकता के कार्य मे रोडा नही अटकाएँगे, और जो भी फैसला होगा, उसे मजूर करेगे।"

वहुत कुछ मनाने के पश्चात् प्रतिपक्षी-दल के नेताओ ने यह वचन दिया कि हम इस सम्वन्ध मे भसरक प्रयत्न करके एकता के अनुकूल सवको तैयार कर लेंगे। आप विश्वास रखे।"

चरितनायकजी को अव पूरी आशा थी, शीघ्र ही इस मामले के निपटने की। उन्होंने कुछ जैन भाइयो को भी माहेश्वरी समाज के दोनो दलो के लोगों को समझाने के लिए भेजा। उन्होने दोनों दलो के लोगों से मिलकर एक मत करने और इस चिर-कालीन सामाजिक फूट को मिटाने के लिए सहमत किया। फलत॰ दोनो दलो की राय से गुरुवर्य श्री के सान्निध्य मे एक मीटिंग रखने और उसमे उनसे फैसला देने की प्रार्थना करना तय हुआ।

अव चरितनायकजी की सेवा मे दोनो दल के माहेश्वरी भाई उपस्थित हुए और उनसे दोनो दलो मे शान्ति कराने हेतु निष्पक्ष फैसला देने की प्रार्थना की। इस पर चरितनायकजी ने आश्वासनप्रद शब्दो मे कहा "प्रिय वन्धुओ ! माहेश्वरी समाज अहिंसा-प्रेमी समाज है। उसमें भी वहुत-से मानवरत्न हैं। किन्तु वर्षो से दलवन्दी और फूट के कारण आपकी शक्ति छिन्न-भिन्न हो रही है। दलवन्दी मे वात मामूली-सी होती है, मगर अह की टकराहट में दोनो तरफ खींचातानी और रस्साकसी चलती है। वडी प्रसन्नता की वात है कि अव आप दोनो दलो के दिल एक होने जा रहे हैं। आपको यह सुवुद्धि सूझी और वर्षो से चलती आ रही, इस फूट का मुँह काला करने की ठान ली। मैं दोनो पक्षो मे अव एकता देखना चाहता हूँ। और आप लोग भी निष्पक्ष न्याय चाहते हैं। परन्तु मैं जो अपनी वुद्धि से वहुत ही सोच-विचार कर निष्पक्ष फैसला दूं, उसका पालन आप सवको करना है। आप मेरे सामने प्रणवद्ध हो कि हम इस फैसले का पूर्णतया पालन करेंगे। सम्भव है, इस फैसले से किसी एक दल को या दल के अमुक व्यक्तियो को वुरा लगे या उनके स्वार्थ को धक्का लगे। वे इसे पक्षपात-पूर्ण करार देकर मान्य करने से इन्कार कर दें। ऐसा नही होना चाहिए। सवको तो पूर्णरूपेण संतुष्ट या खुश नही किया जा सकता। कुछ लोगो को इस निर्णय से दुःख भी हो सकता है।"

कुछ देर तक तो इस वात को सुनकर सन्नाटा छाया रहा। फिर कुछ युवको ने मौन तोडा और कहा "गुरुवर ! आप जो भी फैसला देंगे, वह हमे और हमारे दल के

लोगों को मान्य होगा। यह सुनते ही उस दल के लोगो ने खड़े होकर वचन दिया कि हमें आपका दिया हुआ फैसला मान्य होगा, उसका पालन करने मे हमे कोई उज्र नही होगा।"

अब दूसरे दल के लोग भी उत्साह मे आ गये थे। वे भी खड़े होकर भविष्य मे दिये जाने वाले निर्णय को मानने और पालन करने के लिए वचनबद्ध हुए।

चरितनायकजी दोनो पक्षो की बातें पहले ही सुन चुके थे। फलत उन्होने एक कागज पर अपने निर्णय का मजमून बना कर १५ मिनट बाद ही भरी सभा मे सबके सामने निर्णय पढकर सुना दिया। उक्त फैसले पर दोनो दलो के मुखियो के हस्ताक्षर ले लिये गए। जब यह कार्य प्रेम से सम्पन्न हो गया तो पूज्य महाराज साहब ने दोनो पक्ष के लोगो को एक-दूसरे से गले लगकर मिलने तथा परस्पर माफी मागने के लिए कहा।

गुरुदेव श्री ने फिर कहा हमने और आप दोनो दल वाले लोगो ने काफी दौड-धूप और पुरुषार्थ इस मामले को निपटाने मे किया है। मैं आप सबको धन्यवाद देता हूँ कि आपने मेरा प्रयत्न सफल किया और मेरी बात मानकर इस झगडे का निपटारा करना स्वीकार किया। इस प्रयत्न के दौरान मैंने दोनो दलो के नेताओ को कई बार कठोर शब्दो मे कहा है, कई बार फटकारा भी है। यद्यपि इसके पीछे मेरा आशय शुद्ध था। फिर भी किसी के दिल को मेरे निमित्त से कोई आघात पहुँचा हो तो मैं क्षमा-याचना करता हूँ।"

यह सुनते ही दोनो दलो के लोगो की आखें भर आईं। उन्होने गद्गद स्वर मे कहा "गुरुदेव ! क्षमा तो हमे आपसे मागनी चाहिए थी, क्योकि हमने आपको बहुत ही कष्ट दिया है। फिर भी आप अपनी ओर से क्षमा माग रहे हैं, यह हमारे लिए शोभास्पद नही है। हमने आपका हृदय अपने स्वार्थ के लिए दुःखित किया, अत हम आपसे अन्त करण से क्षमायाचना करते हैं।"

इसके बाद दोनो ही दलो के लोग परस्पर मिले और एक-दूसरे से हृदय से क्षमायाचना की और गुरुदेव के समक्ष सबने एक होकर रहने की प्रतिज्ञा की।

यह है चरितनायकजी मे धर्माधिकारी के दायित्व का पूर्णतया निर्वाह का ज्वलन्त उदाहरण ! पाठक समझ सकते है कि चरितनायकजी का व्यक्तित्व कितना अनूठा एव चुम्बक की तरह आकर्षक था।

यही कारण है इस सफल घटना के समाचार विद्युत-वेग से सारे कस्बे मे फैल गया, और कुछ ही दिनो बाद स्वर्णकार लोग आपकी सेवा मे अपना मसला हल कर देने की प्रार्थना को लेकर उपस्थित हुए।

यो तो चरितनायकजी के व्याख्यान श्रवण के लिए वे लोग प्राय प्रतिदिन ही आया करते थे, परन्तु आज एक विशेष कारण को लेकर आए थे। चरितनायकजी ने उनसे धर्मस्नेहवश पूछा "क्या बात है, स्वर्णकार भाइयो ! क्या आज कोई सकट आ-पडा है या किसी ने तुम्हे हैरान किया है ?"

उन्होंने कहा "गुरुमहाराज ! और तो कोई सकट नही है, सिर्फ एक सकट है, उसके निवारण के लिए ही हम सब आपकी सेवा मे आये है। वह सकट आपके द्वारा ही मिट सकता है। उसी सकट ने हमे हैरान कर दिया है।"

चरितनायकजी ने कहा भाइयो ! कुछ खुलकर कहो तो पता लगे। हमने तो साधु जीवन ही सकट निवारण के लिए अगीकार किया है। अगर मुझसे सकट मिट सकेगा, तो मैं कोई कसर नही छोड़ूँगा।"

स्वर्णकार बधु "गुरुदेव ! हम लोगो के बहुत-ही थोड़े-से घर इस इलाके मे हैं। उनमे भी परस्पर फूट है। आपने ६० वर्ष पुराना माहेश्वरियो का झगड़ा मिटा दिया तो हमारा तो बहुत-ही छोटा समाज है और झगडा भी कुछ ही वर्षों पहले का है। इसका निपटारा करवाना आपके लिए तो बायें हाथ का खेल है। कृपा करके हमारा मसला निपटा दे।"

चरितनायकजी ने स्वर्णकार भाइयो से कहा "भाइयो ! आप सब लोगो की भावना की मैं कद्र करता हूँ। आप लोग जिस कार्य के लिये आए हैं, उसमे मेरी रुचि भी है, लेकिन वह तब तक सफल नही हो सकता, जब तक मैं आपकी जाति के दूसरे पक्ष के लोगो से न मिल लूँ। अतः आप पहले तो अपने पक्ष के लोगो को एकमत कर ले, तत्पश्चात् दूसरे पक्ष के लोगो से बातचीत करके हमसे मिलावे। मेरा विश्वास है कि यह काम आपके लिए कुछ भी कठिन नही होगा।"

स्वर्णकार बधु हमारे पक्ष के लोगो को समझाना तो कोई कठिन नही है। परन्तु दूसरे पक्ष के लोगो को समझाना हमारे लिए टेढी खीर है। हम उनके पास जाएँ और वे हमसे बात ही न करे या हमारा अपमान कर दें, तो हमसे कैसे सहन हो सकता है ? अत आप किसी जैन भाई के द्वारा उन्हें बुला ले और समझा दे।"

चरितनायकजी उन्हे युक्ति से समझाने लगे "भाइयो ! आप लोग तो स्वर्णकार हैं, सोने की घडाई करते हैं। सोना तभी खरा बनता है, जब उसे आप काटते हैं, पीटते हैं, आग मे डालकर पिघलाते हैं और कसौटी पर कसते हैं, इसी प्रकार आपको अपने खरे होने की परीक्षा के लिए सोने की तरह नरम बनना होगा, स्वय अग्निपरीक्षा मे से गुजरना होगा, लोग आपकी कसौटी करें, उसमें भी खरे उतरना होगा, कदाचित अपमान और अनादर की मार पड़े तो उसे भी सहनी होगी। आप जरा-सी बात मे घबरा गये। आप बिलकुल न घबराइए। मेरी ओर से दूसरे पक्ष वाले लोगो के पास जाइए। मेरा विश्वास है कि आपको चला कर अपने पास आए देख वे भी पानी-पानी हो जाएँगे। आपके दिल में सरलता और सच्चाई होगी तो उसका प्रभाव उन पर भी अवश्य होगा। इसीलिए मैं आप लोगो से पहल करने को कह रहा हूँ। आप उनके पास प्रेम और शान्ति का सन्देश लेकर जाइए।"

चरितनायकजी की इस प्रेरणा का आगन्तुक स्वर्णकारो पर बहुत अच्छा प्रभाव पडा और वे कहने लगे अच्छा, गुरुदेव ! हम आपका सन्देश लेकर उनके पास जाएँगे

और हमे आपकी अद्‌भुत प्रेरणा से विश्वास हो गया है कि वे अवश्य ही हमारी बात मान जायेंगे। कदाचित् नही मानेंगे तो हम उनमे से जो बुजुर्ग होंगे, उनके चरणो मे अपना सिर रख देंगे और उन्हे किसी भी तरह से मुलायम बना कर एकता के लिए मजबूर कर देंगे। नम्र बनने से हमारा क्या बिगड जाएगा? आप आशीर्वाद दीजिए।"

चरितनायकजी से मगलपाठ सुनकर सभी स्वर्णकार भाई उत्साहपूर्वक दूसरे पक्ष के भाइयो के पास पहुँचे। इन भाइयो को अपने यहाँ अचानक आए देख वे तो हक्के-बक्के-से रह गए। उन्हे स्वप्न मे भी यह कल्पना नही थी कि इस प्रकार से विरोधी-पक्ष के भाई हमारे पास आएँगे। इस अप्रत्याशित आगमन के कारण उनके हृदय नम्र हो गए। उन्होने अपने यहाँ आये हुए भाइयो को आदर के साथ बिठाया और प्रेमपूर्वक पूछा "कहिये भाई साहब, कैसे पधारना हुआ? हमारा अहोभाग्य है कि काफी अर्से बाद आप हमे सभालने और हमारी कुटिया पावन करने पधारे। यह बात हो रही थी कि गृहस्वामी का पुत्र सबके लिए चाय बनवाकर ले आया। सबको आग्रहपूर्वक चाय पिलाई, तत्पश्चात् आगन्तुक स्वर्णकारो ने उनसे कहा "भाइयो! आज हम अपने कस्बे मे विराजमान पूज्य स्वामी जी श्री पन्नालाल जी महाराज की सेवा मे गये थे। उन्होने हमारी आँखे खोल दी। उन्ही का सन्देश लेकर हम आपके पास आये हैं, एकता की अपील करने। महाराज श्री के वचनो पर विश्वास रखकर हम आपसे मिलने आये थे। प्रथम मगलाचरण मे ही हमे आपका प्रेम और आतिथ्य मिला, जिसे पाकर हम गद्गद हो गये हैं। आगे हमे आशा है, आप हमारी एकता की अपील को ठुकराएँगे नही। हमारी यह गलती ही समझिए कि हम मनो की पारस्परिक खीचातानी के कारण आपसे बिछुडे हुए रहे।"

"भाइयो! आपको हम अपने घर पर देखकर बड़े प्रसन्न हैं। फिर आपको स्वामी जी महाराज ने एकता का सन्देश देकर भेजा है तो अवश्य ही उस पर विचार होगा। आपको थोड़ी देर प्रतीक्षा करनी होगी, तब तक हम अपने कुछ भाइयो को यही बुला लाते है और आपस मे प्रेमपूर्वक विचार-विमर्श करके यथायोग्य करेगे। आशा है, आपकी शुभ भावना अवश्य ही सफल हो जायेगी," गृहस्वामी ने कहा।

गृहस्वामी ने अपने दोनो लडको और भतीजे को अपने पक्ष के खास-खास स्वर्णकारो को बुला लाने को भेजा। वे गये और कोई आध घन्टे मे ही प्रायः सभी अग्रगण्य लोगो को बुला लाए। अग्रगण्य लोगो के आते ही सभी आगन्तुक स्वर्णकार उठकर प्रेमपूर्वक मिले। सबने एक-दूसरे से कुशल प्रश्न पूछा और प्रसन्नता से बैठ गये। गृहस्वामी ने अपने पक्ष के अग्रगण्य लोगो को एकान्त मे ले जा कर सारी वस्तुस्थिति से अवगत किया। गृहस्वामी ने स्वामी जी महाराज के एकता के सन्देश को मान्य कर लेने के लिए सबको समझाया। उनकी बात से लगभग सभी लोग सहमत हुए। उन्होने नम्रतापूर्वक आगन्तुक स्वर्णकारो से पूछा "भाई साहब! कहिये क्या आज्ञा है, हमारे लिये? आप हमसे क्या चाहते हैं स्पष्ट कहिये।"

आगन्तुक स्वर्णकार "भला हम आपको आज्ञा दें, यह तो आपकी तौहीन है। हम तो आप लोगो के नम्र सेवक हैं, जाति भाई हैं, इस नाते आपसे एक अपील करने आये थे, वह यह कि हमारी जाति के घर इस इलाके मे वैसे ही कम है, फिर आपस मे यह फूट शोभा नही देती। इसलिए हम स्वामी श्री पन्नालाल जी महाराज के पास इस सम्बन्ध मे प्रार्थना करने गए थे। उन्होने हमे आपके पास एकता का सन्देश देकर भेजा है। हम यही चाहते हैं कि हम सब एक हो जायँ, पिछली सब बातें रफादफा की जायँ और हम सब मिलकर अपनी जाति की उन्नति के लिए काम करें।"

उपस्थित लोगो ने प्रसन्नता व्यक्त करते हुए कहा "हम तो इसी फिराक मे थे कि हमारे आपस की यह फूट अब मिट जाय और जाति की उन्नति के लिए कुछ काम हो। परन्तु हम यह सोच रहे थे कि दूसरा पक्ष जब तक पहल न करे, तब तक हम इस मसले को कैसे हल करें? आपने चला कर हमे स्वामी जी के सन्देश से प्रेरित किया, हम आपकी अपील का स्वागत करते हैं, पिछली सब बातो को हम और हमारे पक्ष के लोग भी भूल जायँ और आप व आपके पक्ष के लोग भी भूल जायँ। अगर किसी के मन मे कोई खटका हो तो प्रेम से आपस मे बातचीत करके समाधान कर ले और परस्पर क्षमायाचना करके सूर्य नारायण की साक्षी से एव पूज्य स्वामी जी के सान्निध्य मे शपथ ले लें।"

"हमे आपकी बात मजूर है। **'शुभस्य शीघ्रम्'** के अनुसार इसी समय चल कर हम स्वामी जी के सान्निध्य मे इस शुभ कार्य को सम्पन्न कर ले।" आगन्तुक स्वर्णकारो ने हर्ष व्यक्त करते हुए कहा।

सबके चेहरे प्रसन्नता से झूम उठे। दोनो पक्ष के सभी मुख्य-मुख्य व्यक्ति स्वामी श्री पन्नालाल जी महाराज की सेवा मे उपस्थित हुए। दोनो पक्ष के लोगो ने हमारे चरितनायक जी से प्रार्थना की "गुरुदेव! हम आपकी सेवा मे आपके आदेश-सदेश का पालन करने आये हैं। आपकी जैसी उदात्त भावना, प्रेरणा और इच्छा थी, तदनुसार हम दोनो पक्षो के लोग एक होकर आये हैं। हम सूर्य नारायण की साक्षी से आपके सामने शपथ लेते हैं कि आप जो भी फैसला दे देंगे उसका हम पूर्णतया पालन करेंगे और भविष्य मे हम किसी भी प्रकार से फूट डालने या आपस मे मनोमालिन्य बढाने का कोई काम अपनी ओर से नही करेंगे। पिछली बातो को रफादफा करके हम आपस मे क्षमायाचना करते हैं।" दोनो ही पक्षो के लोगो ने स्वामी जी के सामने परस्पर क्षमा-याचना की और एक दूसरे से गले लगकर मिले।

चरितनायकजी के हर्ष का पार न रहा। उन्होने प्रसन्नतापूर्वक कहा "भाइयो! मुझे आशा थी कि आप लोगो में शीघ्र ही शान्ति स्थापित होगी। जब से ये भाई मेरे पास आए और मैंने इन्हें विश्वास दिला कर आप (दूसरे पक्ष के भाइयो) के पास भेजा, तभी से इस मनोमालिन्य का अन्त हो गया था। मुझे बहुत खुशी है कि आपने मेरे सुझाव को मान्य किया और परस्पर प्रेमभाव स्थापित कर लिया।"

इसके पश्चात् स्वामी जी ने निष्पक्ष फैसला दिया, जो दोनो पक्षो के लिए हितावह था। दोनो पक्षो के लोग एक होकर स्वर्णकार जाति की उन्नति के कार्यो मे सलग्न हो गये।

इस प्रकार हमारे चरितनायक जी का प्रभाव एक धर्माधिकारी की तरह वृद्धिगत होता जा रहा था। आप जहाँ भी जाते, विरोधी लोग भी आपके वन जाते थे। जो लोग प्रथम वार ही आपके पास आते थे, वे भी आपके वचन को विना कुछ भी ननु नच किये शिरोधार्य कर लेते थे। उन्हे यह अनुभव भी नही होता था कि स्वामी जी महाराज पराये हैं।

विक्रम सवत् २००५ की घटना है। हमारे चरितनायकजी जामालो से ग्रामानुग्राम विचरण करते हुए नसीरावाद के पास नांदला गाँव मे पधारे। इस गाँव मे जैनो के सिर्फ दो ही घर हैं। करीव १०-१५ घर माहेश्वरियो के हैं। माहेश्वरी लोगो मे कई अच्छे सम्पन्न हैं। इनमे दो-तीन वकील भी हैं। स्वामी जी पर सव लोगो की अत्यन्त श्रद्धा-भक्ति थी। वे आपके प्रवचन मे प्रतिदिन आते थे और दिलचस्पी से सुनते थे। चरितनायक जी ने अपनी उदारवृत्ति के अनुसार "मानवता" पर प्रवचन दिया, जिसका सभी लोगो पर अद्भुत प्रभाव पडा।

दूसरे दिन प्रात'काल जव आप वहाँ से विहार करने लगे तो एक माहेश्वरी भाई सूरजमलजी लखोटिया दौड़े-दौडे आपकी सेवा मे पहुँचे और विनयपूर्वक निवेदन करने लगे "गुरुदेव ! आप यही विराजे। हम सव माहेश्वरी भाइयो की ओर से प्रार्थना है।"

चरितनायक जी ने कहा "भाइयो ! मैं, आज सुख-शान्तिपूर्वक नसीरावाद पहुँचने का वचन दे चुका हूँ। अत आज यहाँ रुकने का अवसर नही है।"

वे वोले "ऐसा तो नही होना चाहिए, गुरुदेव ! उपकार का कार्य हो तो आपको रुक जाना चाहिए। आप हम पर कृपा कीजिए।

चरितनायक जी "सामान्य उपकार का कार्य तो सव जगह होता है। साधु का जीवन ही स्वपर-कल्याण साधने के लिए होता है, उसके कारण किसी को दिए हुए समय या वचन को टाला नही जा सकता। कोई अत्यन्त गाढ कारण हो, जो मेरे रुके विना हो ही नही सकता हो, या मेरे रुकने से ही जो कार्य हो सकता हो, उसके सम्वन्ध मे विचार किया जा सकता है। लेकिन जो कार्य प्रकारान्तर से मेरे विना ही, या मेरी अनुपस्थिति मे ही दूर से वैठे हुए मेरी प्रेरणा या मार्गदर्शन से हो सकता है, उसमे मुझे वहाँ रुकना ठीक नही है। अव आप वताइए कि ऐसा कौन-सा अत्यन्त गाढ कारण है, जिसके लिए आपका इतना आग्रह है।"

माहेश्वरी वधु "गुरुदेव ! आपको मैं सामान्य उपकार के लिए तो रोकना नही चाहता था। आपने जिसको समय या वचन दिया है, उसका पालन करना आवश्यक है,

किन्तु मेरी एक विशेष परिस्थिति है। मेरे यहाँ शादी का प्रसंग आ रहा है। इधर हमारे समाज मे वर्षो से दो दल चले आ रहे हैं। इसके कारण सभी भाई मेरे यहाँ नही आ पायेंगे। मैं चाहता हूँ कि मैं अपने तमाम भाइयो को अपने यहाँ विवाह-महोत्सव मे आमन्त्रित और सम्मिलित करूँ। इस पारस्परिक फूट को मिटाये बिना मेरा यह मनोरथ पूर्ण नही हो सकेगा। इस झगड़े को निपटाने के लिए यहाँ के वकीलो ने भरसक प्रयत्न कर लिया, लेकिन अभी तक निपट नही सका। अब आप अनायास ही यहाँ पधारे है और आपका प्रभाव हमारे गाँव पर एव हम लोगो पर है, आपके वचन को भी लोग मानते हैं। आपने इस इलाके मे बहुत से झगड़े निपटाये हैं। अत कृपा करके इस झगडे को भी निपटा दीजिए ताकि मैं अपने घर पर सभी भाइयो को इस अवसर पर देख सकूँ। इसीलिए हमारी आग्रहभरी प्रार्थना है कि आप यही विराज कर हम पर यह अनुग्रह कर दीजिए।"

चरितनायक जी सदा से शान्ति और प्रेम के पक्षपाती रहे है। उन्होंने इस बात को सुना तो वो कुछ देर मनोमन्थन मे पड गये, फिर आपने कहा अगर दोनो पक्ष के मुखिया आ जायँ तो मैं इस विषय मे अपने कुछ सुझाव दू।" फलत· कुछ लोगों ने तुरन्त घूम करके दोनों ओर के मुखिया लोगो को स्वामी जी महाराज के सामने एकत्रित किया। दोनो दलो के मुखियाओ के समक्ष आपने फरमाया—"भाइयो! मैं तहदिल से चाहता हूँ कि आपका आपसी झगडा मिट जाय और आप लोग प्रेमपूर्वक रहें।"

सब लोगो ने कहा "आप कम से कम एक सप्ताह यहाँ विराजें, तब तो हमारा यह झगडा सदा के लिए मिट सकता है। आप केवल आज रुक कर अन्यत्र चल दें, तब तो यह कार्य होना कठिन है।"

श्री चरितनायक जी ने फरमाया "भाइयो! आपकी बात तो ठीक है। जब तक रुक कर इस झगड़े के विषय मे पूरा अध्ययन न किया जाय, तब तक इसका निपटारा कैसे किया जा सकता है। यदि आप पहले कह देते तो मैं कुछ दिन रुक कर इस उलझन को निपटाने का प्रयत्न करता।"

लोगो ने कहा "पहले पता नही था कि आप इतनी जल्दी यहाँ से अन्यत्र विहार कर जायेंगे। अभी आपको विहार करते देख कर ही हम लोगो ने विनति करके आपको रोकने तथा इस झगड़े का आपसे निपटारा कराने की सोची है।"

चरितनायक जी—"भाइयो! अभी तो मैं यहाँ रुक नही सकूँगा। मेरी इस काम मे रुचि बहुत है, लेकिन मैं आज नसीराबाद जाने के लिए वचनबद्ध हो चुका हूँ। आप लोगों से मेरी एक प्रेरणा है कि पारस्परिक मनमुटाव, खीचातानी और आपसी झगड़ा रखने मे कोई सार नही है। इसे जितना शीघ्र निपटा सकें, उतना अच्छा रहेगा। अत· इसे शीघ्र मिटाकर परस्पर प्रेमभावना बढाये। इसके लिए यदि आप दोनो ओर के लोग मुझे लिखकर दे कि हम दोनो पक्षो के लोग आपसी झगडा निपटाने के लिए कटिबद्ध हैं। इसलिए आप (मैं) जो भी निर्णय इसके लिए देंगे, वह हमे शिरोधार्य होगा, तो मैं नसीराबाद जाकर समाधान वहाँ से भेज दूँगा।"

उसी समय वकीलो ने एक मसविदा तैयार किया, जिस पर दोनो पक्षो के खास-खास लोगो ने हस्ताक्षर किये। दोनो पक्षो के दिल पर आपके वचन का अद्भुत प्रभाव पडा। सच है, जहाँ सरलता होती है, वहाँ विरोधी से विरोधी लोगो के पारस्परिक मन-मुटाव स्वयं शात हो जाते हैं।

हमारे चरितनायकजी माहेश्वरी समाज के दोनो पक्षो की तह मे पहुँच चुके थे। उन्होने नसीराबाद पहुँचकर माहेश्वरी लोगो मे वर्षों से चली आई फूट की समाप्ति के लिए पूर्वापरसगत विचार करके अपना फैसला लिखा और एक विश्वस्त व्यक्ति उसे लेकर नादला पहुँचा। वहाँ दोनो पक्षो के लोग उत्साहपूर्वक प्रतीक्षारत थे। दोनो पक्षो के मुखिया लोगो ने जब आपके द्वारा दिया हुआ लिखित फैसला सुना तो वे अत्यन्त प्रसन्न हो उठे और परस्पर प्रेमपूर्वक हिले-मिले। आपके द्वारा दिये गये निर्णय से वकील लोग भी बहुत प्रभावित हुए। सभी लोग इस निष्पक्ष निर्णय से सतुष्ट होकर मुक्तकण्ठ से प्रशसा करने लगे। एक-दूसरे से माफी माग ली।

सचमुच, धर्माधिकारी का दायित्व पूर्ण करने का चरितनायकजी का अद्भुत कौशल देखकर लोग दातो तले उगली दबाते थे।

कभी-कभी छोटी-सी बात भी छोटी-सी चिनगारी की तरह सारे गाँव को ही नही, दूर-दूर तक आग भडका कर विशालरूप ले लेती है। विक्रम सवत् २०१२ का चातुर्मास मसूदा मे पूर्ण होने के बाद आपका विहार विजयनगर की ओर हुआ। रास्ते मे आप राताकोट पधारे। वहाँ ओसवालो और जाटो मे एक चबूतरे को लेकर झगडा चल रहा था। झगडे ने इतना उग्ररूप धारण कर लिया कि न्यायालय मे मुकद्मा चल पडा। मुकद्मे की पेशी पर दोनो पक्षो के २५-२५ आदमियो को न्यायालय मे उपस्थित होना पडता था। दोनो पक्षो के अब तक हजारो रुपये इस मुकद्मे मे स्वाहा हो गए थे। परन्तु नतीजा अभी तक कुछ भी नही निकला था। दरअसल, कई बार दोनो दलो के तथाकथित नेता अपने निहितस्वार्थ-भग होने के डर से आपस मे समाधान एव सुलह-शान्ति करने के बदले उकसा-उकसा कर लडाते-भिडाते रहते हैं, एक दूसरे को। इस मामले मे भी प्राय ऐसा ही हुआ। एक पक्ष को समझाने जाएं तो दूसरा पक्ष नाराज हो जाता और दूसरे को समझाते तो पहला पक्ष असतुष्ट रहता।

जिले के माने हुए नेता श्री मुकुट बिहारीलालजी भार्गव भी दोनो पक्ष के अगुओ को समझाते-समझाते थक गए, फिर भी इस झगड़े को निपटाने मे असफल रहे। यद्यपि बीच-बीच मे कई बार इस मामले मे उतार-चढाव, भी आए कभी इसने उग्र तो कभी मन्द रूप भी धारण कर लिया था। आखिरकार श्री मुकुट बिहारीलालजी भार्गव ने पूज्य गुरुदेव के चरणो मे प्रार्थना की कि आप इस झगड़े को हाथ मे लेकर निपटा दीजिए। यह झगडा आपके द्वारा ही समाप्त हो सकता है। अब यह मामला हमारे वश का नही रहा है।"

श्री मुकुट विहारीलालजी की वात सुन कर चरितनायकजी ने फरमाया "मुझे विश्वास है कि यह मामला शीघ्र ही निपट जायगा। दोनो पक्षो के अग्रगण्यो को पहले अलग-अलग बुलाकर समझाने पर ही यह विवाद सुलझ सकता है।"

दूसरे ही दिन जाट लोगो के ४-५ नेताओं को बुलाया गया। वे आए और चरितनायकजी के चरणो मे हाथ जोड़ कर विनयपूर्वक बैठ गए। श्री चरितनायकजी ने उन्हे समझाया "मानव-जाति सदा सहयोग के आधार पर जिन्दा और सुखी रही है। उसमे भी गाँव या नगर का सगठन इसलिए बनाया जाता है कि इसमें वसने वाले विभिन्न जाति, कुल या धर्म-सम्प्रदाय के लोग परस्पर सहयोग के साथ जीएँ, एक-दूसरे के सुख-दुख मे सम्मिलित हो। आप लोगो को भी प्रतिदिन एक दूसरे से वास्ता पडता है, सहयोग के विना सुख-समृद्धि कदापि हो नही सकती। परन्तु आप लोग परस्पर साथ रहने वाले होते हुए भी अलग-अलग रहे और एक मामूली-सी वात को विवाद का विषय वनाकर लडते रहे। इसके कारण सहयोग के लेन-देन मे वहुत विघ्न आएँ, यह वात आप जैसे धर्मश्रद्धालु एव समझदार भाइयो के लिए शोभा नही देती। जो समय रहते ही समझ जाते हैं, वे ही समझदार कहलाते हैं। है तो एक चवूतरे का प्रश्न ही ? ऐसे अनेक चवूतरे आप लोग वना सकते हैं। किन्तु इसी एक चवूतरे को लेकर आपके हृदयो मे परस्पर दरार पड़ जाय, आपके दिल टूट जायँ, एक-दूसरे के प्रति द्वेष-भाव वढे, यह अच्छा नही है। अतः मेरी सलाह है कि आप अपनी ओर से इस विवाद को निपटाने में पहल करें।"

जाटो के मुखिया आपके प्रेम और सद्भाव पूर्ण उपदेश को सुनकर अत्यन्त प्रभावित हुए। फिर भी कुछ पूर्वाग्रह उनके संस्कारो मे अव भी प्रविष्ट था। अतः वे कहने लगे "गुरुदेव ! हमारे अकेले के पहल करने से काम कैसे होगा ? जव तक विरोधीपक्ष के मुखिया लोग नही मानेंगे, तव तक यह विवाद निपटेगा कैसे ? अतः पहले ओसवालो को आप भली-भाँति समझा दें, ताकि वे इस सम्वन्ध मे कोई पकड़ न रखें।"

ओसवाल लोग भी शीघ्र ही गुरुदेव श्री जी की सेवा मे उपस्थित हुए और उन्होंने शपथ खाकर कहा "हम अपने मन मे किसी प्रकार की गाँठ नही रखेंगे। गुरुदेव हमें जैसा आदेश-निर्देश देंगे तदनुसार हम करने को तैयार हैं। वे जो भी निर्णय देंगे, वह हमें मान्य होगा।"

ओसवाल लोग इतनी जल्दी झगड़े की शांति के लिए तैयार हो जायेंगे, यह किसी को आशा न थी। किन्तु गुरुदेव की जो प्रज्ञा-प्रतिमा (पन्ना-प्रज्ञा) 'यथा नाम तथा गुण' के अनुसार थी, उसका लोहा दोनो पक्षों को मानना पडा।

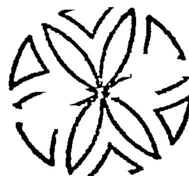
ओसवालो के द्वारा विवाद शान्ति की तैयारी देखकर गुरुदेव वहुत ही सतुष्ट हुए। उन्होंने जाटों को कुछ तो मना ही लिया था, कुछ प्रेरणा और दे दी "देख लो, भाइयो ! ओसवाल लोग तो तैयार हैं, शान्ति के लिए, अव आप ही की ओर से देर है।

बोलो, आप लोग क्या चाहते हैं ?" जाटो ने भी देखा कि अगर अब हम लोग तने रहेगे तो एकता-भग का सारा दोष हमारे सिर पर आएगा। अतः उन्होंने भी तुरन्त गुरुदेव की बात मानना ही उचित समझा। उन्होने कहा—"गुरुदेव ! हमे भी आपके द्वारा दिया गया निर्णय मान्य होगा। आपका जो भी आदेश-निर्देश होगा, वह हमे शिरोधार्य होगा।"

वातावरण इतना सुन्दर बना कि सिर्फ १५ मिनट मे ही आपने दोनो पक्षो मे परस्पर प्रेमभाव स्थापित करवा दिया। आपने जो निष्पक्ष निर्णय दिया, उससे दोनो पक्षो को सतोष हुआ और दोनो पक्षो ने उसका पालन भी किया। न्यायालय मे दोनो पक्षो की ओर से राजी-नामा प्रस्तुत करके मुकदमा वापिस ले लिया गया। गाँव मे इस सप को देख कर सबके हृदय हर्ष से नाच उठे।

वास्तव मे चरितनायक जी की प्रज्ञा सम्पन्नता, धीरता, कुशलता और कार्य-क्षमता ने उनके व्यक्तित्व मे इतना अधिक निखार ला दिया कि विवाद, कलह, झगडा या मनमुटाव आपके हाथ मे निपटारे के लिए सौंपते ही काफूर हो जाता था। आप मे धर्माधिकारी के दायित्व की इतनी अद्‌भुत प्रतिभा और कार्यक्षमता थी कि न्यायालय के वर्तमान न्यायाधीश या न्यायाधीक्षक आपके सामने फीके प्रतीत होते थे।

ज्यो-ज्यो कषाय की वृद्धि होती है त्यो-त्यो अधर्म-पाप की वृद्धि होती है। दलबदी कषायवृद्धि का मूल है। हमारे श्रद्धेय चरितनायक जी ने अनेक विवादो का अन्त करके न केवल सामाजिक उपकार किया अपितु पाप के बीज-कषाय का उन्मूलन करके लोगो को पाप से भी बचाया। प्रेम, सद्‌भाव और समन्वय का अद्‌भुत वातावरण निर्माण किया।



१५

मानवता के मसीहा

☐

बहुधा सभी धर्म-सम्प्रदायो के अनुयायियो मे यह देखा जाता है कि वे चीटियो, चिडियो, कुत्तो, मछलियो या अन्य पशु-पक्षियो के प्रति तो अनुकम्पाशील होते हैं, परन्तु जहाँ मानवो के प्रति अनुकम्पा का प्रश्न आता है, वहाँ वे बहुत ही पीछे होते है। जहाँ मानवो पर कोई आफत बरस रही हो, मानव भूख-प्यास के मारे मर रहे हो, ठण्ड से ठिठुर रहे हो, या गर्मी से झुलस रहे हो। बेरोजगारी के कारण अपने परिवार सहित दीन-हीन बनकर अपने धर्म से च्युत होने को तैयार हो रहे हो, भूकम्प, दुष्काल, सूखा या बाढ के कारण परिवार के परिवार मृत्यु के मुख मे जा रहे हों, यही नही, माताएँ अपना शील लुटा कर या अपने नन्हे मुन्नो को दो-चार रुपयो मे बेचकर अपना पेट भरने को तैयार हो रही हो, वहाँ उनकी धर्म चेतना प्राय. बहुत ही मन्द पड जाती है। उनका सोचने का ढग कुछ स्वार्थी हो जाता है। वे कहने लगते हैं कि अपने-अपने किये हुए कर्म सबको भोगने पडते हैं, कौन किसी के कर्म को बदल सकता है। जैसे जिसके कर्म ! परन्तु जब वही आफत स्वय पर आ पडती है, तब उनकी भाषा दूसरी होती है। यानी लेने के समय का गज और होता है, देने के समय और।

परन्तु मानवता का सही मापदण्ड मानवो के प्रति मानव की दया है। इन्सानियत का बीज मानव-दया ही है। एक मानव दुःख मे पडा कराह रहा हो, उस समय दूसरा साधन सम्पन्न मानव टुकुर-टुकुर उपेक्षाभाव से देखता रहे, यह मानवता की पराजय है।

बाढ़ पीड़ितों की सहायता के लिए प्रेरणा

हमारे चरितनायक मुनिश्री पन्नालालजी महाराज इस देव-दुर्लभ मनुष्यता को सर्वप्रथम स्थान देते थे। जब भी उन्होंने सुना कि अमुक जगह लोग बाढ से पीडित हैं तो उनकी मानवदया उमड पडी।

विक्रम सम्वत् २००० का आपका चातुर्मास ठा० ३ से भीलवाडा हुआ। उस समय भीलवाडा के आसपास से लेकर विजयनगर पर्यन्त के क्षेत्र मे कोठारी, मानसी एव खारी नामक नदियो मे भारी वर्षा के कारण भयकर बाढ आ गई। बाढ ने इतना प्रलयकर रूप धारण कर लिया कि विजयनगर से लेकर भीलवाड़ा तक जिधर देखो, उधर जल ही जल दिखाई देता था। बाढ ने इतनी विनाशलीला की कि धन, जन एव साधन के अतिरिक्त हजारो पशु मौत की चपेट मे आ गए। बहुत से लोग बे-घरबार हो गए। जनता मे त्राहि-त्राहि मच गई। हमारे चरितनायकजी ने जब बाढ-पीडितो की दयनीय दशा देखी तो उनकी आत्मा तिलमिला उठी। उन्होने अपने प्रवचनो मे बाढपीडित जनता के दर्दनाक दृश्य का वर्णन किया और उन्हे सहायता देने के लिए स्थानीय जनता को प्रेरणा देते हुए कहा "धर्मप्रेमी बन्धुओ! यह तुम्हारी मानवता की परीक्षा का अवसर है। इन्सानियत का तकाजा है कि आप लोग विपत्ति से घिरे हुए अपने मानव-बन्धुओ, भगिनियो, बच्चो और बूढो को उदार दिल से सहयोग दें। यह मत सोचना कि हम उनके लिए क्या कर सकते हैं? उनका जैसा भाग्य होगा वैसा होगा। बन्धुओ! इस बात का पता सर्वज्ञो के सिवाय किसी को पूर्णत' नही होता कि किसका भाग्य कैसा है? कोई यह दावा नही कर सकता कि मुझ पर कभी विपत्ति नही आ सकती। इसलिए उनकी सहायता करना, एक तरह से अपने आपकी सहायता करना है। उनके आँसू पोछना अपने आपको दु खमुक्त करना है। **'मनुष्य-जातिरेकैव'** के अनुसार हम सबका मानव परिवार एक है। अगर हमारे परिवार का कोई भी व्यक्ति दु खित, पीडित और विपन्न है तो हमे उसके दु ख-दर्द को मिटाने के लिए तुरन्त जुट जाना चाहिए। मनुष्य ही नही अन्य प्राणियो के साथ भी **परस्परोपग्रहो जीवानाम्** जीवो का परस्पर उपकार करना हमारा परम्परागत स्वभाव है। भवगद्गीता मे भी कहा है

'परस्परं भावयन्त' श्रेयः परमवाप्स्यथ'

एक दूसरे के साथ परस्पर सहयोग की भावना लेन-देन की भावना परम श्रेय प्राप्ति का कारण है।

आज आप उन्हे सहयोग दे रहे हैं, कल वे भी और अन्य ऐसे लोग भी, जिनसे हमारा कभी कोई वास्ता नही रहा है, हमे सहयोग दे सकते हैं, हमारी किसी भी प्रकार की विपन्न अवस्था मे। अत उदारहृदय बन कर बाढ की आफत से घिरे इन्सानो को हर प्रकार से आपको सहायता देनी चाहिए। अधिक क्या कहूँ! आप लोगो को एक ही इशारा काफी है। इस समय और किसी मद मे अधिक खर्च न करके इन विपद्ग्रस्त मानवो की सेवा के लिए खर्च करना ठीक होगा। आपके धन की सार्थकता इसी मे है, अपने पास प्राप्त साधनो का इसी मे सदुपयोग है।"

आपके ओजस्वी प्रवचन उन दिनो प्राय इसी विषय पर हुआ करते थे। जनता पर भी उन प्रवचनो का अद्भुत प्रभाव पडता था। आपके उपदेशो से प्रेरित होकर जनता ने बाढग्रस्त क्षेत्रो मे तन-मन-धन एव साधनो से विपन्न लोगो को सहायता पहुँचाई, मुक्तहस्त से सहयोग प्रदान किया।

इससे बाढपीडित जनता को काफी राहत मिली। विपन्न जनता अपने उद्धारक, अपने सकट त्राता सन्त-प्रवर के दर्शनो के लिए बहुत ही उत्सुक थी। वह चाहती थी कि हम उन उपकारी पूज्य पुरुष के दर्शन कर अपने को कृतार्थ करें। आपके कानो मे बाढ पीडित जनता की यह पुकार पहुँची। फलत' चातुर्मास की पूर्णाहुति के पश्चात् आपने भी बाढग्रस्त क्षेत्र मे विचरण करके जनता को आश्वस्त किया, उन्हे सहानुभूति के दो बोल कहकर उनकी पीडा शान्त की, उनकी सतप्त वेदना सान्त्वना के मीठे शब्दो से बुझाई।

भुखमरी के समय जनता की मानवता जगाई

इस बाढ की विनाशलीला से त्रस्त-जन चरितनायकजी द्वारा प्रदत्त सहयोग-प्रेरणा से अभी-अभी स्वस्थ और स्थिर हुए ही थे कि सवत् २००१ के ब्यावर चातुर्मास-यापन के दौरान बगाल मे भयकर दुष्काल और भुखमरी की घटना अखबारो के पन्नो पर चमक उठी। आपकी सेवा मे भी सत्रस्त जनता की पुकार को लेकर लोग पहुँचे। लोगो ने सुनाया कि लोग भूख के मारे जगह-जगह सडको पर डेरा डाले पड़े रहते हैं। ज्यो ही कोई भात (चावल) उन्हें देने आता है, त्यो ही एक तरफ कुत्ते झपटते हैं, एक तरफ से वे लोग टूट पडते हैं। कभी-कभी तो कुत्ते के मुँह मे दबाई हुई रोटी को भूखे लोग छीन लेते हैं। भूख के मारे कराहते हुए अधनगे लोग टपाटप मौत की शरण मे पहुँच रहे हैं। भूख के मारे अशक्त और अधमरे लोग कोई भी काम कर नही सकते। काम की खोज मे बहुत-से स्त्री-पुरुष मारे-मारे फिरते हैं।"

सचमुच यह दर्दनाक करुण चित्र था, प्रवर्तक मुनिश्री पन्नालालजी महाराज के सामने सुनते सुनते ही उनका भावुक हृदय द्रवित हो उठा। आपने उसी समय ब्यावर की धर्मप्रेमी जनता के सामने प्रेरणाप्रद भाषण दिया "बन्धुओ! आप भी मनुष्य हैं और वे भी मनुष्य हैं। पर आपकी और उनकी अवस्था मे आज रात-दिन का अन्तर हो रहा है? क्यो? वे भुखमरी से पीडित हैं, विपन्न हैं, आप सम्पन्न हैं। इसलिए आपके सामने वे इन समागत प्रतिनिधियो के मुख से अपनी पुकार कर रहे हैं। भूख का दुख. शरीर के तमाम दुखो से बढकर है। कहा भी है—

'छुहा समा णत्थि सरीरवेयणा'

'क्षुधा के समान कोई शारीरिक वेदना नही है।'

मनुष्य भूख की पीडा के कारण अपने धर्म, कर्म, साधना, तपस्या, मर्यादा, लज्जा आदि सबको ताक मे रख देता है। कौन-सा ऐसा पाप है, जो भूखा आदमी नही कर सकता? सुना है, प्राचीनकाल मे बारह वर्ष के दुष्काल के समय माताएँ अपने बच्चो को मार कर खा जाती थी, भूख के मारे कई माताएँ तो अपने लाडले लालो को एक-एक सेर अन्न के बदले बेच देती थी। आज भी दुष्काल पीडित क्षेत्रो मे ऐसी घटनाएँ सुनने को मिलती हैं। कई माताएँ अपनी अस्मत बेचकर अपना पेट भरती हैं। चोरी आदि कुकर्म भी प्राय भूखा मनुष्य करता है। अत: भूख सभी

पापों की जननी है। बंगाल में आज इसी भुखमरी के कारण लाखों लोग काल के कराल गाल मे समा गये हैं। उनके दुःख को हम मिटा सकते हैं। उनका धर्म-कर्म हम बचा सकते हैं, उनको पापवृत्ति, क्रूरता, दया-हीनता से भी हम बचा सकते हैं। अन्यथा बुभुक्षित व्यक्ति लूटमार कर बैठें तो कोई आश्चर्य नही। इसीलिए आप लोगों से मेरी यह धार्मिक प्रेरणा है कि ऐसे विपद्ग्रस्त लोगों की रक्षा की जाय और उनको इस दुःख से उबारा जाय। मानव बचेगा तो पशु भी बचेंगे, अन्य प्राणी भी बच सकेंगे।"

आपके उपदेश का ब्यावर की धर्मश्रद्धालु जनता पर सीधा असर हुआ। जैन-श्रावकों ने दिल खोल कर क्षुधापीड़ित बंगवासी भाई-बहिनो के लिए अनेक प्रकार का योगदान किया।

असहाय बुढ़िया को सहायता के लिए प्रेरणा

चरितनायकजी का हृदय अनुकम्पा से परिपूर्ण रहता था। वे जब भी किसी व्यक्ति को दुःखी और असहाय हालत मे देखते तो अपनी साधुमर्यादा में रहकर उसे भरसक सहयोग की प्रेरणा देते रहते थे। साधु को शास्त्रों मे षट्काया (प्राणिमात्र) के पीहर, माता-पिता और प्राणिमात्र के आत्मीयबन्धु कहा गया है। इसी दृष्टि से आप सदा-सर्वदा अपने साधुगुणों को चरितार्थ करते थे। आपका अनुकम्पापूर्ण हृदय सदैव दुःखित व्यक्तियो के प्रति अनुकम्पा के लिए तैयार रहता था। इसका एक ज्वलन्त उदाहरण लीजिये

घटना सवत् १९८९ की है। जब आप मेवाड प्रदेश से मारवाड़ मे थावला पादू रूपारेल आदि छोटे-छोटे गावों की भावुक एव धर्म-प्रधान जनता को धर्म-सन्देश देते हुए विचरण करते रहे थे। आपके प्रवचनो मे ऐसा जादू था कि दूर-दूर से जनता आपके प्रवचन सुनने के लिए आती थी। मारवाड के सामंत 'शेरसिहजी रीयां' नामक ग्राम के जागीरदार रावसाहब श्री विजयसिंहजी को जब पता चला कि गुरुदेव श्रीपन्ना-लालजी महाराज पधारे हैं तो वे बिना किसी हिचक के प्रतिदिन दो-तीन मील दूर के गांव मे भी आपके प्रवचन सुनने के लिए पहुंच जाते थे। आपके सदुपदेशों से प्रभावित होकर रावसाहब ने हिंसा-परिहार आदि अनेक नियम ले लिये थे।

साधु पुरुषों का जीवन ही स्वपर-कल्याण के लिए होता है। उनके सम्पर्क मे जो भी आता है, उसे कुछ-न-कुछ लाभ मिलता ही है। चरितनायक मुनिश्री स्वपर-कल्याण के ध्येय से ग्रामानुग्राम विचरण करते हुए जाटियावास (छोटी रियां) पधारे। गांव मे आपका अचानक पदार्पण देखकर जनता के हर्ष का पार न रहा। गांव मे यह ख्याति फैल गई कि गुरुदेव मेवाड़ से पधारे हैं, फिर क्या था, देखते ही देखते, जनता आपके दर्शनो के लिए उमड पड़ी। धीरे-धीरे सैकड़ो की सख्या में प्रवचन सुनने के लिए श्रोता-गण आने लगे। उधर रीयां रावसाहब श्री विजयसिंहजी ने जब गुरुदेव के आगमन का समाचार सुना तो वे भी आपके प्रवचन सुनने हेतु पहुंचे। आज प्रवचन अनुकम्पा एव वात्सल्य के सम्बन्ध मे चल रहा था। प्रवचन मे सरगरी जाति की एक ९० साल की बुढ़िया भी बैठी उत्सुकतापूर्वक सुन रही थी। वात्सल्यवृत्ति पर विवेचन सुनकर उसे

यह आशा बध गई थी कि आज महाराज साहब के प्रवचन से प्रेरित होकर कोई न कोई तो अवश्य ही मुझे सहयोग देगा। फिर उसे यह भी विचार आया कि महाराज मेवाड (मेरी मातृभूमि) से पधारे हैं, इसलिए मैं इनके दर्शन करके इनसे अपनी मातृ-भूमि का हाल पूछूंगी। अतः आपका प्रवचन समाप्त होते ही मातृभूमि के स्नेहवश दर्शन करने की उत्सुकता जगी। बुढापे के कारण आँखो का तेज मद हो गया था, शरीर मे भी अशक्ति थी। इस कारण जब वह दूर से ही आपके दर्शन न कर सकी तो लकडी के सहारे आगे बढने का प्रयास करने लगी। अभी तक बहुत-से भाई-बहिन एव राव साहब आदि जमे हुए थे। सभा मे उपस्थित अन्य लोगो ने उसे आगे बढने से रोका। उससे जब पूछा गया कि आगे कहाँ जाओगी ? यही से ही दर्शन कर लो, तब उसने कहा "मेरी दृष्टि कमजोर है। यहाँ से महाराज साहब साफ नजर नही आते हैं। अत मैं नजदीक जाकर अपने पीहर के महाराज साहब से बात करना और उनसे वहाँ के सुख-दुःख के हाल पूछना चाहती हूँ।"

इस बातचीत की भनक गुरुदेव श्री पन्नालालजी महाराज के कानो मे पडी कि एक बुढिया मेरे दर्शन करना और मुझसे बातचीत करना चाहती है, तो आपने तुरत उस बुढिया की ओर देखा। उसका भाव-विह्वल और दर्शनोत्सुक चेहरा देखकर उसे आगे आने से रोकने वाले भाइयो से कहा "भाइयो! इसे रोको मत। अपने अन्तर की इच्छा इसे प्रगट करने दो।" आपके इतना कहते ही उसे रोकने वाले लोगो ने रास्ता छोड़ दिया और उससे कहा "लो माँजी! खूब अच्छी तरह महाराज साहब के दर्शन कर लो। महाराज साहब ने स्वय ही फरमा दिया है, तुम्हे निकट जाकर दर्शन करने के लिए।" इतना कहते ही बहुत उमग से वह आगे बढी और टकटकी लगाकर आपको देखने लगी। उसकी यह निर्दोष वात्सल्यविभोर दशा देख कर आपने उससे पूछा 'बाई! तू कौन है?' इतना सुनना था कि वह फूट-फूट कर रोने लगी। मुनिश्री ने उसे सान्त्वना देते हुए कहा "बहन! बात क्या है? मेरे द्वारा पूछते ही तेरी आखो मे आसू क्यो उमड पड़े? तेरा हृदय क्यो भर आया? तू चाहती क्या है?" उसने गद्गद कण्ठ से कहा "महाराज! आप मेवाड से पधार रहे हैं, ऐसा सुनकर मैं आपके दर्शनो के लिए आई हूँ। महाराज मेवाड मे मेरा पीहर है। मुझे जब आपने परि-चय पूछा तो मेरा हृदय मातृभूमि के प्रति भर आया। मेरी आँखो से सावन-भादो बरसने लगा। मैं पूछना चाहती हूँ कि आप मेवाड मे कोठ्या और हुरडा भी पधारे होंगे न?"

उसकी उत्सुकता देखकर आपने फरमाया बाई! हम साधु हैं। स्वपरकल्याण के लिए, भिन्न-भिन्न प्रदेशो मे घूमने का तो हमारा धर्म ही है। इस समय हम मेवाड से होते हुए ही आ रहे हैं।" आपने समझा कि इस महिला का उस क्षेत्र से कुछ लगाव दिखता है, तभी यह इतनी उत्कण्ठा से बात कर रही है। अत' आपने फिर पूछा "बहन! यह तो बताओ कि तुम्हारा घर से क्या सम्बन्ध है?" वह तपाक से बोल उठी—"महाराज! हुरडा मेरा पीहर है। मुझे अपने पीहर गए वर्षों हो गये। मेरे माता-पिता

ने मुझे इतनी दूर (मारवाड मे) दे दी कि पीहर का नाम सुनना और समाचार मिलना भी दुर्लभ हो गया। आज मेरा अहोभाग्य है कि आप मेरे पीहर के गाँव होकर आये है और मुझे तो आप अपने पीहर के ही लगते है, इसीलिए तो आपने मुझे 'बाई' कहकर पुकारा। पीहर वाले ही ऐसा कह सकते हैं।

मुनि श्री को यद्यपि सासारिक रिश्तेनाते से कोई मतलब नही था, और न ही कोई बात वे साँसारिक सम्बन्धो के बारे मे पूछते थे। क्योकि साँसारिक सम्बन्धो को बार-बार याद करने-कराने से मोह एवं आसक्ति उत्पन्न होने की सम्भावना है। फिर भी मानवता के नाते उस बुढिया की स्थिति-परिस्थिति की जानकारी के लिए उन्होने पूछा तो पता चला कि न तो उसके पीहर मे कोई रहा है और न ही ससुराल मे। वह अकेली ही बची है। आखो की रोशनी मद हो गई है, कानो ने भी जवाब दे दिया और टागो मे चलने-फिरने की शक्ति भी नही रही।" अत अनुकम्पाद्रवित हृदय से आपने उसे आश्वासन दिया "बहन! कोई चिन्ता मत करो। आनन्द से धर्मध्यान करो, अच्छे आचार-विचार रखो। इसी से आत्मा का कल्याण होगा। अपनी आत्मा अकेली ही आई है और अकेली ही जाएगी। पीहर और ससुराल मे कोई अपना नही रहा, ऐसा मत समझो। सभी अपने हैं। जहाँ रहती हो, वहाँ सभी अपने हैं। अपने हृदय को ओछा मत बनाओ। विशाल हृदय से सोचो सबके ऊपर परमात्मा है, वे हमारे हैं। और ससार के सभी मानव हमारे हैं। इस प्रकार के विचारो से तुम्हे आत्म-शान्ति मिलेगी, बहुत बडा आश्वासन भी मिलेगा और सहयोग भी मिलना सम्भव है।"

यो कहकर आपने उपस्थित नागरिकजनो से कहा—"देखो, भाइयो! यह बुढिया तुम्हारे ही गाँव की है। तुम्ही इसके कौटुम्बिकजन हो। तुम्हें इसकी स्थिति का ख्याल करके अपने कर्तव्य का विचार करना चाहिए था। अपने गाव की एक बुढिया असहाय बनकर दु स्थिति मे रहे, यह तुम्हारे, लिए सोचने की बात है। यह बहन सहायता पाकर अपने धर्म मे टिकी रहेगी। भगवान् महावीर के धर्म का पालन करेगी, इसमे तुम लोगो को तो लाभ ही है।"

चरितनायक श्री जी के इस उपदेश का उपस्थित जनता पर अचूक प्रभाव पडा। जैन समाज के अगुआ लोगो ने वही एकत्र होकर उस बाई से बातचीत की। उससे पूछा कि उसका गुजारा कितने मे हो जायगा। अन्त मे, वहाँ के स्थानीय जैन समाज ने उस बाई के लिए आजीवन भोजन, कपड़े, आदि की व्यवस्था कर दी। यह सब पूज्य मुनि श्री पन्नालाल जी महाराज का प्रताप था। आपकी अद्वैतवादी मानव दया का यह ज्वलन्त उदाहरण है।

जब उस बाई से जैन समाज के लोगो ने कहा "माँ जी! गुरुदेव की प्रेरणा से हम आपको अपने कुटुम्ब की समझकर जैन सघ की ओर से तुम्हारे जिंदगी भर की भोजन-कपडे आदि की व्यवस्था कर देते हैं। अब आपको गुरुदेव की कृपा से जिन्दगी भर घर बैठे गुजारे के लिए खर्च मिलता रहेगा। कोई चिन्ता फिकर मत करना।"

यह सुनते ही विस्मित-सी, चकित-सी हर्षाविष्ट होकर उन भाइयो की ओर देखती ही रही। उसे कुछ देर तक तो विश्वास ही नही हुआ कि यह स्वप्न है या सत्य ? परन्तु भाइयो ने जब वह बात दोहराई तो उसकी आँखो से हर्षाश्रु टपक पडे। वह अन्तर से आशीषे और धन्यवाद पूज्य गुरुदेव को एव स्थानीय सघ वालो को देती रही और मगलपाठ सुनकर यह कहती हुई विदा हुई "मेरे पीहर के गुरु महाराज पधारे, और आपने मेरी असहाय अवस्था को देखकर जिन्दगी भर तक की व्यवस्था करवा दी। पीहर के महाराज के बिना कौन सुनता है ? गुरु महाराज चिरकाल तक स्वस्थ एव दीर्घायु रहे। मुझे उन्होंने सुखी कर दिया।"

उस बुढिया के जीवित रहने तक यह व्यवस्था चलती रही। उसके मुह से इसी प्रकार के आशीर्वाद सूचक उद्गार वार-वार निकलते रहते थे।

गुरुदेव श्री पन्नालाल जी महाराज की अनुकम्पाशील प्रकृति ने ऐसे कई दुखित, विपन्न एव असहाय भाई-बहनो के आशीर्वाद प्राप्त किये होंगे। सबका विवरण लिखना यहाँ सम्भव नही है। परन्तु इतना जरूर कहना होगा कि वे ऐसे पुण्य-अवसरो को चूकते नही थे। मानव मात्र के प्रति अनुकम्पा के वे जीवत प्रतीक थे।

लुटेरो से रक्षा के लिए प्रेरणा

कई बार मनुष्य के हृदय मे अनुकम्पा होते हुए भी वह समय पर अभिव्यक्त नही हो पाती, वह मानवो के प्रति अनुकम्पा, रक्षा या दया के प्रसग उपस्थित होने पर भी या तो किंकर्तव्यविमूढ बन जाता है, या फिर उसके हृदय मे स्वार्थ का पलडा भारी हो जाने से वह ऐसे पुण्यवृद्धि या यशोवृद्धि के निमित्तो को पाकर भी उदासीन रह जाता है।

परन्तु हमारे चरितनायक जी मे यह खूबी थी कि वे मानव के प्रति अनुकम्पा, दया, रक्षा के ऐसे पुण्य अवसरो को कदापि नही चूकते थे। वे सदा सतर्क होकर प्रतिदिन अन्तर्निरीक्षण करते रहते थे

किं मे कडं ? किं च मे किच्चसेसं ?
किं सक्कणिज्ज न समायरामि ?

मैंने कल तक क्या किया है ? कौन-सा कर्तव्य करना बाकी रह गया है ! और कौन-सा ऐसा कार्य है, जिसे मैं कर सकता हूँ, किन्तु स्वार्थ, प्रमाद आदि कारणो से नही करता।

यही कारण है कि जव-जव आपने किसी भी व्यक्ति, वर्ग या समूह पर किसी भी प्रकार की विपत्ति आती देखी, वे अपनी सीमा मर्यादा मे प्रेरणा या मार्गदर्शन अथवा उपदेश देकर उसका निवारण कराते थे और विपद्ग्रस्त लोगो को सहायता देते या उनकी सुरक्षा का प्रवन्ध करा देते।

इस सम्बन्ध मे हम एक और ज्वलन्त उदाहरण प्रस्तुत कर रहे हैं

जिस विजयनगर मे आपने कई चातुर्मास व्यतीत किये, जहाँ निवास करके काफी अध्यात्म-साधना की, उस उपकारी क्षेत्र पर एक बार आफत आ गई।

बात सवत् १९९६ की है। आपका वर्षावास उस समय ठा० ४ से मसूदा मे था। आपको विश्वस्त सूत्र से पता लगा कि 'इस इलाके मे इस वर्ष वर्षा न होने से सारे मगरा प्रदेश की जनता श्यामगढ (मसूदा से पश्चिम मे ५ मील की दूरी पर पहाडो) मे एकत्रित होकर विजयनगर को लूटने की योजना बना रही है।' आपको सहसा इस बात पर विश्वास नही हुआ कि ग्राम के लोग इस प्रकार से लूट मचा कर क्रूर एव राक्षस बन सकते हैं। आपने विजयनगर के लोगो के पास आदमी भेज कर पता लगाया कि इस बात मे कितना तथ्य है। इसी बीच एक विश्वस्त खबर आपको दोपहर के बाद श्यामगढ निवासी बागड़ेचा परिवार की एक वयोवृद्धा श्राविका के द्वारा प्राप्त हुई, जिसे उसने विजयनगर निवासी श्री कानमलजी कुमठ के माध्यम से मसूदा करवा दी थी। गुरुदेव इस चौंकाने वाली एव मानव के प्रति मानव की ओर से कहर बरसाने वाली खबर सुन कर थोडी देर के लिए मौन रह कर अन्तर्मन मे मानो कर्तव्य-निर्धारण मे लग गए। तत्पश्चात् उक्त कर्तव्य के पालन मे किन-किन लोगो द्वारा, किन-किन साधनो एव तरीको से कैसे कार्य होना चाहिए इस पर मन ही मन विचार किया। इसी बीच विजयनगर स्थित 'जीनिंग फैक्टरी' के कोपाध्यक्ष श्रीमान् समीरमलजी भडकत्या जो कि उस समय मसूदा आए हुए थे, पूज्य गुरुदेव श्रीजी महाराज की सेवा मे उपस्थित हुए तो आपने उन्हे विजयनगर की सुरक्षा के लिए राव साहब को प्रयत्न करने की प्रेरणा दिलवादी। राव साहब नारायणसिंहजी, उस समय विजयनगर से ४ मील पर स्थित **मॉडल फार्म** मे थे। अत श्री भडकत्याजी ने उन्हे मसूदा से ही टेलीफोन द्वारा गुरुदेव द्वारा प्राप्त प्रेरणा की सूचना दे दी। फलस्वरूप राव साहब ने सूचना पाते ही विजयनगर की सुरक्षा के लिए वहाँ से दो जीपकारो मे पुलिस दल रवाना किया। गुरुदेव पर उनकी गाढ आस्था थी। इधर मसूदा से भी राव साहब के दीवान रायबहादुर श्री किशनलालजी ने भी विजयनगर की सुरक्षा के लिए दो मोटरें भेज दी।

उधर ये दो मोटरें पहुँची, उससे पहले ही मगर के पर्वतीय प्रदेश के रावत-मेरात करीब १२०० की संख्या मे विजयनगर के समीप तक आ धमके थे। किन्तु उन दोनो मोटरो मे बैठे हुए पुलिस के जवानो ने अपना कर्तव्य समझकर हवा मे बन्दूक से फायर किये। लुटेरे इतनी सख्या में लूटने के लिए तो आगए थे, लेकिन साहस मे बहुत कच्चे थे, इसलिए उन फायरो से आतकित होकर, घबराते हुए उलटे पैरो भाग खड़े हुए। इस प्रकार राव साहब ने अपना कर्तव्य समझकर विजयनगर की सुरक्षा के लिए फौरन पुलिस दल भेजा, जिसने अपनी सूझ-बूझ से काम लेकर विजयनगर को लुटेरो के आतक से बचाया। और खून-खच्चर का अवसर टल गया।

सचमुच, हमारे चरितनायकजी विपद् ग्रस्त मानवो को आफत से बचाने के लिए अपनी साधु मर्यादा मे रह कर प्रेरणा करते रहते थे। इतना ही नही, आप प्रत्येक

विपन्न प्राणी की रक्षा के लिए भी कटिबद्ध रहते थे। जिसके बारे मे पिछले पृष्ठो मे काफी लिख चुके है।

एक नही, अनेक प्रसगो पर आपके अन्तर मे स्थित मानव दया की कसौटी हुई है, और हमारे चरितनायकजी उसमे सोलह आने खरे उतरे हैं।

भूकम्प पीड़ितो की सहायता के लिए प्रेरणा :

कई बार मनुष्य प्राकृतिक प्रकोपो से घिर जाता है ? और उसका किया-कराया सब चौपट हो जाता है। वर्षों का सजोया हुआ स्वप्न स्वप्न के महल की तरह बिखर जाता है। वह प्राकृतिक प्रकोप के आगे दीन, हीन और असहाय बन जाता है। उसका सारा गर्व चूर-चूर हो जाता है, वह उस अप्रत्याशित सकट से घबरा कर हक्का-बक्का और किकर्तव्यविमूढ हो जाता है। ऐसे समय मे कोई उसको जरा-सा भी सहारा देता है, सहानुभूति की मरहमपट्टी उसके घाव पर कर देता है, तो वह उसे फरिश्ते के समान लगता है, जनता मे वह देवतुल्य मानव के रूप मे प्रसिद्ध हो जाता है। यद्यपि ऐसी सकटापन्न परिस्थिति मे जो भी व्यक्ति यत्किञ्चित् सहायता दिलाता है, उसे अपने पास से कुछ नही देना पडता, प्रत्युत बदले मे उसे अनेक सतप्त हृदयो के मूक आशीर्वाद मिलते हैं। जनता मे उसकी प्रसिद्धि जन-उद्धारक के रूप मे हो जाती है, वह वचन से बहुत बडा पुण्य (वयंणपुण्णे) का अर्जन कर लेता है।

हमारे चरितनायकजी मे यह विशेषता थी कि वे मानव दया के ऐसे पुनीत अवसरो पर करुणा-विगलित होकर जी-जान से जुट पडते थे। जब भी उन्होंने सुना कि अमुक स्थान पर इन्सान अमुक विपत्ति से पीडित हैं, तभी उन्होने अपनी अमृतवर्षिणी वाणी द्वारा सम्पन्न लोगो को उन्हे सहायता देने की प्रेरणा दी है।

वि० स० २००४ का आपका चातुर्मास भिणाय मे था। उसी वर्ष कच्छ अजार मे बहुत जोर का भूकम्प हुआ। भूकम्प केवल भूमि को ही प्रकम्पित नही करता, अपितु मानव हृदयो को भी कँपा देता है। भूकम्प के कारण हजारो व्यक्ति मौत के ग्रास बन गए, जो बचे वे भी दीन-हीन, असहाय और बेघरबार होकर इतस्तत: भटकने लगे। भूकम्प से पीडित जनता ने जो कुछ भी भविष्य के सुनहले स्वप्न सजोए थे, वे सब धूल मे मिल गए, वर्षो मे जो कुछ अर्जित-सचित करके रखा था, वह सब भूमिसात् हो गया। यहाँ तक कि कपडा व खाने-पीने का साधन व सामान आदि कुछ भी उनके पास नही रहा। यद्यपि सरकार ने भी भूकम्प पीडितो को सहायता पहुँचाई, फिर भी सरकार जनता के सहयोग से ही कुछ कर सकती है। फिर सरकार की भी सहायता देने की अमुक सीमा है।

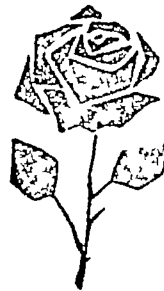
जनता की करुणा भी ऐसे समय मे मानवता के सिद्धान्त को लेकर जागनी चाहिए। भारत मे विभिन्न धर्मो, सम्प्रदायो और जातियो के अलग-अलग सगठनो ने सामूहिक रूप मे और कई सम्पन्न व्यक्तियो ने व्यक्तिगत रूप मे भूकम्प पीडितो को सहायता पहुँचाने का प्रयत्न किया। अ० भा० स्था० जैन कान्फ्रेंस ने उन भूकम्प पीडित

मानवो की ओर से हृदय विदारक समाचार जैन प्रकाश मे प्रकाशित किया। हमारे चरितनायकजी ने जब यह दर्दनाक समाचार पढे तो उनसे चुप नही रहा गया। उन्होने स्थानीय जनता को उपदेश दिया "आज तुम्हारे मानव बन्धु भूकम्प से पीडित हैं, बेघरवार अधनगे-भूखे विलख रहे हैं। तुम्हारे पास सिर छिपाने को मकान है, खाने-पीने के लिए भोजन है, पहिनने के लिए कपडे हैं, लेकिन उन मानवो की कैसी हालत हो रही होगी, इसका अनुमान लगाओ। इस समय उन्हे तन-मन-धन और साधनो की परम आवश्यकता है। पीडित मानवता हाथ पसारे तुम्हारे सामने खडी है, अत उसकी झोली भरना आपका कर्तव्य है।"

आपकी इस प्रेरणा का विलक्षण प्रभाव हुआ। भूकम्प पीडित जनता की करुणाजनक हालत सुनकर श्रोताओ की आँखो मे आंसू उमड पड़े। उन्होने उसी समय बहुत अच्छा फण्ड एकत्रित करके स्था० जैन कान्फ्रेस के माध्यम से भूकम्प-पीडितजनो की सहायता के लिए भिजवाया।

'बूंद-बूंद से घडा भरता है' इस कहावत के अनुसार पर्याप्त मात्रा मे फण्ड एकत्रित हुआ, जो भूकम्प-पीडित मानवो के दु:ख निवारण मे पर्याप्त कार्यक्षम हुआ।

इस तरह से कुछ प्रसग जो चरितनायक जी की महान मानवतावादी करुणा धारा की लहर के रूप मे प्रकट हुए हैं, हमे उनके अन्त करण की असीम करुणा, सद्भावना और मानवीय-जीवन के प्रति उदार अपनत्व का परिचय देते है। सचमुच ही वे मानवता के मसीहा थे।



१६

जीवन का संध्याकाल

□

जीवन की सुनहली धूप सन्ध्याकाल आते ही सहसा विलुप्त हो जाती है। जीवन का वह सन्ध्याकाल साधक के लिए एक प्रकार से कसौटी-काल है। बड़े-बड़े शूरवीर और दुर्दान्त योद्धा जो अपने जीवन की तपती दुपहरी मे शेर की तरह दहाडते, सन्ध्याकाल आते ही थर्रा उठते हैं। मृत्यु का नाम सुनते ही काप उठते हैं, तो मृत्यु साक्षात् आ जाए तब तो कहना ही क्या!

अज्ञानी मनुष्य व्यर्थ के अहकार मे आकर अपने जीवन के उदयकाल से लेकर अस्तकाल तक यो ही व्यर्थ के गपशप मे, भोग-विलासो मे, सासारिक विषय-पिपासा की चिन्ता मे डूबा रहता है, जब जीवन के अस्त होने का समय आता है, तब उसे कुछ सुध आती है और वह पछताता है कि "हाय! मैंने अपने जीवन मे कुछ नही किया, इस जीवन को यो ही वृथा खो दिया।" परन्तु अब पछताने से क्या होगा! जो विद्यार्थी सालभर कुछ भी अध्ययन न करे और वर्ष के अन्त मे जब परीक्षा का समय आये तब पश्चाताप करे और तब अफसोस करके पढने को दौडे, तो वह न तो कुछ पढ ही सकता है और न ही कुछ प्राप्त कर सकता है। यही हाल प्राणधारियो के जीवन का है। जिन्दगीभर कोई शुभ कार्य नही किया, अपने जीवन को सयम, सदाचार, धर्मध्यान, सेवा आदि मे नही लगाया, केवल ऊटपटाग भोग-विलास की चेष्टाओ या व्यर्थ की परनिन्दा मे जीवन बिताया, वह भी उस लापरवाह परीक्षार्थी की तरह है।

जिसने जिन्दगी भर कुछ नही किया, वह मृत्यु के समय पश्चाताप और अफसोस करता है, हाय! मैंने कुछ भी नही किया। एक आचार्य के शब्दो मे

दत्तं न दानं परिशीलितं च।
न शालि शीलं, न तपोऽभितप्तम्।
शुभो न भावोऽप्यभवद् भवेऽस्मिन्।
विभो! मया भ्रान्तमहो मुधैव॥

"इस जन्म मे मैंने न तो किसी को दान दिया, न ही शुभ शील का परिपालन किया, न किसी प्रकार का तपश्चरण ही किया और न किसी शुभ भाव को ही अपने हृदय मे स्थान दिया। प्रभो ! मैं इस जिन्दगी मे व्यर्थ ही इधर-उधर भटकता रहा और जैसे-तैसे जिन्दगी पूरी कर दी।"

सचमुच, ऐसे आलस्यजीवी प्रमादी या उदरभरी लोग जीवन की सन्ध्यावेला मे, जो कि परीक्षाकाल होता है, घबरा जाते है, वे अन्तिम समय हाथ मलते रह जाते हैं, कुछ कर नही पाते और इस परीक्षा मे अनुत्तीर्ण हो जाते हैं। परन्तु सयम-साधना मे दत्तचित्त रहने वाले जागृत साधक, जीवन के उदयकाल से ही सावधान होकर चलते हैं, मध्याह्नकाल मे, जबकि सारा ससार भोगो की सुख-शय्या पर गाढी प्रमादनिद्रा मे सोया रहता है, वे स्फूर्ति के साथ जागरूक होकर स्वपर-कल्याण मे निष्ठा के साथ पुरुषार्थ करते रहते हैं, यही कारण है कि जीवन के सन्ध्याकाल मे शरीर शिथिल और अशक्त हो जाने पर भी स्फूर्त मनोबल और ऊर्जायुक्त प्राणबल के आधार पर वे सन्नद्ध-योद्धा की तरह साधना मे तत्पर रहते है। उन्हे सन्ध्याकाल की परीक्षावेला मे किसी प्रकार की घबराहट नही होती, न पश्चात्ताप और अफसोस ही होता है। आनन्द के साथ वे जीवन की परीक्षा दे कर चले जाते हैं। ऐसे साधक जीवन की परीक्षा मे उत्तीर्ण होते है।

वास्तव मे, जीवन का सन्ध्याकाल परीक्षण के साथ-साथ निरीक्षण का अन्तर्निरीक्षण का भी समय है। अध्ययनशील विद्यार्थी परीक्षण के समय अधीत विद्या का अन्तर्निरीक्षण भी करता है। अन्तर्निरीक्षण किये बिना परीक्षण मे वह सफल नही हो सकता। परन्तु असावधान और भोगनिद्रापरायण व्यक्ति के मनमस्तिष्क पर अविद्या का गाढ पर्दा पडा रहता है, जिससे वह अन्तर्निरीक्षण नही कर सकता। उस समय उसे कुछ सूझता भी नही, यहाँ तक कि परमात्मा का नाम-स्मरण भी उसके दिमाग मे नही आता, वह ससार की भूल-भुलैया मे, कुटुम्ब की मोहमाया मे और अपनी काया की मोह छाया मे पडा रहता है। वह न तो अपने जीवन को ही सफल कर पाता है और न मृत्यु को ही। परन्तु जागृत साधक अपने जीवन को भी सफल कर लेता है, और मृत्यु को भी हँसते-हँसते वरण करके सफल करता है।

वस्तुत जीवन और मृत्यु का सन्धिकाल ही जीवन का सन्ध्याकाल है। उस समय प्रत्येक व्यक्ति के अन्तर्मन मे जीवन और मरण की रस्साकसी चलती है। जीने का मोह एक ओर से उसे घेरे रहता है तो दूसरी ओर से मृत्यु का भय उसे जकड लेता है, जीवन और मृत्यु के इस सघर्ष या द्वन्द्व-युद्ध मे भी गाफिल एव भोगपरायण व्यक्ति हार जाता है। वह जीना चाहता है, परन्तु मृत्यु उसे खीच कर ले जाने को तैयार होती है। आखिर जीने की उसकी इच्छाओ पर पानी फिर जाता है और मृत्यु जबर्दस्ती उसे पकड कर ले जाती है। वह हायतोबा मचाते हुए मृत्यु की बगल मे दबा हुआ जाता है। जबकि जागृत साधक भोगो से विरक्त होकर त्याग के आग्नेयपथ पर चलता

रहता है और जब जीवन-मृत्यु का सन्धिकाल आता है, तब भी उसके पैर लडखडाते नही, उसकी इच्छा न तो अधिक जीने की होती है, और न शीघ्र ही मृत्यु प्राप्त करने की। वह स्वाभाविक रूप से अपने जीवन मे चलता है, वैसे ही स्वाभाविक रूप से हँसते-हँसते मृत्यु का वरण करता है। वह जीवन के सन्ध्याकाल मे साधक के लिए शास्त्रोक्त निम्न पाच सूत्रो के अनुसार अपने जीवन को योद्धा की तरह सुसज्ज कर लेता है

न इहलोगासंसप्पओगे
न परलोगाससप्पओगे
न जीवियाससप्पओगे
न मरणासंसप्पओगे
न कामभोगासंसप्पओगे

वह न तो इस लोक के किसी भी पद, प्रतिष्ठा, कीर्ति, धन, शिष्य या परिवार आदि के प्रति आसक्ति मे प्रवृत्त होती है, न परलोक के किसी स्वर्गादि, सुख, देवागना कामभोग आदि की कामना से लालायित होता है, न वह अपनी कीर्ति, प्रशसा या सम्मान या सासारिक सुख भोगने की दृष्टि से जिन्दगी को लम्बा करने की अधिक जीने की इच्छा करता है, और न ही आफत, कष्ट, भावी भय की आशका या चिन्ता, बीमारी आदि से ऊब कर मौत को जल्दी बुलाना चाहता है मृत्यु की आकांक्षा नही करता, और न ही किसी प्रकार के भोग-विलासो, सुख-सुविधाओ या ऐश-आराम की लालसा से छटपटाता है। वस्तुत वह **"जीविआसमरणभय-विप्पमुक्के"** जीने की लालसा और मृत्यु के भय से मुक्त होकर शात एव प्रसन्नभाव मे रमण करता है।

शरीर के प्रति अनासक्ति :

मतलब यह है कि जागृत और विवेकी साधक अपने जीवन के सन्ध्याकाल मे इस पचसूत्री साधना का परीक्षण देता है और अपने जीवन का अन्तर्निरीक्षण भी करता है कि कही मन के किसी भी कोने मे खाने, पीने, पहनने, सुख-साधनो के जुटाने या अन्य पद, प्रतिष्ठा नामना-कामना, या यशकीर्ति की कोई चाह, तमन्ना या वासना तो नही है ? वह सर्वप्रथम इसके लिए परीक्षार्थी की तरह परीक्षा के पहले टेस्ट देता है, सलेखना साधक का टेस्ट है, वह अपने शरीर को इस पर कसता है, उससे खान-पान की ममता छुडवा कर अनाहार के पथ पर ले जाता है, शरीर के साथ मन की खीचातानी चलती है। मन चाहता है, शरीर को पुष्ट बनाना, मन कहता है, न खाने-पीने से शरीर अत्यन्त कृश हो जाएगा, पराधीन हो जायगा, वह अशक्त और निढाल हो जाएगा, परन्तु साधक का आत्मबल अपनी पूरी ताकत के साथ मन और शरीर की इस मांग को ठुकरा देता है, निर्ममत्व होकर उनकी चाह को दबा देता है, और शुद्धात्मभाव एव परमात्मभाव मे रमण के स्वाभाविक ज्ञान-दर्शन-चारित्रात्मक आहार के आनन्द की ओर ले जाता है।

वह कहता है आत्मा तो निराहारी है, तुमने अब तक शरीर को, इन्द्रियो को, मन एव वचन को अपने न होते हुए भी अपने मान कर ममत्व करके इनकी तथाकथित मनोनीत

खुराकें दी हैं, इनके आहार की पूर्ति की है। अब इन सब पर-पदार्थों को छोडकर इन पर, ममत्वभाव का त्याग करके अपने आत्मतत्व की ओर देखो। मन को अपने विषयो की खुराक देना बन्द करो, पाँचो इन्द्रियो को स्पर्श, रस, गन्ध, शब्द और रूप का मनोज्ञ आहार देना बन्द कर दो, और शरीर को भी स्वादिष्ट या रूखा-सूखा किसी भी प्रकार का आहार अब मत दो, इसे अब आहार की जरूरत नही है, यह जब तक सयम-साधना मे सहायक रहा, धर्माचरण मे सहयोगी रहा, तब तक तुमने बहुत आहार दे दिया, अब जबकि यह बिलकुल ही अशक्त, निढाल एव धर्माचरण मे असहायक, सयम-साधना मे बाधक बन गया है, और जीर्ण-शीर्ण होकर विदा होने की तैयारी मे है, तब इसे आहार देने से क्या लाभ ? इसे विदा हो जाने दो। इसे फटे कपडे की तरह छोड दो, अत्यन्त जीर्ण-शीर्ण वस्त्र सिया भी तो नही जा सकता। इसी प्रकार यह शरीर भी अब अन्न, फल या औषध के द्वारा बिलकुल टिकाया नही जा सकता, यह तो बिलकुल जीर्णशीर्ण हो गया है।

और वचन ? इसे भी छुट्टी दो, बहुत बोल लिए, इस जिह्वा के द्वारा। अब मौन रहकर आत्मा की आवाज को बुलद होने दो, आत्मा की वाणी फूटने दो, उसकी अब तक दबाई गई आवाज को सुनो और मानो। वाणी को वचन की खुराक देना बन्द कर दो, मौन, शान्त, मौन होकर केवल आत्म-चिन्तन करो।

शरीर की दौड से ज्यादा तो मन की दौड है। मन, जो अब तक स्वर्ग और आकाश-पाताल के ताने-बाने बुनता रहा, अनेक सुख-भोगो, लोभ, काम, क्रोध, अहकार आदि के चक्र मे आत्मा को फँसा कर अपनी आहारपूर्ति करता रहा, अब उसको उधर से बिलकुल छुट्टी ले लेने दो। विषय-वासनाओ के गड्ढे मे मन न डालने पाए, इसकी पूरी सावधानी रख कर उसे आत्मवीणा के तार के साथ जोड़े रखो। इस प्रकार मन-वचन-काया तीनो की सलेखना करो। मन-वचन-काया, जो १८ ही पापो मे भटक कर अपने अभक्ष्य आहार की तलाश मे रात-दिन भटकते रहे, अब उन्हे उधर जाने से बिलकुल रोक दो। स्टॉप, बिलकुल बद कर दो इन तीनो को उधर दौडाना। सिर्फ एक ही लाइन आत्मा की लाइन पर ही इनकी दौड या गति खुली रखो!

जागृत साधक जीवन के सन्ध्याकाल मे सावधानी के साथ मन, वाणी, इन्द्रियो और शरीर की बागडोर अपने हाथ मे ले लेता है। वह अपना अन्तर्निरीक्षण-परीक्षण भी प्रारम्भ करता है। वह अपने अन्तर को टटोलता है और मन से, वचन से, और काया से अब तक के जीवन मे किसी भी समय, कही भी, किसी भी परिस्थिति मे लगे हुए छोटे या बड़े दोष का अवलोकन करता है, जीवन के उदयकाल से सन्ध्याकाल तक मे हुए अपराधो का अन्तर्निरीक्षण करता है, एक-एक भूल को निर्मम होकर वह चुनता है, प्रत्येक छोटे या बड़े दोष, त्रुटि या गलती का परिमार्जन करने के लिए वह तैयार होता है। वह अपने गुरु, बड़े या समकक्ष साधक के सामने उनकी आलोचना दोषो का प्रकटीकरण करता है। वे दोष चाहे छोटे हो या बड़े, केवल स्वय से हुए हो या दूसरे के निमित्त से हुए हों, अकेले मे हुए हो या समूह मे हुए हो, कोई दूसरा उन्हे जानता हो या न जानता

हो, किसी भी परिस्थिति मे हुए हो, दिन मे, रात मे, सोते या जागते कभी हुए हो, वह उनको निशल्यभाव से प्रकट कर देता है, उन्हे जरा भी छिपाता नही, उनके प्रगट करने मे जरा भी शर्माता नही, उनकी शुद्धि के लिए प्रायश्चित्त लेने मे जरा भी हिचकता नही। वह अपनी आत्मशुद्धि के लिए आलोचना, निन्दा (पश्चात्ताप), गर्हणा (गुरु या ज्येष्ठ अथवा साथी साधक के सामने प्रकटीकरण) और प्रायश्चित्त-ग्रहण मे विलकुल रू-रियायत नही करता। वह सोचता है कि अगर मैंने जरा-सा भी कुछ छिपाया, दवाया और अपने झूठे आत्म-सम्मान को पपोला या अपराध प्रकट न किया तो विराधना का वडा भयकर दोप मेरे जीवन मे लग जायगा, वह मुझे आराधना के मार्ग से एकदम दूर धकेल देगा। मैं आराधक न वन कर पता नही, कितने जन्मो तक विराधक वना रहूँगा। यह मौका विराधना और आराधना के द्वन्द्व-युद्ध का है। अगर मुझे अपना आगामी जीवन पूर्ण आत्म-स्वभावरमण की ओर ले जाना है, इन वैषयिक सुखो से हटा कर आत्मिक सुख की ओर मोड़ना है, या जन्ममरण के दु खो से निवृत्त होकर अजर-अमर पद (मोक्ष) को आनन्दमय स्थान को प्राप्त करना है तो इस तरीके से आत्मशुद्धि करने के सिवाय कोई चारा नही है।

जीवन के सन्ध्याकाल मे उपर्युक्त प्रकार से तैयार साधक अपने दोषो या अपरावो के प्रायश्चित्त के रूप मे नई दीक्षा तक लेने को तैयार रहता है। उसका मन सलेखना की आराधना से इतना तैयार हो जाता है कि वह किसी भी प्रकार की जरा-सी भी सूक्ष्म वासना, कामना, अन्तर्लालसा, या लोकैषणा, शिष्यैषणा, सम्प्रदायैषणा अथवा अपने निश्राय के वस्त्र, पात्र, शास्त्र आदि उपकरणो की ऐषणा नही रखता। इतनी मानसिक तैयारी होने पर ही उसकी मृत्यु सफल होती है, शास्त्रीय परिभाषा मे जिसे समाधिमरण या पण्डितमरण कहते हैं, उसका वह अनायास ही वरण कर लेता है। मौत उसके लिए दु खदायिनी, डरावनी, सतापकारिणी या पश्चात्तापकारिणी नही वनती। जैसी जिन्दगी, वैसी ही उसकी मौत ! दोनो पर उसका समभाव रहता है। उपनिषद् की भाषा मे उसका मगलसूत्र होता है

तत्र को मोह. कः शोक एकत्वमनुपश्यत

जीवन और मृत्यु को एक-सा समझने वाले के लिए मोह क्या और शोक क्या ? उसके लिए तो सभी दिन एक समान हैं।

ऐसे महान् पुरुष जीवन के मोह और मृत्यु के शोक से परे होते हैं। ससार के विराट् पुरुष जीवन-मरण के सूत्र को अपने कर्तव्य एव दायित्व से वाधे रखते हैं, मोह और शोक से नही।

पूज्य प्रवर्तक श्री पन्नालालजी महाराज ऐसे ही महापुरुषो मे एक थे। जीवन के सन्ध्याकाल मे महापुरुषो की पूर्वोक्त पद्धति को ही उन्होंने स्वीकार किया। वे लगभग १२ वर्षो से, यानी सवत् २०१२ से २०२४ तक लगातार गुलावपुरा-विजयनगर विराज रहे थे। विजयनगर की जनता की उन पर अटल श्रद्धा-भक्ति थी। क्यो न हो, ऐसे

नि स्पृह-अहैतुक कृपापरायण, लोकोत्तर उपकारी के प्रति । अवस्था भी काफी हो चली थी। आपको इस समय ८० वाँ वर्ष चल रहा था। दीक्षा को भी ६७ वर्ष पूर्ण हो चुके थे। शरीरबल क्षीण हो चुका था, केवल मनोबल से ही, यही नही, सिर्फ आत्मबल से ही अपनी जीवन-यात्रा तय किए जा रहे थे। आँखो की ज्योति भी धुधली पड चुकी थी, अनेक तूफानो और झझावातो से अपने-आप जमाने मे जूझते रहे, अनेक परिस्थितियो का मुकाबला किया।

अपने यौवन और प्रौढकाल मे अनेक धार्मिक एव सामाजिक समस्याएँ हल की, अनेक सघर्ष करके श्रमणसघीय सगठन को सुदृढ बनाया, समाज की अनेक कुरूढियो से लोहा ले कर उन्हें बदलने और समाज के व्यवहार को शुद्ध बनाने के लिए अथक परिश्रम किया। अब आपका हारा-थका शरीर विश्राम लेना चाहता था। मन बाह्य प्रश्नो या भौतिक पदार्थों से हट कर शान्तिपूर्वक आत्मसाधना केवल अपनी ही आराधना मे लगना चाहता था। शरीर अनेक बीमारियो के कारण जर्जर हो गया था। वह अब अधिक श्रम करने से जबाव दे रहा था। कही भी किसी भी लोकोपकार के कार्य के लिए भी चलने मे शरीर साथ नही दे रहा था, यहाँ तक कि कई शारीरिक कार्यों मे अपने सहगामी साधुओ का सहयोग लेना पडता था।

विक्रम सवत् २०२४ का चातुर्मास विजयनगर मे पूर्ण हो चुका था। चातुर्मास के बाद विहार करने की स्थिति मे न होने से आप विजयनगर ही विराज रहे थे। अपने दैनिक स्वाध्याय, आत्मचिन्तन एव प्रभु स्मरण मे आप सदा नियमित एव जागृत रहते थे। रुग्णावस्था मे भी शय्या पर लेटे-लेटे ही आप अपना जाप, पाठ या स्मरण कर लिया करते थे।

माघ महीना चल रहा है। आपके शरीर मे रुग्णता है, और रुग्णावस्था के दौरान भी आप अपना दैनिक आत्मकृत्य स्वय नियमित रूप से करते रहते थे।

इसी सिलसिले मे आप एक दिन अनित्यानुप्रेक्षा (अनित्यभावना) पर अन्तर्निरीक्षण-चिन्तन करने लगे "क्या मेरा यह शरीर यो ही छूट जाएगा ? अब तो यह बेकाबू हो गया है, इसमे ज्यादा उठने-बैठने या चलने-फिरने की शक्ति नही रही। यह एक न एक दिन तो छूटेगा ही। मृत्यु को कौन रोक सकता है ?

'जातस्य हि ध्रुवो मृत्युर्ध्रुव जन्म मृतस्य च।' जो जन्मा है, उसकी एक न एक दिन मृत्यु अवश्यम्भावी है, और मृत्यु के बाद जब तक मोक्ष न हो जाय, तब तक पुन जन्म भी निश्चित है।

शरीर का एक दिन इस आत्मा के साथ सयोग हुआ। इस शरीर के कारण ही मन, वाणी, इन्द्रियाँ आदि अवयव मिले, कुटुम्ब, परिवार, समाज आदि मिले, और यह सम्प्रदाय, गुरु, साथी मुनि, अनुयायीगण और श्रद्धालु लोग मिले। किन्तु एक न एक दिन जब शरीर का सयोग छूटेगा, तब इन सबसे वियोग अवश्य होगा। अगर यह वियोग ममत्वयुक्त हुआ, इष्ट वियोग के समय आर्त्तध्यान-रौद्रध्यान हुआ तो गति सुधरने के

बदले बिगड़ेगी, इतनी की-कराई सयम की साधना मटियामेट हो जाएगी। इतना सब काता-पीजा कपास हो जाएगा। अत शरीर छूटे, उससे पहले ही मैं क्यो नही शरीर और शरीर से सम्बद्ध सजीव-निर्जीव वस्तुओ के प्रति ममत्व छोड़ दूँ ? अपनी आत्मा की ओर ही क्यो नही निहारूँ ? उसकी ही एकमात्र आराधना मे क्यो नही लग जाऊँ ? उसी आत्मदेव के मन्दिर मे ज्ञान-दर्शन-चारित्र के दीपक क्यो नही जलाऊँ ? आत्मदेवता के मन्दिर मे शरीर, वाणी एव मन के द्वारा जो अपराधो दोषो भूलो का कूडा-कर्कट जमा हो गया है, उसे आलोचना एव प्रायश्चित्त द्वारा झाड-बुहार कर क्यो नही सफाई कर लूँ ! इस तरह आलोचना, प्रायश्चित्त आदि द्वारा आत्म-शुद्धि करने के साथ-साथ कषायो का भी लेख-जोखा क्यो न कर लूँ और उन्हे भी मद एव कृश करने का उपाय क्यो न कर लू !"

बस, इसी मनोमन्थन एव शुभ अध्यवसाय के फलस्वरूप आपने सलेखना-साधना शुरू कर दी और अपने जीवन के उदयकाल से लेकर सन्ध्याकाल तक मे हुए समस्त दोषो और अपराधो का परिमार्जन करने मे तल्लीन हो गए, आत्मनिरीक्षण मे गहरे उतर गये। आलोचना और प्रायश्चित्त द्वारा आत्म-शुद्धि के लिए प्रयत्नशील हो गए।

सथारा या सलेखना ?

इन्ही दिनो मे एक श्रावक आया और आपकी रुग्णावस्था, शारीरिक अशक्ति आदि देख कर स्वाभाविक रूप से ही उसने आपसे पूछा गुरुदेव ! सलेखना बडी है या, संथारा (अनशन) बडा है ?"

गुरुदेव ने जरा स्वस्थ हो कर फरमाया "भाई ! बडी तो सलेखना है, जिसमे आलोचना के द्वारा जीवन के शुभाशुभ कार्यो का अन्तर्निरीक्षण किया और सारे ही कार्यो का लेखा-जोखा करके अपने दोषो या अपराधो का परिमार्जन करने हेतु प्रायश्चित्त लिया जाता है। अपनी छोटी-से-छोटी भूल या गलती का प्रायश्चित्त के द्वारा शुद्धीकरण करके अपनी आत्म-शुद्धि की जाती है, कषायो एव विषयो के साथ शरीर को भी कृश किया जाता है। परन्तु व्यवहार मे सथारा भी महत्त्व रखता है। इसमे शरीर को ही नही, मन-वचन को भी विषय-कषायो से हटा कर आत्मा मे एकाग्र किया जाता है। सलेखना उसी का प्रच्छन्न पूर्वरूप है और सथारा (अनशन) प्रकट उत्तररूप है। दोनो एक-दूसरे के पूरक हैं।"

यह सुनकर उक्त श्रावक ने बातचीत के सिलसिले मे यो ही आप से पूछा "गुरुदेव ! क्या आप भी सथारा करेंगे ?" उत्तर मे आपने फरमाया "वाह ! यह क्या कहा ? सथारा मैं बेशक करूँगा, पर करूँगा जीवन के अन्तिम क्षणो मे, अभी नही। अभी से सथारा कर लूँ तो स्थानीय लोग भी भावुकता एव भक्ति के प्रवाह मे वह कर निराहार रहने लगेंगे। हाँ, सलेखना तो मैंने कर ही ली है और उसी के दौरान मैंने अपनी आलोचना करके प्रायश्चित्त ग्रहण करके आत्म-शुद्धि कर ली है।"

"वाह ! धन्य हो, गुरुदेव ! आप कितने जागरूक हैं, अपनी आत्म-शुद्धि के लिए !"

ये प्रश्नकर्त्ता थे विजयनगर-निवासी श्री सौभाग्यमलजी बडौला वैद्यराज !

सचमुच, आप अपने जीवन के सन्ध्याकाल मे अत्यन्त जागरूक थे। आपको अपनी भावी मृत्यु का आभास होने लग गया था। कौन जानता था कि गुरुदेव इतनी शीघ्र अपनी लीला समेट लेंगे और हमसे बिछुड़ जायेंगे। परन्तु पूज्य प्रवर्तकश्रीजी महाराज पहले से अन्दर ही अन्दर अपने भावी जीवन के लिए प्रस्थान करने की तैयारी कर रहे थे। वे सलेखना के साथ ही प्रायश्चित्त, आलोचना आदि करके अपनी आत्मा को माज कर साफ कर चुके थे। और अब उस आत्म-हस के उडने की तैयारी थी !

शहीद दिवस को. दीपक बुझ गया

आपके स्वर्गारोहण से तीन दिन पहले ही गुलाबपुरासघ ने अपने शिष्य प० मुनि श्री सोहनलालजी महाराज को गुलाबपुरा पधारने के लिए आदेश देने की आपसे प्रार्थना की। उस पर आपने उन भाइयो से कहा "भाइयो ! अभी अवसर नही है, इन्हे गुलाबपुरा भेजने का !"

सघ के प्रमुख लोगो ने कहा "गुलाबपुरा कोई दूर नही है। विजयनगर क्षेत्र को तो आपश्री का लाभ मिल ही रहा है। हमारे क्षेत्र पर भी कृपा कीजिए और प० श्री सोहनलालजी महाराज को भेज दीजिए। अभी आपका स्वास्थ्य भी ठीक है। कुछ दिन वहां विराज कर ये वापस आपकी सेवा मे पधार जाएँगे।"

आपने पहले तो बहुत आनाकानी की, परन्तु श्रावक लोग आपके सकेत को समझ नही सके। वे अपनी भावुकता और भक्ति की धुन मे अत्यधिक प्रेमाग्रह करने लगे। अत आपने इच्छा न होते हुए भी गुलाबपुरा सघ के अत्यधिक अनुरोध को मान कर आज्ञा दे दी "अच्छा, सोहनमुनिजी ! गुलाबपुरा सघ की आग्रह भरी विनति है, अत इनका क्षेत्र पावन करो, परन्तु पचमी को वापस लौट आना।"

यद्यपि प० मुनिश्री सोहनलालजी ने आपसे निवेदन भी किया था "गुरुदेव ! आपकी सेवा में तकलीफ पड़ेगी। तीन दिन मे क्या लाभ मिल जाएगा इन्हे। पचमी को तो आपकी सेवा मे वापस लौटना ही है।" फिर भी सघ के आग्रह के कारण आन्तरिक इच्छा न होते हुए भी आपने उन्हें गुलाबपुरा भेज दिया।

यद्यपि पचमी को वापस आने का सकेत पूज्य-प्रवर्तकश्रीजी महाराज ने कर दिया था, उसके गर्भ मे भविष्य की आशका छिपी हुई थी। परन्तु कौन जानता था कि वह अटल घडी आ पहुँचेगी मृत्यु की !

मृत्यु का वारट किसी को नही छोड़ता। वह दल-बल-सहित एकदम आ धमकता है।

वह मृत्यु ही क्या जो सूचना देकर आए ? मृत्यु प्रकृति की चीज है, वहा एक-से-एक बढकर आश्चर्योत्पादक घटनाएँ घटित होती रहती हैं।

३ फरवरी को विजयनगर मे एक समारोह होने जा रहा था। राजस्थानप्रदेश कांग्रेस के अध्यक्ष श्री नाथूरामजी मिर्धा शहीद छात्रालय का शिलान्यास करने हेतु आने वाले थे। गत महाचुनाव के समय कांग्रेस का काम करते हुए विजयनगर के ५ महारथी जीप-ट्रेन-दुर्घटना के शिकार हो गए थे और वही शहीद हो गये। उसी की पवित्र स्मृति मे तीन फरवरी को शहीद छात्रालय का शिलान्यास-समारोह होने वाला था, जिसका बीडा वनमत्री राव श्री नारायणसिहजी की धर्मपत्नी श्रीमती उर्मिलादेवी ने उठाया था। समारोह मे काफी लोग आने वाले थे। समारोह इसीलिए ३ फरवरी को रखा गया था कि वे पाचो व्यक्ति तीन फरवरी को शहीद हुए थे।

कौन जानता था कि तीन फरवरी को होने वाला यह महान् समारोह किसी विलक्षण समारोह के गर्भ मे समा जाएगा। प्रकृति के गर्भ मे क्या है ? इसे ज्ञानी पुरुष ही जान सकते हैं। दो फरवरी को किसी को स्वप्न मे भी यह कल्पना नही थी कि आज रात को कोई नई घटना घटित होगी।

दो फरवरी का दिन है। विक्रम सवत् २०२४ है, तिथि माघ शुक्ला ४ है। पूज्य प्रवर्तक मुनि श्री पन्नालालजी महाराज ने शाम को स्वाभाविक रूप से आहार किया। सायकाल को प्रतिक्रमण किया और धर्म-चर्चा के पश्चात् अपना दैनिक नित्य-नियम करके सागारी सथारा कर लिया। यद्यपि चौविहार (चतुर्विध-आहार-त्याग) तो उन्होने सध्याकाल को ही कर लिया था। कौन जानता था कि जीवन का यह अन्तिम सन्ध्याकाल होगा ?

आप ठीक समय पर शयन के लिए पधारे। माघ शुक्ला पचमी की रात्रि आई। प्रात· तीन बजे से आप नित्यक्रम के अनुसार प्रभु स्मरण एव स्वाध्याय में लीन थे। इन दिनो मे स्वास्थ्य-सम्बन्धी कोई विशेष गडबड भी नही थी। लगभग ४ बजे के बाद अचानक ही आपकी छाती मे हल्का-सा दर्द उठा। बेचैनी बढने लगी। आपने पास मे सोने वाले अपने शिष्य प० श्री कुन्दनमलजी महाराज को इशारे से जगाया। वे जागे और उन्होंने पूछा "गुरुदेव क्या बात है ?"

'कुन्दन, छाती मे दर्द है' यो आपने बहुत ही क्षीण स्वर मे फरमाया। परन्तु प० श्री कुन्दनमलजी महाराज के सुन न पाने से पुन पूछा "गुरुदेव ! क्या घुटने मे दर्द है ?" घुटने मे दर्द तो अकसर आपको उठ जाया करता था। किन्तु आपने छाती की ओर सकेत करते हुए बताया कि 'यहाँ दर्द है।' सकेत पाते ही प० श्री कुन्दनमलजी महाराज ने दर्द के स्थान पर खाली हाथ से ही कुछ देर तक मालिश की, जिससे गुरुदेव को कुछ शान्ति मिली।

परन्तु यह शान्ति क्षणिक थी ! इस बात को पूज्य प्रवर्तकश्रीजी महाराज बखूबी जानते थे। यद्यपि शयनकाल के समय सागारी सथारा कर लिया था, परन्तु फिर भी

अपने शिष्य से कह कर आपने फिर सथारा (आमरण अनशन) ग्रहण कर लिया और पुन स्वाध्याय मे सलग्न हो गए। कुछ ही देर मे फिर पीडा उठी। इस पीडा ने आपको मृत्यु के मुख मे पहुँचा दिया।

आस-पास के श्रावको को पता लगते ही वे अपने-अपने घर से चल पड़े। किन्तु इसी बीच गुरुदेव ने अपने शिष्य के हाथो मे 'अरिहन्त भगवान्' कहते हुए गर्दन डाल दी और समाधिमरणपूर्वक आपकी आत्मा ने स्वर्ग की राह ले ली।

हृदय अवसन्न है, लेखनी लिखने से इन्कार कर रही है। परन्तु लेखक का कर्तव्य निभाना ही होगा। हाँ, तो विक्रम स० २०२४ माघ शुक्ला ५ अर्थात् ३ फरवरी १९६८ को ब्राह्मवेला मे यह नर-रत्न हमसे छीन लिया गया।

कौन जानता था कि शहीद-दिवस के रोज यह महान् विभूति हमसे छीन ली जाएगी ? सयमयात्रा का वह महान् साधक इस प्रकार सहसा हमको छोड कर चला जाएगा, यह किसी को भी आशा नही थी। परन्तु काल का चक्र निश्चित समय पर हरकत मे आता है और मनुष्य की समस्त आशाओ और उमगो को छिन्न-भिन्न कर देता है। यह जीवन का वह अन्तिम क्षण है, जहाँ ससार की बडी-से-बडी तूफानी शक्तियाँ भी अपना पराजय स्वीकार करती हैं। काल ! तुम कितने कठोर दिल के हो कि १९६७ की तीन फरवरी तुमने राष्ट्र के प्रति वफादार, विजयनगर के पाँच ईमानदार कार्यकर्ताओ को छीन लिया तथा सन् १९६८ की ३ फरवरी को ही देश की महान् विभूति परम सन्त को, जो गत कई वर्षों से विजयनगर मे विराजमान थे, अचानक उठा लिया।

श्रावक लोग दौडे-दौडे आ पहुँचे। शोरगुल मच गया। डॉक्टर तथा वैद्य दौडे हुए आए। किन्तु निराश होकर लौटने के सिवा वहाँ क्या था ? इधर जामोलावासी श्रावक श्रीमिश्रीलालजी पीपाडा के द्वारा सघ को आपके असाता पैदा होने की सूचना मिल गई तो वे तुरन्त डॉक्टर टी० सी० गर्ग को बुला कर लाए। किन्तु डाक्टर साहब आए, उससे पहले ही गुरुदेव दिवगत हो चुके थे।

मुखिया लोग दौडे और जिसके मन मे जहाँ का आया, वहाँ फोन करके गुरुदेव के स्वर्गवास की सूचना दी। आगे से आगे फोन होते गये, कई जगह तार एव सवारियो द्वारा स्वर्गवास के समाचार पहुँचाए। देखते-ही-देखते भीलवाडा, अजमेर, जयपुर, मेडता, किशनगढ, पीही, थावला, ब्यावर आदि के हजारो नरनारी वहाँ पहुँच गए। मसूदा, गुलाबपुरा, जालिया, राताकोट, बादनवाडा, सरवाड, नसीराबाद, भिणाय तथा अन्य समीपस्थ गाँवो के लोग तो आते ही। कई गाँवो से तो इतने लोग आये कि गाँव ही जन-शून्य प्रतीत होने लगे। २०-२० मील का विहार करके सत-सतियाँ भी विजयनगर पहुँच गए।

पूज्य प्रवर्त्तकश्रीजी महाराज के आकस्मिक स्वर्गवास का दु खद समाचार जिस किसी ने भी सुना, वह वज्राहत-सा हो गया। क्या जैन, क्या अजैन सभी कौम और धर्म-सम्प्रदाय के लोग इस अजात-शत्रु महारथी महाप्राज्ञ श्रीपन्नालालजी महाराज के

अन्तिम दर्शनो के लिए उमड पडे। दूर-दूर तक के प्रदेशो से जैन-अजैन जनता भक्ति-भावना से उमडी चली आ रही थी। भीड की कुछ सीमा न रही।

गुरुदेव के पार्थिव-शरीर को देख कर सबके दिल बैठे हुए थे, चेहरे मुर्झाए हुए थे। सबकी जिह्वा पर एक ही बात थी और एक ही प्रश्न था "इतनी आकस्मिक यह घटना कैसे हो गई ? हमे जरा-सा भी मालूम होता तो हम सेवा मे आ-पहुँचते।" इस समय का दृश्य बडा ही हृदय-द्रावक था। जन-समूह की आखो से आंसू की धाराएँ बह रही थी, और वे तत्कालीन वातावरण को और अधिक शोकाकुल एवं गम्भीर बना रही थी।

शोभायात्रा

अजमेर-संघ बैकुण्ठी तैयार करके ले आया था। ठीक डेढ बजे आपकी स्वर्गारोहण यात्रा प्रारम्भ हुई। उस समय लगभग दस हजार से ऊपर नरनारी वहाँ पहुँच चुके थे। अन्तिम यात्रा जैन-स्थानक से प्रारम्भ हो कर आढेबाजार से मदर बाजार में आई। आडेबाजार का यह चौराहा नगर के एक किनारे स्टेशन के पास है। बैकुण्ठी जब इस चौराहे पर आई, यात्रा का आगे का भाग बाजार के पश्चिमी भाग मे आगे निकल चुका था। अन्तिम यात्रा मे चारो ओर से भगवान् महावीर की जय, जैन धर्म की जय, पूज्य प्रवर्तक गुरुदेव श्रीपन्नालालजी महाराज की जय इत्यादि विविध जय के नारो से आकाश गूंज रहा था। भजनीक लोग उत्साहपूर्वक धार्मिक भजन गा रहे थे। 'जय-जय नदा, जय-जय भद्दा' की मधुर आवाज दिशाओ मे व्याप्त हो कर आकाश को कँपा रही थी। बैकुण्ठी के साथ चलने वाले अपार जनसमूह से सदरबाजार खचाखच भरा हुआ था। चारो ओर केवल सिर ही सिर नजर आ रहे थे। नीचे बाजार मे और छतो पर नर-नारियो का झुण्ड ही दिखाई देता था। दर्शनप्रेमी भक्त जनता आज इस अन्तिम झाकी को अपनी आखो मे बसा लेना चाहती थी।

जब यात्रा पैट्रोल पप के निकट पहुँची तो बादनवाड़े से आती हुई एक बस रुकी। उसमे से राजस्थान के वनमन्त्री राव नारायणसिंहजी को उतरते देखा। वे पूज्य प्रवर्तक-श्रीजी महाराज के प्रति अपार श्रद्धावान् भक्त थे, वे भला ऐसे समय आए बिना कैसे रह सकते थे! वे इस स्वर्गारोहण-यात्रा मे सम्मिलित होने के लिए आए थे। अपार भीड मे, जहाँ पहुँचना असम्भव-सा था। लोगो की सहायता से वे स्वर्गीय पन्नालालजी महाराज का पार्थिव शरीर जहाँ बैकुण्ठी मे विराजमान था, वहाँ पहुँच गए। इस अन्तिम यात्रा मे डेवलेपमेट कमिश्नर श्री सत्यप्रसन्नसिंह भडारी, श्रीविशेष भार्गव आदि अनेक छोटे-बड़े अधिकारी तथा कार्यकर्ता साथ-साथ चल रहे थे। यह श्मशान-यात्रा उच्च विद्यालय से आगे प्रवर्तक मुनिश्री के अनन्य भक्त श्री बिरधीचन्दजी, गुलाबचन्दजी चौरडिया की जमीन पर समाप्त हुई। यही अन्तिम अग्निसस्कार होना था। वहाँ पहले से ही अपार जनसमूह अपने श्रद्धास्पद गुरुदेव के अन्तिम दर्शनो के लिए इकट्ठा हो रहा था। वहाँ चदन की लकडियाँ सजा कर चिता बनाई गई थी। आपका

शोभा यात्रा



वि० स० २०२४ माघसुदि ५ शनिवार का वह करुण दिन !

धरती से एक दिव्य आत्मा स्वर्ग की ओर प्रस्थान कर गई। उस पार्थिव देह को अगणित मानव-मेदिनी

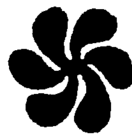
अश्रुपूरित नयनो और धडकते हृदय के साथ ले जा रहे हैं अग्निदेव को समर्पित करने।

पार्थिव शरीर चिता पर रखा गया। राव नारायणसिंहजी तथा अन्य कई श्रद्धालु भक्त चिता मे धूप, चंदन व नारियल की आहुति डाल-डाल कर अग्नि प्रज्वलित होते ही, आसुओ के रूप मे श्रद्धा का अर्घ्य चढा कर आपको अन्तिम विदाई दे रहे थे।

चिता की अग्नि की ज्वालाएँ आकाश की ओर उछल रही थी, मानो वे चरित-नायक के चरणो मे स्वर्ग की ओर उडी जा रही हो। अग्नि धीरे-धीरे प्रज्वलित होकर चरितनायक के शरीर को अपने मे लीन कर रही थी। सहस्रो कण्ठो से उस समय गुरुदेव की जय के नारे लगाए जा रहे थे, आखो से आसू वह रहे थे। सच है, जहा निकटतम सम्पर्क होता है वहाँ गौतम जैसे बड़े-बड़े ज्ञानी साधको का दिल भी कभी अपने श्रद्धेय का वियोग सहने मे कच्चा हो जाता है, तब ये तो गृहस्थ लोग ठहरे। इनकी आंखो से अश्रु की धारा वहे इसमे तो कहना ही क्या? परन्तु गुरुदेव का पार्थिव शरीर जब अग्नि ने अपने मे विलीन कर लिया, तब तो केवल उनके गुणो की स्मृति ही शेष रह जाती है।

श्रद्धेय गुरुदेव पूज्य प्रवर्तकश्रीजी मे जो सबसे बडा लोकोपकारक गुण था शिक्षा सस्कार-प्रचार का। अत विजयनगर श्रीसघ की इच्छा उनकी स्मृति मे एक स्मारक बनाने की हुई, जहाँ उनका अग्निसस्कार हुआ था, वहाँ सबकी सम्मति उनके नाम से महाविद्यालय की स्थापना करने की रही। फलत १२ अगस्त १९७२ को विजयनगर मे श्रद्धेय गुरुदेव की स्मृति मे श्रीप्राज्ञ-महाविद्यालय की स्थापना की गई, जो राजस्थान विश्व-विद्यालय के सम्वद्ध है।

गुरुदेव आपको धन्य हो! हजार, लाख और कोटि बार धन्य हो। आपका जीवन भी महान् था, तो आपकी मृत्यु भी महान् हुई। सावधानी पूर्वक समाधिमरण के साथ अपनी जीवन-लीला समाप्त की। जिस साधना के पथ पर आप एक दिन चले थे। उसी साधना के पथ पर अन्तिम क्षण तक चलते रहे। आपके जीवन का उदयकाल भी प्रकाशमान था, मध्य-काल भी प्रकाशमान रहा और सन्ध्याकाल भी प्रकाशमान ही रहा।

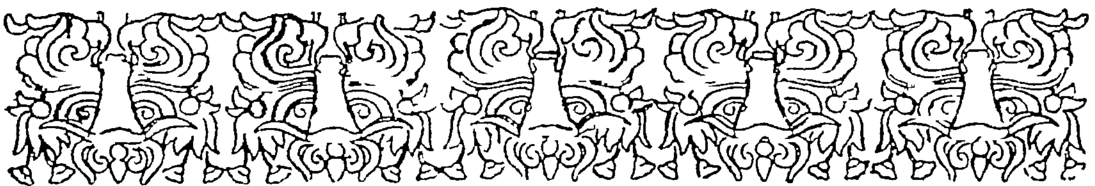


द्वितीय खण्ड

अमर कृतित्व



समाज सुधार, दया व अहिंसा-प्रचार
संगठन, साहित्य-सर्जना
एवं अन्य क्रान्तिकारी कार्यों की समीक्षा





पुरातत्व के अमर स्मारक



समाज में जब-जब कुसस्कार बढ जाते हैं, कुप्रथाएँ अपना अड्डा जमाने लगती हैं, घातक कुरूढियों के कारण समाज त्रस्त होने लगता है, व्यक्ति के जीवन में एक प्रकार की कुण्ठा व्याप्त हो जाती है, विकास के द्वार अवरुद्ध होने लगते हैं, तब-तब किसी न किसी नि.स्पृह, त्यागी धार्मिक पुरुष ने उसे सम्भाला है और नया मोड दे कर नये शुद्ध मूल्यों का प्रवेश कराया है। विश्व के धर्मों का इतिहास इस बात का साक्षी है। धर्म-नायकों ने अनार्य, म्लेच्छ, अधर्मी, पापी और अत्याचारी पुरुषों के बीच रह कर उन्हे सुसस्कार देकर सवारा है, उन्हे नीति और धर्म के पवित्र मगल-सूत्र दे कर अच्छे, चारित्र वान धर्मात्मा नागरिक और परस्पर सहयोगी, सेवानिष्ठ सामाजिक बनाया है।

परन्तु यह सब कार्य केवल वाणी से ही वे नही कर पाये हैं। वाणी के द्वारा प्राय. बाह्य परिवर्तन हो जाता है। किन्तु हृदय-परिवर्तन सारे समाज या समाज के अधिकाश लोगों का नही हो पाता। हृदय-परिवर्तन बहुधा हजार में से किसी एक का होता है, जबकि बाह्य परिवर्तन प्राय· समाज के अधिकाश लोगों का हो सकता है। किन्तु यह देखा गया है कि केवल वाणी से मनुष्य का बाह्य परिवर्तन हो सकता है, जीवन-परिवर्तन नही हो पाता। समाज की विकट परिस्थितियों में उसके वे क्रान्त विचार क्रियान्वित नही हो पाते, वे वही के वही मन के कोने में दबे रहते हैं। इसलिए समाज-निर्माताओं ने माना है कि केवल बाह्य परिवर्तन से समाज को बदला नही जा सकता। समाज को आमूल-चूल बदलने के लिए विचार-परिवर्तन के साथ परिस्थिति-परिवर्तन का होना आवश्यक है। परिस्थिति-परिवर्तन होने पर ही वे विचार या वे नैतिक धार्मिक नियम, त्याग, वैराग्य आदि सुदृढ और सस्कारबद्ध हो सकते हैं, वे विचार समाज में क्रियान्वित होने लगते हैं।

परन्तु सवाल यह है कि परिस्थिति-परिवर्तन कैसे हो ? परिस्थिति-परिवर्तन के लिए सबसे उत्तम उपाय हमारे प्राचीन समाजनिर्माताओं, तीर्थंकरो, अवतारो, पैगम्बरो ने अपनाया मनुष्यो को संगठनबद्ध करने का। क्योंकि मनुष्यो को समान-विचार और समान आचार वाले सगठन मे आबद्ध कर देने पर व्यक्ति बारबार उन विचारो के साथ आचारो का अभ्यास करते हैं, तब वे विचार हृदय मे संस्कारो के रूप मे जम जाते हैं। भगवान् महावीर ने अपने उत्तम विचारो को समाज मे संस्कारबद्ध करने हेतु चतुर्विध धर्मसंघ की स्थापना की। और भगवान् बुद्ध, राम, कृष्ण और ईसा-मसीह, मुहम्मद साहब आदि सभी धर्मनायको ने भी अपने विचारो को समाज के संस्कारो मे रूढ देखने के लिए अपने-अपने धार्मिक सगठन बनाए। क्या कारण था कि इन सब महापुरुषो ने अपना सुधार कर लेने के बावजूद भी सगठन बनाया ? क्यों नही, ये लोग अलग-अलग व्यक्ति को विचार दे कर ही रुक गए ? इसके पीछे मूल कारण यह प्रतीत होता है कि व्यक्ति-व्यक्ति के विचार बदलने पर भी समाज मे वे विचार संस्कारबद्ध नही हो जाते, और न ही व्यक्ति के सुधर जाने से समाज सुधर जाता है। समाज-सुधार या समाज मे विचारो को संस्काररूप से बद्धमूल करने के लिए संगठन बनाना आवश्यक होता है। सगठन बना देने पर अनेक व्यक्तियो के जीवन मे बार-बार उन विचारो का अभ्यास कार्यरूप मे परिशीलन होने पर परिस्थिति-परिवर्तन हो जाता है और तभी सारे समाज मे आमूलचूल परिवर्तन होता है।

इसी उद्देश्य को लेकर संस्था की स्थापना की जाती है। संस्था की स्थापना करने वाला केवल एक व्यक्ति को ही नही, प्रायः अधिकांश समाज के गलत संस्कारो को बदल डालता है, बुराइयों को उसी संस्था के द्वारा मिटाने का जबर्दस्त प्रयत्न करता है। हमारे चरितनायक पूज्य प्रवर्तक श्रीपन्नालालजी महाराज के जमाने मे भी समाज मे अनेक कुरूढियाँ व्याप्त थी, समाज मे व्याप्त अन्धविश्वास, अशिक्षा और अज्ञान के कारण पारस्परिक कलह, क्लेश, विवाद या वितण्डावाद फैल रहा था। समाज की तेजस्विता समाप्त हो रही थी। घातक कुरूढ़ियो का शिकार बन कर समाज पिस रहा था, उसका सत्त्व क्षीण हो रहा था, उसका आनन्द लुप्त हो रहा था। धर्म के तत्त्वो और सिद्धान्तो से अनभिज्ञ होने के कारण समाज का अधिकाश भाग मृतभोज, बलिदान, देवीदेवो की मनौती, आदि कुप्रथाओ मे फँस कर कायर, दुर्बल और पराधीन बन रहा था। समाज मे असहाय गरीब विधवा एव अनाथ भाई-बहनो का बहुत बुरा हाल था। अभावो के कारण वे अशिक्षा और अविद्या के शिकार हो रहे थे। इन सब पर उनके मन मे गहरा मन्थन चला और तीर्थंकरो प्राचीनकाल के पूर्वजमहामुनियो, आचार्यो एव समाजनिर्माताओ के अनुभवो के प्रकाश मे उन्होंने मन ही मन यह निर्णय किया कि समाज मे से इन कुरूढियों, विषमताओ और अशिक्षा—अविद्या को उखाड़ने के लिए नई और पुरानी दोनो पीढ़ियो के उन कुसंस्कारो और कुविचारो को बदलना आवश्यक है। इसके लिए कुछ संस्थाओ की संस्थापना होनी चाहिए।

प्रवर्तकश्रीजी महाराज का ध्यान सर्वप्रथम शिक्षा-प्रचार की ओर गया, क्योंकि

'अविद्या ही तमाम बुराइयों की जड है' इस कहावत के अनुसार अशिक्षा के कारण समाज मे अन्धविश्वास, मृतभोज आदि कुरूढियाँ पनपती हैं। अत इन कुरीतियों और कुरूढियो की जड उखाडने के लिए आपने सर्वप्रथम विक्रम सवत् १९७९ मे शिक्षा-सस्था के निर्माण हेतु एक सबल प्रेरणा दी।

व्यापारिक पाठशाला एवं औषधालय की स्थापना

सवत् १९७९ के ज्येष्ठ मास में आप गुलाबपुरा पधारे। आपके वहाँ के नागरिको के सामने अपने सार्वजनिक प्रवचनो मे सुसस्कारयुक्त शिक्षा पर जोर देते हुए कहा "जब तक आपके नगर मे व्यावहारिक शिक्षण के साथ-साथ धार्मिक सस्कारो को सुदृढ करने के लिए कोई पाठ्यक्रम निर्धारित करके चलने वाली शिक्षासस्था नही होगी, तब तक आपके नगरवासी कोरे व्यापारी या बुद्धिजीवी बन जायेंगे, उनमे धर्मसस्कार प्रविष्ट नही होगे। धर्मसस्कार-हीन व्यापारी या बुद्धिजीवी क्या कर बैठेगा? अपने जीवन मे परमार्थ को कितना स्थान देगा? यह बात आप स्वय सोच-समझ सकते हैं। धर्म-सस्कारो से विहीन असस्कृत जीवन पशु का-सा जीवन है। अत आप सब लोग मेरी बात मान कर ऐसी सस्था की स्थापना कीजिए, जिसमे व्यावहारिक शिक्षा के साथ-साथ धार्मिक शिक्षा भी दी जाय।"

आपके ओजस्वी प्रवचनो का प्रबुद्ध नागरिक-जनो पर तत्काल असर हुआ। उन्होने आपकी प्रेरणा से तत्काल ही वहाँ कुछ व्यापारी लोगो से चन्दा एकत्रित करके एक **व्यापारिक पाठशाला** की स्थापना की, जिसमे व्यावहारिक ज्ञान के साथ-साथ धार्मिक शिक्षण भी दिया जाता था। गुलाबपुरा के जैन-वैष्णव व्यापारियो ने इस सस्था के साथ ही गुलाबपुरा एव आसपास के गाँवो के गरीब एव साधनहीन लोगो को मुफ्त मे चिकित्सा एव औषधि का लाभ मिले, इस हेतु एक **औषधालय** की भी स्थापना की। इन दोनो सस्थाओ का सचालन एव देखरेख गुलाबपुरा का जैन-वैष्णव व्यापारी। समाज करने लगा। वर्षों तक जनता इन दोनो सस्थाओ से लाभान्वित होती रही। बाद मे व्यापारी समाज ने ये दोनो सस्थाएँ मेवाड-राज्य-सरकार को सौंप दी। इनका सचालन मेवाड राज्यसरकार द्वारा होने लगा।

शिक्षा से समाज की मानस-शुद्धि हो सकती है तो चिकित्सा से शरीरशुद्धि। दोनो प्रकार की सेवाएँ समाज-परिवर्तन के लिए आवश्यक हैं। इसलिए इन दोनो सस्थाओ के लिए प्रेरणा दी, तथा विचारो का बीजारोपण किया गुरुदेव प्रवर्तक श्री पन्नालाल जी महाराज ने ही। शिक्षा और चिकित्सा के पीछे उनका जो शुद्ध दृष्टिकोण था, उसी दृष्टिकोण से ये सस्थाएँ चली। व्यापारिक पाठशाला से शिक्षा प्राप्त कर कई अच्छे नीतिमान् धर्मसस्कारी व्यापारी बने, जो आज भी समाज मे चमकते सितारे हैं। औषधालय से अनेक लोग रोगमुक्त, स्वस्थ एव शक्तिमान् बने।

विजयनगर में जैन विद्यालय की स्थापना

इसके बाद विक्रम सवत् १९८३ मे आपने 'शिक्षा के महत्व और चमत्कार' पर विजयनगर मे ओजस्वी भाषण दिया। आपने बताया कि 'जब तक मनुष्य शिक्षित नही

हो जाता, तब तक उसमे से अज्ञान, अन्धविश्वास, कुरूढि-दासता और कुप्रथाओं की गुलामी आदि दुर्गुण निकलेंगे नही। वे उसकी बुद्धि पर अपना कब्जा जमा लेंगे। और धीरे-धीरे समाज की व्यवस्था पर कुठाराघात करेंगे। इसलिए शिक्षा केवल सम्पन्नता और आर्थिक विकास की दृष्टि से ही नही, व्यक्ति के निजी विकास की दृष्टि से भी अनिवार्य है। शिक्षा का उद्देश्य केवल नागरिक बनाना नही, अपितु मनुष्य को सच्चा मानव बनाना होना चाहिए। तभी उसके जीवन मे चिन्तन और व्यवहार का सन्तुलन होगा। अन्यथा चिन्तन मानवता से युक्त नही हो कर स्वार्थ से ओत-प्रोत होगा, और ऐसा चिन्तन व्यवहार को भी मानवीय न रख कर दानवीय बना डालेगा। अत शिक्षा के महत्त्व को समझो और एक ऐसा विद्यालय स्थापित करो, जो जीवन के इन मानवीय आदर्शों को मूर्तरूप दे सके।"

"भावी पीढी और भविष्य के मानव को बदलने और सुसरकारी बनाने के लिए शिक्षा ही एकमात्र आधार हो सकती है। शिक्षासंस्था के जरिये हम भविष्य के मानव को नये साँचे मे ढाल सकते हैं। किन्तु यदि उसे शिक्षाविहीन रखा तो वह पुराने ढर्रे पर चल कर समाज-सरोवर को गदा कर देगा, स्वयं का जीवन भी बिगाड डालेगा और समाज का भी। अत शिक्षासस्था की स्थापना मे जितना विलम्ब होगा, उतना ही हम समाज के नवनिर्माण मे पीछे रह जायेंगे। सुसस्कृत-समाज के निर्माण के लिए विद्यार्थी-जीवन से ही वैसे सुसस्कारो, सुन्दर आदतो एव जीवनपद्धति की यथार्थ दृष्टि का बीज डालना बहुत ही आवश्यक है।"

"मेरी बात आप लोगो को फिजूलखर्ची की लगती होगी। आप सब प्राय. व्यापारी-वर्ग के हैं, इसलिए अपने परिवार या समाज के लिए शिक्षा को व्यर्थ का खर्च समझते होगे। या यो समझते होंगे कि यह काम सरकार का है, हम क्यो आगे हो कर इस काम मे खर्च करें। परन्तु याद रखिये, सरकार समाज के सुविकास के लिए प्राय: पहल नही किया करती, समाज के सुविकास के लिये सामाजिक या धार्मिक सस्था या धर्मसस्था या समाज के कुछ विचारवान व्यक्ति ही पहले करते हैं, करना भी चाहिए। समाज के इन बालको के जीवन-निर्माण के पीछे विद्यादान के माध्यम से खर्च किया हुआ पैसा न तो निरर्थक है, और न ही कुरूढिवश है। इसमे खर्च किया हुआ एक-एक पैसा सार्थक होगा। अपने बालको को अच्छा खिलाने-पिलाने या सुन्दर गहने कपड़े पहनाने की अपेक्षा उन्हे बुद्धि और हृदय से सुविचारक, संस्कारी, धर्मपरायण एव सच्चे मानव बनाना कही ज्यादा लाभदायक है।"

"अपढ व्यक्ति व्यावहारिक कार्यो मे भी कुशल नही होता। वह प्रत्येक कार्य मे पराश्रित और परमुखापेक्षी होता है। जब व्यावहारिक बातो को समझने मे वह पराधीन, असमर्थ एवं दुर्बल होता है तो आध्यात्मिक बातो को एवं धर्मशास्त्रो की गहराई व तत्त्व-ज्ञान की गहनता को समझने मे तो बहुत ही पीछे हो, इसमे तो कहना ही क्या है? अतः व्यक्ति, समाज, परिवार और राष्ट्र, सभी के व्यावहारिक एव धार्मिक लाभ की दृष्टि से ऐसी एक शिक्षासस्था का खोलना बहुत ही हितावह है।"

आपके इस आशय के जोशीले भाषण को सुन कर जनता मे एक सिरे से दूसरे सिरे तक उत्साह की लहर दौड गई।

विजयनगर-जैनसमाज, के व्यक्ति केवल आर्थिक दृष्टि से ही नही, बौद्धिक दृष्टि से भी समृद्ध थे। उन्होने गहराई से गुरुदेव के आशय पर विचार किया और उन्होने आपके द्वारा शिक्षासस्था की प्रेरणा की गहराई को छू लिया। फलत समग्र जैनसमाज की एक जनरल मीटिंग बुला कर उन्होने गुरुदेव की इस अमूल्य प्रेरणा पर विचार किया और जैन विद्यालय की स्थापना का प्रस्ताव पारित किया।

इसी के फलस्वरूप विक्रम सवत् १९८३ मे आपके उपदेश से एक **"जैन-विद्यालय"** की स्थापना हुई।

नारायण हाईस्कूल में रूपान्तरित

इस जैन विद्यालय की स्थापना का मुख्य उद्देश्य यही था कि बालको को शिक्षा के साथ धर्मसस्कार दिये जाय ताकि वे सच्चे अर्थ मे इन्सान बनें। इस उद्देश्य से यह सस्था सुचारुरूप से चल रही थी। सस्था के सचालको को समय-समय पर आप श्री का सुन्दर मार्गदर्शन मिलता रहता था।

विक्रम सवत् १९८६ के चातुर्मास के बाद आप मसूदा पधारे। मसूदा के राव श्रीविजयसिंहजी आपके पक्के भक्त एव आपके उपदेशो से प्रभावित थे। आपके पदार्पण का समाचार सुनते ही वे आपकी सेवा मे पहुँचे। दर्शन एव वन्दन कर राव साहब ने निवेदन किया 'गुरुदेव! आपकी प्रेरणा से विजयनगर मे स्थापित 'जैन विद्यालय' बहुत ही सुचारुरूप से चल रहा है, लेकिन वहाँ अभी तक मिडिल तक का अध्ययन कराया जाता है, मेरा विचार एक हाईस्कूल खोलने का है। मैं चाहता हूँ कि जैन विद्यालय इसी हाईस्कूल के साथ सम्मिलित हो जाय तो विद्यार्थियो को भी लाभ मिलेगा और नगर मे भी शिक्षा की उन्नति होगी। आपको मेरा यह विचार उचित लगता हो तो आप जैनसमाज को इस सम्बन्ध मे उचित प्रेरणा देने की कृपा करें। रही बात धार्मिक शिक्षण की, उस सम्बन्ध मे भी मैंने विचार किया है कि जो धार्मिक शिक्षण जैन विद्यालय मे मिलता है, वही इस हाईस्कूल मे चालू करा देंगे। उन्ही अध्यापको की नियुक्ति हम हाईस्कूल मे कर लेंगे। इससे हाईस्कूल प्रारम्भ करने मे हमे भी सुविधा होगी, सहयोग मिलेगा और इसे सरकारी मान्यता भी मिल जाएगी।"

पूज्य प्रवर्तकश्रीजी महाराज ने इस पर गहराई से विचार किया और वे राव साहब के इस दूरदर्शितापूर्ण सुझाव से सहमत हो गए। उन्होने फरमाया "राव साहब! आगे चल कर ऐसा तो नही होगा कि जैन विद्यालय जिस उद्देश्य से स्थापित हुआ है, उसका मूल उद्देश्य ही मारा जाय और वह केवल व्यावहारिक शिक्षा का एक कारखाना मात्र ही रह जाय!"

रावसाहब "गुरुदेव! आप निश्चिन्त रहिए। मेरे रहते ऐसा कदापि नही होगा। मैं भी तो यही मानता हूँ कि धर्म सस्काररहित विद्या मस्तिष्क पर कोरा भार है।

उससे बालक का जीवन-निर्माण नही हो सकता। इसलिए धार्मिक शिक्षण की बात को हम हाईस्कूल बना देने पर भी नजर-अन्दाज नही कर सकते।"

रावसाहब, मसूदा के इस आश्वासन तथा अत्यधिक आग्रह के कारण पूज्य प्रवर्तकश्रीजी महाराज ने विजयनगर के जैन समाज को जैन विद्यालय को 'नारायण हाईस्कूल' मे रूपान्तरित करने की प्रेरणा दी, साथ ही ऐसा करने के कई लाभ भी बताए। फलत. गुरुभक्त जैनसमाज ने सस्था की मीटिंग बुला कर, इस विषय का एक प्रस्ताव पारित किया और तदनुसार जैन विद्यालय को नारायण हाईस्कूल मे परिणत कर दिया। अब क्या था ? छात्रो की शिक्षा मे उन्नति होने के साथ-साथ वहाँ बाकायदा धार्मिक शिक्षण भी दिया जाने लगा।

श्वे० स्था० नानक जैन श्रावक समिति का गठन

इसी बीच आपका ध्यान समाज के उन लोगो की ओर गया, जो अनाथ, असहाय एव निर्धन थे, परन्तु स्वाभिमान के कारण किसी के सामने हाथ पसारते सकोच करते थे। कुछ ऐसी विधवा या निराश्रित अथवा मध्यमवर्गीय बहने भी समाज मे थी, जिनके यहाँ कोई कमाने वाला नही था। अगर कोई कमाने वाला था तो वह भी अपाहिज, अशक्त या असाध्यरोग-ग्रस्त हो गया। ऐसी बहने भी सकोच के कारण किसी से सहायता मांगने मे सकोच करती थी। किसी से कुछ मांगना जैनसमाज के स्वाभिमानी लोगो को बहुत अखरता था, अखरना स्वाभाविक ही है। ऐसी दशा मे तग हालत होने पर या रुग्ण, अपाहिज या असहाय होने पर वे लोग बडी मुसीबत से जिन्दगी बसर करते थे। अभाव से पीडित हो कर कई लोग तो विधर्मी (ईसाई या मुसलमान) बनने को विवश हो जाते थे। कई लोग चोरी आदि का अनैतिक धन्धा या दुर्व्यसनपोषक व्यवसाय अपना लेते थे। कई बहने अभाव से तग आ कर अपनी सन्तान का भरण-पोषण न कर पाने के कारण आत्महत्या तक कर बैठती थी, कई विधर्मी बनने या व्यभिचार का पेशा करने को विवश हो जाती थी। पेट की ज्वाला को बुझाने के लिए उनके इस प्रकार करने मे कुछ हद तक उनका स्वय का दोष था, तो बहुत हद तक उस समाज का भी दोष मानना चाहिए। जैनसमाज ही नही, प्राय सभी समाजो मे इस प्रकार के अभावग्रस्त या दुर्दशापीडित भाई-बहनो के प्रति उपेक्षा थी। उनके सुख-दु ख के विषय मे सोचने का समाज को प्राय· अवकाश ही नही था। समाज के द्वारा ऐसे लोगो की घोरतर उपेक्षा या उदासीनता का ही परिणाम था कि धीरे-धीरे अधिकाश लोग ऐसे धर्म-सम्प्रदायो की शरण मे चले जाते, जिनकी सस्कृति या धर्मतत्वो से जैनसस्कृति का मेल नही खाता था, अथवा अनैतिक कृत्य करने पर उतारू हो जाते थे।

हमारे चरितनायकजी इस विषय मे बहुत ही दूरदर्शी थे। वे अपने प्रवचनो मे अनेक बार समाज का ध्यान इस विषय की ओर खीचते थे। मगर लोग जब तक सुनते थे, तब तक प्रायः जोश रहता, विचार भी ठीक लगते, लेकिन उसके बाद अपने-अपने काम मे मशगूल हो जाते। किसी को भी किसी की दुर्दशा के बारे मे सोचने की फुरसत नही थी।

वि० स० १९९४ का आपका चातुर्मास विजयनगर-गुलाबपुरा था। चातुर्मास मे आपने समाज के इन विपन्न एव अभागे लोगो की दुरवस्था का अपने प्रवचनो मे प्रभावशाली ढग से चित्रण किया। आपने बताया "आप जिस समाज मे रहते है, अगर वह समाज आचरण से गन्दा हो रहा हो, अगर आपके स्वधर्मी भाई-बहन अभाव से पीडित हो, उन्हे भरपेट खाना न मिलता हो, उनके पास तन ढकने को पूरे कपडे न हो, सर्दी मे ठिठुरते हो, रहने के लिए मकान न हो, अपनी सन्तान का भरण-पोषण न कर सकते हो, उन्हे शिक्षा-दीक्षा और सस्कार भी न दे पाते हो, रोजगार-धन्धा भी उन्हे न मिलता हो, अथवा वे अपाहिज, रुग्ण, अशक्त या असहाय हो गये हो और ऐसी दुर्दशा होने पर भी वे किसी से मागने मे हिचकिचाते हो, अत: विवश हो कर उन्हे विधर्मी या अधर्मी बनना पडता हो तो, क्या यह स्वस्थ समाज का लक्षण है ? ऐसी दशा मे क्या उस समाज का उत्थान या अभ्युदय हो सकेगा ? क्या समाज के अभिशप्त लोगो की आहे समाज के सम्पन्नो को भस्म नही कर डालेगी ? क्या वे विपन्न लोग विधर्मी बन कर जैनसमाज की जड नही काटेंगे ? और ऐसे अभाव पीडितो को बढा कर क्या जैन समाज फला-फूला रह सकता है ? बन्धुओ ! ऐसी दशा मे तुम्हारा क्या कर्त्तव्य हो जाता है ? क्या एक विपन्न और दु खग्रस्त स्वधर्मी भाई या बहन को सहयोग देने का तुम्हारा दायित्व नही है ? केवल बढिया कपडे व गहने पहन कर शान-शौकत मे, विवाह-शादियो मे या कुरूढियो मे हजारो रुपये फूंक देने मे या अपने खाने-पीने पर हजारो रुपये खर्च कर देने मे समाज की शान नही बढेगी। समाज की शान और इज्जत बढानी है तो अभी ऐसी एक सस्था स्थापित करो जो स्वाभिमानपूर्वक उन विपन्न व्यक्तियो के बिना मांगे ही, उन्हें मदद कर सके, उन्हे रोटी-रोजी दे सके, उनके बच्चो को मुफ्त शिक्षा-सस्कार दे सके और साथ ही उनको अपने धर्म से विचलित हो कर अभाव के कारण दूसरी समाज की शरण मे जाने से आश्वासन दे कर रोक सके और अपने धर्म मे ही उन्हे स्थिर कर सके ! अन्यथा, अपने सामने ही अपनी बहन-बेटियो को अनाचार के नरककुण्ड मे गिरते या आत्महत्या करते देखोगे, अथवा पेट की आग बुझाने के लिए ईसाई या मुस्लिम बनते देखोगे। और उन भाइयो को, जो इस समाज से आशा लगाए बैठे थे, किन्तु समाज के सम्पन्न लोगो की घोर उपेक्षा के कारण विधर्मी बनते या अनैतिक कृत्य करते देखोगे !"

आपके इस प्रकार के जोशीले भाषणो से जैनसमाज के लोगो के कान खड़े हो गए। बहुत-से लोगो की आँखो से इस प्रकार का करुणाजनक वर्णन सुनते-सुनते आँसू उमड आए, बहुत-से युवको की भुजाएँ फडकने लगी, रोगटे खडे हो गए। अब क्या था ! सवत्सरीपर्व के दिन ही जैन समाज के स्थानीय तथा आसपास के गाँवो के सब लोगो ने मिल कर आपके मार्ग-दर्शन से प्रान्तीय स्तर का एक सगठन बनाया। जिसका नाम रखा **"श्री श्वेताम्बर स्थानकवासी नानक जैन श्रावक समिति।"** इसका प्रधान कार्यालय विजय-नगर रखा गया। इस सस्था का मुख्य उद्देश्य विपन्न निर्धन, अनाथ, असहाय, अपाहिज या वैधव्य-पीडित स्वधर्मी भाई-बहनो को हर प्रकार से

सहायता देना, उनकी सेवा करना, उनके बालको मे धर्मसस्कार तथा नि शुल्क शिक्षण देना था।

इस प्रकार की सेवापरायण सस्था की स्थापना करवा कर हमारे चरितनायकजी ने स्वय तो महापुण्य उपार्जित किया ही, समाज के सम्पन्न लोगो को भी कर्तव्य और सेवा का पाठ पढाया। जिस समाज मे सेवा के सस्कार बद्धमूल हो जाते हैं, उस समाज मे कोई नगा, भूखा, अशिक्षित या अभाव-पीडित नही मिल सकता। जैनसमाज तो सम्पन्न, सस्कारी और दया-दान के सिद्धान्तो का समर्थक है। वह चाहे तो अपने समाज मे एक भी विपन्न, दीन-हीन या अशिक्षित न रहने दे! काश! ऐसे दूरदर्शी गुरुओं की प्रेरणा मे जैन समाज अपने उन विपन्न भाई-बहनो को सभालता और सेवा का पुण्य कमाता! अस्तु, इस समिति की कार्यकारिणी बन गई। और इसी के अन्तर्गत साधर्मी-सेवा एव शिक्षा की दृष्टि से दो विभाग करके दो उपसंस्थाएँ गठित कर दी गई

(१) श्री नानक जैन सहायक फड

(२) श्री नानक जैन छात्रालय, गुलाबपुरा।

पहली उपसस्था का उद्देश्य पहले स्पष्ट किया जा चुका है। दूसरी उपसस्था का उद्देश्य छात्रो मे धार्मिक सस्कार दे कर उनका चरित्र-निर्माण करना तथा साधनहीन छात्रो के लिए नि.शुल्क अध्ययन-अध्यापन की व्यवस्था करना था।

इस प्रकार दोनो सेवा-संस्थाओ से हमारे चरितनायकजी के उपदेशानुसार कार्य हुआ। श्रावक-समिति तब से ले कर अब तक लगातार चालीस वर्षो से पू० प्रवर्तक-श्रीजी महाराज के उद्देश्यो के अनुसार सेवा करती आ रही है। अनेक धनी-मानी उदार सज्जनो ने स्वेच्छा से इस स्वधर्मी-सहायता-यज्ञ मे अपनी आहुतियाँ दी हैं, और अभी तक देते आ रहे हैं। सचमुच, इस सस्था ने सारे जैनसमाज के सामने स्वधर्मी-सेवा का एक उज्ज्वल आदर्श प्रस्तुत किया है। जो लोग जैनसमाज को शोषकसमाज कहते हैं, जो जो लोग जैनसमाज को हिकारतभरी नजरो से देखते हैं, उनकी चुनौती का यह स्पष्ट सक्रिय उत्तर है!

परन्तु इसका मुख्य श्रेय हमारे दूरद्रष्टा युगप्रवर्तक प्रवर्तक श्रीपन्नालालजी महाराज को है, जिन्होने बार-बार प्रेरणा दे कर जैनसमाज को कुम्भकर्णी निद्रा से जगाया और स्वस्थ, धर्ममय एव अहिसक समाज बनने के लिए प्रेरित किया। समाज को इस प्रकार के सगठनो से आबद्ध करने से अनेक लोगो को सेवाकार्य के सस्कार मिले, जिन-जिन लोगो को सहायता दी गई, उन लोगो मे जैनधर्म एव जैनसमाज के गौरव के प्रति अहोभाव एव श्रद्धाभाव बढा। वे पूर्वोक्त अनिष्टो से बचे हैं।

और छात्रालय की स्थापना से भी नई पीढी को धर्मसस्कार से भावित करने तथा समाज मे योग्य सेवाभावी सुशिक्षित व्यक्तियो के निर्माण मे अकथनीय योगदान मिला है।

यद्यपि आज हमारे बीच समाजरूपी उद्यान के माली स्वर्गीय पू० प्रवर्तकश्री पन्नालालजी महाराज नही हैं, किन्तु उनके द्वारा लगाए हुए ये सस्थारूपी पौधे अमर हैं। उनकी स्मृति उनकी इन कृतियो से युगो-युगो तक अमर रहेगी। अब तक हजारो छात्रो ने इस छात्रालय से विद्या एव धर्मसस्कारो का अलभ्य लाभ अर्जित किया है। क्या अपने ही हाथ से सीची हुई उस सस्थारूपी बेल के उन छात्ररूपी फूलो को विकसित देख कर उस समाज-माली की आत्मा प्रसन्न नही हो उठेगी ? सचमुच, छात्रालय की स्थापना नई पीढी मे मानवता की स्थापना है, उनके अन्तश्चक्षुओ मे विद्या की सलाई से विवेक, विनय और धर्मसस्कार का अजन आजना है।

केकड़ी मे श्री जैन-विद्यालय की स्थापना

केकडी हमारे चरितनायकजी का भावुक धर्मानुरागी क्षेत्र रहा है। विक्रम सवत् १९९८ की अक्षयतृतीया पर आप सरवाड पधारे और वहाँ से केकडी। यहाँ आपने समाज मे प्रचलित कुप्रथाओ के उन्मूलन के लिए शिक्षा के सम्बन्ध मे मार्मिक उपदेश दिये। आपने कहा कि "शिक्षा मनुष्य के हृदय और बुद्धि की आँखो को खोल देती है। शिक्षा से वह अपने हिताहित का भान भलीभाँति कर सकता है। जीवन मे आने वाली समस्याओ, उतार-चढावो या विपत्तियो का निराकरण करने मे अशिक्षित व्यक्ति प्राय घबरा जाता है, जबकि सुशिक्षित व्यक्ति आसानी से सफल हो सकता है। शिक्षा जीवन को सुसस्कृत बनाती है। रत्नो और आभूषणो से मनुष्य की शोभा नही, उन्हे तो चोर भी चुरा सकता है, जबकि विद्या मानवजीवन की शोभा है, उसे कोई भी चुरा नही सकता। शिक्षा के साथ ही धर्मसस्कार मिलें तो सोने मे सुहागे का काम हो जाता है। इतना बडा सघ होते हुए भी आपके यहाँ धार्मिक शिक्षा का अभाव है। आश्चर्य होता है कि आप बालको को धन कमाने की मशीन बनाने मे तो इतनी दिलचस्पी रखते हैं, किन्तु उन्हे धर्मसस्कारी सुशिक्षित बनाने मे कोई रुचि नही रखते। मगर याद रखिए, अगर आपका पुत्र धर्मसस्कारी नही होगा तो आपकी की-कराई सारी कमाई को चौपट कर सकता है, व्यर्थ के कामो मे, कुरूढियो मे या दुर्व्यसनो मे फूक सकता है। इसलिए अपने बालको को सुशिक्षित और सस्कारी बनाने की ओर ध्यान दो, ताकि सुशिक्षित व धर्म-सस्कारी होने पर वे कुरूढियो या गलत रीति-रिवाजो मे, अन्धविश्वासो मे न फस सकें। आर्थिक दृष्टि से भी कुरूढियो मे सुशिक्षित व्यक्ति के न फँसने पर बहुत बडा लाभ है। इसलिए बालको की शिक्षा पर किया हुआ खर्च सार्थक होगा।"

आपके ऐसे जोशीले प्रवचनो का स्थानीय जैनसमाज पर जादू-सा प्रभाव पडा और स्थानीय सघ ने शीघ्र ही इस विषय मे एक मीटिंग बुलाई। काफी चर्चा-विचारणा के बाद 'जैन विद्यालय' खोलने का प्रस्ताव पारित किया। और कुछ ही दिनो बाद आपकी पूर्वोक्त प्रेरणा से केकडी मे **'जैन विद्यालय'** की विधिवत् स्थापना हो गई।

वास्तव मे केकडी मे जैन विद्यालय की स्थापना से आस-पास के इलाके के जैन-समाज को बहुत बड़ा लाभ हुआ। इस विद्यालय की स्थापना से हजारो विद्यार्थियो ने

लाभ उठाया। ज्ञानदान की बहुत सुन्दर प्याऊ खोल कर जैन-समाज ने बहुत बड़ा पुण्योपार्जन किया। परन्तु इसका अधिकांश श्रेय तो हमारे चरितनायकश्रीजी महाराज को है, जिन्होने इस प्रकार की अनुपम प्रेरणा दे कर समाज को चक्षुदान दिये।

जैन-विद्यालय को गांधी-विद्यालय का सार्वजनिक रूप

कोई भी सगठन, चाहे वह राजनैतिक हो, चाहे अन्य प्रकार का, नेतृत्व की कर्म-स्फूर्ति द्वारा ही प्राणवान और फलवान रहता है। नेतृत्व के अभाव मे बडे-बड़े संगठन बड़े-से-बड़े फल की तरह भी सूख जाते हैं। परन्तु नेतृत्व व्यक्ति देता है समूह नही। यही कारण था कि गुलाबपुरा मे जो जैन-विद्यालय चल रहा था, उसका नेतृत्व हमारे चरितनायकजी की कर्म-स्फूर्ति और जीवन्त मार्गदर्शन द्वारा प्राणवान और फलवान रहता था। वह बहुत ही सुन्दर ढग से व्यवस्थित रूप से वह चल रहा था। अतः विद्यालय की कीर्ति और ख्याति सुन कर राजस्थान सरकार ने उसे सार्वजनिक रूप देने का प्रयत्न किया। उसका कारण यह था कि इस विद्यालय मे केवल जैनधर्म का ही शिक्षण दिया जाता था, लेकिन सरकार चाहती थी सभी धर्मो की अच्छी बातो का शिक्षण विद्यार्थियो को मिले, विद्यार्थियो के नैतिक-जीवन का उत्थान हो। यही उद्देश्य जैन-विद्यालय का था।

विक्रम सवत् २००६ की बात है। आपका चातुर्मास भीलवाड़ा था। अत हमारे चरितनायकजी की सेवा मे राजस्थान सरकार के शिक्षाविभाग के प्रतिनिधि अधिकारियो द्वारा इसे 'गाधी-विद्यालय' का रूप देने के लिए यह सुझाव आया कि "भारत स्वतत्र हो गया है। सरकार ऐसी प्राइवेट शिक्षा-सस्थाओ को सार्वजनिक और उच्चतम शिक्षा के केन्द्र बनाना चाहती है। सार्वजनिक बन जाने पर इसका लाभ सभी धर्म-कौम के छात्रो को मिलेगा। जब सभी धर्म-सम्प्रदाय के छात्र इसमे पढेगे तो उन्हे एक ही धर्म-सम्प्रदाय का शिक्षण दिया जाना व्यावहारिक नही होगा। परन्तु उनके जीवन मे नैतिकता के सस्कार तो सरकार कूट-कूट कर भरना चाहती है। अत उन्हे सभी धर्मो की अच्छी बाते सिखाने और नैतिक-धार्मिक सस्कार देने का प्रयत्न सरकार करेगी।"

इस पर महाप्राज्ञ श्रीपन्नालालजी महाराज ने बहुत दीर्घदृष्टि से विचार किया और सस्था की कार्यकारिणी के सदस्यो की एक मीटिंग बुलवा कर विचार-विमर्श किया कि ऐसी स्थिति मे कौन-सा कदम उठाया जाय? एक धर्म-सम्प्रदाय का शिक्षण देने पर सरकार जो भी ग्रांट या मदद इसे देती है, वह नही दे सकेगी, और हमारा उद्देश्य छात्रो मे नैतिक धार्मिक सस्कारो का बीजारोपण करना था, उसे सरकार प्रकारान्तर से करना चाहती है। तो क्यो नही इस विद्यालय को पूर्णरूपेण सरकार के हाथो मे ही सुपुर्द कर दिया जाय? इसमे एक शर्त रखी जा सकती है, कि हमारे कुछ लोग इसकी कमेटी मे रहे, ताकि इसमे धाधली, अव्यवस्था और अनैतिकता पैदा न हो।"

सर्वानुमति से कमेटी ने जैनविद्यालय गुलाबपुरा को गांधी विद्यालय के सार्वजनिक रूप मे जनता को सौपने का निर्णय लिया तथा उसकी अर्थ एव सचालन की सारी व्यवस्था, जो अब तक जैन-समाज के हाथो मे थी, नागरिक जनता के हाथो मे सौप दी।

तब से यानी वि० सवत् २००६ से अब तक यह विद्यालय और इसका सचालन नागरिक जनता के हाथो मे है। यह विद्यालय राजस्थान मे एक ख्याति प्राप्त आदर्श सार्वजनिक विद्यालय बना हुआ है। इसका सचालन भी सुचारुरूप से हो रहा है।

श्री श्वेताम्बर स्थानकवासी जैन स्वाध्यायी सघ की स्थापना

हमारे चरितनायक क्रान्तदर्शी थे। वे समाज की नब्ज और गतिविधि को पहचानने मे बड़े कुशल थे। उन्होने सोचा कि जैनसमाज मे बालको, व्यापारियो, रुग्णो, असहायो आदि के लिए तो व्यवस्थितरूप से सस्थाओ की स्थापना हो चुकी, किन्तु समाज के प्रौढ और धर्मानुयायी लोगो के जीवन-निर्माण का कार्य अभी बाकी है। उनके जीवन मे शास्त्रो और तीर्थंकरो के वचनो द्वारा ही धर्मसस्कार बद्धमूल किये जा सकते हैं। शास्त्रो पर प्राय सन्तो का ही एकाधिकार रहा। सन्त लोग किसी गाँव या कस्बे मे न पहुँचे तो वहाँ के लोग शास्त्रश्रवण से वचित ही रहते। फलत' पड़ौसी सम्प्रदायो के ही सस्कारो और उन्ही की रीति-पद्धति का आश्रय ले कर जैन भाई-बहन सतोष मान लेते थे। उनके क्षेत्र मे वर्षो तक सन्त न पहुँचते तो वे जैनधर्म के सस्कारो को भूलते जाते और उनकी सन्तान तो जैनधर्म के सस्कारो से बिलकुल अनभिज्ञ और अपरिचित हो जाती। इस अभाव की पूर्ति कैसे की जाय ? क्या गृहस्थवर्ग मे से ऐसे त्यागपरायण उपदेशक तैयार नही किये जा सकते, जो पर्युषणपर्व आदि अवसरो पर सन्तो के चातुर्मासो से वचित क्षेत्रो मे, उनकी माग पर वहाँ पहुँच कर शास्त्रवाचन करें। श्रद्धालु भाई-बहनो को प्राचीन उदात्त चरित्र या ढाल आदि सुनाए, उन्हे यथावश्यक त्यागप्रत्याख्यान कराए, पैसे का लोभ स्वय न रखें, जो भी सघ या व्यक्ति ऐसे उपदेशक को पैसा देना चाहे, वह सस्था को भेंट के रूप मे दे। इस सस्था के द्वारा समय-समय पर ऐसे उपदेशको को ट्रेनिग दी जाय, उन्हे त्याग-वैराग्य के मार्ग मे प्रशिक्षित किया जाय, उन्हे धर्ममय जीवन की कला सिखाई जाय, ताकि वे स्वय घरबार की चिन्ता से मुक्त हो और अपना जीवन त्याग, नियम, व्रत, धर्माचरण, तप आदि के द्वारा सात्विकरूप से बिता सकें। इसके अतिरिक्त ग्रीष्मावकाश या अन्य लम्बी छुट्टियो के समय वे धार्मिक प्रशिक्षण-शिविर भी लगा सके, जिसमे प्रशिक्षणार्थियो को धार्मिक शिक्षण के साथ-साथ धर्म-सस्कारो के लिए त्याग-तप, सामायिक आदि धर्मसाधनाएँ भी करा सके।

जब तक किसी भी समाज के पास लोक-सम्पर्क करके धर्मसस्कारयुक्त जीवन-कला सिखाने वाला, धर्म के रहस्यो को समझा सकने वाला, गृहस्थ और त्यागी वर्ग के बीच का त्यागपरायण उपदेशकवर्ग नही होगा, तब तक अधिकाश जनसमाज धर्मसस्कारो से वचित रहेगा। क्योकि त्यागी-सतवर्ग सब जगह पहुँच नही पाता। पादविहारी

होने के कारण उसकी भी एक सीमा है, पहुँचने की। बहुत विचार-विमर्थन करने के पश्चात् हमारे चरितनायकजी ने दूर-दूर के क्षेत्रो की अत्यधिक माग पर श्रीरतनलालजी चौधरी (हुरडा) और श्री सोहनलालजी छाजेड (देवलिया कला) [वर्तमान मे आपके शिष्य सत] को कुछ प्रशिक्षण दे कर उपदेशक के रूप मे तैयार किया। और विक्रम संवत् १९९४ के पर्युषणपर्व मे धर्माराधना कराने के लिए मसूदाक्षेत्र मे भेजा। इन दोनो महानुभावो ने वहाँ की धर्मश्रद्धालु जनता को शास्त्रवाचन के द्वारा धर्मश्रवण कराया, उनमे धर्म के प्रति श्रद्धा, उत्साह एव सस्कार वढाए। अनेक भाई-वहनो ने विविध प्रकार के त्याग-तप, व्रत-नियम वगैरह ग्रहण किये। इस आशातीत सफलता को देख कर हमारे चरितनायकजी का उत्साह वढा। अत उन्होने इन दो उपदेशको के अतिरिक्त अन्य अनेक उपदेशको को प्रशिक्षण दे कर तैयार किया। और प्रतिवर्ष विभिन्न क्षेत्रो की माग पर अनेक दूर-सुदूर क्षेत्रो मे पर्युषणपर्व के अवसर पर धर्माराधना एव त्यागतप-साधना कराने के लिए कई उपदेशको को भेजा। इसका प्रतिफल वहुत ही सुन्दर आया। सव जगह से उत्साहप्रद एव आशाजनक समाचार मिले। अनेक सघो ने अपने यहाँ पर्युषणपर्व की सम्यक् आराधना कराने के लिए प्रतिवर्ष माग जारी रखी।

इस प्रकार के अनुकूल प्रोत्साहन एवं अनुकूल सहयोग के कारण श्रीचरितनायकजी ने इस शुभ प्रवृत्ति को स्थायी रूप देने के लिए विक्रम सवत् २००७ के विजयनगर-गुलाबपुरा चातुर्मास-काल मे आसोज सुदी १५ (शरदपूर्णिमा) के दिन इस सम्बन्ध मे विचार-विमर्श करने एव एक सस्था का गठन करने हेतु प्रमुख श्रावको का एक छोटा-सा सम्मेलन वुलाया। आपने इस सम्मेलन से पहले दिन एक सार्वजनिक प्रवचन मे स्वाध्याय और उसके महत्त्व के विषय मे फरमाया।

स्वाध्याय का महत्त्व

'भारतीय सस्कृति मे स्वाध्याय का स्थान वहुत ही ऊँचा एव पवित्र रहा है। हमारे पूर्वजो ने जो भी ज्ञानराशि सचित की थी, वह सव स्वाध्याय के द्वारा ही हो सकी थी। शरीर के लिए भोजन की तरह स्वाध्याय भी जीवन का, खासतौर से आत्मा का आवश्यक भोजन है। स्वाध्याय के द्वारा ही मनुष्य हिताहित, कर्तव्याकर्तव्य, पुण्य-पाप धर्माधर्म, एवं कल्याण-अकल्याण का ज्ञान और विवेक प्राप्त कर सकता है, जीवन की अटपटी और उलझी हुई गुत्थियाँ स्वाध्यायशील व्यक्ति मिनटो मे सुलझा सकता है, और शीघ्र ही अपने लिए उचित पथ का निर्णय एव निर्वाचन कर सकता है। अपनी जीवन-यात्रा मे चिन्ता, विषाद, शोक एव मायूसी के वातावरण को स्वाध्यायी व्यक्ति समता, प्रसन्नता और कर्तव्य-पालन के जरिये वात की वात मे वदल सकता है, अपने जीवन को शान्त, सुखी एवं मस्त वना सकता है।'

'शास्त्रकारों ने स्वाध्याय को नन्दनवन की उपमा दी है। जैसे नन्दनवन मे प्रत्येक दिशा मे भव्य मनोहारी दृश्य देख कर मन आनन्दित हो जाता है। मनुष्य अपने दु.ख, क्लेश और चिन्ताए व झझटें भूल जाता है, वैसे ही स्वाध्यायरूपी नन्दनवन मे एक-से-

स्व० श्रीमान् सेठ पूर्पालालजी मानसिंहका, भीलवाडा



स्व० श्रीमान् सेठ शोभागसिंह जी सचेती, गुलाबपुरा



स्व० बाबू श्री सुगनचन्द जी नाहर, अजमेर



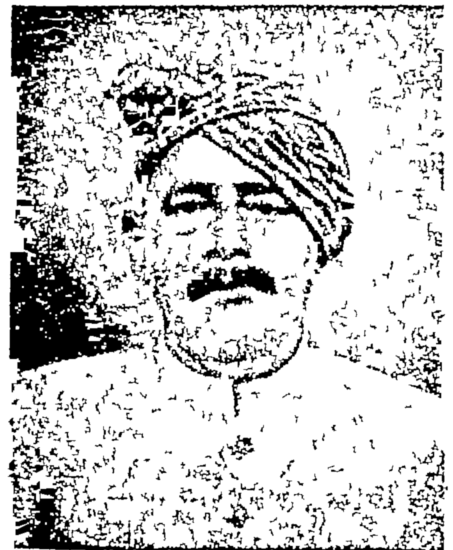
श्री नानक जैन श्रावक समिति के कर्णधार



स्व० श्रीमान् सेठ मोहनलालजी लूणावत, विजयनगर



स्व० श्रीमान् सेठ बिरदीचन्दजी चौरडिया, विजयनगर



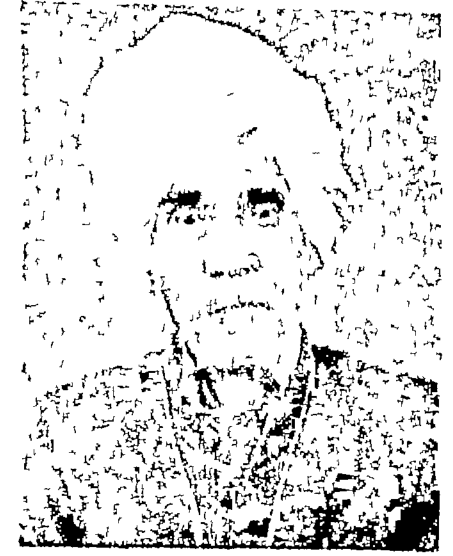
स्व०श्रीमान् सेठ समीरमलजी भडकतिया,इन्दौर



... ब्यावर



श्रीमान् सुगनचन्द जी डोसी, ब्यावर



पूज्य गुरुदेव श्री के सदुपदेशों से विशेष प्रभावित स्वाध्यायी

श्रीमान् गुमानमल जी चपलोत, हुरडा



श्रीमान् धूलचन्द जी खटोड, थावला



श्रीमान् सोहनलाल जी सोजतिया, थ

एक बढकर सुन्दर शिक्षाप्रद स्वाध्याय पढने-सुनने को मिलते हैं, स्वाध्याय के द्वारा व्यक्ति अपने परोक्ष पूर्वजो के विचारो को पढ-सुन कर या उनके जीवन को पढ सुन कर तमाम क्लेशो से मुक्त हो जाता है, चित्त मे उत्साह एव नवजीवन का संचार होने लगता है। हितशिक्षाएँ पढ-सुन कर मन आनन्द से ओत-प्रोत हो जाता है। जीवन मे अभूतपूर्व मार्ग-दर्शन मिल जाता है। स्वाध्याय से ऐसे मालूम होने लगता है, मानो हम अपने पूर्वज महापुरुषो से ही बात कर रहे हो।

परन्तु हमारे समाज मे स्वाध्याय की प्रवृत्ति और रुचि बहुत ही कम है। हमारे समाज के लोग या तो सतो के मुह से बहुधा शास्त्र या ढाल-चौपाई आदि सुनते है या फिर सामायिक करते समय कुछ जाप, अनुपूर्वी, माला आदि फिरा लेते है। इससे तत्त्व-ज्ञान स्थायी और सुदृढ नही होता। जब तक व्यक्ति स्वय स्वाध्याय के लिए तैयार नही होता, तब तक उसके मन-मस्तिष्क मे नई स्फुरणा नही होती। स्वाध्याय हमारे अन्धकार-पूर्ण जीवन-पथ के लिए दीपक का काम करता है। इससे हमे मार्ग के अच्छे-बुरेपन का पता चल जाता है और हम बेखटके आगे बढते जाते हैं।

स्वाध्याय करते समय कभी महापुरुषो के जीवन की दिव्यझाकी हमारी आँखो के सामने आ जाती है। कभी स्वर्ग-नरक के दृश्य, धर्म तथा अधर्म का परिणाम दिखलाई देने लगता है। कभी तर्क-वितर्क की हवाई उडान बुद्धि को बहुत ऊँचे अनन्त विचाराकाश मे उडा ले जाती है और कभी-कभी श्रद्धा, भक्ति एव सदाचार के ज्योतिर्मय आदर्श हृदय को गद्गद कर देते हैं। शास्त्रवाचन हमारे सामने **'यत्पिण्डे तद् ब्रह्माण्डे'** का आदर्श उपस्थित कर देता है, स्वाध्याय से हम अपने आपका बारीकी से अध्ययन कर सकते हैं। हम परमशुद्ध आत्मा के गुणो, शक्तियो, आदि को शास्त्रो के पठन-पाठन से जानकर अपने आपको तदनुरूप बना सकते हैं। जब कभी आपका हृदय कुण्ठित हो रहा हो, मुरझाया हुआ हो, चारो ओर अन्धकार ही अन्धकार छाया नजर आता हो, कदम-कदम पर विघ्न-बाधाओ के जाल बिछे हुए हो, तो आप किसी उच्चकोटि के पवित्र आध्यात्मिक ग्रन्थ का स्वाध्याय कीजिए। आपका हृदय ज्योतिर्मय हो जायगा। आपमे एक अपूर्व अन्तःस्फूर्ति, प्रेरणा और विवेकज्योति पैदा होगी, जिसके प्रकाश मे आपको अपने-आप ही सुपथ और सदुपाय प्रतीत हो जायगा।

भगवान् महावीर स्वाध्याय के प्रबल पक्षधर रहे हैं। बारह प्रकार की तप-साधना मे उन्होने स्वाध्याय को बहुत ही ऊँचा अन्तरग तप माना है। अपने अन्तिम प्रवचनस्वरूप वर्णन किये हुए, उत्तराध्ययन सूत्र मे कहते हैं 'स्वाध्याय करने से व्यक्ति के ज्ञानावरणीय कर्मो का क्षय होता है। ज्ञान का अलौकिक प्रकाश जगमगा उठता है।' आप जानते हैं जीवन मे जितने भी दुःख हैं, चाहे वे शारीरिक हो, मानसिक हो, आध्यात्मिक हो, उनमे से अधिकाश अज्ञानजन्य ही हैं। जितने भी पाप, जितनी बुराइयाँ या जितने भी दम्भ, मोह, काम, क्रोध आदि विकार हैं, जितनी भी कुरूढियाँ, कुरीतियाँ समाज मे पनप रही हैं, जितने भी वैषम्य, मनोमालिन्य एव भयादि अनिष्ट, सिर उठा

रहे हैं, इन सवके मूल मे अज्ञान छुपा वैठा है। अज्ञान का नाश हो जाय तो इन सारे खुराफातो का खात्मा हो सकता है। मनुष्य मे जहाँ विवेक, विज्ञान और विचार का प्रकाश आया कि सारे ससार का ऐश्वर्य उसके चरण चूमने लगता है। अज्ञानी साधक करोडो वर्षो तक कठोर तप साधना के द्वारा जितने कर्म नष्ट करता है, ज्ञानी पुरुष मन-वचन-काया को सयम से सुरक्षित रखते हुए उतने ही कर्म एक श्वासभर समय मे क्षय कर डालता है।[1]

भगवद्गीता में स्वाध्याय को वाणी की तपस्या माना गया है।[2] इसके द्वारा हृदय का मल धुलकर साफ हो जाता है। स्वाध्याय एक अन्त प्रेरणा है, जिसके प्रभाव से लघुकर्मी व्यक्ति सहसा अपने कर्ममलो को धोकर मलिन आत्मा से परमपवित्र परमात्मा वन जाता है। अन्तर का ज्ञानदीप स्वाध्याय के विना कदापि प्रज्वलित नही हो सकता।

योगदर्शनकार महर्षि पतजलि स्वाध्याय को योगसाधना के आठ अंगो मे अनिवार्य उपाय के रूप मे वताते हैं और स्वाध्याय का लाभ इष्ट देवता को अपनी प्रेरणा से प्रेरित करना वताते हैं।[3]

इससे भी आगे वढकर योगदर्शन के भाष्यकार महर्षि व्यास तो स्वाध्याय के आदर्श पुजारी हैं। आप परमात्म-ज्योति के दर्शन पाने का एकमात्र सावन स्वाध्याय को ही वतलाते हैं [4]

स्वाध्यायाद् योगमासीत योगात्स्वाध्यायमामनेत् ।
स्वाध्याययोगसम्पत्त्या परमात्मा प्रकाशते ॥

स्वाध्याय से योग और योग से स्वाध्याय की साधना होती है। जो स्वाध्याय-मूलक योग का भलीभाँति अभ्यास कर लेता है, उसके अन्तर मे परमात्म-ज्योति प्रगट हो जाती है। जैसे लकडी मे रही हुई अग्नि घर्पण के विना प्रगट नही हो सकती, वैसे ही ज्ञान-दीपक, जो हमारे अन्तर मे विद्यमान है, वह स्वाध्याय के अभ्यास के विना प्रकाशित प्रदीप्त नही होता।

परन्तु स्वाध्याय करते समय जो शास्त्र आदि मे आने वाली वातो का वास्तविक अर्थ समझे विना, कोरी तोतारटन करते हैं, वे स्वाध्याय के उद्देश्य को पूर्ण नही करते। इसीलिए ठाणागसूत्र के टीकाकार आचार्य अभयदेवसूरि स्वाध्याय का अर्थ करते हैं सुष्ठु=भलीभांति आ=मर्यादा के साथ अध्ययन करना स्वाध्याय है। वैदिक विद्वान भी स्वाध्याय का अर्थ करते हैं

'स्वस्य स्वस्मिन् अध्ययन, स्वस्यात्मनोऽध्ययनं वा स्वाध्याय'।'

१ ज अन्नाणी, कम्म खवेइ वहुयाहि वासकोडीहि।
त नाणी तिहि गुत्तो खवेइ उसासमित्तेण ॥ सथारपइन्ना
२ स्वाध्यायाऽभ्यसन चैव वाङ्मय तप उच्यते। भगवद्गीता
३ स्वाध्यायादिष्टदेवतासम्प्रयोग योगदर्शन
४ योगदर्शन १/२८ व्यासभाष्य

अर्थात् अपनी आत्मा का अपनी अन्तरात्मा मे डुबकी लगा कर अध्ययन करना अथवा अपने आपका भलीभाँति अध्ययन करना, अर्थात् मैं कौन हूँ, मेरा वास्तविक स्वरूप कैसा है ? इत्यादि चिन्तन करना स्वाध्याय है।

आजकल स्वाध्याय के नाम पर अर्थहीन परम्परा चल रही है। बहुत-से लोग शास्त्रो का अर्थ समझे बिना ही धडाधड पढते रहते हैं और ग्रन्थ श्रवण करते रहते हैं। इनमे कुछ जिज्ञासु भी होते हैं, जो शास्त्रो का वास्तविक अर्थ जानना चाहते हैं, कई उलझनो को दूर करना चाहते हैं। परन्तु उन्हे वैसे शास्त्रपाठी या शास्त्रज्ञ सन्तो या साधु-साध्वियो का योग नही मिलता। ऐसे बहुत-से क्षेत्र पडे हैं, जहाँ वर्षों तक किसी साधु-साध्वी के दर्शन नही हो पाते। ऐसी दशा मे अच्छी तरह से शास्त्र या सद्ग्रन्थ स्वाध्याय की आवश्यकता की पूर्ति कैसे हो ? यह प्रश्न वर्षो से हमारे समाज के सामने अनिर्णीत पडा हैं। हमारे साधु-वर्ग ने बीच के युग मे शास्त्रवाचन और शास्त्र सुनाने का सर्वाधिकार अपने तक ही सुरक्षित कर दिया। इसका नतीजा यह हुआ कि पचाङ्ग-सहित भलीभाँति शास्त्र-स्वाध्याय दुर्लभ हो गया। बहुत-से क्षेत्र मे तो जिनवाणी-श्रवण का ही लोप हो गया। क्योकि हमारे साधुसाध्वी पादविहारी होने के कारण सब जगह नही पहुँच पाते। फिर वृद्धावस्था, रुग्णता, अशक्तता आदि के कारण कई क्षेत्रो मे साधु-साध्वियो के चातुर्मास ही होने कठिन हो गए। इसका नतीजा यह हुआ कि कोई क्षेत्रो मे जैनत्व के परम्परागत सस्कार घिस गए, लुप्त-से हो गए, वहाँ के जैन लोग, खासकर जैनो के बालक जैनधर्म के सस्कारो और आचरणो से पराड्मुख हो गए। तब फिर शास्त्रो का शुद्ध उच्चारणपूर्वक व्याख्या एव अर्थ सहित वाचन, पढे हुए या सुने हुए शास्त्रोक्त वचन पर जहाँ शका हो, वहाँ शास्त्रज्ञ या अनुभवी विद्वान् से पूछना, बार-बार स्वाध्याय एव चिन्तन-मनन करना, पठित शास्त्र-पाठो पर तत्त्वज्ञान की दृष्टि से चिन्तन करना एवं अभ्यस्त शास्त्र पर व्याख्यान करना, इस प्रकार पाचो अङ्गो सहित स्वाध्याय कैसे हो ? ऐसे ही स्वाध्याय से यथेष्ट लाभ हो सकता है या स्वाध्याय का उद्देश्य पूर्ण हो सकता है। और पाचो अगो सहित स्वाध्याय का लाभ किसी क्षेत्र को तभी मिल सकता है, जब उस क्षेत्र मे वैसे शास्त्रज्ञ विद्यमान हो। इतना ही नही शास्त्र-ज्ञान के साथ उनका जीवन त्याग-व्रत-नियम से युक्त हो। जैन साधुसाध्वी तो इस दृष्टि से उपयुक्त हो सकते है, मगर वे सभी क्षेत्रो मे अपनी मर्यादाओ के कारण पहुँच नही सकते।

अत मैंने कुछ वर्षों से ऐसे कुछ उपदेशक तैयार किये हैं, जो सतो और सामान्य-गृहस्थो के बीच की कडी बन सकें। जहा साधुसाध्वी न पहुँच सकें, वहाँ ये लोग पहुँच सकें और जैन भाई-बहनो को सयम, ज्ञान-दर्शन-चारित्र, व्रत-नियम आदि धर्म के अगो के प्रति जागरूक रख सके, शास्त्रो का बोध करा कर उन्हे स्वाध्याय के इष्ट लाभ से लाभान्वित कर सकें, नई पीढी मे धर्म के प्रति रुचि जगा सके, उन्हे धार्मिक सस्कार दे सकें। परन्तु उक्त उपदेशक इन सब स्वाध्याय से सम्बन्धित कार्यो मे तभी सफल हो सकते हैं और जनता को लाभान्वित कर सकते हैं, जबकि वे स्वय अपने जीवन मे यथो-

चित त्याग, सयम, नियम एव वैराग्य से युक्त हो, गृहस्थी के प्रपच से बहुत हद तक दूर रहते हो, सतोषी, ईमानदार एव सघ के प्रति वफादार धर्मपरायण व्यक्ति हो, गृहत्यागी तो नही, परन्तु गृह से निर्लिप्त हो। अपनी अवैतनिक सेवाएँ देने के लिए तैयार हो।

"भाइयो ! ऐसे कुछ लोगो की माग कई वर्षो से हो रही थी। अत सवत् १९९४ से मैंने इस सम्बन्ध मे प्रेरणा दे कर कुछ स्वाध्यायी साधक तैयार किए, उन्हे शास्त्रीय ज्ञान से प्रशिक्षित करके विविध क्षेत्रो मे भेजे, जिसका परिणाम बहुत ही सुन्दर आया है। शास्त्रवाचन के साधुसाध्वियो के एकाधिकार की प्रथा को समाप्त करके इस प्रकार के स्वाध्यायी साधको को तैयार करने से मुख्यतया दो लाभ होगे

(१) हमे भविष्य मे समाज सेवा एव समाज के विविध रचनात्मक कार्यों के लिए अवैतनिक सेवाभावी सेवक मिलेंगे।

(२) जो-जो क्षेत्र साधु-साध्वियो के चातुर्मासो या पदार्पण से वचित हैं, वहां के जैन भाई-बहनो एवं बच्चो मे धार्मिक संस्कार जागृत रहेगे।

अत मेरा विचार है कि अब इस प्रवृत्ति मे जब कई वर्षो से आप सब श्रद्धालु-भक्तो का सहयोग मिल रहा है, तथा कई वर्षो से हमने भी कई व्यक्तियों को उपदेशक के रूप मे प्रशिक्षित कर लिए हैं, तब इसे व्यवस्थितरूप से सस्था-संगठन का रूप दे देना चाहिए। आप लोगो का इस विषय मे एकमत हो तो आज ही इस सस्था का श्रीगणेश कर देना चाहिए।"

उपस्थित लोगो ने एकस्वर से आपकी इस सुन्दर विचारधारा की प्रशसा की और सबने इसे सस्था का रूप देने मे अपनी सहमति प्रगट की।

आपके इस प्रभावशाली उपदेश का सभी पर जादू-सा असर हुआ। सभी लोगो ने इस विचार का स्वागत किया, और इस विचारधारा को क्रियान्वित करने हेतु आसोज सुदी १५ अर्थात् शरदपूर्णिमा को **"श्री श्वेताम्बर स्थानकवासी जैन स्वाध्यायी संघ"** की विधिवत् स्थापना कर दी।

उस दिन से स्वाध्यायी सघ की निरन्तर प्रगति होती रही। चरितनायकजी द्वारा लगाया हुआ यह छोटा-सा पौधा आज विशाल वृक्ष का रूप ले चुका है। प्रतिवर्ष स्वाध्यायी सघ के सदस्य कुछ-न-कुछ बढते ही रहे है। सदस्यों के सामने इसका विशाल उद्देश्य स्पष्ट कर दिया जाता था। समय-समय पर पूज्य प्रवर्तकश्रीजी के सान्निध्य मे स्वाध्यायी सघ के सदस्यो का शिविर भी लगाया जाता था, जिसमे उन्हे सैद्धान्तिक ज्ञान, शास्त्रीय व्याख्या एव सर्वाङ्गीण त्याग-वैराग्ययुक्त जीवन-निर्माण का प्रशिक्षण दिया जाता था। इसी के फलस्वरूप स्वाध्यायी सघ के आजीवन, कर्मठ और साधारण तीनो ही प्रकार के सदस्य प्रतिवर्ष बनते रहे। जैसा कि पिछली प्रगति का विवरण है, आज तक अनुमानत तीनो प्रकार के सदस्य ३०० के लगभग होंगे, जो सघ

की प्रगति और उसके शुभ उद्देश्यो के प्रति श्रद्धा व निष्ठा का प्रतीक है। इतना ही नही, कुछ साहसी महिलाओ ने पर्दे की अभेद्यप्रथा को भी तोड कर पर्युषणपर्वाराधना कराने हेतु बाहर जाकर अपनी सेवाएँ प्रदान की हैं। स्वाध्यायी सघ की मुख्य प्रवृत्ति प्रथमत: पर्वाराधना की रही। प्रतिवर्ष सघ के स्वाध्यायी सदस्यो ने निकटवर्ती एव दूरवर्ती क्षेत्रो मे जा कर अपनी सेवाएँ दी हैं।

वि० सवत् २००७ मे सघ की स्थापना के बाद से ले कर अब तक जितने क्षेत्रो मे धर्मप्रचारार्थ सदस्य गए हैं, उनकी तालिका इस प्रकार है

वि० संवत्	क्षेत्रो मे	वि० सवत्	क्षेत्रो मे
२००८	१४	२०२६	५५
२०१२	१६	२०२७	६२
२०१४	२२	२०२८	६४
२०१८	२७	२०२९	७४
२०२२	४०	२०३०	
२०२३	४३	२०३१	८६
२०२४	४७	२०३२	८६
२०२५	४८		

केवल राजस्थान मे ही नही, वरन् मध्य-प्रदेश, उत्तर-प्रदेश, बगाल, आन्ध्र-प्रदेश, महाराष्ट्र, केरल, तामिलनाडु, कर्णाटक आदि प्रान्तो मे भी स्वाध्यायी सघ के सदस्यो ने जा कर अलख जगाई है और वहाँ के बच्चो, बूढो, युवको और महिलाओ मे धर्मजागृति की है, उनमे सौहार्द स्थापित किया है, जैनसघ की एकता की जडें मजबूत की हैं।

सघ के सदस्य जहाँ-जहाँ गए हैं, वहाँ-वहाँ उनके त्याग, तप एव ज्ञान की वहाँ के श्रावक बन्धुओ ने पर्याप्त सराहना की है। इस प्रवृत्ति को समाज व सस्कृति की रक्षा के लिए परम उपयोगी बताया है।

श्वेताम्बर स्थानकवासी जैन स्वाध्यायी सघ का श्रेय हमारे चरितनायक श्रद्धेय प्रवर्तक मुनिश्री पन्नालालजी महाराज को है। इस सघ की स्थापना मे किसी भी साधु-साध्वी या श्रावक-श्राविका का विरोध नही रहा। शुरू से ही यह सघ निर्विरोध एवं निरपवाद रहा। श्रमणसघ के तत्कालीन उपाचार्य पूज्यश्री गणेशीलालजी महाराज, उपाध्याय श्रीहस्तिमल्लजी महाराज, प्रधानमत्री (वर्तमान मे आचार्य) श्रीआनन्दऋषिजी महाराज, उपाध्याय कविरत्न श्रीअमरचन्दजी महाराज आदि मुनिवरो के अनुकूल अभिमत भी प्राप्त हुए। सभी सन्तो ने स्वाध्यायी सघ की योजना का अनुमोदन किया।

इस सघ का विधिवत् उद्घाटन विक्रम सवत् २००७ पौष कृष्णा १० (पार्श्व-जयन्ती) के दिन भिणायनगर मे जैनसमाज के तत्कालीन उदारचेता दानवीर सेठ श्री सोहनलालजी दुग्गड (कलकत्ता) के करकमलो द्वारा सम्पन्न हुआ। इसका प्रधान कार्यालय गुलाबपुरा (राजस्थान) मे रखा गया। तब से आज तक इस सस्था के

सदस्य एकनिष्ठा से समाज की नि.शुल्क सेवा मे जुटे हुए है। इस सस्था के सदस्य अपने लिए किसी प्रकार की भेट-पूजा स्वीकार नही करते, और न ही अपने से सम्बन्धित सस्थाओ के लिए चन्दे आदि की प्रेरणा देते हैं। इसी कारण सस्था की निःस्वार्थसेवा की छाप भारत के सुदूर प्रान्तो एव नगरो पर अमिट है।

इस सघ की शाखाएँ आसपास के क्षेत्रो के सिवाय रामपुरा (म प्र), भवानी मडी, डूगला आदि क्षेत्रो मे भी स्थानीय सघ के अनुरोध पर खोली गई हैं। शाखा-कार्यालयो का प्रधान कार्यालय से पूर्ण सम्पर्क रहता है। प्रतिवर्ष इस सघ का अधिवेशन श्रावण शुक्लपक्ष मे होता है, जिसमे इसकी प्रगति एव भविष्य की सम्भावनाओ के विषय मे विचार-विनिमय किया जाता है। विवरणपत्र भी वितरित किया जाता है। सस्था के सदस्य जहाँ-जहाँ पर्वाराधना कराने जाते हैं, वहाँ सामायिक, पौषध, दया, आयविल तथा उपवास, एकाशन अठाई, बेला, तेला, उपवास आदि धर्मसाधना भी कराते हैं और उसका विवरण भी रखते हैं, प्रधान कार्यालय मे सभी सदस्य अपना विवरण प्रस्तुत करते हैं।

संघ के अन्तर्गत अन्य प्रवृत्तियां

स्वाध्यायी सघ का ज्यो-ज्यो विकास होता गया, त्यो-त्यो इसके अन्तर्गत अन्य प्रवृत्तियाँ भी प्रवर्तक पूज्य श्रीपन्नालालजी महाराज की प्रेरणा से समय-समय पर चालू की गई। वे प्रवृत्तियाँ इस प्रकार हैं—

- ☐ जगह-जगह पुस्तकालयो की स्थापना
- ☐ धार्मिक शिक्षण शिविरो का सचालन
- ☐ सदस्यो का प्रतिवर्ष अधिवेशन
- ☐ समय-समय पर विशेष सभाओ का आयोजन
- ☐ वक्तृत्व-सभाओ का आयोजन
- ☐ साहित्य-प्रकाशन
- ☐ पत्राचार-पाठ्यक्रम का प्रचलन
- ☐ सदस्यो को नि शुल्क साहित्य-वितरण

सघ का प्रचारक्षेत्र बढने के साथ-साथ सदस्यो के नवीन ज्ञानार्जन की ओर भी पर्याप्त ध्यान दिया जाता रहा है, जैसे शास्त्रवाचन के अतिरिक्त प्रत्येक सदस्य को सैद्धान्तिक ज्ञान, विभिन्न दर्शनो का ज्ञान, चौपाई वाचन की योग्यता, प्रश्नोत्तर-प्रणाली का अभ्यास व उत्तम वक्तृत्वशक्ति का अभ्यास। इसके लिए कुछ स्थानो पर हमारे चरितनायकजी की प्रेरणा से पुस्तकालयो की स्थापना की गई है, जिनसे प्रत्येक सदस्य पर्याप्त लाभ उठा सकता है। आपके सदुपदेश से विक्रम सवत् २००७ पौषवदी १० को भिणाय मे स्थापित 'श्री प्राज्ञ जैन पुस्तकभण्डार' तथा विजयनगर मे स्थापित 'प्राज्ञ जैन पुस्तकालय एव गुलाबपुरा मे स्थापित, वर्द्धमान जैन पुस्तकालय' ज्ञानवर्द्धन के जीते-जागते प्रतीक हैं, जिनमे नवीन साहित्य एव आगमिक साहित्य एवं दर्शनशास्त्र

के ग्रन्थो का उत्तम सग्रह है। ज्ञान की इन प्याऊओ मे अनेक पिपासु आ कर स्वाध्याय, प्रश्नोत्तर एव शास्त्रवाचन द्वारा ज्ञान की पिपासा शान्त करते थे और करते हैं।

सदस्यो की ज्ञानवृद्धि के हेतु धार्मिक शिक्षणशिविरो का आयोजन भी सघ की प्रमुख प्रवृत्ति रही है। इन शिविरो मे स्वाध्यायी सदस्यो के अतिरिक्त अध्यापक व छात्र भी पर्याप्तमात्रा मे धार्मिक ज्ञान का लाभ उठाते रहे हैं। इन शिविरो से विशेष लाभ यह हुआ कि कई नए स्वाध्यायी श्रावक पर्युषणपर्व मे अपनी सेवाएँ देने के लिए तैयार हो गए। कई अध्यापको व स्वाध्यायी सदस्यो ने इन शिविरो मे प्रशिक्षण प्राप्त कर कई जगह धार्मिक पाठशालाएँ चलाई है। जैनत्व के प्रचार के लिए योग्य प्रचारक भी ऐसे शिविरो से ही तैयार हुए हैं। बालको मे भी ऐसे शिविरो के प्रति रुचि जागृत हुई है। इन शिविरो मे समय-समय पर विविध धार्मिक विषयो पर विचार-गोष्ठियाँ आयोजित की गई, जिनमे शिविरार्थियो को अपने विचार निर्भीकता से व्यक्त करने का अवसर मिला है।

स्वाध्यायी सदस्यो की वक्तृत्वशक्ति बढाने के लिए ऐसे शिविरो के दौरान वक्तृत्वसभाओ का आयोजन किया गया, जिनमे निर्धारित विषयो पर वक्ता अपने विचार रखते। हमारे चरितनायकजी महाराज अन्य सत-सतियाँ एव कभी-कभी शिक्षकबन्धु अपने सुझावो व प्रेरणा द्वारा उनका मार्ग-दर्शन करते। साधुसाध्वियो के प्रवचन भी रखे जाते। ई० सन् १९५८ मे प्रथमबार साप्ताहिक शिविर का आयोजन किया गया, फिर सन् १९६० मे भी एक त्रिदिवसीय शिविर आयोजित हुआ। इसके अतिरिक्त सघ के सभी सदस्यो को नियमित स्वाध्याय करने एव पत्रपत्रिकाओ मे अपने लेखादि द्वारा विचार प्रगट करने के लिए प्रेरित किया जाता रहा है। सदस्यो के अनुभवो से लाभ उठाने एव उनके बौद्धिक विकास के लिए ऐसी विशेष सभाओ का विभिन्न स्थानो पर आयोजन भी स्वाध्यायी सघ द्वारा किया जाता रहा है।

स्वाध्यायी सघ के सर्वांगीण विकास के हेतु समय-समय पर वार्षिक अधिवेशन भी सम्पन्न होते रहे है। उदाहरणार्थ विक्रम स० २०२९ का वार्षिक अधिवेशन मसूदा नगर मे धर्मप्रेमी श्रीभीमसिहजी सचेती की अध्यक्षता मे सम्पन्न हुआ, जिसमे प्राय सभी सदस्यो ने सघ की प्रगति के सम्बन्ध मे अपने विचार व्यक्त किए थे।

इसके अलावा स्वाध्यायी सघ के सदस्यो के ज्ञान मे नवीनता एव विविधता लाने के उद्देश्य से सघ समय-समय पर नवीन साहित्य का भी प्रकाशन करता रहा है। प्रतिक्रमणसूत्र, दामनक-चरित्र, थोक-सग्रह, धनदत्त-चरित्र आदि कुछ साहित्य प्रकाशित हुआ है। कई सघ के स्वाध्यायी सदस्यो को विशेष ज्ञानप्राप्ति के हेतु आचार्य श्री जवाहरलाल जी महाराज आदि अनेक विचारको का साहित्य नि शुल्क वितरण भी किया जाता रहा है।

कुल मिला कर स्वाध्यायी सघ ज्ञानप्रचार की एक सशक्त सस्था बन चुकी है। इस सस्था को जन्म देने, विकसित करने तथा नये-नये सदस्यो को प्रशिक्षण दे कर तैयार

करने का अधिकाश श्रेय हमारे चरितनायक प्रवर्तक श्रीपन्नालालजी महाराज को है, जिन्होने इस सस्था को प्राणपण से सीचने मे कोई कोरकसर नही रखी। सस्था का अब तक का इतिहास उत्तम रहा है। पर्वाराधन के समय शास्त्रवाचना के लिए स्वाध्यायी सदस्य जगह-जगह भेज कर आपने शास्त्रीय ज्ञान से एव धर्मसस्कारो से वचित अनेक स्थानो मे ज्ञान और आचार की धर्मज्योति जगाई है। स्वाध्यायी सघ इस दिशा मे निरन्तर प्रगतिशील है।

प्राज्ञ जैन पुस्तकभडार, भिणाय

हमारे चरितनायकश्रीजी की प्रज्ञाशील दृष्टि मे पुस्तकालयो का बहुत बडा महत्व था, ज्ञानार्जन के हेतु प्रत्येक व्यक्ति अपने घर मे इतनी अधिक पुस्तके खरीद कर सग्रह करने की स्थिति मे नही होता। इसलिए कोई ऐसी सस्था होनी चाहिए, जहाँ बैठ कर सर्वसाधारण व्यक्ति अलभ्य या दुर्लभ्य पुस्तके, ग्रन्थ या शास्त्र पढ कर विपुल ज्ञानार्जन कर सके। विचारो से ही मनुष्य का जीवन बनता है और महापुरुषो द्वारा ससार को दिये गये कल्याणकारी विचार ग्रन्थो, शास्त्रो और पुस्तको से उपलब्ध होते हैं। इसलिए पुस्तकालय की जीवननिर्माण मे अतीव उपयोगिता है, इस बात को दृष्टिगत रख कर ही हमारे चरितनायकश्रीजी ने विक्रम सवत् २००७ के चातुर्मास के बाद भिणाय पधारने पर पुस्तकालय के लिए प्रेरणा दी। आपकी प्रेरणा से स्थानीय जैन जनता ने **'श्री जैन प्राज्ञ पुस्तक भण्डार, भिणाय'** की स्थापना की, जिसमे धार्मिक आध्यात्मिक-ज्ञान-विज्ञान की प्राय सभी प्रकार की पुस्तको एव ग्रन्थो के अतिरिक्त प्राचीन हस्तलिखित शास्त्रों का सग्रह किया। इस प्रकार इस विशाल पुस्तकालय का विधिवत् उद्घाटन विक्रम स० २००७ पौष कृष्णा १० (पार्श्वनाथ जयन्ती) को उदार-चेता सेठ सोहनलालजी दुग्गड के द्वारा हुआ।

वास्तव मे इस पुस्तकालय की स्थापना से आम जनता को तो लाभ हुआ ही, आसपास के गाँवो के स्वाध्यायी सघ के सदस्यो को भी ज्ञानार्जन करने मे सहूलियत हो गई।

हमारे चरितनायकजी की प्रेरणा से समय-समय पर इसमे नये-नये ग्रन्थो एव पुस्तको का प्रवेश होता रहा है। गाँव मे पधारने वाले साधु-साध्वीगण भी इस पुस्तक-भण्डार से लाभ उठाते है।

प्राज्ञ जैन पुस्तकालय, विजयनगर

विजयनगर-गुलाबपुरा हमारे चरितनायकश्री के श्रद्धालु भक्त लोगो के केन्द्र रहे हैं, जहाँ हमारे चरितनायकश्रीजी ने अनेक चातुर्मास बिताए हैं और जहाँ से प्राय सभी संस्थाओ का उद्गम भी हुआ है। विजयनगर मे ही एक विशाल पुस्तकालय की आवश्यकता थी। जहाँ छात्रावासो एव विद्यालयो के छात्र-छात्रागण लाभ उठा सके, स्वाध्यायी संघ के सदस्यगण भी पर्याप्त ज्ञानार्जन कर सकें और विद्वान लोग भी बैठ कर साहित्य-सृजन कर सकें। इन्ही उद्देश्यो को ले कर हमारे चरितनायक पूज्य प्रवर्तक

श्री प्राज्ञ जैन स्मारक समिति, विजय नगर
पदाधिकारीगण



श्रीमान् अर्जुनलाल जी डागी, भीलवाडा
उपाध्यक्ष



श्रीमान् भीमसिंह जी सचेती, गुलाबपुरा
अध्यक्ष



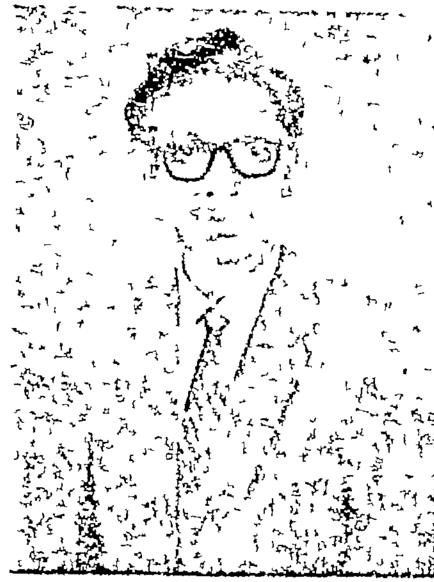
श्रीमान् गुलाबचन्द जी चौरडिया, विजयनगर
मन्त्री



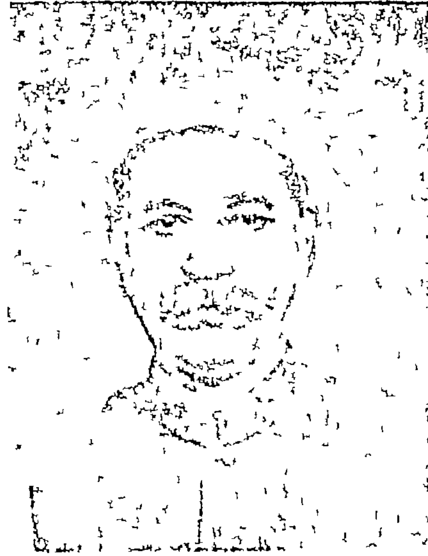
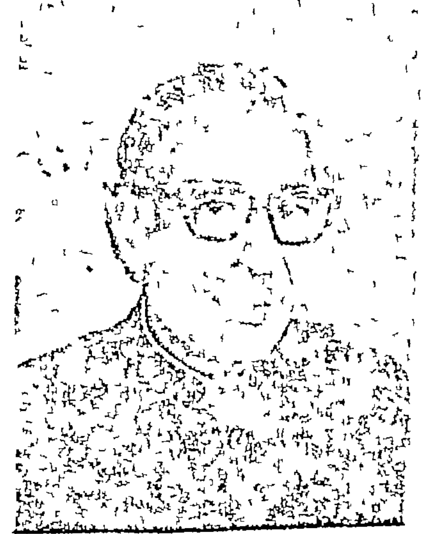
श्रीमान् उमरावसिंह जी कर्णावट, विजयनगर
उपमन्त्री



श्रीमान् गुलाबचन्द जी लूणावत, विजयनगर


श्री प्राज्ञ जैन स्मारक समिति के विशिष्ट सहयोगी एवं कार्यकर्त्ता

श्री पन्नालालजी महाराज ने अपने व्याख्यानो मे पुस्तकालय की आवश्यकता पर बल दिया। फलस्वरूप स्थानीय सघ ने प्रेरित होकर **'श्री प्राज्ञ जैन पुस्तकालय'** की स्थापना की। सचमुच ज्ञान की आराधना के लिए पुस्तकालय बहुत बडा निमित्त है। बहुत बडा केन्द्र है। यही कारण है कि जब से इस पुस्तकालय की स्थापना हुई है, तब से लेकर अब तक अनेको साधु-साध्वियो, श्रावक श्राविकाओ, छात्र-छात्राओ एव आम विद्वान् व्यक्तियो ने इससे पर्याप्त लाभ उठाया है। इसमे अन्यत्र दुर्लभ प्राचीन हस्तलिखित ग्रन्थो का भी सुन्दर चयन किया गया है।

नानक जैन छात्रालय (गुलाबपुरा) की स्थापना

अन्य देशो की तरह भारत वर्ष मे भी विद्यार्थियो का जीवन पाश्चात्य रग से रगा जाने लगा। अँग्रेजी भाषा का प्रचार तो अँग्रेजो के जाने के बाद कम हो गया, लेकिन अँग्रेजो की सभ्यता और रहन-सहन का अनुकरण करने मे तो भारत दूसरे देशो से बाजी मार गया। यहाँ पाश्चात्य देशो की हर नई चीज का अनुकरण होने लगा। जिसमे सिनेमा ने तो इसके प्रचार-प्रसार मे हद कर दी। इसका सबसे ज्यादा असर हुआ नई पीढी पर, छात्र-छात्राओ पर। विद्यार्थियो मे इसके कारण उच्छृखलता, अनुशासन-हीनता, विनय-भाव और सेवाभावना की न्यूनता होती गई, चरित्रनिर्माण की ओर खास लक्ष्य नही रहा।

हमारे चरितनायक श्रीपन्नालालजी महाराज विद्याध्ययन के पक्षपाती थे, लेकिन साथ-साथ वे यह भी चाहते थे कि विद्याध्ययन के साथ-साथ वर्तमान युग के विद्यार्थियो मे पूर्वोक्त दुर्गुण न पनपें, वे सादगी और सयम के वातावरण मे पलें। और यह भी एक ठोस कारण था कि घरो के वातावरण मे विद्यार्थियो को सादगी, सयम या नियम का वातावरण बहुत ही दुर्लभ था। ऐसा वातावरण छात्रावास के द्वारा ही मिल सकता था, जहाँ रह कर विद्यार्थी अपना अध्ययन भी करे और अपने जीवन का समुचित ढग से निर्माण भी करे। साथ ही पूर्वोक्त पाश्चात्य सभ्यता और रहन-सहन से बच कर भारतीय सभ्यता और संस्कृति के सांचे मे उसका जीवन ढले। वह अनुशासनप्रिय, समाजसेवापरायण, उदार, कष्टसहिष्णु, मितव्ययी धर्म-परायण, विनयी और अहिसक, क्रान्ति का सन्देशवाहक बने और इन सब बातो की पूर्ति छात्रावास द्वारा ही हो सकती थी। क्योकि वहाँ एक साथ अनेक विद्यार्थियो को धर्मसस्कार के साथ-साथ उक्त गुणो के साचे मे ढाला जा सकता था। बचपन से ही जो आदतें पड़ जाती हैं, चाहे वे अच्छी हो या बुरी, अमिट रहती हैं। छात्रालय अच्छी आदतो व नियमितता, व्यवस्थितता और उपयोगिता की त्रिवेणी मे अवगाहन करने का सुन्दर स्थान होता है।

इसी उद्देश्य से प्रवर्तक श्री पन्नालालजी महाराज ने गुलाबपुरा जैन सघ का ध्यान इस ओर खीचा। आपकी बलवती प्रेरणा से स्थानीय श्रावक सघ ने विक्रम सवत् १९९५ मे **'नानक जैन छात्रालय, गुलाबपुरा'** की विधिवत् स्थापना की।

इस छात्रालय मे रह कर अनेको विद्यार्थियो ने विद्याध्ययन के साथ-साथ अपने जीवन का निर्माण किया है। इस छात्रालय से अनेको विद्यार्थी अच्छे नेता, अच्छे व्यापारी

एव अच्छे अध्यापक, अभियन्ता, वकील, जिलाधीश आदि बने हैं। इस सबका श्रेय और उपकार श्रद्धेय पूज्य प्रवर्तकश्रीजी महाराज को है, जिन्होंने यह पौधा लगाया, जो आज एक विशाल वृक्ष का रूप ले चुका है।

श्री नानक जैन कन्या पाठशाला (विजयनगर) की स्थापना

यह सच है कि कन्या ही समाज-निर्माण की मुख्य इकाई है। वही भावी माता बनने वाली है, जो समाज के बालको मे अच्छा-बुरा जैसा भी चाहे, सस्कार दे सकती है। अगर कन्याओ को प्रारम्भ से ही सुन्दर सस्कार मिले, अच्छे ढंग से धार्मिक शिक्षण के साथ-साथ व्यावहारिक विद्याओ का अध्ययन कराया जाय तो वह अपने जीवन का निर्माण करने के साथ-साथ समाज के निर्माण मे भी अद्‌भुत सहयोग दे सकती है।

इसी दृष्टिकोण को लेकर पूज्य प्रवर्तकश्रीजी महाराज ने स्थानीय जैन सघ को बलवती प्रेरणा दी। उन्होने फरमाया "जब तक समाज की कन्याएँ सुशिक्षित नही होगी, तब तक समाज मे प्रचलित कुरूढियाँ, कुप्रथाएं और खोटे, घातक, खर्चीले, गलत रीतिरिवाज दूर नही हो सकेंगे। कन्या ही भारतीय सस्कृति की सुरक्षा की आधारशिला है, वही भावी पीढी मे सुसरकारो का सिंचन करने वाली स्रोतस्विनी है। वही बालको के जीवन-निर्माण की भावी प्रेरणामूर्ति है। इसलिए कन्याओ को अपढ, अशिक्षित और असस्कारी रखना समाज के लिए अभिशाप है। वे दिन लद गए, जब यह कहावत प्रचलित थी कि "एक घर मे दो कलम नही चल सकती।" अब तो कन्याओं को सुशिक्षा न मिलने के कारण परिवार का आर्थिक ढाँचा भी चरमरा जाता है। पुरुष के पराधीन, असहाय, अपाहिज हो जाने या कमाने लायक न होने की स्थिति मे अथवा वियोग हो जाने पर स्त्री अपनी गृहस्थी को सुचारुरूप से चला सकती है, अपने पति और बालको का भरण-पोषण भी स्वावलम्बनपूर्वक कर सकती है, बशर्ते कि वह सुशिक्षित हो। जहाँ तक समाज मे चरित्र-निर्माण का प्रश्न है, सुशिक्षित कन्याएँ ही भारतीय सस्कृति और सद्‌धर्म की मर्यादाओ का स्वय पालन कर सकती हैं और भविष्य मे माता बनने पर बालको को सुशिक्षित, सस्कारी एव चरित्रसम्पन्न बना सकती हैं। इसलिए कन्याओ की शिक्षा पर हमारे समाज को खासतौर से ध्यान देना चाहिए।"

आपकी इस समाज-कल्याणकारिणी प्रेरणा से स्थानीय श्रावक सघ ने अविलम्ब "**श्री नानक जैन कन्या पाठशाला** की स्थापना की, जिसमे अनेक कन्याओ मे धार्मिक सस्कारो का बीजारोपण कर उन्हे शिक्षित और सुसस्कृत बनाया गया।

इसी का परिणाम है कि पूज्य प्रवर्तकश्रीजी महाराज के इस विचरण-क्षेत्र मे समाज अनेक कुरूढियो, घातक कुप्रथाओ एवं अन्धविश्वासो से मुक्त है।

आपकी स्मृति में, जीवित स्मारक

इस प्रकार हमारे चरितनायकश्रीजीवनपर्यन्त समाज-सुधार, शिक्षाप्रचार, धार्मिक सस्कारो के प्रसार एवं जीवन-निर्माण के प्रेरक सस्थानो की रचना मे लगे रहे। आपकी प्रेरणा से जितनी भी संस्थाएं स्थापित हुई हैं, वे सब स्थापना के बाद भी आपसे

समय-समय पर प्रेरणा लेती रही। आपने भी इन संस्थाओं में कोई अव्यवस्था, धांधली, अनियमितता या लापरवाही पैदा न हो जाय, इस खतरे से सावधान करने के लिए समय-समय पर अपने अमूल्य सुझाव, प्रेरणाएँ और उपदेश दिये हैं। यही कारण है कि दूर-दूर तक इन संस्थाओं की श्रेष्ठता की सौरभ जन-जैनेतर समाज में फैली है। यहाँ तक कि मुख्यमंत्री, मंत्री तथा राष्ट्रपति, उपराष्ट्रपति तक इन संस्थाओं के कार्यकलापों से आकर्षित हुए हैं।

विजयनगर और गुलाबपुरा के सशक्त, उदार और तेजस्वी जैन समाज ने आपकी प्रेरणाओं और शिक्षाओं को जीवन में साकार रूप दिया है और दे रहे हैं। आपके देहावसान के बाद भी उन्होंने आपकी स्मृति को चिरस्थायी बनने हेतु व आपकी स्मृतियों को चिरस्थायी बना कर आपके प्रति सच्ची श्रद्धांजलि अर्पित करने हेतु ऐसी संस्थाओं का निर्माण करना उचित समझा, जो आपकी विचारधारा और आपकी स्मृति के अनुरूप हो।

फलतः आपके स्वर्गवास के बाद ही विजयनगर में आपके अनुयायी भक्तगणों ने सभी संघों ने मिल कर **'श्री प्राज्ञ जैन स्मारक समिति'** की स्थापना की। जिसका उद्देश्य था आपकी कृतियों को चिरजीवी बनाना और आपकी स्मृति को युगों-युगों तक जनता के मन-मस्तिष्क में संस्कारबद्ध करना।

इसी के सन्दर्भ में सर्वप्रथम अपने उपकारी स्वनामधन्य, राजस्थान-संतशिरोमणि, ज्योतिपुंज प्रज्ञाशील स्वर्गीय पूज्य प्रवर्तक गुरुदेव श्रीपन्नालालजी महाराज का एक प्रामाणिक जीवन-चरित्र ग्रन्थ प्रकाशित करने की योजना बनाई। उसी योजना का साकार रूप यह ग्रन्थ है।

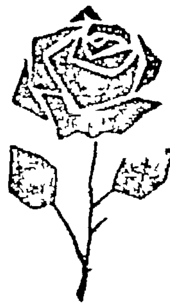
सतपुरुष संसार की सर्वोत्तम विभूति और समाज की अनमोल निधि होते हैं। स्वयं आत्म-साधना में रत रह कर वे विश्व कल्याण के लिए अपनी वाणी, लेखन, संस्था-स्थापन आदि के द्वारा महान् उपकार करते हैं। ऐसे सन्तों में पूज्य प्रवर्तक गुरुदेव श्रीपन्नालालजी महाराज भी थे। उनका स्मरण, स्तवन, गुणगान तथा उनके व्यक्तित्व और कृतित्व को स्मृतिपट पर कायम रखने हेतु उनके प्रामाणिक जीवन-चरित्र का आलेखन करना समाज का परम कर्त्तव्य हो जाता है। इसी के फलस्वरूप उनकी प्रामाणिक जीवनी प्रकाशित हो रही है।

इसके अतिरिक्त उनकी पुण्य-स्मृति को चिरस्थायी बनाये रखने के लिए प्राज्ञ जैन स्मारक समिति के अन्तर्गत विजयनगर में १२ अगस्त १९७२ को **श्री प्राज्ञ महाविद्यालय, विजयनगर** की स्थापना की गई। यह ज्ञानदीप उन्हीं प्राज्ञपुरुष श्री पन्नालालजी महाराज 'प्राज्ञ' की अमर स्मृति में उनके श्रद्धावान् भक्तों द्वारा इसी ग्रामीण अंचल में संजोया गया है, जिसका प्रकाश दूर-दूर तक फैल रहा है। जिसकी ज्योति निरन्तर प्रज्वलित हो रही है और जन-मन में इस उक्ति को, चरितार्थ कर रही है **प्रज्ञादीप सदा ज्वलते।**

श्री प्राज्ञ महाविद्यालय राजस्थान में उच्चकोटि के महाविद्यालयों में से एक है, और राजस्थान विश्वविद्यालय, जयपुर से सम्बद्ध है। इसका उत्तम शिक्षा-प्रबन्ध, चरित्रवान् अध्यापक वर्ग की नियुक्ति, उत्तम व्यवस्था एव विद्यार्थियो में चरित्र निर्माण की लगन, राजनेताओ, समाजनायको और शिक्षाशास्त्रियो के आकर्षण का प्रमुख कारण रहा है।

वास्तव मे महाप्राज्ञ प्रवर्तक गुरुदेव श्री पन्नालालजी महाराज का यह जीता-जागता स्मारक है, जो युगों-युगो तक ज्ञानदीप जलाता रहेगा और परोपकारी गुरुवर की स्मृति के नदादीप को सतत प्रज्वलित रखेगा।

इस प्रकार प्रज्ञामूर्ति श्री पन्नालालजी महाराज के कृतित्व के अमर स्मारको का सक्षिप्त परिचय यहाँ दिया गया है। उनके समग्र कृतित्व को थोड़े-से पन्नो मे लेखबद्ध करना अत्यन्त दुरुह कार्य है, फिर भी उनके प्रति भक्ति से प्रेरित हो कर अकन करने का यत्किचित् प्रयास किया गया है, जो उनके बहुमुखी प्रतिभा-सम्पन्न व्यक्तित्व को समझने मे सहायक होगा।



गुरुदेव श्री का अमर स्मारक :—

श्री प्राज्ञ महाविद्यालय (विजयनगर)

(संचालक :—श्री प्राज्ञ जैन स्मारक समिति, विजयनगर)

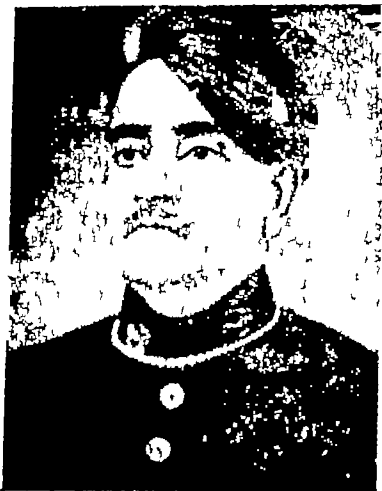


स्व० गुरुदेव श्री की स्मृति को चिरस्थाई बनाने हेतु समाधि स्थल पर निर्मित श्री प्राज्ञ महा विद्यालय का शिलान्यास १२-८-७२ को हुआ ।

इस विद्यालय मे छात्रों के चारित्रिक, शारीरिक एव मानसिक आदि सर्वांगीण विकास पर विशेष ध्यान दिया जाता है । भव्य वातावरण और सुन्दरतम सुयोग्य प्रबन्ध मे छात्रों के व्यक्तित्व को निखरने-सवरने का समुचित सुयोग मिलता है ।

उक्त सचालक सस्था को आयकर कमिश्नर जयपुर के आदेश क्रमाक SIB/CIT/II/80-G/4/75-76/1019 दिनाक १३ अक्टूबर १९७६ के अनुसार प्रदत्त अर्थिक सहयोग (अनुवान) आयकर से मुक्त है ।

श्रीमान राजाधिराज स्व०
श्री अमरसिंह जी सा०, बनेडा



श्रीमान राजाधिराज
श्री हेमेन्द्रसिंह जी, सा० बनेडा



राव साहब श्री नारायणसिंह जी, मसूदा
भू० पू० वन मन्त्री, राजस्थान



गुरुदेव श्री के सदुपदेशो से प्रतिबुद्ध राजन्य वर्ग
जिन्होंने शिकार, बलिप्रथा, जीववध आदि हिंसाओ का परित्याग कर जीव दया तथा सदाचार प्रचार मे पूर्ण सहयोग किया।



ठा० सा० श्री विजयसिंह जी, रीया



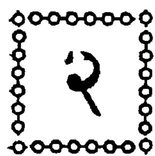
ठा० सा० श्री गणपतसिंह जी, रीया



ठा० सा० श्री करणसिंह जी, गोविन्दगढ



ठा० सा० श्री रणजीतसिंह जी, मेडास



समाज-सुधार की प्रवृत्तियाँ



मानव सामाजिक प्राणी है। समाज का निर्माण मनुष्य ने किया है, यह जितना सत्य है, उतना ही सत्य यह भी है कि मनुष्य का विकास समाज के आधार पर हुआ है। व्यक्ति व्यक्ति के पारस्परिक सहयोग, सेवा और सुरक्षा के आधार पर ही समाज का निर्माण हुआ है और ये ही तत्त्व मानवता के विकास मे सहयोगी बने हैं।

बहती हुई नदी की धारा मे कभी कही कूडा-कचरा भी मिल जाता है, स्वच्छ पानी गन्दा भी हो जाता है, किंतु फिर उसे शुद्ध स्वच्छ कर पेय जल बना लिया जाता है। स्वच्छ शरीर मे कभी-कभी विकार उत्पन्न हो जाता है, रोग का आतक शरीर को जर्जर करने लगता है, किन्तु योग्य चिकित्सा व उपचार के द्वारा शरीर को पुन नीरोग व स्वस्थ करने का प्रयत्न होता है। विकार के प्रवेश और प्रतीकार करने की यही प्रक्रिया समाज मे भी सदा से चलती रही हैं। मनुष्य के अपने अज्ञान, मोह एव स्वार्थ के कारण समाज मे बुराइयाँ, कुप्रथाएँ तथा अन्धविश्वास फैलते हैं, धीरे-धीरे समाजरूपी शरीर को खोखला करने लगते हैं, तब कोई विचारशील, साहसी, प्रबुद्धचेता ऐसा उत्पन्न होता है जो इन बुराइयो, कुप्रथाओ, तथा रूढियो के महारोग से समाज की रक्षा करता है, उन्हे मिटाने के लिए कृतसकल्प होता है।

भारतीय समाज मे इस प्रकार के पुनरुद्धार की प्रक्रिया सदा से चलती आई है। यद्यपि कुप्रथाओ का रोग जितनी आसानी से फैलता है, उनका उपचार उतनी आसानी से नही हो पाता है। रोग दीर्घ समय तक समाज के स्वास्थ्य को क्षय के कीटाणु की तरह खाता रहता है, किन्तु उपचार और प्रतीकार करने वाले चिकित्सक शताब्दियो मे कोई दो-चार आते हैं। फिर भी भारतीय समाज का यह सौभाग्य है कि ऐसे समाज-सुधारक मनीषी, सत यहाँ अवतरित होते रहे हैं। प्राचीन इतिहास को देखने से यह विश्वास सुदृढ होता है कि भारत मे समाज-सुधार की इन प्रवृत्तियो का मुख्य केन्द्र साधु-समाज रहा है। भगवान् पार्श्व और महावीर स्वय बहुत बड़े क्रांतिकारी समाज-सुधारक के रूप में आज देखे जाते हैं। उनके बाद के समय मे भी भारत की सभी धर्म-

परम्पराओ मे ऐसे सुधारवादी संतो का समय-समय पर प्रादुर्भाव हुआ है। आचार्य हेमचन्द्र, जिन्होंने अपने समय की अनेक सामाजिक कुप्रथाओ को कडाई से समाप्त करवाया या आज भी भारत के सुधारवादी संतों मे अमर हैं। कबीर, नानक, हीरविजय सूरि दक्षिण के सत वसवा (लिंगायत) आदि के नाम भी इसी पुनीत परम्परा मे जुड़ते हैं। और इसी परम्परा को हमारे चरितनायक श्रीपन्नालालजी महाराज ने वल-प्रदान कर आगे बढ़ाया है। शिक्षा, समाज-सेवा, कुप्रथाओ की समाप्ति, बलिप्रथा-बदी आदि के रूप मे समाजसुधार की बहुमुखी प्रवृत्तियां उनके जीवन का मुख्य अंग थी, जिनकी संक्षिप्त चर्चा यहाँ करेंगे।

विद्यालय और औषधालयों की स्थापना

उस युग मे राजस्थान की सामान्य जनता प्राय अपढ़ थी। गाँवों मे तो शिक्षा का प्रचार बहुत ही कम था, शहरो मे कोई विशेष प्रचार नही था। इसका मुख्य कारण था शिक्षा प्राप्त करने की रुचि का अभाव। शिक्षा के विषय मे अधिक ध्यान ही नही दिया जाता था। सरकार तो प्राय. निश्चेष्ट थी, कुछ छोटी-मोटी प्राथमिकशालाएँ गाँवो की जनता या तो स्वय चलाती या फिर कोई अध्यापक अपनी आजीविका के साधन के रूप मे उसका सचालन करता। पाठशाला खोलने की तरफ लोगो का ध्यान ही नही था। मुनिश्री शिक्षा-प्रचार मे विशेष दिलचस्पी लेते थे। वे प्रवचनो मे बार-बार शिक्षा पर जोर देते और अज्ञान को जीवन का सबसे प्रबल दुश्मन बता कर उसके चंगुल से मुक्त होने की प्रेरणा देते। विक्रम सवत १९७९ के ज्येष्ठ मास में आपश्री गुरुदेव धूलचन्द्र जी महाराज के साथ गुलाबपुरा पधारे। वहाँ आपने शिक्षा पर सारगर्भित प्रवचन किया, समाज को जगाया और पाठशाला चालू करने की बलवती प्रेरणा दी। इसी के साथ जनसेवा का प्रश्न भी आया। सामान्य जनता को चिकित्सा-सेवा भी कहाँ सुलभ थी। ज्ञान-दान और औषधि-दान सबसे बडा दान है। अज्ञानी को ज्ञान देना, और रोगी को औषधि देना महान पुण्य तो है ही, राष्ट्र की महान् सेवा भी है। आपकी प्रेरणा मे जादू भरा था। तत्काल वहाँ पर व्यापारिक वर्ग कृत-सकल्प हुआ और पूरे नगर की ओर से चदा एकत्र कर एक पाठशाला और औषधालय चालू कर दिया गया। सभवत. उस क्षेत्र मे जनहितकारी प्रवृत्ति का यह पहला मुहूर्त हुआ था। जनता ने कुछ ही समय में इन सस्थाओ की उपयोगिता अनुभव कर ली और फिर तो ओसवाल-अग्रवाल-माहेश्वरी सभी समाज वालो ने जैन-वैष्णव का भेद भुला कर हाथ मिलाया और उस पाठशाला एवं औषधालय को सुचारुरूप से चलाने लगे।[1]

१ कुछ वर्षों बाद मेवाड राज्यसरकार ने दोनो सस्थाओ को पूर्ण सरकारी सहायता से चलाना शुरू कर दिया, और समाज का लगा धन उनके धार्मिक सस्थानो मे लगा दिया। जो विद्यालय प्रारम्भ मे 'नानक जैन छात्रालय' के नाम से प्रारम्भ हुआ वह बाद मे समस्त जैन समाज की एकमात्र सस्था 'जैन विद्यालय' के रूप मे परिवर्तित हुआ और बाद मे उसी का सार्वजनिक स्वरूप 'श्रीगाधी विद्यालय' के नाम से प्रगट हुआ। इस प्रकार आप श्री ने जिस ज्ञानाकुर का रोहण किया, वह आज भी विकासमान होता हुआ विशाल विद्यावृक्ष के रूप मे विद्यमान है।

इसके बाद तो आपने अनेक स्थानो पर इस प्रकार की प्रेरणाएँ दी, कही ज्ञानशाला कही स्वाध्यायशाला, कही वाचनालय और कही पाठशाला आदि की स्थापनाएँ होती गई और शिक्षा-प्रसार की दिशा मे चेतना की नई लहर दौड गई। इसका परिचय पाठक पूर्व प्रकरण मे पा चुके हैं।

मृत्युभोज का भूत कील दिया गया

राजस्थान मे उन दिनो मृत्युभोज महामारी की तरह फैला हुआ था। कुछ स्वार्थी और रूढिचुस्त लोगो ने यह धारणा बना दी थी कि जब तक मृत्युभोज नही किया जाता है, मृत-आत्मा श्मशान मे ही भटकती रहती है। आश्चर्य ! वैष्णव ही नही, किन्तु जन्म-जात जैन, कर्मवाद के सिद्धान्त मे विश्वास रखने वाले श्रावक भी इस धारणा के शिकार हो रहे थे, मृत्युभोज का भूत सबके दिलो मे गहरा घुसा हुआ था।

समाज मे सभी परिवार समान नही होते, बहुतो की आर्थिक स्थिति बडी कमजोर और दयनीय होती है। कमाने वाला एक और खाने वाले दस, उस पर भी रोज कुआ खोदने व रोज पानी पीने वाले भी सैकड़ो परिवार होते हैं। ऐसी स्थिति मे यह कुप्रथा का चक्र सब पर एकसमान रूप से चले, गेहूँ के साथ घुन भी पीसा जाय तो यह कैसी विडम्बना है ? उन परिस्थितियो मे सम्पन्न-वर्ग के साथ मध्यम और निम्न आर्थिक स्थिति वाले परिवार मे भी मृत्यु-भोज की होड चल रही थी। प्रत्येक व्यक्ति इस घुडदौड मे अपने घर की ईंट-ईंट तक को लुटा देना चाहता था। अपनी अर्धाङ्गिनी के वस्त्राभूषण तथा अपने सर्वस्व को मृत्युभोज की बलिवेदी पर चढाने को विवश हो जाते, या कर दिये जाते थे। यदि कोई इस कुचक्र से किनाराकशी करने का प्रयत्न करता तो लोग व्यग्यबाणो से उसे बीध डालते 'तेरे मा-बाप तो श्मशान मे भटक रहे हैं और तू यहाँ समाज को मुँह दिखाने बैठा है ?' समाज के बुर्जुआ स्वार्थी लोग उसके साथ समाज-बहिष्कृत जैसा व्यवहार करते। सारा समाज अस्त-व्यस्त था एव अपनी दयनीय स्थिति पर दीर्घ नि'श्वास डाल देता था। इन परिस्थितियो से मजबूर हो कर व्यक्ति अपना भवन, भूषण और भूमि आदि सब कुछ बेच कर भी मृत्युभोज करता। स्थिति की भयानकता व निर्दयता तो यहाँ तक थी कि यदि किसी नव-विवाहिता का पति काल-कवलित हो गया, और उसके पास पति का मौसर (मृत्युभोज) करने को कुछ भी नही होता तो जबर्दस्ती उसके आभूषण आदि बिकवाये जाते और उसके पति का मौसर किया जाता। बेचारी विधवा पति-वियोग मे कौने मे बैठी करुण-क्रन्दन करती रहती और बाहर मृत्युभोज के नाम पर समाज के रहमदिल भाई-बहन डट कर पचपकवान डकारते रहते। एक तरुण-विधवा की हाहाकार उनके कानो के पर्दे नही चीर सकती थी और फिर वह विधवा जीवनभर के लिए दर-दर की भिखारिन हो जाती, दाने-दाने को तरसती, प्राण छोड देती, पर मृत्युभोज का पकवान खाने वाला समाज उसकी जीविका की भी कोई व्यवस्था नही कर सकता था। इस कुप्रथा से सैकडो परिवार आश्रयहीन, दरिद्र और दाने-दाने के मुहताज बन गये। कई पीढियो तक कर्ज के भार से दबे रहने के

वाद भी उनका उद्धार नही होता। समाज की अशिक्षा, उद्योगहीनता और दीनता का मुख्य कारण भी यह मृत्युभोज था।

मृत्यु-भोज के भूत की इस रौद्रता और विभीषिका को जब हमारे चरितनायक मुनिश्री पन्नालालजी महाराज ने निकट से अनुभव किया तो उनका करुणार्द्र हृदय पसीज उठा। उनकी अन्तरात्मा तडप उठी। उन्होंने सकल्प किया कि मैं इस भूत को कील कर इस प्राणातक उपद्रव से समाज की रक्षा करूगा। यदि समाज रसातल मे जा रहा हो तो धर्म फिर कहाँ वच पायेगा ? धर्म की रक्षा के लिए समाज की रक्षा अनिवार्य हो जाती है। मुनिश्री ने स्थान-स्थान पर इस कुप्रथा के विरुद्ध सिंहनार्जना शुरू कर दी।

सुधार की इस वुलद आवाज से जनता, जो भीतर-ही-भीतर इस सकट से उत्पीडित थी, अपना हित समझने लगी। और धन के दुरुपयोग से वचने की प्रेरणा पा कर विद्रोही वनी हुई जनता मुनिश्री की सिंहगर्जना से प्रसन्न हुई। फलस्वरूप स्थान-स्थान पर मृत्युभोज वद होने लगे। धन का दुरुपयोग होना रुक गया। किन्तु यह वात कुछ स्वार्थी और समाज पर झूठा नेतृत्व वनाए रखने वाले रूढिचुस्त दादा लोगो को क्यो जचने लगी ? वे मुनिश्री की इन क्रान्तिकारी घोषणाओ से क्षुब्ध हो गए। वे इस रूढि के विरुद्ध एक भी शब्द सुनने को तैयार नही थे। क्योकि इससे उनके मनसूवो पर तुषारपात जो हो रहा था। अगर कोई सामान्य व्यक्ति इस कुरूढि के खिलाफ आवाज उठाता तो उसे धर्मविरोधी और समाज-द्रोही करार दे कर वहिष्कृत कर दिया जाता। किन्तु एक समर्थ एव प्रभावशाली सत ने इस कुप्रथा के विरोध मे आवाज उठाई तो समाज का रूढिचुस्त वर्ग वौखला उठा। वह पहले तो मुनिश्री की जी-भर कर निन्दा करने लगा। कहने लगा—"इन साधुओ को समाज-सुधार से क्या लेना-देना है ? इन्हे तो अपना आत्मसुधार ही करना चाहिए। वेकार की पचायतो मे साधुओ को अपना समय नष्ट नही करना चाहिए आदि आदि।"

परन्तु पूज्य मुनिश्री **'सागरवरगंभीरा'** के उदात्त विरुद के धारक थे। वे ऐसी वदर-घुडकियो से अपना रास्ता वदलने वाले नही थे। समाज सुधार के विषय मे उनके अनुभवपूत उद्‌गार थे कि सुधारक को सुधार का विगुल फूँकने से पहले पृथ्वी के समान क्षमाशील और सागर के समान गम्भीर हो जाना चाहिये, फिर चाहे उसे कोई पूजे या काटे, निन्दा करे या प्रशसा करे। तभी वह समाज-सुधार की प्रेरणा दे सकता है और साहस के साथ आगे वढ सकता है।

जव मुनिश्री समाज-सुधार-विरोधी लोगो के विरोधो से नही घवराए और अपने पथ पर आगे से आगे वढते जाने लगे तो एक दिन उन निहितस्वार्थी कुरूढिपरायण लोगों ने आपसे निवेदन किया "गुरुदेव ! आप साधु हैं, और साधुजनो का कार्य सयमपालन करना है। समाज की गतिविधि मे हस्तक्षेप करना, उसमे भी परम्परा से प्रच-

लित रीति-रिवाजो पर प्रहार करना साधुओं का काम नही हैं। अत आपसे प्रार्थना है कि आप इस प्रकार के प्रवचन न करे और न ही ऐसा प्रचार करें।"

मुनिश्री ने उन निहितस्वार्थी बुर्जुआगण को समझाया —"तुम लोग सदा-सदा-से साधु की परिभाषा सुनते आए हो 'साधयति स्वपरकार्यमिति साधु' जो अपने और दूसरो के हितकार्यों को सिद्ध करे वह साधु है। अगर साधु अपना ही हित देखेगा और समाज की ओर आखें मूद कर बैठ जाएगा तो क्या वह अपने कर्तव्य से च्युत नही होगा ? साधु के जीवन का आधार भी श्रावकसमाज है। साधु भी जिस समाज की नैया पर बैठा है, यदि उस नैया मे छेद हो रहा हो, दबादब पानी आ रहा हो, नैया को डूबने का खतरा पैदा हो रहा हो तो क्या आप कहेंगे कि नाव डूबती है तो डूबने दो, तुम्हे क्या मतलब ? तुम चुपचाप ध्यान-मग्न रहो ! नाव डूब गई तो क्या साधु भी नही डूबेगा ? समाजरूपी नाव को डूबने से बचा कर ही धर्म-यात्रा सम्पन्न की जा सकती है। इसलिए साधु का यह पहला कर्तव्य है कि वह इस नाव को डूबने से बचाये, अपनी फिकर छोड कर वह उस समाज की फिकर करे।' जिसके भरोसे पर इतना बडा धर्मसघ खड़ा है, यदि यह समाज अशिक्षा, अज्ञान और अध-रूढियो के गर्त मे यो ही डूबता जायेगा तो फिर धर्म की पतवार बच नही सकेगी। धर्म की रक्षा करने के लिए समाज को रूढियो के घोर सकट से बचाना ही होगा। मैं अपना यह कर्तव्य समझता हूँ और इसके लिए कृतसंकल्प हूँ। जो दूसरो का बेडा पार करेगा, उसी का बेडा पार होगा।

दुनियाँ न जाने इसको मियां, दरिया की यह मझधार है।
औरो का बेडा पार कर तेरा भी बेडा पार है॥

इसलिए अपना बेडा, धर्म का बेडा पार उतारने के लिए ही मैं समाज के इस बेड़े को बचाने की बात करता हूँ। इसमे धर्म-विरुद्ध कुछ भी नही है।

समाज का रूढ़िचुस्त वर्ग मुनिश्री की साहस और समझदारीपूर्ण इन बातो से चुप तो जरूर हुआ, पर वह नही चाहता था कि मुनिश्री इन पुरानी रूढियो को खत्म करने मे अपना हाथ लगायें, इसलिए वह समय-समय पर उन्हे रोकता, टोकता और कभी-कभी तो लोग धमकी भी दिखा देते "महाराज ! समाज की इन प्रथाओ को छेडना ततैयो के छत्ते को छेडना है। यह आपके हित मे नही होगा। आप इस झझट मे क्यो पडते हैं ?"

ऐसे प्रसग पर मुनिश्री उन नसीहत देने वाले स्वार्थान्धो को स्पष्ट कहते "मैं ऐसा पुरुषार्थहीन साधक नही हूँ, जो समाज की झोपडी को जलती देख कर अपनी धुनी तपाता रहू। मेरे दिल मे दया है, मैं जब किसी आत्मा को तडपता देखता हूँ, समाज की अबलाओ को इन कुरूढियो के कारण हाहाकार कर आर्तध्यान करते देखता हूँ, तो मेरा दिल रो पडता है

खजर चले किसी पे तड़पते हैं हम 'अमीर'।
सारे जहां का दर्द हमारे जिगर मे है॥

अन्याय करना तो हिंसा है ही किन्तु अन्याय होते देख कर चुपचाप अजगर की भाँति पड़े रहना अहिंसा है। अहिंसा का अर्थ है

मत जुल्म करो, मत जुल्म सहो, इसी का नाम अहिंसा है।
बुजदिल है जो, बेजान है जो, उनसे बदनाम अहिंसा है॥

अगर आप अहिंसा के पुजारी हैं तो इन कुप्रथाओं के विरुद्ध बिगुल बजाना ही होगा, इन कुप्रथाओ से समाज मे हिंसा, शोषण, आत्म-उत्पीडन बढता है, और फिर मैं तो एक अकिंचन साधु हूँ, मुझे किसी से कुछ लेना-देना नही कि जिससे डर लगे और झझट से बचने की कोशिश करू। जब समाज को बदलना है तो तूफानों मे सीना तान कर खडा होना ही पड़ेगा

तूफानो में जो पलते जा रहे हैं।
वही दुनियां बदलते जा रहे हैं॥

किन्तु यदि कोई हमे दबाने की कोशिश करेगा, तो वह हमे नही स्वय को ही दबायेगा।

कभी दबे हैं, न दब सकेंगे
मिजाज अपना है बागियाना।
कुछ अपना नुकसान ही करेगा
जो हमसे टकरायेगा जमाना।

मुनिश्री पन्नालालजी की इस प्रकार की जोशीली गर्जनाए सुन कर और चुनौती भरे प्रवचन सुन कर आखिर रुढिचुस्त विरोधीवर्ग ठंडा पड गया। जनमत पक्ष मे होता गया और स्थान स्थान पर मृत्युभोजविरोधी वातावरण बनने लगा।

विक्रम सवत् १६७६ के प्रारभ में मुनिश्री ने देवलिया, बडली, हुरडा आदि अनेक क्षेत्रो मे ओसवाल एव माहेश्वरी समाज को उद्बोधित किया और मृत्युभोज-जैसी कुप्रथाएँ बन्द हुईं, अन्य भी जाति-सुधार के अनेक नियम बने। जाति-सुधार की यह हवा ऐसी चली कि स्थान-स्थान पर जहाँ भी मुनिश्री इन कुप्रथाओ के विरुद्ध बोलते, जनता दिलो-जान से उसका स्वागत करती और मृत्युभोज के भूत को मुनिश्री के उपदेश-मंत्र से कोल देती। कुछ स्थानो पर मृत्युभोज किसी रूप मे टिका तो पाँच पकवान के स्थान पर सिर्फ लपसी करने, और बाहर से किसी को भी नही बुलाने की शर्तें मान्य कर ली गई। अब मृत्युभोज न करने वालो की प्रतिष्ठा होने लगी।

मुनिश्री के द्वारा मृत्युभोज के विरुद्ध धुआधार प्रचार से जब मृत्युभोज धडाधड़ बन्द होने लगे तो एक गाँव मे वहाँ की समाज मे काम करने वाले एक सेवक पर भयकर प्रतिक्रिया हुई। वह इस कुप्रथा के बंद कराने के कारण जगह-जगह आपको कोसता रहता

था। सयोगवश विचरण करते हुए मुनिश्री कुछ सतो सहित उसी गाव मे पधार गए। वह सेवक जैनसाधुओ का आवागमन सुन कर आपके पास आया और कहने लगा—"महाराज! यह तो बताइये कि आपमे कोई पन्ना साधु है, जो जगह-जगह मृत्युभोज बंद करवाता फिरता है। वह कहाँ है? उसने तो हमारी रोजी पर लात मार दी! लोगो के भोजन मे वह अन्तराय दे रहा है?" इस प्रकार वह आध घटे तक अनर्गल बकता ही गया।

मुनिश्री शान्तभाव से सब कुछ सुनते रहे। उसके कह लेने के बाद मुनिश्री ने फरमाया "भाई! वह तो कब का ही मर चुका। उसे मरे हुए तो करीब २०-२५ वर्ष होने आये हैं।"

उक्त सेवक आश्चर्यमग्न होकर कहने लगा। "महाराज! अभी-अभी तो दो-चार दिन पहले मैंने सुना है कि एक गाँव मे उसने मृत्युभोज न करने की सौगन्ध दिलाई है। वह मरा कहाँ है? मर जाय तो झझट ही मिट जाय न! पर आप फरमाते हैं कि वह मर गया है।"

बगल मे बैठे हुए श्रावक ने धीरे से सेवक के कान मे कहा "अरे! श्री पन्नालालजी महाराज तो यही हैं। तू किसके सामने अंट-संट बक रहा है?" इतना सुनते ही वह लज्जित हो गया। उसका चेहरा सूख गया। उसे डर लगा कि अब मेरा क्या होगा? वह गिडगिडाता हुआ मुनिश्री के चरणो मे गिर कर हाथ जोड कर अपने अपराध के लिए क्षमायाचना करने लगा। धीर गम्भीर मुनिश्री ने उसे सान्त्वनापूर्ण मधुर शब्दो मे आश्वासन दिया "भैया, इसमे तुम्हारा कोई दोष नही, दोष तुम्हारे स्वार्थ का है। जब व्यक्ति के स्वार्थ को चोट पहुँचती है, तो वह आवेश मे आ कर सब कुछ करने-कराने को तैयार हो जाता है। तुम डरो मत। हम तो साधु हैं। हम किसी को श्राप नही देते। हमारे लिए तो निन्दक और प्रशसक दोनो समान है।"

उसने फिर पूछा "गुरुदेव! आपने यह कैसे फरमाया कि उसे मरे हुए करीब २०-२५ वर्ष होने आये हैं? यह मेरी समझ मे नही आया!"

मुनिश्री ने उसे समझाते हुए कहा "बधुओ! जब से हम साधु बने हैं, तभी से ससार की दृष्टि मे हम मर चुके होते हैं। मृत्यु का वरण करके ही निकले हैं। जब से घर-बार, परिवार और सासारिक वैभव आदि से मुँह मोड लिया, तब से गृहस्थो के लिए हम मरे समान हो गये हैं।' उनसे हमारा सम्बन्ध ही समाप्त हो जाता है। इसी दृष्टि से मैंने तुमसे ऐसा कहा था।"

उक्त सेवक उचित समाधान पा कर प्रसन्नता से लौटा।

मुनिश्री पन्नालालजी महाराज ने सुधार-विरोधी लोगो की चालो के सामने कभी घुटने नही टेके। वे आगे से आगे मैदान सर करते गए और मृत्यभोज का भूत जहाँ भी खडा होता, उसे कीलते गये। विक्रम सवत् १९८८ का चातुर्मास भीलवाडा करने हेतु आप दो मुनिवर पधार रहे थे। रास्ते मे आपका बनेडा पदार्पण हुआ। तत्कालीन बनेडा-

नरेश श्रीअमरसिंहजी साहब पक्के आर्यसमाजी एव सुधारवादी विचारो के धनी नरेश थे। उन्होंने मृत्युभोज की कुप्रथा के विरुद्ध गुरुदेवश्री पन्नालालजी महाराज का उपदेश सुना तो उन्हे यह कुप्रथा समाज के लिए राक्षसी-सी प्रतीत होने लगी। उन्होंने तत्काल जीवनभर के लिए मृत्युभोज न करने की शपथ ली। तथा यह भी प्रण लिया कि मरणोपरान्त ब्रह्मभोज मे भी शक्कर के बजाय गुड ही काम मे लूंगा। बनेडानरेश ने इस प्रतिज्ञा को अपने जीवन मे निभा कर सच्चा आदर्श उपस्थित किया था। अपनी रानीजी का देहान्त होने पर कुंवरसाहब आदि की प्रबल भावना थी कि ब्रह्मभोज मे शक्कर का इस्तेमाल किया जाय। कुंवर साहब ने यह बात प्रत्यक्ष तो नही कही, परन्तु परोक्षरूप से श्रीभट्ट साहब एव श्रीफूलचन्दजी गोखरू के मारफत राजा साहब के कानो तक पहुँचाई थी, परन्तु राजासाहब ने स्पष्ट कह दिया कि मेरे बनेड़ा मे तो गुड़ का ही उपयोग होगा, कोई राजी हो या नाराज, मैं अपने प्रण को तोड नही सकता। बनेडा-नरेश ने जीवनभर इस प्रण का पालन पूर्णभक्ति एव प्रीति से किया था।

इसके पश्चात् चातुर्मासकाल मे आपने भीलवाडा की जनता के सामने अपने ओजस्वी प्रवचनो मे मृतकभोज आदि कुरीतियो के खिलाफ सिंहगर्जना की; जिसके फलस्वरूप वहाँ की समाज ने सामूहिक रूप से मिल कर मृतकभोज का बहिष्कार कर दिया।

मृतकभोज आदि कुप्रथाएँ बन्द न करोगे तो ··

मृतकभोज आदि कुप्रथाओ के प्रचारक व समर्थक लोग मुनिश्री पन्नालालजी महाराज की बात को हँसी मे उडा देते कि 'महाराज तो व्यर्थ ही ऐसे खाने-पीने के प्रसगो को रोक कर हमारे अन्तराय डालते हैं। हम मृतकभोज करते हैं, उसमे कौन-सा खर्च पड जाता है, अनाज, घी आदि सब चीजें सस्ती हैं।" उनकी उन थोथी बातो का करारा उत्तर देते हुए आपने विक्रम सवत् १९८८ मे भीलवाडा मे रामस्नेहियो के नीचे बाजार मे हो रहे अपने पब्लिक प्रवचनो मे कहा—"कई लोग यह कहते हैं कि महाराज मृत्युभोज जैसी प्रथाओ को क्यो बन्द कराते हैं? उसमे उनकी क्या हानि है? सभी खाने-की चीजें सस्ती हैं, पर वे लोग दूरदर्शिता से नही सोचते कि भविष्य मे कैसा जमाना आने वाला है? आज वे जैसा समय देख रहे हैं, उससे भी निकृष्ट समय आ सकने की सम्भावना है। मुझे ऐसा प्रतिभासित होता है कि आज जैसे रुपये का एक मन अनाज और २३ रुपये मन घी मिलता है, वह सदा रहने वाला नही है। जो पहले से ही सावधान हो कर अपव्यय की प्रवृत्तियो को तिलाजलि दे देगा, वही सुविज्ञ और सुखी कहलाएगा। अन्यथा, एक समय वह आने वाला है, जब अनाज पर नियत्रण होगा, अनाज सबके लिए सुलभ नही होगा, सदाव्रत की तरह लाइन मे खडा रहना पड़ेगा। एक रुपये का मुट्ठीभर यानी लगभग आधा सेर अनाज मिलेगा और शुद्ध घी तो बहुमूल्य औषधियो की तरह शीशियो मे मिला करेगा; तब उन खर्चीली कुप्रथाओ के समर्थको की क्या स्थिति होगी? यह विचारणीय है। इसलिए समय रहते चेत कर चलें और व्यर्थ के अपव्यय से बचें, यही उनके व समाज के हित मे होगा।"

चरितनायक की यह बात चाहे भविष्यवाणी के रूप में न मानी जाय, परन्तु ऋषिमुनियो जैसे सत्यवादी आप्तपुरुषो की वाणी सत्य हो कर रहती है। उस समय जो आपके इन वचनो का उपहास किया करते थे और ऐसी बातो को असभव बताते थे, वे ही लोग आज यह कहते सुने जा रहे है कि आज से ४०-४५ वर्ष पूर्व गुरुदेव ने जो भविष्य की स्थिति के विषय मे कहा था, वह अक्षरश. सत्य सिद्ध हुई है।

समाजसुधार की दिशा मे मुनिश्री पन्नालालजी महाराज का यह साहसिक कदम राजस्थान के सामाजिक विकास मे एक चिरस्मरणीय उपलब्धि अथवा ऐतिहासिक कदम के रूप मे सदा याद किया जायेगा।

समाज-सुधार की दिशा मे एक और कदम

मानवजाति की नस-नस मे समाज-सुधार की प्रेरणा भरने के लिए उसकी प्रत्येक प्रवृत्ति मे विवेक होना आवश्यक है। चाहे वह कृषि की आजीविका से सम्बन्धित हो, चाहे अन्य श्रमजीविका से, चाहे वह व्यापारी हो अथवा बुद्धिजीवी, अगर वह अपने जीवन की प्रवृत्तियो मे करुणा को स्थान नही देगा तो उसका जीवन स्वार्थी, क्रूर, अन्याय और अनीति से पूर्ण हो जायगा। वह मानव मिट कर दानव बन जायगा। उसकी कोमल मानवीय धाराएँ क्रूरता मे परिणत हो जायेगी। करुणा की उस पावनधारा का विवेक कराने वाला निस्पृह त्यागी साधुवर्ग है।

हमारे चरितनायकजी अपने आप मे करुणा के सिन्धु तो थे ही, साथ ही प्रत्येक कोटि के प्रत्येक वर्ग के मानवो को उनकी आजीविका से सम्बद्ध प्रवृत्तियो मे वे करुणा की सतत प्रेरणा दिया करते थे। जहाँ भी, जो भी उनके सम्पर्क मे आया, उन्होंने उसे अपनी आजीविका से सम्बद्ध प्रवृत्ति मे विवेकरूपी प्रकाश दे कर उसे सच्चा इन्सान बनाया।

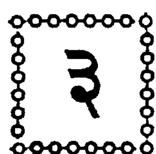
इस बात का प्रमाण उनके जीवन से सम्बद्ध एक घटना है। विक्रम सवत् २००४ के भिणाय चातुर्मास-स्थापन के पश्चात् ग्रामानुग्राम विचरण करते हुए वे 'मथाणिया' पधारे। मथाणिया मे कृषको की आबादी अधिक है। आपको कृषक लोगो ने अपने गाँव मे पधारे देख कर आपका भावभीना स्वागत किया। आपने किसानो की भावना के अनुसार कृषकवस्ती मे उपदेश दिया। आपने उनकी आजीविका की प्रवृत्ति मे करुणा की पावन प्रेरणा देते हुए कहा "किसान भाइयो ! आपकी आजीविका बहुत ही सात्त्विक है, परन्तु उसके साथ विवेक न हो तो वह स्वार्थलिप्त हो जाती है। इसके लिए सर्वप्रथम तो खेती के काम मे जो हिंसा हो जाती है, कई बार किसान के अविवेक के कारण जीव-जन्तुओ का वध हो जाता है, अगर किसान विवेक से, देखभाल कर हल चलाए तो उसमे होने वाली हिंसा से बहुत अशो मे बच सकता है। दूसरा विवेक यह करना है कि खेती के काम मे किसान का सबसे ज्यादा सहायक बैल है। वह जोतने, बोने, पैराई मे, गहाई मे और सिंचाई, माल ढुलाई आदि सभी प्रवृत्तियो मे किसान की सहायता करता है। एक तरह से वह किसान का कमाऊ पूत है। परन्तु

किसान कई वार अपने स्वार्थवश उसकी जिंदगी, वलवूते और शक्ति को नही देखता और उससे अधिक काम ले लेता है, उसे वीच में जरा भी विश्राम नही देता, कई दफा उसके भुखे-प्यासे होने पर भी उसके प्रति उपेक्षा कर जाता है। वहुत-सी वार उस पर अत्यन्त वोझ लाद देता है, उसे चावुको से मारता है, आरा भी भोकता है, वहुत तेजी से दौडाता है। मानव उस समय कितना क्रूर, स्वार्थी और अविवेकी वन जाता है। उस समय उसकी आजीविका मे से करुणा लुप्त हो कर क्रूरता आ जाती है, सात्त्विकता समाप्त हो कर तामसिकता आ जाती है। अत. आप लोगों की कृषि जैसी सात्त्विक आजीविका, तभी सात्त्विक रह सकती है, जव कृषि मे परम सहायक वैलो के प्रति करुणा हो। इसके लिए आप प्रतिदिन घटा-आध घटा विश्रान्ति के अतिरिक्त महीने मे कम से कम एक दिन तथा खासतौर से सवत्सरी, जन्माष्टमी, रामनवमी, महावीरजयती आदि पर्वदिनो मे वैलो को पूर्ण विश्राम दें।"

आपके सदुपदेश को भोले-भाले किसानो ने प्यासे पपीहे की तरह सुना और भगवान् के सन्देश की तरह उसे ग्रहण किया। मथानिया के अधिकांश किसानो ने इस पूर्वोक्त अगते (अमुक तिथियो मे वैलो को विश्राम देने के नियम) का पालन करने का आपको वचन दिया। मथानिया के किसानो के द्वारा स्वीकृत इस नियम का अनुसरण पू० गुरुदेव के उपदेश से पचासो गाँवो के कृषको ने किया। उदाहरण के लिए जालिया, वाघमूरि, इसयाना, राताकोट, लाम्वा, सिगावल, घातोल, किटार्म, राम-मालिया सिखराणी लोडियाणा, हणुतिया, देवलिया, वडली, सतावडिया आदि वहुत-से गाँवो के नाम गिनाए जा सकते हैं, जहाँ के किसानो ने भी गुरुदेवश्री के समक्ष पूर्वोक्तरूप से अगते का पालन करना स्वीकार किया। मथानिया की स्थानीय जनता ने भी अपनी-अपनी आजीविका की प्रवृत्तियो में विवेक का प्रकाश पा कर कई नियम, त्याग वगैरह गुरुदेव से ग्रहण किए। कई भाई-वहनो ने कुशीलसेवन का त्याग आदि व्रत, नियम भी लिए।

निष्कर्ष यह है कि समाजसुधार की दिशा मे, गुरुदेवश्री के द्वारा अनेक महत्त्वपूर्ण कदम उठाये गए। वे जन्म से ले कर शिक्षा, संस्कार, विवाह, वृद्धावस्था, आजीविका, सामाजिक दायित्व, मृत्यु, मरणोपरान्त कार्य आदि प्रत्येक प्रवृत्ति मे समाज को विवेक का महाप्रकाश देते रहे और समाज के रूढ मानस को वदलने के लिए स्वय कष्ट सह कर, आक्षेप और निन्दा के कडवे घूट चुपचाप पी कर, यहाँ तक कि अपने प्राणो को भी खतरे मे डाल कर कई वार दृढ साहस का परिचय दिया है। अपने आत्मवल और आत्मविश्वास के आधार पर कई वार कठोरतम कदम भी उठाया है। समाज के रोष-तोष की उन्होने परवाह नही की, उन्हे परवाह थी, समाज के कल्याण एवं आत्मकल्याण की। समाज-सुधारक के प्रेरणामत्र को ले कर आप चले और अन्त तक उसी पर अविचल रहे।





अहिंसा की प्रतिष्ठा के जीते-जागते प्रमाण



अहिंसा भगवती का पुजारी जीवन मे कभी थक कर, निराश होकर नही बैठता। प्रत्युत जहाँ-जहाँ हिंसा का ताण्डव नृत्य होता है, वहाँ-वहाँ वह स्वय चला कर जाता है, लोगो को अहिंसा का चमत्कार बताता है, अहिंसा के प्रत्यक्ष लाभ से लोग उसके प्रति श्रद्धाशील बनते हैं। अहिंसा की महिमा पर उसका पूर्ण विश्वास होता है, इसलिए जहाँ पहली बार सफलता नही मिलती, वहाँ वह दूसरी-तीसरी बार द्विगुणित उत्साह से जाता है और अहिंसा को जन-जीवन मे प्रतिष्ठित कर देता है। निराशा उसके पास नही फटकती, स्वार्थ उसका मार्ग अवरुद्ध नही कर सकता, अविश्वास उसकी प्रगति को रोक नही सकता, बल्कि आशा, नि स्पृहता और विश्वास उसके साथी बन कर अहिंसा की प्रतिष्ठा मे सहयोग देते हैं। अहिंसा की प्रतिष्ठा जहाँ के जन-जीवन मे हो जाती है, वहाँ के शासक चाहे वे राजा रहे हो या ठाकुर, अहिंसा पर अपनी श्रद्धा को प्रमाणित करने के लिए अहिंसा के उस पुजारी के चरणो मे पट्टा (अभिलेख) या शिलालेख अकित करके समर्पित करते हैं।

हमारे चरितनायक प्रवर्तक मुनिश्री पन्नालालजी महाराज भी अहिंसा भगवती के परम पुजारी थे। जहाँ-जहाँ भी हिंसा की जडें जमती हुई देखते, वहाँ-वहाँ अहिंसा की प्रतिष्ठा के लिए पुरुषार्थ करते थे। ऐसे पुण्यकार्य को करते समय निराशा या लोभ ने कभी उन्हे नही घेरा। कही सहसा सफलता न मिलने पर भी उनके मन मे अविश्वास नही पैदा हुआ। फलस्वरूप अहिंसा पर उनके उपदेशो का अचूक प्रभाव पडता था। खासतौर से हिंसाकाण्ड से घिरे उस-उस प्रदेश के राज्यकर्त्ता का हृदय-परिवर्तन आपके उपदेश से प्राय हो जाता था और वह पट्टा या शिलालेख लिख कर आपको अहिंसा पर अपनी श्रद्धा के प्रमाण के रूप मे समर्पित कर देता था। वह पट्टे का समर्पण-ही अहिंसा की प्रतिष्ठा का जीता-जागता प्रमाण होता था।

चरितनायकजी ने अपने जीवन-काल में ऐसे अनेक जागीरदारों, राजाओं और ठाकुरों को अहिंसा का उपदेश दे कर उन्हे सन्मार्ग पर लगाया था, तथा उस कार्य को आपकी प्रेरणा से, उन-उन शासकों ने समग्र राज्य में लागू करने हेतु लिखित पट्टे के रूप में आपको समर्पित किये थे। नीचे हम क्रमश उन पट्टों का विवरण तथा उनकी प्रतिलिपि दे रहे हैं, जिससे पाठकों को चरितनायक द्वारा की गई अहिंसा की प्रतिष्ठा का परिज्ञान हो जायगा।

पट्टा (अभिलेख) देवलियाराज की ओर से

चरितनायकजी अपनी साधु-मर्यादा के अनुसार विजयनगर से विहार करते हुए विक्रम सवत् १९८५ चैत्रसुदी में देवलियाकला पधारे। वहाँ की जनता पर आपका पहले से ही प्रभाव था। इसलिए आपके सदुपदेश से स्थानीय धर्मप्रेमी जनता ने बहुत-सी सामाजिक कुप्रथाओं का त्याग किया। देवलियानरेश पहले से ही आपके व्यक्तित्व से अत्यन्त प्रभावित थे। उन्होंने आपसे आग्रह-पूर्वक प्रार्थना करके अपने किले में सार्वजनिक व्याख्यान करवाए। उन व्याख्यानों से देवलियाकला-नरेश अत्यन्त प्रभावित हुए और उन्होने निम्नलिखित पट्टा लिख कर आपकी सेवा में भेंट किया

प्रतिलिपि पट्टा देवलिया राज

॥ श्री ॥

जैन सम्प्रदाय के महाराज श्री धुलचन्दजी महाराज, श्रीपन्नालालजी महाराज चैत सुदी ४ सवत् हाल को देवलिया मे पधारे। रोजाना दोनु टाइम व्याख्यान हुवा। जिसका जनता पर अच्छा प्रभाव पडा और वैश्यजाति मे बहुत-सी कुप्रथाएँ मेटी। दरबार के आग्रह से राजमहलो मे पधार कर परमेश्वर स्मरण, दया, सत्य, धर्म, राजनीति, वीर क्षत्रिय-धर्म, जीवरक्षा, न्याय आदि विषयो पर प्रभावशाली व्याख्यान दिये, श्रीमहाराज की भेंटार्थ नीचे लिखे नियम हमेशा यथाशक्ति निभाये जायेंगे

(१) हर महीने मे दो ग्यारस, १ अमावस, १ पूर्णिमा, इन चार तिथियो मे शिकार न की जायगी।

(२) मादीन जानवरो की शिकार इरादतन न की जाएगी।

(३) छोटे पक्षियो चिड़ियो की शिकार करते की कमी की जाएगी।

(४) कार्तिक और वैशाख महीने की पचतिथियो में व सराद (श्राद्ध) पक्ष मे भी शिकार न की जायगी और न काम मे लाई जाएगी।

(५) भादवा के महीने मे पजुसणो मे छमछरी के रोज तमाम ईलाके मे अगता रखा जायगा, कोई जानवर नही मारा जायगा, जिसकी मनादी एक रोज पहले कर दी जायगी।

(६) तालाव शिवसागर के अन्दर पानी मे से मछलियाँ व पक्षी, जानवर मारना बन्द था, वो भी हमेशा बन्द रहेगा।

इसकी एक नकल दफ्तर मे रखी जावे और एक महाराज पन्नालालजी के भेंट की जावे। मिती चैत सुदी १५ सं० १९८५, ता० ५-४-२९, गुरुवार।

द० विजयसिंह

पट्टा बनेड़ाराज्य की ओर से

चरितनायकजी का प्रभाव दूर-दूर तक फैला हुआ था ही। विक्रम सवत् १९८८ का चातुर्मास भीलवाडा करने हेतु आप ग्रामानुग्राम विचरण कर रहे थे। रास्ते के गांवो मे जहाँ भी आप पधारते, आपके व्याख्यानो की धूम मच जाती। विहार करते हुए आप बनेडा पधारे। बनेडा-नरेश श्री अमरसिंहजी आपके व्यक्तित्व एव व्याख्यानो से पहले ही प्रभावित थे। अत आपका बनेडा मे आगमन सुन कर वे प्रतिदिन आपके व्याख्यान-श्रवण करने आते थे। आपने अपने व्याख्यानो मे मृत्यु-भोज, जीवरक्षा आदि विषयों पर प्रकाश डाला, जिनसे प्रभावित हो कर उन्होने मृतकभोज न करने की प्रतिज्ञा ली, साथ ही जगल मे गांवो की चराई मे छूट आदि भी करने के लिये वचनबद्ध हुए। इन प्रतिज्ञाओ की सनद के तौर पर आपने चरितनायकजी को एक पट्टा लिख कर भेंट किया। पट्टे की प्रतिलिपि इस प्रकार है

न० २१७० प्रतिलिपि पट्टा बनेडा | छाप मुहर राजबनेडा |

जैन स्थानकवासी आचार्य श्री नानकरामजी महाराज की सम्प्रदाय के मुनि-महाराज श्री पन्नालालजी महाराज का पधारना बनेडा मे हुवा, जिनके प्रभावशाली भाषण के लक्ष से प्रभावित हो उचित समझ कर नीचे माफिक प्रतिज्ञायें की गई हैं, जिनका पालन सदैव होता रहेगा।

(१) परगना बनेडा के हर गांव मे मवेशी चरने वास्ते चरनोट की जमीन रखी गई है, उसमे मवेशी चरेगी, काश्त न होने पावेगी।

(२) रोजाना प्रजा की सुनाई रूबरू की जाती है, जो की जावेगी। कोई भी कष्ट जाहिर होगा, उसको निवारण किया जायगा।

(३) परगने मे दौरा किया जा कर हर शख्स से दुख दर्द का हाल दरयाफ्त किया जावेगा और जो जाहिर होगा, उसका उचित प्रबन्ध किया जावेगा।

(४) करियावर की राजपूतो मे मनाई है, परन्तु ब्राह्मण-भोजन के नाम से जीमन करते है, उसकी भी मनाई कर दी है।

स० १९८८ भाद्र शुक्ला १५ ता० २६-९-३१ ई०

अमरसिंह

पट्टा पीही राज की ओर से

वि० संवत् १९९१ का यशस्वी चातुर्मास ठा० १५ से जोधपुर करके हमारे चरितनायकजी मेडतापट्टी के गावो मे धर्म-प्रचार करते-करते लगभग फाल्गुन मास मे पीही पधारे। पीही आपके पूर्वज साधुओ का धर्मश्रद्धालु और धर्मप्रभावित गांव है। पीही मे जीव-दया पर आपके ओजस्वी प्रवचन हुए। पीही नरेश श्रीमाधोसिंहजी आपके प्रवचनो को बडी तन्मयता के साथ सुनते थे। कुछ दिनो के प्रवचनो से वे इतने प्रभावित हुए कि उन्होने अपने राज्य मे आसोज महीने मे तथा पर्युषण मे जीवहिंसा बन्द रखने का सकल्प किया। और उसका पट्टा नीचे लिखे अनुसार लिख कर दिया

छाप राज पीही ठिकाना	प्रतिलिपि पट्टा पीही	मारवाड ६-३-३५

जैन स्थानकवासी आचार्य श्रीनानकरामजी महाराज की सम्प्रदाय के मुनि-महाराजश्री पन्नालालजी का पधारना पीही मे हुआ। जिनका प्रभावशाली भाषण श्रीजैन-धर्मशाला में हुआ। जिसके सुनने का सौभाग्य हमे भी प्राप्त हुआ। श्री मुनि महाराज के भाषण के लक्ष से प्रभावित हो उचित समझ कर नीचे लिखे माफिक नियम लिये

(१) आसोज के महीने मे सरहदो में हमारी सरहद में जीवहिंसा न की जायगी।

(२) भादवा के महीने मे पजूषणो में जीवहिंसा न की जायगी।

रायवर माधवसिंह
पीही (मारवाड़)

रीयां ठाकुरसाहब की ओर से पट्टा

विक्रम संवत् १९९६ का मसूदा ऐतिहासिक चातुर्मासयापन कर आप ब्यावर आदि धर्मनिष्ठ क्षेत्रो को अपने चरणो से पावन करते हुए मेड़तापट्टी मे पधारे। मेड़ता पट्टी के छोटे-छोटे धर्मभावना से ओतप्रोत गाँवो मे धर्मप्रचार की गंगा बहाते हुए हमारे चरितनायकजी छोटी रीया पधारे। वहाँ आपके प्रभावशाली प्रवचन होते थे। बड़ी-रीयाँ के ठाकुर साहब श्री गणपतसिंहजी ने जब छोटी रीया मे आपके पदार्पण की खबर सुनी तो वे छोटी रीया आपकी सेवा में पहुँचे और आपसे बडी रीयां पधारने की आग्रह-भरी विनति की। आप उनकी आग्रहपूर्ण विनति को ध्यान में रखते हुए बड़ी रीयां पधारे। बडी रीयां के ठाकुर साहब ने आपका भावभीना स्वागत किया। स्थानीय जैन-जैनेतर सभी भावुक लोग आपके प्रवचन दत्तचित्त हो कर सुनते थे। ठाकुर साहब गणपतसिंहजी भी आपके ओजस्वी प्रवचनो का लाभ लेते थे। आपके प्रवचनो से प्रभावित हो कर ठाकुर साहब ने आपके प्रवचन अपने गढ मे करवाये, उनका बहुत अच्छा प्रभाव ठाकुर साहब एवं उनके परिवार पर पड़ा। अत: उन्होंने पाचो तिथियो तथा अन्य पर्व-दिनों मे हिंसा न करने आदि के नियम लिये और उनकी सनद के रूप मे आपको निम्न-लिखित पट्टा लिख कर समर्पित किया

मुहर छाप ठिकाना रीया राज	प्रतिलिपि पट्टा रीयां श्री चतुरभुजजी महाराज सहाय छे

जैन स्थानकवासी आचार्य श्री नानगरामजी महाराज की सम्प्रदाय के मुनि महाराज श्री पन्नालालजी रीयां मे पधारे और अपने शिक्षाप्रद व्याख्यान से जनता पर बहुत अच्छा प्रभाव डाला। आज मुझे भी महाराजजी के व्याख्यान सुनने का सौभाग्य प्राप्त हुआ। आपने राजनीति, जीवरक्षा तथा क्षात्र धर्म पर प्रभावशाली व्याख्यान दिया। श्री महाराज जी की शिक्षा के प्रभाव-स्वरूप मे अग्रलिखित नियम हमेशा यथाशक्ति पालन करने की कोशिश करूंगा

(१) प्रत्येक महीने की दोनो ग्यारस, अमावस्या व पूर्णमासी, इन चारो तिथियो मे शिकार नही की जायगी और न काम मे लाई जायगी ।
(२) कार्तिक व वैशाख के महीनो में पाच तिथियो मे व आश्विन मास के कृष्णपक्ष (श्राद्ध) में शिकार नही की जावेगी और न काम में लाई जायगी ।
(३) भाद्रपद मास मे पजूषणो में हिंसा वन्द और सवत्सरी के दिवस मेरे तमाम गांवो में अगता रखा जायगा, जिसकी इत्तला सब गांवो मे दे दी जायगी ।
(४) मादीन जानवरो की शिकार जान-बूझ कर नही की जावेगी ।
(५) प्रत्येक सोमवार को न शिकार की जावेगी और न काम में लाई जावेगी । फक्त
मिती चैत्र शुक्ला ७ रविवार सवत् १९९६
ता० १४-४-४०

आपका
गणपतसिंह

मेडास ठाकुर साहब की ओर से पट्टा

वडी रीयाँ मे जब प्रवर्तक मुनिश्री के प्रवचन हो रहे थे, उस समय उसी सभा मे सोनानवीश मेडास ठाकुर साहब रणजीतसिंहजी (रीया ठाकुर साहब के पिताजी) भी थे । उन पर भी आपके प्रवचन का बहुत ही गहरा असर हुआ । आपने भी वही जीव-हिंसा-त्याग के सम्बन्ध मे कुछ नियम लिये और उनके प्रमाण के रूप मे उसी समय पट्टा लिख कर भेंट किया, जिसकी प्रतिलिपि इस प्रकार है

प्रतिलिपि ठिकाना मेडास

श्री चतुर्भुज महाराज सहाय छे

जैन स्थानक आचार्य श्री नानगरामजी महाराज की सम्प्रदाय के मुनि महाराज श्री पन्नालालजी रीया से पधारे, तब मुझे भी आपके भाषण सुनने का सौभाग्य प्राप्त हुआ, जो हमारे धर्म-क्षत्रीत्व का कर्त्तव्य करने का वहुत अच्छा उपदेश दिया, जिससे निम्नलिखित विषय मे यथाशक्ति पालन करूंगा ।

(१) प्रत्येक महीने की ग्यारसें दोनु व अमावश एक व पूर्णमासी एक इन चारो तिथियो मे न तो शिकार करूंगा, न काम में लेऊंगा ।
(२) कार्तिक व वैशाख के महीनो की पच तिथियो मे न तो शिकार की जावेगी और न काम में लाई जावेगी ।
(३) आसोज मास के कृष्णपक्ष में सरादो में शिकार नही की जावेगी और न काम में लाई जावेगी ।
(४) भादवा मास के पजूषणो व संवत्सरियो में न तो शिकार की जावेगी और न काम में लाई जावेगी ।
(५) मादीन जानवरो की शिकार जानवूझ कर नही की जावेगी ।
(६) कार्तिक, वैसाख, वो पजूपणो मे शिकार हाथ से नहीं करूगा ।
(७) हिंसात्मक जीव हैं, वो इन शर्तों से वाहर हैं ।
(८) यह प्रवन्ध सवत् १९९७ के वैसाख से ही शुरू कर दिया जायगा । फकत

आपका

ता० १५-४-४० मुताविक मिती चैत्र सुदी ६ सवत् १९९७

परम श्रावक राठौड़ रणजीतसिंह
ठाकुर साहब ठिकाना मेडास

गोयला ठाकुर साहब की ओर से पट्टा

हमारे चरितनायकजी सवत् १९९७ का चातुर्मास जालिया मे पूर्ण करके वहा से विहार करके रास्ते के छोटे-बड़े सभी क्षेत्रो को अपने चरणो से पावन करते हुए ब्यावर पधारे। वहाँ कुछ दिन विराज कर वहाँ से आस-पास के क्षेत्रो मे विहार करते हुए रास्ते मे गोयला ग्राम मे पधारे। वहाँ ठाकुर साहब रणजीतसिंहजी ने आपके प्रवचन-श्रवण का लाभ उठाया। आपके प्रवचन सुन कर वे गद्गद हो गए, और उन्होने अत्यन्त श्रद्धापूर्वक कुछ नियम प्रवर्तक मुनिश्री से स्वीकार किये, और उन नियमो के स्वीकार करने की सनद के रूप मे पट्टा लिख कर भेंट किया, जो इस प्रकार है

प्रतिलिपि ठिकाना गोयला

| मुहर छाप ठिकाना गोयला राज |

नबर १५७

श्री चतुरभुजजी महाराज सहाय छे

जैन स्थानकवासी आचार्य श्री नानगरामजी महाराज की सम्प्रदाय के मुनि महाराज श्री पन्नालालजी गोयला मे पधारे और आपने शिक्षाप्रद व्याख्यान से जनता पर बहुत अच्छा प्रभाव डाला। आज मुझे भी महाराजजी के व्याख्यान सुनने का सौभाग्य प्राप्त हुवा। आपने जीवरक्षा तथा क्षात्र-धर्म पर प्रभावशाली व्याख्यान दिये। श्रीमहाराजजी की शिक्षा के प्रभावस्वरूप मैं निम्नलिखित नियम हमेशा यथाशक्ति पालन करने की कोशिश करूगा

(१) प्रत्येक महीने की दोनूं ग्यारस, अमावस्या को बैलो के ऊपर जूडी नही रखी जावेगी।

(२) कार्तिक व वैशाख के महीनो मे पचतिथियो मे वो पजूषणो व सराधो वो छमछरी के रोज, इन दिनो मे हिंसा नही की जावेगी और न काम मे लाई जावेगी।

(३) मादीन जानवरो की शिकार जानबूझ कर न की जावेगी।

(४) चार महीने चतुर्मास मे यथाशक्ति रात्रि को भोजन नही किया जायगा।
मिती वैसाख वदी १३ सवत् १९९८ का ता० २४-४-४१ ई०।

आपका
रणजीतसिंह
ता० २४–४–४१

देवलियाकलां ठाकुर की ओर से पट्टा

विक्रम सवत् २००० का भीलवाडा वर्षावास समाप्त करके आपने भीलवाडा से विजयनगर तक के बाढग्रस्त क्षेत्रो मे भ्रमण करते हुए जनता को धर्मपालन के उपदेश-पूर्वक आश्वासन दिया। उसी दौरान आप देवलिया कला पधारे। वहाँ के भावुक भक्त ठाकुर श्रीविजयसिंहजी आपके उपदेश चातक की तरह पिपासु बन कर सुनते थे। एक दिन आपने देश मे गायो (गोवश) की दुखद स्थिति का वर्णन करते हुए गोरक्षा पर प्रभावशाली व्याख्यान दिया, जिसे सुन कर ठाकुर साहब विजयसिंहजी ने गोरक्षा के सम्बन्ध मे कुछ नियम लिए, जिसके सबूत के रूप मे उन्होने पट्टा लिख कर हमारे चरितनायकजी को भेंट किया, उसकी प्रतिलिपि इस प्रकार है

प्रतिलिपि ठिकाना देवलिया कलां

छाप राज की

श्री सीतावरजी श्रीरामजी

प्रवर्तक पण्डितरत्न स्वामीजी महाराज जैनमुनि श्री श्री १००८ श्री पन्नालालजी महाराज साहब के उपदेश से हमारे यहां जिन-जिन वीडो का घास कट जायगा, उनकी गायो की गिनती (चराई) न ली जायगी, हमेशा के लिए। मिती फाल्गुन वदी २ सवत् २००० का।

ठा० विजयसिंह,
देवलिया कला

समाज-सुधार-पत्र पंचो के द्वारा भेंट

प्रवर्तक स्वामी श्रीपन्नालालजी महाराज केवल मानवेतर प्राणियो की हिंसा रोक कर ही अहिंसा के पूर्ण पालक नही बन गए, अपितु समाज मे भी आए दिन जन्म-मरण एव विवाहादि प्रसगो पर होने वाली सामाजिक हिंसा को रोकने का भी भरसक प्रयत्न करते थे। वे हमेशा इस बात को सोचा करते थे कि इन कतिपय युगबाह्य, घातक एव परम्परा से मानवहिंसा की पोषक कुरूढियो का पालन करने से समाज अहिंसक कब और कैसे कहला सकता है ? स्थान-स्थान पर मृतक के सम्बन्धियो पर दबाव डाल कर जबरन उनका दिल दुखा कर उनसे मृतभोज कराना कितनी मानसिक एव आर्त्त-रौद्रध्यानवर्द्धक हिंसाजनक कुरूढि है ?

प्रवर्तक पण्डितरत्न पूज्य श्रीपन्नालालजी महाराज विक्रम सवत् १९७८ का चातुर्मास भिणाय पूर्ण करके वहाँ से विहार करके रास्ते के क्षेत्रो मे धर्मदुन्दुभि बजाते हुए विक्रम सवत् १९७९ के प्रारम्भ मे देवलिया, बडली, हुरडा आदि धर्मश्रद्धालु क्षेत्रो मे पधारे। गुरुदेव का प्रवचन इन दिनो समाज-सुधार पर होता था। आप इन दिनो कुरूढियो पर कडा से कडा प्रहार अपने व्याख्यानो मे करते थे। आपके व्याख्यानो का स्थानीय जनता पर सीधा प्रभाव पडता था। एक दिन आपने इन कुरूढियो को सामाजिक हिंसा तक की उपमा दे दी और जैन श्रावको को शीघ्र ही ऐसी घातक कुरूढियाँ छोड देने को कहा। आपने समाज के कर्णधार पचो को व्यक्तिगतरूप से भी समझाया। फलत: कुछ गाँवो के जाति के पच समझ गए और उन्होने समाज सुधार-विषयक कुछ प्रतिज्ञाएँ आपसे ली। उनकी पुष्टि एव चिरकालीन सुदृढ व्यवस्था के हेतु बडेली, हुरडा आदि गाँवो के जाति-पचो ने आपको समाज-सुधार-पत्र लिख कर समर्पित किया, जिनकी प्रतिलिपियाँ हम नीचे क्रमश दे रहे हैं

[१]

प्रतिलिपि समाज-सुधार-पत्र

स्वरूप श्री श्री श्री श्री १००८ श्री श्री श्री धूलमलजी महाराजाधिराज श्री श्री श्री १००७ श्री श्री श्री पन्नालालजी महाराजाधिराज, श्री श्री श्री श्री १००५ श्री श्री श्री छोटूलालजी महाराजाधिराज, श्री श्री श्री श्री १००४ श्री श्री श्री देवीलालजी महाराजाधिराज। अप्रच समाचार एक वाचसी कि महाराजाधिराज श्री श्री १००७ श्री श्री पन्नालालजी महाराज बडली पदारा तरा कलमा ४ को प्रवन्ध हुवो तीरो नकल इण मुजव

(१) जान गया ब्याव मे पाछे टूंटो काडणो नहीं ।

(२) मौत मरगत हुजावे तो तीसरा में नुता दरावणा नही ।

(३) और पचायती कार मे परदेशी मेदा वा घृत वा जल छाण्या विना वापरणो नही ।

(४) तीस वरस की उम्र होकर मर जावे तीरो मोसर करणो नहीं, चीठी फाडणी नही, गाव गावी गोरण कर देणो, ती मयाद ८ वरस का तो कतही सोगन कर दीना छे और आठ वरस आगे जो चोकी मे सोगन हवा जठ नमसी जतर मे भी नमास्यां । चोकी मे न सोगन भेनज तर वठली मे माना नही, ईतरा ही सोगन हुवा छे ।

और महाराज साहव आज दिन हुरडा पदारा छे, लिखी लोढा मोतीलाल की तिखुत्ता का पाठसूं विवी सहित वणा मालूम होसी । नकल चापरसुं आगत-आगत मे लखी छे, सु भूलचूक होव तो माफ करावसी । (स० १९७९ जेठ वदी १४) □

[२]

श्री जिनेन्द्रायनम

स्वामीजी महाराजाधिराज श्री १००८ श्री जोरावरमलजी महाराज, स्वामीजी महाराजाधिराज श्री १००५ श्री पन्नालालजी महाराज आज दिन ठाणा ६ से यहाँ पधारे, मिती जेठ सुदी १ के रोज उन महाराजसाहव के उपदेश से ये सोगन आज मिती सरव जणा भेला हो कर लिखी के वरस तीस की ऊमर का मर्द या औरत मर जावे या इसके नीचे, जिसका करावर चिठी फाड कर नही करे यानी पंच इकट्ठा हो कर उके वारणे चिठी जा कर नही फाडे और कोई वस गाँव गाल करे तो उनकी मरजी । पच लोग उनको कुछ इस वारे मे केण नही करे और वारला गांवा वाला भी अगर इस ऊमर या इस ऊमर नीचे की चीठी समस्त की लेकर आवे तो उनकी मरजी है । पच लोग उनको कुछ इस वारे मे केण नही करे और वारला गांव वाले भी अगर इस ऊमर या इस ऊमर नीचे की चीठी समस्त की लेकर आवे तो वो चीठी नही जेली जावे और नुता देवे तो उनकी मर्जी है, नुता को रोक नही । ये सोगन सवकी मरजी से कीना है, सो इसमे सोगनो की पावन्दी राखें । अगर नही राखे तो वो शख्स धर्म का दोषी और पचो के वरखिलाफ । पच उनके मकान पर नही जावे । सं० १९७९ का जेठ सुदी १ ।

द० वालचन्द चपलोत
द० नन्दलाल
द० मागीलाल
द० सुजानमल चपलोत
द० कन्हैयालाल वावेल
द० नैनमल चपलोत
द० मुरालाल चौधरी
द० वीजैलाल चौधरी
द० वादरसिंह चौधरी
द० वोदलाल वावेल
द० हीरालाल कोठारी
द० हजारीमल चौधरी
द० गुलराज चौधरी

उपर्युक्त अभिलेखो (पट्टो) एव समाज-सुधार-पत्रो से पाठक समझ सकते हैं कि हमारे चरितनायक के दिल मे अहिंसा को समाज एवं राष्ट्र के जनजीवन मे प्रतिष्ठित करने का कितना अधिक अदम्य अथक पुरुषार्थ था !

[३]

आज हमारे यहाँ अहोभाग्य से महाराजाधिराज श्री श्री १००८ नानकरामजी महाराज के सम्प्रदायानुयाई महाराज श्री १००८ श्री पन्नालालजी महाराज पधारे। जिन्होंने राजपूत रावत व अन्य कोमो (जातियो) को अहिंसा और देवता-वलिदान विषय पर उपदेश किये। उनके इस उपदेश को सुन करके हम सब गांवो के लोगो ने, जिनमे से मुख्य लोगो के दस्तखत नीचे लिखे हैं। यहाँ की खांडा की माता (वालोल जाति रावतो की कुलदेवी) के हर साल भैसे और वकरे अमूमन कसरत के साथ काट कर बलिदान चढाते थे। उनको मार कर वलिदान देना हमेशा के लिए आज से वन्द करके एक शिलालेख (सुरअ) खुदवा कर माताजी के मन्दिर के पास रुपवा (स्थापित कर) दिया है, जिसकी नकल आप सज्जनो की सेवा मे उपस्थित करते हैं कि हमारी तरह आप लोग भी इस प्रकार की बुरी प्रथा को वन्द करके हमारे उत्साह को वढायेंगे और खासकर हमारे रावतभाई तो इस विषय पर अवश्य ध्यान देंगे। चूंकि कई ग्रामो मे ऐसी ही हिंसा की प्रथा जारी है। उसको वन्द करके शुभपूजा (वेदोक्त) विधि से देवताओ की पूजापाठ करने की टेव डालना हमारा कर्त्तव्य है, न कि वे-कसूर भैंसे व वकरे आदि को मारना वीर क्षत्रियो का कर्त्तव्य हैं। (दशहरा क्षत्रियो की विद्या की जांच व अस्त्र-शस्त्र की पूजा के लिए है)।

हम सव लोग मिल कर पुष्कररराजजी के ओसवाल भाइयो को धन्यवाद देते हैं कि हमारे शुभ-कार्य की सराहना करते हुए दस रुपये हर साल दशहरा पर माताजी के पूजा व पोशाक वगैरह के दे कर हमारे उत्साह को और भी वढाया है और इसी मौके पर तिलोरा गांव, जो हमारे से डेढ मील पर है, वहां के राजपूत रावत व और जाति के लोगो ने भी ऐसी शर्तों पर चलना स्वीकार किया है। अन्तिम निवेदन यह है कि जहां-जहाँ यह पत्रिका पहुँचे, इस कार्य मे हर गांव व शहर के राजपूत रावत व और जातियां भी इस विपय पर ध्यान दें। ओसवाल भाई भी पुष्कररराज के ओसवाल भाइयो की तरह इस कार्य मे उत्साह दिलावेंगे। ॐ शान्ति शान्ति शान्ति।

[४]

नकल शिलालेख

।। श्री शान्तिनाथ जी ।।

श्रीमान् जैनाचार्य १००८ श्री नानकरामजी महाराज के सम्प्रदायानुयायी मुनिश्री पन्नालालजी महाराज के सदुपदेश से गाँव गनाहेडा मे समस्त जाति के मनुष्यों ने मिल कर यह सौगंध ली है कि हम दशहरा को किसी देवता के लिये भैंसा, वकरा आदि जानवर की हिंसा नही करेंगे। अगर करेंगे तो गऊ मारिया की हत्या चित्तोड मारिया का पाप का भागी होवेंगे। माताजी के कसूरवार होवेंगे।

कसाई, साठिया और सासी को गाय-वैल कभी नही वेचेंगे।

अमावस्या व सुदी ११ को वैलो को नही जोतेंगे। हर दशहरा को १० रुपये माताजी के पूजा, पोशाक सारू देस्या।

स० १९८२ फागुन सुदी ६, गुरुवार।

दस्तखत उन लोगो के जिन्होंने शिलालेख के अनुसार शर्तें स्वीकार की हैं

द० मोती पोकरा, ऊपर लिखे मूजव सही छै।

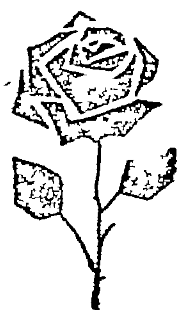
द० माधुर मालि, द० वजरंगसिंह, द० देवीसिंह, द० भँवरसिंह, द० लाखा रावत,

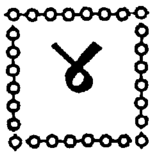
द० भूरा डकाल, द० अम्बालाल, द० कितना नायक, द० गणपतदास शाह।

अँगूठा की निशाणी लाला पटेल (रावत) लाखा पटेल रावत, सिंगू पटेल रावत, काना कालू का रावत, वर्ना केसरा का रावत, भूरा लाखा का रावत, श्रीराम माली, लाला भेलोल, खेतसिंह राजपूत, काना कुँमार, रामा कुँमार, भूरा भाभी आदि निशानियां हर एक घडो से और भी हैं।

इन पट्टो व पत्रो की प्रतिलिपियाँ पढ़ने से यह स्पष्ट प्रतिभासित होता है कि रूढिग्रस्त तथा अज्ञान एव अधविश्वासो से घिरे सर्वसामान्य जन-जीवन मे अहिंसा का दिव्य आलोक फैलाने मे आपश्री कितना अथक परिश्रम किया होगा।

समाज के मुखिया वर्ग को अपनी हृदयग्राही तर्कशैली एव सरल युक्तियो से समझा कर उनसे पशुवलि, हिंसा तथा अन्य रूढियो का परित्याग करवाना, तथा किसी भी प्रकार के वाहरी दवाव डाले विना हृदय-परिवर्तन द्वारा अहिंसा की प्रतिष्ठा करना आपश्री के सामर्थ्य का ही कार्य था। आज भी वे शिलालेख और अहिंसा की कीर्ति-गाथाए आपश्री के जीवन के कण-कण से व्यक्त होती अहिंसा की दिव्यप्रभा-रश्मियाँ हैं।





संगठन के सूत्रधार



मानवजाति संगठन के बिना कोरे कपास के समान है। उस कपास का शरीर-रक्षा की दृष्टि से जैसे कोई खास उपयोग नही होता, वैसे ही संगठनहीन मानव का भी कोई उपयोग नही होता। वह इधर-उधर धक्के खाता रहता है, न उसमे कोई संस्कार हो सकते हैं, और न एक-दूसरे के साथ मिलकर काम करने, एक-दूसरे के दुःख-सुख मे सहभागी बनने और मिल कर समाज की समुन्नति करने की वृत्ति होती है। संगठन के अभाव मे जीवन के नीरस, उपद्रवी, स्वार्थी और संदिग्ध होने की सम्भावना रहती है। उस व्यक्ति पर सहसा कोई विश्वास नही करता, जो अकेला अलग-अलग रहता हो, जीवन के मूल्यो के प्रति जागरूक न हो, और उत्तरदायित्व से रहित हो। संगठनबद्ध जीवन ही उत्तरोत्तर परिष्कृत और सुसंस्कृत-मजा हुआ, सधा हुआ एवं तपा हुआ जीवन होता है। इसीलिए "संघे शक्तिः कलौ युगे" 'कलियुग मे संघ मे शक्ति है' यह कहावत सर्वत्र सुप्रसिद्ध है। बिना संगठन के कोई भी राष्ट्र, धर्मसम्प्रदाय, जाति, कुल या वंश सर्वांगीण उत्थान नही कर सकता।

श्रमणो के संगठन के विषय मे भी यही बात है। जब-जब श्रमणो का संगठन छिन्न-भिन्न हुआ, तब-तब समाज, धर्म एवं राष्ट्र की बहुत बडी क्षति हुई है। इतिहास इस बात का साक्षी है कि प्राचीनकाल मे जब द्वादश-वर्षीय दुष्काल पड़े, तब श्रमण इधर-उधर विभिन्न प्रान्तो एवं दिशाओ मे बिखर गए। इससे सम्यग्ज्ञान का ह्रास हुआ, श्रद्धा-मान्यता एवं प्ररूपणा मे अन्तर आने लगा, आचार-विचार मे भी बहुत अन्तर होने लगा। धीरे-धीरे ये खाईयाँ इतनी चौडी होती गईं कि जैनधर्म के दिगम्बर और श्वेताम्बर नामक दो बडे भेद हो गए और उनमे भी समय-समय पर कई सम्प्रदाय-उपसम्प्रदाय होते चले गये। सत्य की खोज और सत्य की राह लेने के लिए अपनी आत्मा की वफादारी से कोई सम्प्रदाय खडा होता है, तो कोई बुरा नही, किन्तु जब किसी स्वार्थ, पदलिप्सा,

प्रतिष्ठाप्राप्ति, या अन्धश्रद्धा अथवा अन्धपरम्परा के नाम पर खड़ा होता है, तब वह जनजीवन के लिये खतरनाक होता है।

स्थानकवासी सम्प्रदाय के उद्‌भव मे जहाँ तक मेरा जैन इतिहास का अध्ययन है, पूर्वोक्त उद्देश्य ही कारण रहे हैं। वह सत्य की खोज एव धर्म के शुद्ध निराडम्बर आचरण को लेकर प्रकाश मे आया है। इसकी जडो मे त्याग, तप, संयम एव धर्माचरण का सिंचन ही प्रधान रहा है।

स्थानकवासी आम्नाय के प्रवर्त्तक धर्मप्राण लोकाशाह के पश्चात् स्थानकवासी सम्प्रदाय विभिन्न पाच आचार्यों के सघो के रूप मे देश के विभिन्न भागों मे फैला। वे धर्माचार्य थे (१) पूज्य श्रीजीवराजजी महाराज, (२) पूज्य श्रीहरजी महाराज (३) पूज्य धर्मदासजी, (४) पूज्य धर्मसिंहजी और (५) पूज्य लवजी ऋषि।

परन्तु कालान्तर मे इस सम्प्रदाय मे भी विकृतियाँ आने लगी। क्रियाकाण्डो की शुष्कता एव आग्रहवृत्ति या एकान्त दृष्टि ने इसमे दरारें पैदा करनी शुरू कर दी। एक-एक करते धीरे-धीरे बाईस और कहते हैं, बत्तीस उपसम्प्रदायो में यह सम्प्रदाय बँट गया। गुजरात, मारवाड़, मेवाड, ढूँढाड, गोढवाड, कच्छ, काठियावाड, पजाब, थली-प्रदेश, बागड, खादर, आदि अपने-अपने मनोनीत प्राय एक ही प्रान्त मे अपने-अपने टोले कोले कर अमुक-अमुक साधु-साध्वियो का विचरण होने के कारण परम्पराओं और प्ररूपणाओ मे कुछ भिन्नता आने लगी।

जब तक यातायात के साधन अत्यल्प थे, सडकों और नदियो आदि पर पुल इतने नही थे, तब तक एक-दूसरे उपसम्प्रदाय के साधु-साध्वियो या श्रावक-श्राविकाओ का मिलन प्राय: कम होता, और तब तक तो कोई संघर्ष की बात ही नही आई, परस्पर सद्‌भाव रहा। परन्तु जब यातायात के साधन बढे, सडकें और पुल बन गए, एक प्रान्त से दूसरे प्रान्त मे जाने मे अधिक कठिनाइयाँ नही रही, तब अपने सीमित क्षेत्र को छोड़ कर साधु-साध्वी दूर-सुदूर प्रान्तो मे विचरण करने लगे, इससे सकीर्णता तो कम हुई, मगर एक दूसरे उपसम्प्रदाय के साधु-साध्वियो मे जरा-सा भी आचार-विचार का अन्तर सहन नही होता, यहाँ तक सघर्ष बढ जाता कि एक उपसम्प्रदाय के साधु-साध्वियो को दूसरे उपसम्प्रदाय के साधु-साध्वी या श्रावक-श्राविका वन्दन नही करते, आहार भी देने मे हिचकिचाते, साधु नही मानते, ठहरने के लिए स्थान नही देते, व्याख्यानादि सुनने मे भी हिचकिचाते और कभी-कभी तो जम कर सघर्ष होता और वह वाद-विवाद का रूप ले लेता। इसके कारण जो उदार विचार के सुविहित आत्मार्थी साधु-साध्वी या श्रावक-श्राविका उन उपसम्प्रदायो मे होते, उनके हृदय मे बहुत ही दु:ख होता। वे अपनी मनोव्यथा अपने गुरुओ के समक्ष व्यक्त करते तो प्राय यही घडा-घडाया उत्तर मिलता "हम उन शिथिलाचारियो के साथ कैसे मिल सकते हैं, कैसे वन्दन-व्यवहार या आहारादि व्यवहार कर सकते हैं? शास्त्र में विसाम्भोगिक के साथ साम्भोगिक का परस्पर रहना भी निषिद्ध बताया है, तथा शिथिलाचारियो का ससर्ग

भी वर्जित बताया है।" ये और ऐसी ही कुछ बाते शास्त्रो की दुहाई देकर, परम्परा की रट लगा कर प्रचलित की जाती और अपने उपसम्प्रदाय को उत्कृष्ट और दूसरे को निकृष्ट कह कर निन्दा, कटु-आलोचना और छीछालेदर की जाती। यह स्थिति भगवान् महावीर के समग्र जैन सघ की उन्नति तथा साधको के सम्यग्ज्ञान-दर्शन-चारित्र के विकास मे अत्यन्त बाधक थी। एक तरफ तो **'मित्ती मे सव्वभूएसु'** का उद्घोष करें, गृहस्थो के पारस्परिक झगडो और विवादो को मिटाने के लिये मध्यस्थ बन कर प्रयत्न करें, किन्तु दूसरी तरफ वे ही मुनिपुगव हठाग्रही और मताग्रही बन कर अनेकान्त को ताक मे रख कर साम्प्रदायिक झगडो एव संघर्षो को बढा दें, अनेक सघाडे या उपसम्प्रदाय एक हो रहे हो, वहाँ अपने अह के कारण, अपनी साम्प्रदायिक परम्परा की पकड के कारण आचार-विचार-सहिष्णुता को तिलाजलि दे कर ऐक्य मे बाधक बने, यह श्रमण-जीवन के लिए बडा ही दु खद एव विसगत पृष्ठ था।

अनेकता के चित्र-विचित्र रगो मे चित्रित यह पृष्ठ पारस्परिक द्वेष, मनोमालिन्य, कटुता और क्षोभ बढाने वाला बना। इसके कारण धर्म, जो शाति का आधार था, वह अशान्ति का कारण महसूस होने लगा। साम्प्रदायिकता के नाम पर चारो ओर से सिरफुटौव्वल की खबरे आने लगी। शिथिलाचार और भ्रष्टाचार के भी दर्शन होने लगे। स्थानकवासी सम्प्रदाय के अन्तर्गत मामूली बातो को ले कर बढे हुए उग्र मतभेद अब असह्य होने लगे। कुछ उदार विचार के, अनेकान्त को सक्रिय रूप देने के इच्छुक, विचार-आचार-सहिष्णु, आत्मार्थी साधु एव कतिपय समग्र जैनसघ का अभ्युदय एव नि श्रेयस देखने के अभिलाषी उदार श्रावक स्थानकवासी जैन-सम्प्रदाय की इस विषम परिस्थिति को देख कर गम्भीर मथन मे डूब गये। वे विचार करने लगे कि एक ही विशाल सम्प्रदाय मे पडी हुई खाइयो को पाटने के लिए कौन-कौन से उपाय और वे कहाँ-कहाँ से प्रारम्भ करने चाहिए ? अगर मतभेद और साथ ही मनोभेद की यह आग शीघ्र ही नही बुझाई गई तो निकट भविष्य मे वह दिन दूर नही, जब क्रान्ति के अग्रदूत स्थानकवासी सम्प्रदाय का अस्तित्व भी खतरे मे पड जायगा, इसके रहे-सहे गौरव को भी विलुप्त होते देर नही लगेगी। अत' अनेकता की इस बाढ को विनाशलीला पैदा करने से रोकने के लिए अभी से प्रयत्न शुरू कर देने चाहिए।

स्थानकवासी अग्रणियो द्वारा किए गए प्रयत्न

स्थानकवासी समाज मे पडी हुई फूट की दरारो को मिटाने के लिए प्रखर तत्त्ववेत्ता और लेखक श्रीवाडीलाल मोतीलाल शाह (वा० मो० शाह) ने वाणी एव लेखन द्वारा इन सब तथ्यो को वास्तविक रूप मे समाज के समक्ष जाहिर मे प्रस्तुत जरूर किया था, मगर वे उसे सक्रिय रूप नही दे सके। समाज मे किसी भी बात को अमली रूप देने के लिए जब तक साधु-साध्वी वर्ग का प्रश्रय नही मिलता, तब तक उसमे सफलता नही मिलती। वही बात वाडीलाल मोतीलाल शाह द्वारा सार्वजनिक रूप मे अभिव्यक्त विचारो की हुई। साहित्यिक चेतना जरूर आई, पर वह चिनगारी भी क्षणस्थायी रह कर बुझ गई।

अखिल भारतीय स्थानकवासी जैन कान्फ्रेंस के अग्रणी लोग यदा-कदा मीटिंगों में इस पर विचार जरूर करते थे, परन्तु वह विचार आगे नही चल पाता था। कभी-कभी वह 'जैनप्रकाश' के पन्नो पर अवश्य चमक जाता था, लेकिन उस विचार को मूर्तरूप नही मिल पाता था।

फिर ऐसे छुट-पुट प्रयत्नो का कोई ठोस परिणाम नही आता था। वह थोड़े दिन तक वैचारिक ज्योति जला कर फिर बुझ जाता था। लोग पुन अपने-अपने उपसम्प्रदाय के घेरो मे बंद होकर सोचने लगते थे।

कान्फ्रेंस के अग्रगण्यों में साधु-सम्मेलन की लहर

इन सब प्रयत्नो के पश्चात् कॉन्फ्रेंस के अग्रगण्यो ने इस पर पुन: एकजुट हो कर विचार किया।

सन् १९३० के ये वे दिन थे, जब राष्ट्र मे चारो ओर राष्ट्रपिता महात्मा गाँधीजी के नेतृत्व मे स्वतन्त्रता-सग्राम का आन्दोलन छिडा हुआ था, देश की शक्ति आजादी के काम मे लगी हुई थी। चारो ओर जागृति, सगठन और क्रान्ति की आवाजे उठ रही थी। स्थानकवासी समाज के धर्मवीर श्री दुर्लभ जी भाई जौहरी की दृष्टि इस सम्प्रदाय को बढती हुई गिरावट और फूट की ओर गई। उन्होंने सघ-ऐक्य के सम्बन्ध मे चिन्तन-मनन और विचार-विमर्श करना शुरू किया। अ० भा० स्था० जैन कान्फ्रेंस की जनरल कमेटी की मीटिंग हुई। उसमे उन्होने उन सारे तथ्यो को, जो कि गभीर मनन-चिन्तन के पश्चात् दिमाग मे एकत्रित हुए थे, जनरल कमेटी के सदस्यो के समक्ष रखे। सभी लोगों मे ऐक्य की एक लहर उठी, लेकिन सहयोगी के रूप मे सामने आने का किसी का साहस न हुआ। धर्मवीर दुर्लभ जी भाई ने स्थानकवासी सम्प्रदाय और श्रमणवर्ग की गम्भीर स्थिति का जो चित्र खुल्ले शब्दो मे पुन प्रस्तुत किया, उसने तो सबके दिल-दिमाग मे भूकम्प का-सा झटका पैदा कर दिया। कान्फ्रेंस की उसी मीटिंग मे सघ-ऐक्य एव वृहत्साधु-सम्मेलन के लिए जोर-शोर से प्रयत्न करने के सम्बन्ध में प्रस्ताव पारित हुए। समाज के बड़े-बडे स्तम्भो ने इस पुण्यकार्य मे सहयोग देने का आश्वासन दिया। समाज के प्रमुख सन्तो एवं आचार्यो से धर्मवीर श्रीदुर्लभजी भाई आदि डेप्यूटेशन के रूप मे मिले, और प्रभावशाली साधुओ की एक समिति **'साधु सम्मेलन-समिति'** के नाम से गठित की गई।

राजस्थान को स्थानकवासी समाज का गढ कहा जा सकता है। यहाँ छोटे-छोटे गाँवो मे भी स्थानकवासी सम्प्रदाय के लोगो के सैकडो घर मिलेगे। अच्छे-अच्छे प्रतिभावान श्रावक भी इस प्रान्त मे हैं और साधु-साध्वी भी बहुत बडी संख्या मे राजस्थान मे हैं, जिनमे कई विद्वान् विचारक एवं प्रभावशाली सन्त भी हैं।

मरुधरा के विशिष्ट प्रभावशाली संत : प्राज्ञमुनि जी महाराज

मारवाड के सन्तो मे हमारे चरितनायक श्रीपन्नालालजी महाराज का एक विशिष्ट स्थान था। आपका प्रभाव भी मारवाड़ के सन्तो एव श्रावको पर था। आपकी प्रतिभा, प्रज्ञा और मनीषा सदैव संघ की उन्नति के कार्यो मे ओत-प्रोत रहती थी।

पूज्य श्रीनानकरामजी महाराज की उपसम्प्रदाय का शासन-सूत्र भी आपके ही हाथों में था। आप ही को योग्य एवं प्रतिभाशाली समझ कर आपके पूज्य गुरुदेव ने शासन-सूत्र सौंपा था।

यहाँ प्रसंगवश यह कह देना उचित होगा कि विक्रम संवत् १९८६ में अपने पूज्य गुरुदेव श्रीधूलचन्दजी महाराज के सुख-शान्तिपूर्वक चातुर्मास की विनति हमारे चरित-नायक के साथ थावला करने की मान रखी थी, किन्तु जब गुरुदेवश्री पुष्कर पधारे तो उनके पैरों में इतने जोरों का दर्द उठा कि उन्हें आगे बढने से रोक दिया, फलतः विवश हो कर पूज्य गुरुदेव श्रीधूलचन्दजी महाराज को थावला के बदले, पुष्कर ही चातुर्मास करना पड़ा। आप भी उनकी सेवा में साथ ही रहे। चातुर्मास में पूज्य गुरु-देव को श्वास का भयंकर दौरा हुआ और उन्होंने अपना अन्तिम समय निकट आया देख भादवा सुदी १४ को ही संलेखना-संथारा किया और उसी रात को पण्डितमरण-पूर्वक वे दिवंगत हो गये। इस उपसम्प्रदाय में मुनि श्रीपन्नालालजी महाराज ही बड़े थे। अतः गुरुदेव के दिवंगत होने के बाद आप पर ही शासन-सूत्र का भार आ पड़ा था।

संघ-ऐक्य के लिए मन्थन और तदनुरूप सहयोग

यही कारण है कि स्थानकवासी सम्प्रदाय की पूर्वोक्त परिस्थिति को देख-सुन कर आपका हृदय तिलमिला उठता था। विभिन्न छोटी-छोटी इकाइयों में बँटते और पार-स्परिक मनोमालिन्य बढते देख कर तो आपका हृदय और विक्षुब्ध होता रहता था। आप चाहते ही थे कि कुछ उदार विचार के कर्मठ श्रावक संघ-ऐक्य का बीडा उठाएँ तो मैं इसमें भरसक योगदान दूं। अकेले मेरे प्रयत्नों से संघ की समस्या का इतना बड़ा महा-सागर पार होना कठिन है। आपके हृदय में कई दिनों से इस प्रकार का मंथन चल ही रहा था कि कान्फ्रेंस का शिष्ट-मंडल बृहत् साधु-सम्मेलन की योजना ले कर आपके चरणों में पहुँचा। यह शिष्ट-मण्डल आपके लिए तीन दिन के भूखे को भोजन एवं प्यासे को पानी के समान वरदानरूप सिद्ध हुआ।

कान्फ्रेन्स का शिष्टमंडल : प्रवर्त्तक श्री जी की सेवा में

शिष्टमंडल का उद्देश्य आपकी सेवा में पहुँच कर साधु-सम्मेलन के बारे में आपके अनुभव, सुझाव, परामर्श, सक्रिय सहयोग और आशीर्वाद लेना था। जब शिष्टमंडल ने आपके समक्ष विचार प्रस्तुत किये तो आपने सहानुभूति के साथ उनकी बातें सुनी और यह फरमाया—

"वास्तव में यह काम बहुत भगीरथ है। इसमें केवल मेरा ही नहीं, मारवाड, मेवाड, ढूंढाड, गुजरात, पंजाब आदि सभी प्रान्तों में विचरण करने वाले साधु-साध्वियों को सहमत करके उनका सहयोग लेना अनिवार्य होगा। क्योंकि स्थानकवासी-सम्प्रदाय विभिन्न संघाडों में विभिन्न प्रान्तों में फैला हुआ और बंटा हुआ है। सबके अपने-अपने आग्रह हैं। अतः जब तक उन-उन संघाटकों के साधुवर्ग को नहीं मना लिया जाएगा, और जब तक उन्हें संघ-ऐक्य के अनुकूल नहीं बनाया जाएगा, तब तक सम्मेलन की नैया आगे बढनी मुश्किल है। इसलिए सम्मेलन की नैया समस्याओं एवं संघ-ऐक्य के महासागर को तभी सकुशल पार कर सकेगी, जब बीच के तूफान, विघ्न, रुकावटें और मनोमालिन्य के कीचड दूर कर दिये जायेंगे।"

धर्मवीर श्रीदुर्लभजी भाई आदि ने आपसे पूछा "गुरुदेव ! आपकी राय मे हमे क्या करना चाहिए ? वृहत्साधु सम्मेलन से पहले सम्मेलन की भूमिका तैयार करने के लिए कौनसा कदम उठाना चाहिए ? हम आपसे सहयोग और आशीर्वाद दोनों लेने के लिए आये हैं।"

आपने कुछ देर तक मनोमन्थन करने के पश्चात् धीर-गम्भीर वाणी मे फरमाया

माइयो ! सचमुच यह काम बहुत ही भगीरथ है, साथ ही अनेक समस्याओं और विघ्नो से परिपूर्ण है। परन्तु मनुष्य साहस और धैर्य के साथ आगे बढ़े तो उसे रास्ता मिल ही जाता है। आप जिस कार्य को हाथ मे लेना चाहते हैं, उसमे आप कुछ विशिष्ट प्रभावशाली एव अलग-अलग सम्प्रदाय के प्रतिनिधि श्रावको को तो अवश्य लेंगे ही, साथ ही कुछ विशिष्ट साधुओ को, जो अपने-अपने सम्प्रदाय के मनोनीत प्रतिनिधि हो, साथ में अवश्य लीजिये। मेरा सहयोग और आशीर्वाद तो सदैव इस पुण्य कार्य मे रहा है और रहेगा। परन्तु सहसा वृहत्साधु-सम्मेलन करने से तब तक सफलता नही मिलेगी, जब तक विभिन्न सम्प्रदायो की इकाइयो को सघ-ऐक्य के अनुकूल न कर दें तथा कुछ पद-प्रतिष्ठा एव अपनी परम्परागत मान्यता का भी त्याग करना पडे तो सहर्ष तत्पर रहने के लिए तैयार न करदें। अच्छा तो यही होगा कि वृहत्साधु-सम्मेलन के पहले संघ-ऐक्य के अनुकूल मानस बनाने तथा इस वृहत्कार्य को ठोस रूप प्रदान करने के लिए सर्वप्रथम अलग-अलग प्रदेशो मे विचरण करने वाले अलग-अलग उपसम्प्रदायो के प्रतिनिधियो का अलग-अलग क्षेत्र मे प्रान्तीय-सम्मेलन आयोजित किया जाय और तत्पश्चात् जहाँ-जहाँ उपसम्प्रदायो में आपसी फूट की दरारें, हैं, उन्हें समझा-बुझा कर परस्पर समझौता करवा कर मिटाई जाय।"

समागत शिष्टमंडल ने आपके विचारो की सराहना की और तदनुकूल प्रयास करने के लिए आपसे मार्गदर्शन मांगा। आपने यह सुझाव दिया कि मारवाड़ मे विचरण करने वाले विभिन्न उपसम्प्रदायो के साधुसाध्वी-वर्ग का एक सम्मेलन किसी उपयुक्त क्षेत्र मे आयोजित किया जाय। उसमे हमारी (पूज्य नानकरामजी महाराज की) सम्प्रदाय का भी पूरा सहयोग रहेगा।

सभी लोगो ने आपके इस सुझाव को शिरोधार्य किया और आपको मरुधरीय सन्तसम्मेलन का प्रमुख सचालन कार्य सौंपा। पूज्य नानकरामजी महाराज की सम्प्रदाय की ओर से आप मनोनीत प्रतिनिधि तो थे ही। अत: आपने यह कार्य सहर्ष अपने हाथ मे लिया।

अब रहा मरुधरप्रान्तीय सन्तसम्मेलन के स्थल और तिथि का निर्णय ! मरुधरप्रान्तीय सन्तसम्मेलन भविष्य में होने की बात जब आपने मरुधरा के सन्त प्रमुखो से कही तो वे सुन कर हर्ष से गद्गद हो उठे। उन्होंने पाली को इस सम्मेलन के लिए उपयुक्त स्थान समझ कर पाली में ही उक्त सम्मेलन आयोजित करने का सुझाव दिया। शिष्टमण्डल ने परस्पर विचार-विमर्श कर के ता १० मार्च १९३२ तदनुसार विक्रम संवत् १९८८, फाल्गुन सुदी ३ को पाली मे मरुधरीय सन्तसम्मेलन का निश्चय किया।

मरुधरीय सन्त-सम्मेलन के पथ पर

समाज में संगठन का बिगुल बजते ही आपने इसमे पहल की तथा उसके लिए बहुमुखी प्रयत्न शुरू कर दिये। जब से आपने अपनी सम्प्रदाय के शासन की बागडोर संभाली, तब से ही आप सजग प्रहरी की तरह संगठन के लिए जागरूक रहते थे। और कोई भी ऐसा अवसर हाथ से जाने नही देते थे, जो संघ-ऐक्य एवं संगठन से सम्बन्धित हो। आपने अपनी सम्प्रदाय का शासनसूत्र संभालते ही सम्प्रदाय के संगठन को सुदृढ बनाने के लिए प्रयत्न शुरू कर दिया। आपने अपने आज्ञाधीन संत-सतियो के लिए देश-काल को देख कर साधु-जीवन की मौलिक मर्यादाओ को अक्षुण्ण रखने के लिए कुछ नियमोपनियम बनाए।

हमारे चरितनायक पूज्य प्रवर्तक श्रीपन्नालालजी महाराज को पद-प्रतिष्ठा का कोई लोभ नही था। वे देखना चाहते थे स्थानकवासी सम्प्रदाय मे एकता, संप, प्रेम और सद्भावना। अपनी इस अनूठी सद्भावना और लगन के कारण ही आप अपने उपसम्प्रदाय (पूज्य नानकरामजी महाराज की सम्प्रदाय) के नायक बनाए गए। तभी से आपने इस उत्तरदायित्व को निभाने के लिए मरुधरमुनियो के संगठन का स्वप्न संजोया। आपकी सम्प्रदाय भी मरुधर-सम्प्रदायो मे से एक थी। इसलिए संघ-ऐक्य की प्रारम्भिक भूमिका के रूप मे आपने निकट भविष्य मे मरुधरीय सन्त-सम्मेलन की एक योजना बनाई, जिसमे संघ-ऐक्य मे साधक-बाधक सभी मुद्दो पर समन्वयात्मक ढंग से एक रूपरेखा तैयार की। तत्पश्चात् मारवाडी तथा अन्य मरुधर प्रदेश मे विचरण करने वाले अन्य सम्प्रदाय के मुख्य-मुख्य साधु-साध्वियो से सम्पर्क साधा तथा पत्राचार भी किया। आपकी शुभ सूझबूझ से भरी इस हितकर योजना को कौन टालता ?

उस समय मारवाड मे ही प्राय' विचरण करने वाले साधु-साध्वीवर्ग ६ सम्प्रदायो मे बँटे हुए थे। पूज्य जयमलजी महाराज की सम्प्रदाय के प्रवर्तक मुनिश्री हजारीमल-जी महाराज एवं मंत्री श्रीचौथमलजी महाराज थे। पूज्य अमरसिंहजी महाराज की सम्प्रदाय के प्रवर्तक मुनिश्री दयालचंदजी महाराज, मंत्री मुनिश्री ताराचन्दजी महाराज थे। पूज्य स्वामीदास जी महाराज की सम्प्रदाय के प्रवर्तक मुनिश्री फतहचंदजी महाराज थे। पूज्य रेखचंदजी महाराज की सम्प्रदाय के प्रवर्तक मुनिश्री छगनमलजी महाराज, पूज्य चौथमलजी महाराज की सम्प्रदाय के प्रवर्तक श्रीशार्दूलसिंहजी महाराज थे, तथा पूज्य श्री रघुनाथ जी महाराज की सम्प्रदाय के प्रमुख श्री धीरजमल-जी महाराज व घोरतपस्वी श्रीचतुर्भुजजी महाराज तथा श्रीमिश्रीमलजी महाराज आदि थे। इन सभी की सम्मति मरुधरीय सन्त-सम्मेलन के विषय मे आ गई। यह सम्मेलन पाली मे होना निश्चित हुआ था। मुनिश्री मिश्रीमलजी (मरुधर केशरी) महाराज ने इस सम्मेलन का आयोजन कराने का बीडा उठाया।

इधर अ० भा० श्वेताम्बर स्थानकवासी जैन कान्फ्रेंस की योजना भी यह थी कि विभिन्न प्रदेशो मे विचरण करने वाले साधुओ के आगामी बृहत्साधु

सम्मेलन (सर्वप्रान्तीय सन्त-सम्मेलन) की भूमिका के रूप मे अलग-अलग लघु सम्मेलन किये जाय। इसी हेतु से सवत् १९८८ फाल्गुन सुदी ३ गुरुवार ता० १० मार्च १९३२ को पाली मे मारवाड मे विचरण करने वाले सभी उप-सम्प्रदायो के साधुओ का एक मरुधरीय सन्तसम्मेलन होने जा रहा था। हमारे चरितनायक के कदम भी भीलवाडा चातुर्मास-यापन करके हमीरगढ, पहुना, राशमी, चित्तौड, चारभुजा आदि क्षेत्रो को पावन करते हुए उसी ओर बढ रहे थे। रास्ते मे जहाँ-जहाँ भी साधु-साध्वियो से मिलन होता, वहाँ-वहाँ आप स्थानकवासी उपसम्प्रदायो को एकता के सूत्र मे पिरोने के सम्बन्ध मे स्पष्ट शब्दो मे अपने विचार प्रस्तुत करते थे। आपका कहना था कि जैसे भद्रबाहुस्वामी सघ के आह्वान पर अपनी महाप्राण योग साधना छोड कर पाटलिपुत्र मे हुए साधु-सम्मेलन मे पधारे थे, उसी प्रकार प्रत्येक साधु को अपने अन्य कार्यो को गौण करके सघ को एकसूत्र मे ग्रथित करने हेतु अपनी समस्त शक्ति लगा देनी चाहिए। सघ-ऐक्य होगा, तो धर्म की उन्नति होगी, अन्यथा अपनी-अपनी ढपली और अपना-अपना राग अलापने मे सघवृक्ष छिन्न-भिन्न होकर धराशायी हो जायगा, उस पर फिर धर्म के सुफल देखने को नही मिलेगे। आपने उक्त उपसम्प्रदायो के प्रमुख साधुओ को भलीभाति सघ-ऐक्य की बात समझाई। आपका कहना था "सगठन मे मजबूती समान विचार और समान आचार की समाचारी से ही आ सकती है। जब तक संगठन के साथ साधु जीवन के अनुरूप युगानुकूल आचार-विचारो पर ऐकमत्य न हो, तब तक कोरा सगठन किसी मजमून से रहित खाली लिफाफा होगा, ऐसा सगठन चिरस्थायी नही हो सकेगा।"

सभी प्रमुख मरुधर-मुनिवरो ने इस बात मे सहमति प्रगट की और उन्होने पाली मे होने वाले मरुधरीय सन्त-सम्मेलन के सचालन का भार आपको सौपा।

केवल साधु-साध्वियो का नही, श्रावक-श्राविकाओ, (जो कि उनके सम्प्रदायो से बधे हुए होते हैं) का मानस बदलना आवश्यक समझकर जहाँ-जहाँ भी हमारे चरित-नायकजी का पडाव होता, वहाँ-वहाँ वे सार्वजनिक व्याख्यानो मे भी सघ-ऐक्य तथा उससे होने वाले लाभो एव सघ-विघटन से हुई हानियो का विवेचन करते थे। आपकी सर्व-हितकारी ओजस्वी वाणी सहसा श्रोताओ के गले उतर जाती और भावविभोर होकर कहते "सघ मे विघटन होना समाज के लिए दुर्भाग्य का चिह्न है, हम सघ-ऐक्य के हेतु तन-मन-धन से जो भी सहयोग आवश्यक होगा, देने के लिए तत्पर रहेगे। सघ हमारे धर्म का प्राण है। सघ मे छिन्न-भिन्नता धर्म के प्राणो की छिन्न-भिन्नता है। इसलिए आप जो भी आदेश देंगे, हम उसके लिए प्रयत्नशील रहेगे।"

लोगो का आशातीत समर्थन पा कर हमारे चरितनायकजी का उत्साह बढ़ता गया और वे द्विगुणित उत्साह से सघ-ऐक्य की कडियाँ जोडते गए। वास्तव मे पाली का यह सम्मेलन स्थानकवासी जैन समाज के लिए जीवन-मरण का प्रश्न था। इस ऐतिहासिक सम्मेलन के सूत्रधार आप ही थे। आप फाल्गुन सुदी २ को पाली पधारे।

धर्मवीर श्रीदुर्लभजी भाई जौहरी पाली श्रीसंघ से कई बार सम्पर्क साध चुके थे। श्रीसेहसमलजी वालिया, श्रीसिरेमलजी काठेड, श्रीबस्तीमलजी कोठारी, श्री शुक्लचन्दजी लोढा, श्रीगुलाबचन्द जी लोढा आदि श्रावकों एवं युवकों का उत्साह देख कर सभी साधु-साध्वी दंग रह गए। क्योंकि यह मरुधरीय संत-सम्मेलन संघ-ऐक्य का श्रीगणेश था, उसका सिंहद्वार बना था पाली। मरुधरीय संतसम्मेलन की सफलता पर सारे भारत के स्थानकवासी संघ की एकता का दारोमदार था। अत. पूर्व-योजनानुसार सभी मरुधरीय उपसम्प्रदायों के पूर्वोक्त प्रतिनिधि मुनिवर अपने-अपने मुनिगणों के साथ पाली पधार गए।

सम्मेलन का समय आया। मुनि श्रीमिश्रीमलजी महाराज कुछ दिन पहले से पाली पधार गए थे फलत' आपने पाली के श्रावकों और जवानों में जान फूंक दी। सम्मेलन से सात दिन पूर्व तो ऐसा लगने लगा, मानो पाली धर्मपुरी बन गई हो।

मरुधरीय सन्तसम्मेलन पाली में

ता० १०-३-३२ को ठीक समय पर सम्मेलन प्रारम्भ हुआ। सम्मेलन का उद्घाटन-भाषण हमारे चरित्रनायक पूज्य प्रवर्तक श्रीपन्नालालजी महाराज का हुआ। आपका भाषण बडा जोशीला, सामयिक और सोते हुओं को जगाने वाला था। आपने मुनिवरों को सम्बोधित करते हुए कहा

"मैं मुनि महाराजों से प्रार्थना करता हूँ कि हम लोगों को भूतकाल की सब बातें भूल जानी चाहिए। अब सुधरने का समय आ गया है। कारण यह है कि संसार में जैनों की कमी हो रही है, किन्तु इसके साथ ही जैनत्व की वृद्धि हो रही है। आगे चल कर एक समय ऐसा भी आयेगा, जब सारा ही विश्व जैनत्व धारण करेगा। किन्तु यदि जैन न रहे और हम लोगों के सत्य-अहिंसादि सिद्धान्त लोगों ने दूसरों के नाम से धारण किये तो यह स्थिति हम लोगों के लिए अत्यन्त खेदजनक होगी। इसमें धर्मगुरुओं की निर्बलता दिखाई देगी।

शार्दूलसिंह भी क्या कभी गीदड बन सकता है? यदि नहीं, तो आप महावीर के पुत्र हो कर कायर कैसे बनेंगे? बन्धुओ! आप महावीर के पुत्र हैं तो वीर बनिये! शेर के शेर रहिए, पाव-सेर न बनिये। आप श्रावकों के गुरु है, श्रावक आपके गुरु नहीं। परन्तु अफसोस है, श्रावकों के समूह-रूपी बाडे में आपके बन्द होने तथा बात-बात में श्रावकों को बुला-बुला कर उनसे सम्प्रदाय-मोह की बातें करने से आपकी व्यवस्था बिगड गई है। अत इसे सुधारिए। इस बन्धन से छुटकारा पाइये। आपने जब संसार, घरबार वगैरह सब छोड दिया और केवल आत्मार्थ संयम का पालन कर रहे हैं। इस कार्य को पूर्ण करने के लिए मुनियों में जो-जो शारीरिक तथा मानसिक विकार घुसे हों, उन्हे दूर करके विकास की ओर अग्रसर होइए। एक समय वह था, जबकि जैन-मुनियों के प्रभाव से जैन तथा अजैन जगत् थर्राता था। आज हम लोगों की निर्बलता के कारण ऐसी दशा है कि लोग हमारा उपहास करते हैं। जिनके पूर्वज श्री हेमचन्द्राचार्य और सिद्धसेन सरीखे उच्चकोटि के विद्वान् थे, जिनके साहित्य का अधिकांश आज भी अनुपलब्ध है, फिर भी जो कुछ उपलब्ध है, वह इतना श्रेष्ठ है कि अजैन जनता उस साहित्य का अवलोकन बडे आदर और श्रद्धा के साथ करती है। आज हम लोगों में ज्ञान की बडी कमी है। अब आप ऐसा कार्य करके दिखावें, जिससे फूट और वैमनस्य को सदा के लिए तिलांजलि मिले। व्यवहार-निश्चय शुद्ध बन कर संयम की उन्नति के लिए प्रयत्नशील हो।

जो स्वेच्छा से किया जाता है, उसे ही त्याग कहते हैं। अनिच्छा से किया हुआ त्याग, त्याग नही कहलाता।

इस बात को याद रखिये कि अब ससार मे अन्धभक्ति नहीं चल सकेगी। आप लोग परस्पर प्रेमपूर्वक निर्णय कर लीजिए, अन्यथा सत्याग्रह होगा, उस समय हम लोगो को मजबूरन सुधरना ही होगा, मगर तब क्या कीमत रहेगी? हम लोगो को ऐसा कार्य करना चाहिए कि श्रावकवर्ग को बीच मे डालने की कोई आवश्यकता ही न रहे।

श्रावकबन्धुओ! आप लोगो ने भी साधुओ का अनुचित पक्ष ले कर बाडाबदी बढाने मे उनको सहयोग दिया। किन्तु आगे चल कर आप ही को नियम न पालने वाले स्वच्छन्द मुनियो की मुहपत्तियाँ छीननी पडेंगी। ऐसा समय न आये। उससे पहले ही आप-हम साधु-मुनिराजों को एकसूत्र मे सगठित करने का प्रयत्न कीजिए। सघ-ऐक्य के कार्य मे विघ्न-बाधा न डाल कर अनुकूल वातावरण बनाइए।

आप लोगो को भी अपना व्यवहार सुधारना चाहिए। साधु-समाज की उत्पत्ति भी तो श्रावक-समाज से ही है। श्रावकसमाज आदर्श होगा तो मुनिसमाज भी आदर्श ही होगा। दुख है कि दिन मे दो बार 'खामेमि सव्वे जीवा' का पाठ करने वाले और कीडे-मकोडे की रक्षा का ध्यान रखने वाले परस्पर प्रेम का व्यवहार नही रख सकते! मुनिवरो और श्रावको! अब मेरी यही प्रार्थना है कि महासाधु-सम्मेलन के लिए क्षेत्रविशुद्धि कीजिए, क्षेत्रविशुद्धि के कार्य मे अपनी आहुति दीजिए। सुधार का झाडू हाथ मे ले कर जहाँ कही फूट और वैमनस्य-रूपी कूडा-कचरा दीख पडे, उसे साफ कर दीजिए, तथा जैनधर्म को विश्वधर्म बनाइए।

साधु-सम्मेलन, जो एक स्वप्नमात्र समझा जाता था, आज सत्य प्रमाणित हो रहा है। इसके लिए मैं कान्फ्रेंस तथा उसके सूत्र-सचालक श्री दुर्लभजी भाई जौहरी को धन्यवाद देता हूँ। साथ ही मारवाड प्रान्तीय साधु-सम्मेलन करने के लिए श्रीदयालचन्दजी महाराज एव हेमराजजी महाराज ने जो प्रचार-कार्य किया है, उसके लिए इन दोनो महानुभावो का आभार मानता हूँ।

हर्ष का विषय है कि पूज्य श्रीरघुनाथजी महाराज की सम्प्रदाय का सगठन हो गया है। तथा पूज्य श्रीअमरसिंहजी महाराज की सम्प्रदाय का सगठन करने के लिए श्री दयालचन्दजी महाराज, श्रीताराचन्दजी महाराज और श्रीनारायणदासजी महाराज से एक हो जाने की प्रार्थना कर रहा हूँ। शासनदेव इस पुण्यकार्य में हमारी सहायता करें।"

सघऐक्य तथा श्रमणसघ के हित के लिए आपने जो यह जोशीला उद्घाटन भाषण दिया, उससे साधुओ एवं श्रावको मे जोश की एक लहर फैल गई, जिसका असर आज भी असाम्प्रदायिक लोगो पर है। आज तक आपकी वह सिंहगर्जना स्मृतिपटल पर अटल है।

पाली के इस मरुधरीय सन्तसम्मेलन की कार्यवाही चार दिन तक चली। चारो ही दिन आपने सघ-ऐक्य से सम्बन्धित विविध पहलुओ पर बारीकी से चर्चा की और बृहत्-साधु-सम्मेलन की भूमिका, साधु-साध्वियो का मानस, श्रावकवर्ग का रुख और मर्यादा पर स्पष्ट चेतावनी दी। जिस समय आप बोलते थे, उस समय ऐसा लगता था, आपके हृदय में भगवान् बोल रहे हो।

चौथे दिन ता० १३-३-३२ को आपका सम्मेलन का समापन-प्रवचन हुआ, जिसमे आपने साधुओ के पारस्परिक प्रेमसम्मेलन की सफलता, श्रीसंघ के उत्साह और इस आनन्दपूर्ण वातावरण की चर्चा करते हुए कहा

"मूल सूत्र बत्तीस हैं और उन्ही के समान सामाजिक सूत्ररूपी ये बत्तीस मुनिराज विराजमान हैं। हम लोगो में परस्पर प्रेम है और हमारी आत्माओ मे प्रेम के झरने बह रहे हैं। पाली का यह सद्भाग्य है कि उसमे यह पुण्य-सम्मेलनकार्य सम्पन्न हुआ। अस्तु,

स्वदेशी वस्तु मे पवित्रता होती है। मारवाडी साधुसमाज देशी शक्कर के समान है, जिसने इस सम्मेलन रूपी भट्टी पर चढ कर अपना सब मैल दूर कर लिया है और शुद्ध तथा पवित्र ओले तैयार कर लिए हैं।

पहले साधु-समाज सोना था, पर बीच मे रागा मिल गया, अब पुन उस मैल को इस सम्मेलन ने दूर कर दिया, जिससे वह फिर सौ टच का सोना हो गया है।

साधु-समाजरूपी शेर अब तक मोहनिद्रा मे सोया था, और अपनी शक्ति को भूल गया था। लेकिन कान्फ्रेंसरूपी महादेवी ने उसे सम्बोधित करके कहा "शेर! सोते क्यो हो? आप तो शेर हैं, जागिए!"

"हम लोगो ने मन को जीता है। एक मन मे ४० सेर होते हैं, जिसने मन (४० शेरो) को जीता है, वह अब निद्रित क्यो है? अब मुनिमण्डल-रूपी सिह को जागृत होना है और सगठित हो कर चलना है।"

"प्रिय मुनिमहाराजो! इस सम्मेलन मे आपने कई उत्तमोत्तम प्रस्ताव पास किये हैं। जो आनन्द कार्य को प्रारम्भ करने मे है, उससे भी अधिक आनन्द उस कार्य को पूर्ण करने मे तथा उसका निर्वाह करने मे है। मुनिराजो! याद रखिए! आपने जो नियम बनाये हैं, जैसे भी हो सके, उनका पालन कीजिए। तभी सम्मेलन की पूर्ण सफलता समझी जायेगी।"

"अहो! कल मुनिमण्डल ने प्रीतिभोज किया। जो आनन्द कल के आहार मे आया, वैसा आनन्द आज तक नही आया होगा। यों तो प्रति वर्ष होली आती है, किन्तु इस वर्ष की होली मे हमने फूट, कलह, वैमनस्य, शिथिलाचार आदि का होम कर दिया है।"

इसके पश्चात् समस्त मुनिमण्डल ने एव आपने सभा मे विराजित साध्वियो को लक्ष्य करके कहा "मुनि महाराजो ने जो नियम बनाए हैं, उनके विपरीत जो आर्याजी (साध्वीजी) अपने प्रवर्तक मुनिश्री की आज्ञा का या नियम का उल्लघन करेंगी, उनके साथ असहयोग किया जाएगा।"[1]

इसके पश्चात् आपने सम्मेलन मे पारित हुए नियमो का सम्यक् प्रकारेण पालन करने की मुनियो से जोरदार शब्दो मे अपील की।

तदनन्तर आपने पाली-सघ को शीघ्रातिशीघ्र पाठशाला की स्थापना करने का उपदेश दिया।

आपके प्रभावशाली प्रवचन से प्रभावित हो कर श्रावको ने व्याख्यान मे ही ऐसी प्रतिज्ञा की

"हम लोग इस सम्मेलन व सगठन मे पूर्ण सहयोग देगे। किसी का भी पक्षपात नही करेंगे। तथा जो इस सगठन मे सम्मिलित नही होंगे, हम उनका बहिष्कार करेंगे।"

१ 'साधु-सम्मेलन का इतिहास' पृ ६८,६६ पर प्रकाशित

आपकी वाणी और व्यक्तित्व का असर क्यो न होता, जबकि आप संगठन को अपने प्राणो से बढकर समझते थे, संघ-ऐक्य के प्रबल समर्थक थे, तथा मनसा, वाचा, कर्मणा सदा संगठन की वीणा बजाते रहे।

पाली के इस सम्मेलन मे संगठन की दृष्टि से सफलता का बहुत कुछ श्रेय आप ही को है, जिनके अहर्निश प्रयत्न से मरुधरीय सन्तसम्मेलन का नद सकुशल पार हुआ।

आपके प्रबल प्रयत्नो से प्रभावित हो कर इसी सम्मेलन मे आपको 'प्रवर्तक पद' से विभूषित किया गया। संगठन की दृष्टि से आप पर अखण्ड विश्वास रख कर संघ ने अपना कर्तव्य निभाया।

सभी संत जिस जोश और उत्साह से पाली पधारे थे, उससे सवाये जोश एवं उत्साह से संघसेवा की भावना लेकर विदा हुए। प्रवर्तक मुनिश्री ने अजमेर की ओर विहार किया तथा शेष सन्तो ने विभिन्न दिशाओ मे बाहर से पधारने वाले संत-अतिथियो का स्वागत करने तथा अजमेर पहुँचाने के लिए विहार कर दिया।

वृहत्साधु-सम्मेलन का चक्र गतिमान

पाली मे मरुधरीय सन्त सम्मेलन सफलतापूर्वक सम्पन्न होने के बाद कॉन्फ्रेन्स के अग्रणी नेताओ ने आपकी सक्रिय कर्मठता प्रत्यक्ष देख ली थी, अत अब विचार यह चल रहा था कि वृहत्साधु-सम्मेलन कहाँ रखा जाय ?

हमारे चरितनायकजी ने अजमेर के भक्तो से बात की। योजना बनाई तथा निश्चय की सूचना साधु-सम्मेलन-समिति के मानदमंत्री धर्मवीर श्रीदुर्लभजी भाई जौहरी के पास भेजी। जिस दिन वृहत्साधुसम्मेलन के स्थान के विषय मे निर्णय लिया जाने वाला था, उसी रोज आपकी प्रेरणा से अजमेर से प्रभावशाली श्रावको का एक शिष्टमंडल पहुँचा। सभी प्रमुख लोगो पर पूज्य प्रवर्तकश्रीजी ने दबाव डाल कर वृहत्साधुसम्मेलन अजमेर मे करने के निश्चय का प्रस्ताव पारित करवाया। वृहत्साधु-सम्मेलन की चर्चा के प्रारम्भ (पाली मे मरुधरीय सन्त सम्मेलन के समय) से ले कर वृहत्साधुसम्मेलन, अजमेर की पूर्णाहुति तक प्रवर्तक मुनिश्री पन्नालालजी महाराज के दिल, दिमाग, वचन और तन का एक मिनिट भी ऐसा नही निकला होगा, जब साधुसम्मेलन की सफलता का विचार न रहा हो।

यही कारण है कि अजमेर मे सम्मेलन का निश्चय होते ही आपका विचरण अजमेर के समीपवर्ती क्षेत्रो मे चलता रहा। अजमेर में आप ही की खास प्रेरणा से सम्मेलन होना तय हुआ था, इसलिए आप अपनी अन्तःस्फुरणा, उत्तरदायित्व एवं कर्तव्य भावना से सम्मेलन को सफल बनाने के प्रयत्न कर रहे थे।

विक्रम संवत् १९८९ का चातुर्मास भी आपने अजमेर के समीपवर्ती किशनगढ मे किया। इस चातुर्मास मे भी आपने पंजाब, उत्तरप्रदेश, मध्यप्रदेश, राजस्थान, गुजरात, महाराष्ट्र आदि प्रान्तो में विचरण करने वाले सभी प्रमुख साधु-साध्वियो के

चातुर्मास का जैन प्रकाश आदि पत्रो से पता लगा कर संघ-ऐक्य के इस महायज्ञ मे अपना सहयोग देने, अपने-अपने सम्प्रदाय के मनोनीत प्रतिनिधियो को तैयार करने, साधु-समाचारी-विषयक तालिका बनाने एव मतभेद के मुद्दो को तैयार करने के लिए समस्त प्रमुख एव पदाधिकारी साधु-साध्वियो को पत्र लिखवाये । पत्राचार के माध्यम से आपने सभी प्रमुख साधुओ को सम्मेलन के अनुकूल बनाया और सम्मेलन मे पधारने की स्वीकृति प्राप्त की। इस प्रकार वृहत्साधुसम्मेलन की भूमिका-शुद्धि के लिए आपके प्रयत्न तेजी से चालू हो गए।

किशनगढ का सारा चातुर्मास आपके द्वारा सम्मेलन के लिए ठोस प्रयत्नो से परिपूर्ण रहा। स्थानीय श्रावकसमाज को भी सघ-ऐक्य के बारे मे प्रवचन-श्रवण का लाभ मिला। अजमेरसघ के श्रावको मे से उत्साही वृद्धो, प्रौढो एव युवको का एक सगठन बनाकर सम्मेलन से सम्बन्धित कार्यों की जिम्मेवारी उन पर डाली गई।

चातुर्मास सानन्द सम्पन्न हुआ। चातुर्मास के बाद विविध प्रान्तो से दूर-सुदूर से पधारने वाले सन्तो के स्वागत के लिए एक व्यवस्था बनाई और किन-किन सन्तो को किन-किन सन्तो के स्वागतार्थ किस ओर विहार करना है, इसका दिशानिर्देश भी आपने दिया। पाली के मरुधरीय सन्तसम्मेलन से ही मरुधरीय मुनिमण्डल आपके सकेतो पर सघ-ऐक्य की दिशा मे, संघ सेवा के पुनीत कार्यों मे आगे बढ रहा था। आपके दिशानिर्देशन के अनुसार कुछ सन्त सौराष्ट्र-गुजरात से पधारने वाले सन्तो के स्वागतार्थ दक्षिण-पश्चिम मे पालनपुर तक पहुँचे। कुछ सन्त उत्तर-पूर्व मे जयपुर तक पजाब एव यमुनापार से आने वाले सन्तो के स्वागतार्थ पहुँचे। कुछ सन्त मध्यप्रदेश से आने वाले मुनियो की अगवानी के लिए चित्तौड उदयपुर आदि तक पहुँचे। इस प्रकार सन्तो की विभिन्न मडलियाँ साधु-सम्मेलन मे पधारने वाले मुनिवरो की सेवा एव स्वागत के लिए आपने वात्सल्य-भाव से भेजी। उसका परिणाम भी बहुत सुन्दर आया।

अजमेर मे होने वाले आगामी वृहत्साधुसम्मेलन की तिथि विक्रम सवत् १९९० चैत्र शुक्ला १० तदनुसार दिनाक ५ अप्रेल १९३३ निश्चित कर दी गई थी।

सम्मेलन की सफलता के लिए अथक प्रयास

सम्मेलन से पूर्व प्रवर्तक श्री पन्नालाल जी महाराज को श्रमण-देवो को मनाने एव उनके आन्तरिक एव पारस्परिक मतभेदो को शान्त कराने के लिए अजमेर और ब्यावर के बीच मे अनेक बार इतस्तत दौडधूप करनी पडी। कभी जैनाचार्य श्री जवाहरलाल जी महाराज की सेवा में जेठाणा पहुँचे, तो कभी जैनाचार्य श्री मन्नालालजी महाराज की सेवा मे ब्यावर पहुँचे। इस दौडधूप का उद्देश्य कोई निजी स्वार्थ सिद्ध करना या किसी पद-प्रतिष्ठा की लिप्सा कतई नही था, वह था श्रमणो को एकसूत्र मे सगठित करना, उनमे प्रेमभाव बढ़ाकर पारस्परिक विवादो एव मतभेदो को समाप्त कराना एव सघ-ऐक्य की ज्योति जलाना। पारस्परिक मतभेदो को मिटाने

मे मध्यस्थता के लिए कभी मुनिश्री मणिलालजी महाराज एवं कभी शतावधानी प मुनि श्रीरत्नचन्द्रजी महाराज आदि सन्तो के पास आपको सुदूर स्थान पर भी पहुँचना पडा। इन दिनो मे कई बार आपको उपवास करना पड़ता तो कई बार समय पर आहार-पानी करने का अवकाश भी न मिला। मतलब यह है कि अपने शरीर की तनिक भी परवाह न करते हुए एकमात्र श्रमण-सगठन एव सघहित के लिए श्रमणो के पारस्परिक मतभेदो को मिटाने हेतु आप जी-जान से जुटे हुए थे। सम्मेलन की अथ से इति तक की सारी कार्यवाही आपकी इसी सद्भावना से अनुप्राणित रही।

अजमेर के बृहत्साधु सम्मेलन में

सवत् १९९० चैत्र शुक्ला १० गुरुवार, तदनुसार ५ अप्रेल १९३३ का ठीक समय पर अजमेर के बृहत्साधुसम्मेलन की कार्यवाही प्रारम्भ हुई। दिग्गज आचार्यो, घोर तपस्वियो, उच्चक्रियाकाण्डियो, प्रवर्तको, गणियो, उपाध्यायो एव विशिष्ट मुनियो आदि सभी का शुभागमन हुआ। एक हजार के करीब साधुसाध्वियो एवं एक लाख से अधिक श्रावक-श्राविकाओ की व्यवस्था करना टेढी खीर थी। किन्तु प्रवर्तकश्रीजी महाराज को मार्गदर्शन, अजमेर श्रीसघ के जोश-लगन एव उत्साह तथा साधु-सम्मेलन-समिति के प्रयत्न थे। इसलिए बहुत ही प्रसन्नता के वातावरण मे साधु-सम्मेलन का कार्यारम्भ हुआ। सम्मेलन की दूसरे दिन की कार्यवाही के समय आपश्री ने अपना सक्षिप्त व्यक्तव्य[1] दिया। वह इस प्रकार है—

"आज सवेरे से, पक्खी सवत्सरी इत्यादि विषयो की ही चर्चा हो रही है। इस प्रश्न का शीघ्र ही सर्वानुमति से निर्णय हो जाय, यही ईष्ट है। इस विषय मे मैं यह कहना चाहता हूँ कि चातुर्मास प्रारम्भ होने के पश्चात् ४९ वें या ५० वें दिन सवत्सरी होनी ही चाहिए। और फिर ६९ या ७० दिन शेष रह जाते हैं। इस तरह दिन की घटा-बढी तो जब अधिक मास आता है, तब होती ही रहती है। तो मेरा यह कथन है कि पहला दोष टालना चाहिए, अर्थात् सवत्सरी तो निर्णीत होनी ही चाहिए। इस सम्बन्ध मे प्रत्यक्ष प्रमाण को प्रधानता दी जानी चाहिए। कारण कि कितनी ही वस्तुएँ, ग्रह आदि दीखते हैं या नहीं ? तो ऐसी बात स्पष्ट होने पर भी वहाँ क्या बाधा है ? शास्त्रो मे इस सम्बन्ध मे जो बातें कही गई हैं, वे सूर्य-चन्द्रमा के लिए ही हैं। ग्रह-नक्षत्रो के लिए कहने की उन परम-पुरुषो को कुछ आवश्यकता ही नही पडी। मेरा मन्तव्य यह है कि चातुर्मास बैठने के पश्चात् ४९ या ५० वें दिन सवत्सरी अवश्य मानो, तो बाधा दोष नही लगेगा। भले ही आश्विन दो हो, तो भी इस तरह लेने से अगला दोष आने की सम्भावना नही रहेगी।"

इतना कहकर अपना स्थान लेने से पूर्व, आप सबके समक्ष यह निवेदन करता हूँ कि सवत्सरी, पक्खी आदि तिथि निर्णय के लिए कोई कमेटी नियुक्त हो अथवा किसी दूसरी तरह से इस प्रश्न का समाधान हो तो अच्छा ही है। किन्तु जो प्रश्न हाथ में लिया जाय, वह शीघ्र ही समाप्त कर दिया जाय, यह वाछनीय है। इस सम्बन्ध मे हमारे गुरुदेव को बडा अच्छा ज्ञान था। यह बात सभी जानते है। अत. यदि उनके पानो (पन्नो) की भी इस कार्य के लिए सेवा मे आवश्यकता पडे, तो मैं दे सकता हूँ।"

१ साधुसम्मेलन का इतिहास' (लि० धर्मवीर दुर्लभजी भाई जौहरी, सम्पादक चिम्मनसिंहजी लोढा) के पृष्ठ ३१९ से उद्धृत।

इसके बाद कई प्रमुख मुनियों ने अपना-अपना वक्तव्य दिया, और अन्त मे तिथि-पर्वसम्बन्धी एव समाचारी-सम्बन्धी विवादास्पद मुद्दो पर सर्वानुमति से निर्णय करने के लिए सम्मेलन के मूर्धन्य मुनिवरो ने दो समितियो का गठन कर दिया। **'तिथि-पर्व-निर्णायक समिति'** एव **'समाचारीनिर्माण-समिति'**। इन दोनो समितियो के आपश्री मुख्य सदस्य चुने गए। सम्मेलन मे विविध विषयो को प्रस्तुत करने हेतु एक **'विषयविचारिणी-समिति'** बनी, जिसके अन्य साधु सदस्यो मे एक आप भी निर्वाचित किये गए।

साधुसम्मेलन के नौवें दिन अर्थात् १३-४-३३ को मध्यान्ह मे सम्मेलन की कार्यवाही प्रारम्भ हुई। उसमे सर्वप्रथम पूज्य श्री जवाहरलाल जी महाराज, प मुनिश्री समर्थमल जी महाराज, शतावधानी प मुनिश्री रत्नचन्द्रजी महाराज एव तत्कालीन युवाचार्य श्री काशीरामजी महाराज आदि ने एकान्त मे बैठकर अनेक बातो को नोट किया। और उन पर विचार करके शय्या (वसति) निर्णय के निमित्त उन बातो को सभा मे पेश किया। किन्तु प मुनि श्री पन्नालालजी महाराज ने उचित शब्दो मे उस योजना का विरोध किया, और सभा ने भी उस योजना को अस्वीकृत कर दिया।

इसके बाद सभा के समक्ष निम्नोक्त प्रस्ताव रखा गया —

"साधु साध्वियो के लिए शय्या (वसति=निवासस्थान) का निर्णय होना चाहिए।"

प्रस्तावक मुनिश्री चैनमलजी महाराज

अनुमोदक सर्वसभासद्गण

इस पर विचार-विमर्श के बाद निर्णय हुआ कि

(३५) जो मकान श्रावको के धर्मध्यान के लिए बना हो, उसका नाम व्यवहार मे चाहे जो हो, उस प्रकार के निर्दोष मकान का निर्णय करने के पश्चात् मुनि वहाँ उतर (ठहर) सकते हैं। ऐसे मकान मे उतरने वालो और नही उतरने वालो को, परस्पर एक-दूसरे की टीका नही करनी चाहिए। सर्वानुमति से स्वीकृत

दशवें दिन ता १४-४-३३ की प्रात कालीन कार्यवाही मे समाचारी के प्रश्न पर चल रही चर्चा मे आपने कहा "यह आप क्या कह रहे हैं कि पहले समाचारी की रचना करो तो हम लोग परस्पर सम्भोग (साम्भोगिक साधुओ मे परस्पर होने वाला वन्दना, भोजन आदि का व्यवहार) खोलें। उत्तराध्ययन सूत्र के २३ वें अध्ययन मे केशी और गौतम की समाचारी समान न होते हुए भी उनमे (मिलते ही) पारस्परिक आसनादि देने का व्यवहार हुआ था या नही ? प्रिय महानुभावो ! वही आदर्श हमे यहा उपस्थित करना चाहिए। यदि हम लोगो मे पारस्परिक प्रेम उत्पन्न हो गया तो समाचारी समान होने मे कुछ भी कठिनाई न होगी।[1]

इस प्रकार अजमेर का बृहत् साधुसम्मेलन प्रवर्तक श्री जी महाराज के परम योगदान से अत्यन्त सौहार्द्रपूर्ण वातावरण मे सम्पन्न हुआ। प्रवर्तकश्रीजी महाराज के

१ साधुसम्मेलन का इतिहास, पृष्ठ ३४६ एव ३५० से उद्धृत।

मार्गदर्शन, अजमेर श्री सघ के उत्साह एव लगन तथा साधुसम्मेलन समिति के प्रयासो से शान और सफलता के साथ साधुसम्मेलन की पूर्णाहुति हुई। इस सम्मेलन मे सभी साध्वियो मे नई चेतना, नई स्फुरणा, नव उत्साह और आशा का सचार हुआ। सभी के चेहरे पर प्रसन्नता थी। साधुसाध्वियो ने मिलकर जो कुछ निर्णय किया वह भी असाधारण और महत्त्वपूर्ण था। सबने प्रमुख साधुओ को समाचारी के पालन का आश्वासन दिया और प्रसन्नता के साथ सभी ने अपने-अपने गन्तव्य की ओर विहार किया।

साधुसम्मेलन के समय का वातावरण

उन दिनो अजमेर मे सर्वत्र साधुसम्मेलन की चर्चा थी। वह स्थान, जहाँ प्रवर्तक श्रीजी ठहरे हुए थे, धर्मचर्चा का केन्द्र बना हुआ था। बड़े-बड़े धनाढ्य एव अग्रगण्य श्रावक एक मास पूर्व ही सपरिवार आकर यहाँ बस गए थे। उनकी ओर से बाकायदा चौके चल रहे थे। जिधर देखो, उधर ही सन्तसतियो के झुंड दिखाई पडते थे। अनेक सन्तो ने नम्रतापूर्वक सघ-ऐक्य की बात पर चर्चाएं की, अनेक सत अपने साम्प्रदायिक अहकार और परम्परागत रूढियो को मिटाने के लिए तैयार हुए। कई सतो के हृदय-परिवर्तन हुए। किसी तरह समझा-बुझा कर एक बडी सम्प्रदाय की दो पार्टियो मे एकता करवा कर सफलता जाहिर की। देश के अनेक दार्शनिको, विद्वानो एव पत्रकारो ने इस महासम्मेलन पर लम्बी-चौडी टिप्पणियाँ तथा लेख लिखे। पुष्करतीर्थ का तथा ख्वाजा-साहब का मेला भी इस महामेले के आगे फीका था।

यह सब किसकी कृपा का फल था ? प्रवर्तक मुनिश्री पन्नालाल जी महाराज तथा वहाँ के श्रावको की लगन का। यदि प्रवर्तक मुनिश्री पन्नालालजी महाराज ने इस बृहत्-सम्मेलन की सुव्यवस्था के लिए अपने भक्तो को तैयार न किया होता तथा उन्होंने ईमानदारी, कर्त्तव्यनिष्ठा तथा लगन से काम न किया होता तो यह शुभ दिन कदापि देखने को न मिलता। अजमेर की लाखनकोटडी और मुम्वैयो का नौहरा ऐतिहासिक स्मृति की चीजे बन गईं। अगर प्रवर्तक श्रीजी महाराज के दिल-दिमाग मे सघ-ऐक्य की भावना न होती तो यह सौभाग्य अजमेर को कदापि न मिलता। इस सम्मेलन मे आपने जी जान से जो सेवाएँ दी हैं साधु-सम्मेलन ने उनकी बहुत कद्र की। आपकी वे सेवाएँ आज भी इतिहास के पन्नो पर स्वर्णाक्षरो मे अकित है एवं युगो-युगो तक चिरस्मरणीय रहेगी।

संघ-ऐक्य के महारथी को प्रशस्ति

उस समय की स्थिति का आकलन कर सघैक्य के सम्बन्ध मे आपकी दक्षता, समाज सेवा, अनुभव, लगन आदि गुणो को लेकर मरुधर के आचार्य स्व० श्री जयमल्ल जी महाराज की सम्प्रदाय के स्वामी श्री रावतमल जी महाराज ने आपका दो कवित्तो मे गुणगान किया है

[१]

गच्छ गच्छ मोहि दच्छ, पण्डित प्रतच्छ पर,
वक्ता विवेकी वीर तो सम घना नही।
दुखी दीनजनो के सहायक उपायक है,
उक्ति अनोखी चोखी दूषितपना नही।
जाको कर झाल्यो तिन्हे नेह से निभायो नाथ।
प्रेम के पुजारीपन विरोधी बना नही।
मरुधर, मालव, मेवाड मुनिमण्डल मे।
जननी जगत माय पन्ना-सा जना नही॥

[२]

देशी और विदेशी नानावेषी नरझुण्ड बीच
सम्मेलन समै दिल खोल दृढ दट्यो तू।
होती जहा हमेश वटवृक्षतल बहस,
हिम्मत है नामी हितभाव ते न हट्यो तू॥
आज लौ समाज मे ओ गाज औ सुकाज किए
कहके कदापि नेक वैण ते न नट्यो तू।
वसुधा मे विद्वत्ता बढाई छाई छोनी माय
कीरती सदाई खूब तेज तेन घट्यो तू॥

संघ-प्रेम के हेतु संयुक्त चातुर्मास

विक्रम सवत् १९९१ मे जब प्रवर्त्तक श्री महाराज नसीराबाद मे विराजमान थे, उस समय जोधपुर श्रावक सघ का शिष्ट-मण्डल आपके पास आगामी चातुर्मास की विनती लेकर पहुँचा। जोधपुर मे तेरापथी आचार्य श्री कालूराम जी म० का चौमासा निश्चित हो चुका था। स्थानकवासी समाज भी अपने प्रभावशाली सतो का चातुर्मास जोधपुर मे कराना चाहता था। अत' आपसे आग्रहपूर्वक अनुरोध किया। साथ ही मरुधरीय सन्तो का भी विशेष आग्रह था, सयुक्त चातुर्मास के लिए। आपने द्रव्य-क्षेत्र-काल-भाव को देखते हुए सघ-प्रेम की दृष्टि से मरुधरीय सन्तो के साथ चातुर्मास करने की स्वीकृति दे दी। फलतः मरुधरमुनियो के साथ विक्रम सवत् १९९१ का आपका चातुर्मास ठा० १५ से जोधपुर मे हुआ। ठा० १५ इस प्रकार थे

प्रवर्त्तक पूज्य श्री पन्नालाल जी महाराज ठाणा २
स्वामी श्री हजारीमल जी महाराज ठाणा ३
स्वामी श्री चौथमल जी महाराज ठाणा ३
स्वामी श्री शार्दूलसिंह जी महाराज ठाणा ३
स्वामी श्री फतहचन्द जी महाराज ठाणा ३
स्वामी श्री मिश्रीमल जी महाराज ठाणा १

इस सयुक्त चातुर्मास मे प्रमुख वक्ता एव नेता आप ही थे। चार ही महीनो तक दयादान विषय पर आपके प्रवचन होते रहे। उन प्रवचनो का आज भी तात्कालीन श्रावक-वर्ग पर प्रभाव विद्यमान है।

इस सयुक्त चातुर्मास से सघ-ऐक्य मे मजबूती आई, मरुधर मुनियो मे परस्पर प्रेमभाव बढा एव श्रावक-सघ की श्रद्धा-प्ररूपणा मे भी दृढता बढी। यह सब आपके सगठन प्रेम का परिचायक है।

सगठन प्रेम व वात्सल्य के कुछ नमूने

☐ पाली मे मरुधरीय सन्त सम्मेलन कराने और मरुधर सम्प्रदायो मे एकसूत्रता लाने मे आप अग्रणी कर्मठ महारथी थे। अत मरुधरीय सन्तो के साथ आपका वात्सल्य-भाव होना स्वाभाविक था। उसी वात्सल्य से प्रेरित होकर आचार्य श्री रघुनाथ जी महाराज की सम्प्रदाय के सत मत्री मुनि श्री मिश्रीमल जी म० के साथ आपने अपने आत्मार्थी सत श्री देवीलाल जी को देकर टाटोटी मे उनका चातुर्मास करवाया। आपकी उदारता, सतो के प्रति वत्सलता और सगठन-प्रियता का इससे पता लगता है कि आप समय-समय पर मरुधरीय सन्तो के सहयोग के लिए जीवनभर तैयार रहे।

☐ ब्यावर मे स्व० आचार्य श्री जयमल्ल जी महाराज की सम्प्रदाय के प० मुनि श्री चैनमल्ल जी क्षयरोग से आक्रान्त थे। वे सम्प्रदाय मे एक होनहार साधु थे। अत. प्रवर्त्तक श्री जी महाराज मरुधर-सतो के प्रति वात्सल्य से प्रेरित होकर विक्रम सवत् १९९७ का जालिया चातुर्मास पूर्ण करके उनकी सुखसाता पूछने तथा उन्हे आश्वासन देकर समाधिस्थ करने हेतु ब्यावर पधारे। आपके पधारने से रुग्ण मुनिश्री को बडा आश्वासन मिला।

कुछ दिन ब्यावर मे विराज कर आपने वहाँ से विहार किया।

☐ विक्रम सवत् २००३ के चातुर्मास के पश्चात् आप जालिया पधारे जहाँ आपसे मिलने के लिए अपने शिष्यपरिवार-सहित मेवाड-सम्प्रदाय के आचार्य पूज्य श्री मोतीलाल जी महाराज पधारे। वे करीब एक सप्ताह विराजे। इस दौरान आपसे कई सामाजिक विषयो पर चर्चा हुई। आपने बड़े ही आदर के साथ उन्हे रखा, मधुर वार्तालाप किया और स्नेह-सौहार्दपूर्वक उन्हे विहार कराया।

☐ विक्रम सवत् २००४ के चातुर्मास के बाद आचार्य श्री हस्तिमल्ल जी महाराज अपने शिष्यवृन्द सहित भिणाय पधारे। वहाँ १७ दिन तक विराजे। दोनो महानुभावो मे सामाजिक परिस्थिति पर पर्याप्त विचार-विमर्श हुआ। वार्तालाप से दोनो मे आत्मीयता बढी। यह साधु सम्मेलन का ही प्रभाव था।

ब्यावर मे मेवाड़ मालवा-सन्त सम्मेलन के लिए

विक्रम सवत् २००६ की बात है। आप भीलवाडा चातुर्मास पूर्ण करके बीच के गाँवो मे धर्म-गगा बहाते हुए गुलाबपुरा पधारे। यहाँ उपाध्याय श्री प्यारचन्द जी महा-

राज ब्यावर मे मेवाड-मालवा के सन्तो के होने जा रहे सम्मेलन मे भाग लेने की भाव-भीनी प्रार्थना लेकर पहुँचे। परन्तु आपका स्वास्थ्य अनुकूल नही था। फिर भी सगठन के हर काम मे आपका आशीर्वाद, प्रेरणा और उत्साह रहता था। अत आपने उक्त सम्मेलन की सफलता के लिए अपनी शुभकामनाएँ व्यक्त की और स्वय ब्यावर तक पहुँचने मे अपनी असमर्थता प्रगट की।

चार बड़े सन्तो के स्नेह-सम्मेलन मे

बात विक्रम सवत् २००७ की है। विजयनगर चातुर्मास के पश्चात् पूज्य प्रवर्त्तक श्री जी महाराज भिणाय आदि क्षेत्रो मे विचरण करते हुए गुलाबपुरा पधारे। गुलाबपुरा मे उस समय वर्तमान आचार्य श्री आनन्दऋषि जी महाराज, वर्तमान आचार्य श्री हस्तिमल जी महाराज, प्रवर्त्तक श्री पन्नालाल जी महाराज एव उपाध्याय श्री अमरमुनि जी महाराज इन चार बड़े सन्तो का एक त्रिदिवसीय स्नेह-सम्मेलन होने जा रहा था। उसमे आपको खासतौर से अनुरोध सहित आमत्रित किया गया था। सम्मेलन मिति फाल्गुन कृष्णा १३ से अमावस्या तक तीन दिन होने वाला था। इस सम्मेलन का उद्देश्य था आगामी बृहत्साधु सम्मेलन से सम्बन्धित मुद्दो पर चर्चा-विचारणा और मत्रणा करके कुछ बाते स्थिर करना और भावी बृहत्साधु सम्मेलन की भूमिका तैयार करना। अजमेर मे हुए पूर्व सम्मेलन को लगभग १७ वर्ष हो चुके थे। कुछ नई समस्याएँ भी खडी थी, साधु-समाज के सामने, कुछ समाचारी से सम्बन्धित मुद्दे थे। जिन मे मुख्य थे समग्र स्थानकवासी उपसम्प्रदायो का विलीनीकरण करके स्थानकवासी श्रमण-श्रमणियो का एक ठोस सगठन बनाना, सारे ही सघ का एक आचार्य बनाना, एक समाचारी बनाना और सबकी श्रद्धा-प्ररूपणा मान्यता को एकरूपता देना।

हमारे चरितनायक जी सगठन के महत्त्वपूर्ण कार्यो मे सदा आगे रहते थे। वे रात-दिन यही चिन्तन करते थे कि किसी तरह स्थानकवासी सम्प्रदाय के विविध उप-सम्प्रदायो को एक-जुट कर एकसूत्र मे बाधा जाए। बड़े ही सौहार्द के वातावरण मे स्नेह-सम्मेलन सम्पन्न हुआ।

सादड़ी-बृहत्साधु सम्मेलन में पधारने की प्रार्थना

आपका विक्रम सवत् २००८ का चातुर्मास जालिया मे था। तभी कार्तिक कृष्णपक्ष मे टी० जी० शाह के नेतृत्व मे श्वेताम्बर स्थानकवासी जैन कॉन्फ्रेस का एक शिष्टमडल आपकी सेवा मे उपस्थित हुआ। उसने सादडी मे विक्रम सवत् २००९ की अक्षय-तृतीया पर होने वाले बृहत्साधु सम्मेलन मे आपको पधारने की प्रार्थना की। सम्मेलन से सम्बन्धित अन्य मुद्दो पर भी आपकी राय खासतौर से जाननी चाही। आपने सम्मेलन के सम्बन्ध मे अपने अनुभव, सुझाव और परामर्श शिष्टमडल के सामने रखे। और यही कहा कि मैं स्वय बहुत चाहता हूँ कि ऐसे सम्मेलनो मे भाग लूँ और सघ की एव श्रमण वर्ग की कुछ सेवा करूँ। लेकिन शारीरिक स्थिति ऐसी नही है। वह मुझे इतनी लम्बी पद-यात्रा करने की इजाजत नही देती। अत मैं स्वय न पहुच कर अपने प्रतिनिधि

मुनिवरो को सम्मेलन मे भेज दूंगा।" सम्मेलन के लिए दूसरे मुनियो के मनों मे कई आशकाएँ निराशाएँ और उदासीनताएँ विद्यमान थी। उन्हे यह आशा नही थी कि इस सम्मेलन मे सफलता मिल जाएगी। क्योकि इस सम्मेलन का उद्देश्य पहले सम्मेलन से कई कदम आगे बढना था। पहले सम्मेलन में समाचारी तथा तथा तिथि पर्व आदि निर्णय के सम्बन्ध मे एकरूपता हो सकती थी, किन्तु इतना सब होने के बावजूद भी सभी सम्प्रदायो का अपना-अपना पृथक् अस्तित्व मिटकर उनका विलीनीकरण एक महासघ के रूप मे नही हुआ था, इसलिए सम्प्रदाय-मोह और परम्परा-मोह बहुत हद तक अभी अवशिष्ट था। किन्तु इस सम्मेलन मे तो सभी सम्प्रदायो का अस्तित्व मिटाकर एक महासघ के रूप मे एकीकरण, विलीनीकरण और एकसूत्रीकरण की बात थी, साथ ही अपने-अपने सम्प्रदायगत आचार्यपद तथा अन्य शास्त्रीय पदो का त्याग करके एक आचार्य की नियुक्ति को स्वीकार करने की बात थी, अपनी-अपनी कुछ रूढ परम्पराओं मे सशोधन करके एक समाचारी बनाने की बात थी। यह एक विकट पहेली थी, विविध सम्प्रदाय के पदाधिकारी एवं विशिष्ट मुनियो के सामने। परन्तु हमारे चरितनायक आशावादी और उत्साही रहे हैं, सगठन के हर कार्य मे। वे सघ के पुण्य कार्य मे अपनी पद-प्रतिष्ठा, परम्परा या साम्प्रदायिक रूढियाँ भी छोडने को तैयार थे। इसीलिए उन्होने कॉन्फ्रेंस के अग्रगण्यो के द्वारा सम्मेलन की बात रखते ही झटपट स्वीकार कर ली और अपने प्रतिनिधिमुनियो को भेजने की स्वीकृति दे दी। इससे कॉन्फ्रेंस के शिष्टमंडल को आशा बँध गई कि हमारा कार्य बहुत ही शीघ्र हो जायगा। इस कार्य मे आपका आशीर्वाद मिलने से सारा शिष्टमंडल प्रसन्नतापूर्वक मंगलपाठ सुनकर आगे को विदा हुआ।

सादड़ी साधुसम्मेलन के बारे मे विचार-विमर्श

सादडी साधुसम्मेलन मे आपने अपने बदले अपनी सम्प्रदाय के प्रतिनिधियो को भेजना स्वीकार कर लिया था, लेकिन इतने मात्र से आप अपनी जिम्मेवारी से बरी नही हो गए। आपके मन मे सतत मन्थन चलता रहता था कि कैसे आगामी साधुसम्मेलन को सफल बनाया जाए? इसके सम्बन्ध मे आपने एक योजना का प्रारूप तैयार किया, जिसमे सम्मेलन से सम्बन्धित सभी मुद्दो की सूची भी समाविष्ट थी। और सवत् २००८ का चातुर्मास पूर्ण होते ही मसूदा आदि क्षेत्रो में शनै-शनै विचरण करते हुए आप चैत्र कृष्णपक्ष में अजमेर पधारे। इस अन्तराल मे भी आप जहाँ भी, जिस गाव में भी पधारते, वहाँ के श्रावकवर्ग को तैयार करते रहते सगठन और सघ-ऐक्य की दिशा मे, साथ ही यदि कोई स्थानकवासी साधु या साध्वी किसी क्षेत्र में मिल जाते तो उन्हे भी स्नेहभाव से सघ ऐक्य की बातें समझाते। यही कारण है कि आप जब अजमेर पधारे तो आपका चेहरा आशा और उत्साह से भरा था, अजमेर मे आचार्य श्री गणेशीलाल जी महाराज साहब आचार्य श्री हस्तिमल जी महाराज, उपाध्याय श्री अमरचन्द जी महाराज पजाबकेसरी श्रीप्रेमचन्दजी महाराज, युवाचार्य श्रीशुक्लचदजी महाराज, बाबाजी म० श्री पूर्णचन्द जी महाराज, व्याख्यानवाचस्पति श्री मदनलाल जी महाराज, स्वामी श्रीछोटेलालजी महाराज, पं० रत्न श्रीसुशीलमुनिजी, आदि मुनिवृन्द का मिलन हुआ।

आपने अपनी बातचीत एव भाषण के दौरान किसी प्रकार की निराशा नही दिखाई, जबकि अन्य महारथी साधुओ के सामने कई समस्याएँ थी। इसलिए जब भी आपका भाषण होता, सभी सन्त एकाग्रतापूर्वक सुनते थे, उनके मन मे शकाओ के जो बादल उमड-घुमड़ कर आ रहे थे, वे भी आपके भाषण रूपी प्रबल वायु से छिन्न-भिन्न हो गये। आपने सादडी सम्मेलन के बारे मे तैयार की हुई योजना प्रस्तुत की और सुबह तथा दोपहर की बैठको मे जो भी शकाएँ प्रस्तुत की जाती, उनका यथार्थ एव अनुभव-युक्त समाधान आप देते जाते थे। तात्पर्य यह है कि अजमेर मे आपके पधारने और महारथी साधुमंडल से वार्तालाप करने से सब मे उत्साह और त्याग की लहर दौड गई। उनके मानस से शकाओ का कोहरा हट गया और बिजली का-सा प्रकाश हो गया। वर्षों पुराने सस्कार भी साधु वर्ग के मानस से प्राय धुलने शुरू हो गए।

जैसा कि पहले निश्चित हुआ था, तदनुसार आपने सादडी मे होने वाले साधु-सम्मेलन मे अपनी ओर से प्रतिनिधि के रूप मे मुनि श्री सोहनलाल जी महाराज ठाणा २ को विहार करवाया। अन्य महारथी मुनिगण भी सादडी के ऐक्य-महायज्ञ मे भाग लेने के लिए प्रस्थान कर गए।

सादड़ी का साधुसम्मेलन और चातुर्मास मत्री पद

विक्रम सवत् २००६ अक्षयतृतीया को सादडी मे बड़े उत्साह से साधुसम्मेलन का प्रारम्भ हुआ। इस सम्मेलन के जो उद्देश्य पहले कहे जा चुके हैं, तदनुसार एक आचार्य, एक उपाचार्य, तथा मत्रीमण्डल श्रमणसघीय व्यवस्था को सुचारू रूप से चलाने के लिए नियुक्त किये गए। **'वर्द्धमान स्थानकवासी जैन श्रमणसघ'** सभी सम्प्रदायो का विलीनीकरण होकर काफी बहसमुबाहिसे के बाद बन गया। इससे कुछ साधु रुष्ट हुए कुछ तुष्ट भी। परन्तु सम्प्रदायो के इस एकीकरण से एक दूसरे की सम्प्रदाय के साधु-साध्वियो मे परस्पर मिलने, बातचीत करने, अध्ययन-अध्यापन करके आहारादि करने, एक स्थान पर बैठकर व्याख्यानादि देने आदि कई बातो मे जो अनुदारता चली आ रही थी, वह खत्म हो गई। सर्वत्र उदारता की लहर व्याप्त हो गई। दकियानूसीपन समाप्त हो गया। दूसरे साम्प्रदायिक परम्पराओ, एव क्रियाकाण्डो के सम्बन्ध मे पर्याप्त स्पष्टीकरण हो जाने से साधु-साध्वियो मे सकुचितता, अलगाव तथा अपने को उत्कृष्ट मानने और दूसरो को निकृष्ट बताने की निन्दापरायणता कम हो गई। बहुत-सा कषायभाव और रागद्वेष-जनित कर्मबन्ध न होने से रुक गया।

आचार्यपद, सर्वसम्मति से महामहिम जैनधर्म दिवाकर तत्कालीन उपाध्याय श्री-आत्मारामजी महाराज को, तथा उपाचार्यपद पूज्य आचार्य श्रीजवाहरलालजी महाराज साहब के पट्टधर आचार्य श्रीगणेशीलालजी महाराज को सौंपा गया। इसके साथ ही आचार्य-उपाचार्य-अधिकार मे विविध व्यवस्थाओ को सुचारु रूप से चलाने के लिए एक मत्रिमडल बनाया गया। जिसमे आपको चातुर्मास सेवा मत्री पद दिया गया।

यह ध्यान रहे कि सादड़ी सम्मेलन मे सभी पदाधिकारियो ने अपनी-अपनी सम्प्रदाय के दिये गये जो-जो पद थे, उन सबका पहले त्याग कर दिया था। साथ ही कुछ नए उपाध्याय बनाये गये थे। एक समाचारी भी तैयार हो गई। किन्तु सचित्त-अचित्त की तथा तिथिपर्व निर्णय की समस्या अभी तक सुलझ नही सकी। किन्तु यह भी गनीमत समझनी चाहिए कि इनमे अत्यल्प समय मे इतना सुन्दर वातावरण बन गया और पद त्याग तथा समाचारी की एकरूपता का कार्यक्रम सफलतापूर्वक सम्पन्न हो गया। तिथिपर्व एव सचित-अचित्त का निर्णय सोजत मे होने वाले मत्रीमडल के आगामी लघु-सम्मेलन पर रखा गया।

सादडी सम्मेलन भी पहले के सम्मेलन की तरह उत्साह एव प्रसन्नता के साथ सफलतापूर्वक सम्पन्न हुआ, इसमे भी पूज्य प्रवर्त्तक श्री जी महाराज का पर्याप्त योगदान था।

सादड़ी साधुसम्मेलन की सुन्दर प्रतिक्रिया

सादडी के सफल एव ऐतिहासिक साधुसम्मेलन मे जो भी निर्णय लिए गये, वे अपने-आप मे स्तुत्य थे और सभी महामुनिवरो एव पदाधिकारियो ने हृदय से लिये थे, इसलिए इसका प्रभाव दूर-सुदूर तक पडा, खासकर तो गुजरात के स्थानकवासी साधु-साध्वियो पर भी पडा। उन्होने भी सारे गुजरात के विभिन्न सम्प्रदाय के स्थानकवासी साधु-साध्वियो का एक संगठन बनाया, उसके प्रवर्त्तको मे कविवर्य श्रीनानचदजी महाराज भी थे।

श्वेताम्बर मूर्तिपूजक सम्प्रदायो पर भी इसका सुदीर्घ प्रभाव पड़ा। उन्होने भी अहमदाबाद मे अपना सम्मेलन रखा। परन्तु उसमे प्रवर्त्तक श्री पन्नालाल जी महाराज जैसे कर्मठ नम्र, एवं अनुभवी महाप्राज्ञ मुनिवरो की कमी के कारण उत्तम भूमिका तैयार न हो सकी। वह सम्मेलन छोटी-छोटी कुछ ही बातो मे अटक कर रह गया।

हालांकि सादडी सम्मेलन के समय कुछेक मारवाडी सन्त श्रमण-सघ मे नही मिल पाये थे, फिरभी उनका विरोध इस नवोदित मगलमय एकीकरण के प्रतीक एव त्यागतप-पूत श्रमणसघ के प्रति नही था। बल्कि उनका इस नवोदित सघ के प्रति सहानुभूतिपूर्ण व्यवहार ही था।

सादड़ी सम्मेलन का अपूर्ण कार्य सोजत-सम्मेलन मे

सादड़ी सम्मेलन मे कुछेक कार्य पूर्ण नही हो सके थे और वह सम्मेलन इतना लम्बा नही खीचा जा सकता था, क्योकि उधर चातुर्मास लगने मे लगभग दो महीने ही रह गए थे, जिन्हें दूर पंजाब या गुजरात, महाराष्ट्र जाना था, उन्हे शीघ्रता से विहार करने की उतावल थी, इसलिए जो काम अधूरा रह गया था, उसे पूर्ण करने हेतु प० श्री मिश्रीमलजी महाराज की सलाह थी कि सोजत मे लघु-सम्मेलन आयोजित करके किया जाय। फलत सोजत मे लघुसम्मेलन विक्रम सवत २००९ माघ सुदी २ का निश्चय हुआ।

विक्रम संवत् २००६ का चातुर्मास किशनगढ में पूर्ण करके आप वहाँ से अजमेर, पुष्कर आदि होते हुए गोविन्दगढ पधारे। जहाँ से सोजत मे होने वाली मन्त्रिमडल की बैठक मे अपना प्रतिनिधत्व प० मुनि श्री लालचन्द जी महाराज को देकर भेजा।

सोजत सम्मेलन में प्रान्तमंत्री पद

सोजत-सम्मेलन मे 'तिथि निर्णायिक समिति' की मीटिंगें भी हुईं और तिथि-पर्व के सम्बन्ध मे काफी विचार-चर्चाएँ भी हुई, किन्तु आपकी अनुपस्थिति के कारण वह चर्चा किसी निर्णय का रूप न ले सकी। आपको इसमे तिथिनिर्णायिक समिति का सदस्य मनोनीत किया गया।

इसी प्रकार सचित्त-अचित्त के विषय में भी कुछ महत्त्वपूर्ण मुद्दो पर निर्णय लिए गए।

इसके अतिरिक्त मत्रीमडल की बैठक में यह चर्चा विशेष रूप से महत्त्वपूर्ण रही कि अलग-अलग विभागो के मत्री बनाने के बजाय, विभिन्न प्रान्तो या प्रदेश के मत्री बनाये जाएँ ताकि वे अपने दायित्व एव कर्तव्य को सुन्दर ढग से निभा सके। फलत: अलग-अलग विभागो के बजाय अलग-अलग प्रदेशो या प्रान्तो के मत्री मनोनीत किए गए। और उन्ही के सुपुर्द चातुर्मास, दीक्षा, शेषकाल विचरण, प्रायश्चित्त एव अन्य प्रकीर्णक विभागो के अधिकार सौंपे गए। उनके अधीनस्थ विचरण करने वाले समस्त साधु-साध्वी उन्ही से चातुर्मासादि के लिए आज्ञा मगवाते। उनका सीधा सम्बन्ध प्रधान-मत्री व आचार्य से रखा गया।

फलत हमारे चरितनायक पूज्य प्रवर्तक श्री जी महाराज को जयपुर, अजमेर, मारवाड, टोक, सवाई माधोपुर एवं किशनगढ क्षेत्र के प्रान्तमंत्री-पद से विभूषित किया गया।

श्रमणसंघीय सन्तो में सौहार्द

श्रमणसघ बनने के बाद भूतपूर्व सम्प्रदाय, भूतपूर्व पद, भूतपूर्व कुछ परम्पराएँ बदल गई, इनके बदलने के बाद सन्तो का मानस भी बहुत कुछ बदला। श्रमणसघीय सन्तो मे एक-दूसरे के प्रति सौहार्द, विनय, स्नेह, सेवा-भाव और सहयोग-भाव मे बहुत अशो मे वृद्धि हुई। वैसे तो रूढ सस्कारो का बदलना बडा कठिन होता है, परन्तु वरिष्ठ सन्तो ने जब मिल कर एक निश्चय कर लिया, तब उसके अनुसार व्यवहार करना लाजिमी हो जाता है, यह सूत्र शान्तमूर्ति त्यागी सन्तो के मानस मे प्रबल प्रेरक बना। इसका ज्वलन्त उदाहरण हमें प्रवर्तक श्री पन्नालालजी महाराज के जीवन मे देखने को मिलता है। वि० स० २००९ के चातुर्मास के बाद आप गोविन्दगढ पधारे। होली चौमासा पीसागण बिताकर आप वहाँ से अन्यत्र विहार करने वाले थे, लेकिन जब आपने सुना कि श्रमण सघ के नवीन उपाचार्य श्री गणेशीलालजी महाराज अपनी शिष्य मण्डली के साथ मिलने के लिए पीसागण पधार रहे हैं तो आपने अपना विहार स्थगित रखा। श्रद्धेय उपाचार्य श्री जी महाराज पीसागण पधारे। खूब भावभीना स्वागत हुआ। श्रद्धेय

प्रवर्तक श्री पन्नालालजी महाराज उनके स्वागत मे पधारे। बड़े सौहार्दपूर्ण वातावरण मे मिलन हुआ। मुनि-मिलन का आनन्द अभूतपूर्व था। उपाचार्यश्रीजी महाराज के पधारने से श्रावक सघ मे हर्ष की लहर दौड गई। उपाचार्य श्री जी महाराज और प्रवर्तक श्रीजी महाराज मे परस्पर नवोदित श्रमण सघ की उन्नति के सम्बन्ध मे विचार विनिमय हुआ। उपाचार्य श्री जी महाराज पीसागण मे दो दिन विराजे, दोनो ही दिन बड़ी चहल-पहल रही। व्याख्यान-वाणी का ठाठ लगा रहा। इसी मौके पर गोविन्दगढ के ठाकुर साहब भी प्रवर्तक श्री पन्नालालजी महाराज के आगामी चातुर्मास के लिए साग्रह निवेदन करने हेतु आए हुए थे। ठाकुर साहब का इतना अधिक आग्रह था कि "जब तक मुझे आपके गोविन्दगढ चातुर्मास की स्वीकृति नही मिलेगी, तब तक मैं यहाँ से उठकर बाहर नही जाऊँगा, और न खाना ही खाऊँगा।" ठाकुर साहब के अत्यधिक प्रेमाग्रह को देख कर प्रवर्तक श्री जी महाराज के ननुनच करते हुए भी आपकी सहृदय प्रकृति को देखकर उपाचार्य श्री जी महाराज ने गोविन्दगढ़ के लिए आपके आगामी सवत् २०१० के चातुर्मास की स्वीकृति फरमा दी। श्री प्रवर्तक श्री जी महाराज ने उनकी आज्ञा को शिरोधार्य करके गोविन्दगढ चातुर्मास करना स्वीकार कर लिया।

यह था श्रमण सघीय सन्तों मे सौहार्द एव विनय का नमूना। इसके बाद वि० स०, २०१० के वैशाख मास मे जब आप नसीराबाद विराजते थे, तब पधारे श्रमण सघीय सहमत्री पूज्य श्री हस्तीमलजी महाराज साहब एव प्रान्त मत्री ताराचन्द जी महाराज। दोनो ही महानुभावो से पूज्य प्रवर्तक श्री जी अत्यन्त स्नेह-सौहार्द भाव से मिले। आप सबका पारस्परिक विचार विनिमय बडा ही सतोषप्रद रहा। श्रमण सघीय उन्नति के कुछ मूलसूत्र आपने उनके सामने प्रस्तुत किये, जिसे उन्होने बहुत ही विनय एव सौहार्द-भाव से अगीकार किए।

उसके पश्चात् वि० संवत् २०११ माघमास मे जब आप मसूदा मे विराजमान थे, आपसे मिलने और श्रमणसंघीय समस्याओ के सम्बन्ध मे विचार-विमर्श करने हेतु श्रमणसघीय प्रधानमंत्री श्री आनन्द ऋषिजी महाराज, सहमत्री श्री हस्तीमलजी महाराज एव स्वामी श्री इन्दरमलजी महाराज, खीचन से तपस्वी श्री चम्पालालजी महाराज एव ज्योतिर्विद् पं० मुनि श्री कस्तूरचन्दजी महाराज आदि मुनि मडल अपने शिष्यगण सहित पधारे। सब मिलाकर लगभग २८–३० मुनिवर तथा इतनी ही सख्या में साध्वीगण का मसूदा मे विराजने से मसूदा एक तीर्थ बन गया। जनता के हृदय मे उत्साह का पार नही था। मसूदा के इतिहास मे यह शायद पहला ही अवसर था, इतने संतसतियो के पधारने और एक साथ विराजमान होने का। श्रमण सघीय सतो एव सतियो के झुंड के झुड कस्बे मे चारो ओर नजर आते थे। नागरिक लोग उत्साहपूर्वक कभी इधर तो कभी उधर सन्त-सतियो की अगवानी एव विदाई के लिए जाते। सुबह प्रार्थना एव व्याख्यान मे तथा दोपहर एव साय धर्मचर्चा करने मे सामाजिक जीवन के सम्बन्ध मे, या सघीय उन्नति के विषय मे विचार-विमर्श करने मे भक्त लोगो का जमघट लगा रहता। श्रमणो मे पारस्परिक सद्भाव, स्नेह और आत्मीय भाव देखते ही बनता।

था। पृथक्-पृथक् गुरुपरम्परा के होते हुए भी श्रमण सघीय होने के नाते उनके पारस्परिक व्यवहार में वैदिक ऋषि का वह मत्र ओतप्रोत था

संगच्छध्वं, सवदध्वं सवो मनांसि जानताम् ।
देवा भागे यथा पूर्वे सजानाना उपासते ॥

तुम सब लोग साथ-साथ चलो, एक साथ बोलो, तुम्हारे दिल परस्पर एक हो, जैसे पूर्व मे देव एक-दूसरे को सम्यक् जानते हुए उपासना करते थे, वैसे तुम भी एक दूसरे को सम्यक् जानते हुए उपासना करो।"

श्रमण सघीय सतो के आचार-विचार मे भी यही एकसूत्रता, एक सरीखी गति-प्रगति बोलने मे एक वाक्यता, सबके मनो मे एकरूपता, यही जीवन सूत्र दृष्टिगोचर हो रहा था।

विराजमान साधु-साध्वियो का ज्यो-ज्यो कल्प पूरा होता जाता था, त्यो-त्यो उनका विहार होता रहता। अन्त मे फाल्गुन कृष्णा १४ को प्रधानमत्री श्री आनन्द ऋषिजी महाराज साहब का विहार विजयनगर की ओर हुआ।

सभी सतो के साथ प्रवर्तक श्री जी का वात्सल्यभाव रहा।

इसके पश्चात् वि० स० २०१२ को चैत्र मास मे जब आप स्वास्थ्य अनुकूल न होने के कारण मसूदा ही विराज रहे थे, तभी महावीर जयन्ती पर स्थविरपद विभूषित स्वामी श्री हजारीमलजी महाराज साहब एव वैशाख मास मे स्वामी श्री चाँदमलजी महाराज साहब आदि मुनिवृन्द आपकी सेवा मे पहुँचे। और भी अनेक सत-सती-वृन्द समय-समय पर आपके दर्शनार्थ आते रहते थे।

श्रमण सघीय होने के नाते सबके प्रति आपका वात्सल्य भाव बना रहता। आपकी मधुरता, मिलनसारिता, हितैषिता आदि की छाप सबके हृदय मे अकित हो जाती थी।

भीनासर-साधु-सम्मेलन में योगदान

श्रमण सघ की प्रगति मे आरोह-अवरोह दोनो ही आते रहते थे। जितनी तेजी से श्रमणसघ की प्रगति हुई और जैन समाज के अन्य उप सम्प्रदायो ने उसे आश्चर्य एव कुतूहल दृष्टि से देखा, उतनी ही गति से उसमे गत्यवरोध होने प्रारम्भ हो गए। कुछ समस्याएँ ऐसी आकर उलझी कि उन्होने श्रमणसघ की प्रगति मे रोडा अटकाना शुरू कर दिया। श्रमण सघीय पदाधिकारियो के सामने यह प्रश्न था कि ये समस्याएँ कैसे सुलझाई जाएँ। अगर नही सुलझाई जाएँगी तो इससे श्रमण सघ की प्रतिष्ठा को आँच आएगी, पडोसी सम्प्रदायो को हसी उडाने का मौका मिलेगा। अत इसी दृष्टि से हमारे चरितनायक पूज्य प्रवर्तक श्री जी महाराज की सेवा मे श्रमण सघीय सहमत्री श्री प्यारचन्दजी महाराज अपने शिष्य-परिवार सहित रातांकोट पधारे। वहाँ श्रमण-सघीय समस्याओ के बारे में दोनो महारथियो मे खुल कर विचार-विमर्श हुआ। दोनो ही महानुभाव इस बात पर आकर एकमत हो गए कि भीनासर (बीकानेर) मे पुन साधु-सम्मेलन रखा जाय और चर्चास्पद मुद्दो पर विचार-विमर्श किया जाय। जब भीना-

सर मे साधु-सम्मेलन तय हो चुका, तव आपसे भी सहमन्त्री श्री प्यारचन्दजी महाराज ने पधारने के लिए प्रार्थना की। परन्तु आपने फरमाया कि मैं अव इतनी लम्बी दूर चलने मे असमर्थ हूँ। अव मेरे वश की वात नही रही। हाँ, मैं सम्मेलन के प्रत्येक कार्य मे दूर वैठा हुआ भी अपने सुझाव, परामर्श और अनुभव अवश्य दूंगा और अपने शिष्य को प्रतिनिधि के रूप में भेजूंगा।" इससे प० श्री प्यारचन्दजी महाराज को प्रसन्नता हुई। और वे वार्तालाप से सन्तुष्ट होकर विदा हुए।

आपने भी रातकोट से विहार कर दिया और विजयनगर पहुँचे। वहाँ से अपने शिष्य प० मुनिश्री सोहनलालजी महाराज ठा ३ को भीनासर सम्मेलन की भूमिका, अपना दायित्व एव समस्याओ को हल करने के लिए उचित उपाय समझाकर अपने प्रतिनिधि के रूप मे भीनासर-साधु-सम्मेलन मे सम्मिलित होने के लिए विदा किया।

उन्होने भीनासर जाकर सम्मेलन मे अपनी महत्त्वपूर्ण भूमिका अदा की। वि० स० २०१२ मे हुआ भीनासर सम्मेलन अपने उद्देश्य के अनुरूप महदशो मे सफल रहा। कुछ नये उपाध्याय निर्वाचित हुए।

भीनासर साधुसम्मेलन के वाद विक्रम सवत् २०१३ के पोष मास मे उपाध्याय श्री प्यारचन्दजी महाराज, प० मुनिश्री श्रीमल्लजी महाराज आदि श्रमण सघीय मुनि आपकी सेवा मे पहुँचे। आपने अत्यन्त वात्सल्य भाव से उन्हे आदर दिया, परस्पर मिले और सौहार्द पूर्ण तरीके से आपकी पारस्परिक वार्ता का दौर चला। प्रवर्तक श्री जी महाराज को एव समागत मुनिवरो को इस वार्तालाप से वहुत सन्तोष हुआ और वे सुन्दर अनुभव पाथेय लेकर लौटे।

श्रमण संघ के सच्चे हितैषी

भीनासर सम्मेलन के वावजूद भी श्रमण सघ के साधुओ के शिथिलाचार के कुछ मामले अभी पूरी तरह निपटे नही थे। आपकी वृत्ति हमेशा संघ के साधु-साध्वियों के आचार-विचार को शुद्ध व स्वच्छ रखने की थी। कोई छिद्रान्वेषी दृष्टि से नही, किन्तु एक वुजुर्ग एवं हितैषी की दृष्टि से आप सदैव श्रमण सघ की गतिविधि पर ध्यान रखते थे।

जव आपने सुना कि श्रमण सघीय उपाचार्य श्री जी महाराज पीही (मारवाड) गांव मे पधारे हैं, तो आपने श्रमण सघ के हित की दृष्टि से उपाचार्य श्री की सेवा मे एक श्रमण सघीय सन्त के शिथिलाचार के मामले को किस प्रकार निपटाना चाहिए, इस विषय मे यथोचित सुझाव दिया। साथ मे यह भी प्रार्थना की कि यदि इस मामले को नही निपटाया जायगा तो भविष्य में श्रमणसंघीय वातावरण गन्दा वनने का खतरा है।"

आपकी संघीय-हितैषिता का इससे वढ़कर और क्या प्रमाण हो सकता है?

श्रमण संघीय व्यवस्था के सम्बन्ध में योगदान

पूज्य प्रवर्तक श्रीपन्नालालजी महाराज श्रमण सघ के एक कुशल, अनुभवी, वयोवृद्ध, दीर्घद्रष्टा, कर्मठ महारथी थे। आप श्रमण सघ की गतिविधियो पर हमेशा ध्यान देते रहते थे, और जहाँ भी व्यवस्था मे कोई अडचन आती, वहाँ अपने बहुमूल्य सुझाव, परामर्श एव अनुभव देते रहते थे। वे शारीरिक कारणो से चाहे विजयनगर मे स्थिर थे, लेकिन सघीय कार्यो के लिए सक्रिय जागरूक और प्रगतिशील थे।

वि० सवत् २०१३ का चैत्र का महीना है, कृष्णपक्ष है, आप विजयनगर मे ही विराज रहे थे, तभी श्रमण सघीय उपाचार्य श्री गणेशीलालजी महाराज, उपाध्याय श्री हस्तीमलजी महाराज मत्री श्री सहस्रमलजी महाराज, कोटा सम्प्रदाय के प० मुनि श्री रामकुमार जी महाराज आदि २७ मुनिवर विजयनगर आपसे मिलने और विचार विमर्श करने पधारे। लगभग इतनी ही सख्या मे साध्वीजी पधारी थी। आप अपना अहोभाग्य समझ कर सबसे मधुरतापूर्वक मिले, स्नेहप्रवण शब्दो मे सबका सत्कार किया, और परम आत्मीयता के साथ श्रमणसघीय व्यवस्था की उलझी हुई कडियो को सुलझाने के लिए अपने सुझाव, अनुभव और विचार प्रगट किए। आपका वार्तालाप का स्तर बहुत ही उच्च एवं शालीनतापूर्ण रहा, तथा आपके माधुर्यपूर्ण व्यवहार ने सबके हृदय को जीत लिया, आपके वार्तालाप मे कही भी किसी को परायापन, कटुता एव अहता को महसूस नही होने दिया। वार्तालाप का समापन सुखद क्षणो मे करके सतुष्ट होकर सभी मुनिवर वि० स० २०१४ चैत्र शुक्ला ५ के बाद विदा हुए।

श्रमणसघीय व्यवस्थापक समिति के संचालक पद पर

इसी बीच श्रमण सघ पर एक और सकट आ पडा। श्रद्धेय उपाचार्य श्री गणेशीलालजी महाराज उपाचार्य पद एव श्रमण सघ से त्याग पत्र देकर पृथक् हो गए। इधर श्रमणसघ के तत्कालीन आचार्य श्री आत्मारामजी महाराज अत्यन्त वृद्ध एव अशक्त थे। इस कारण आपके द्वारा निष्ठापूर्वक दी गई श्रमणसघीय सेवाओ से प्रभावित होकर श्रमणसघ के तत्कालीन आचार्य श्री ने पाच सन्तो की **'श्रमणसंघीय कार्यवाहक समिति'** का निर्माण किया एव उसका सचालन आपके हाथो मे सौपा। आपको ही उस समय श्रमणसघीय कार्यभार सभालना पडा था।

श्रमणसघ को अखण्ड एव तेजस्वी बनाये रखने के लिए पूज्य प्रवर्तक श्री ने खूब जी-जान से प्रयत्न किया। वृद्धावस्था एव शारीरिक अशक्ति होते हुए भी आप श्रमणसघ की उन्नति के लिए घण्टो चिन्तन करते रहते। अनेकानेक तूफानो और झझावातो के बीच भी श्रमणसघीय दीप अखण्ड प्रज्वलित रखने के लिए आप प्रयत्नशील रहे। यहाँ तक कि श्रमणसघ की अक्षुण्णता को भग करने के लिए विरोधियो द्वारा किये गए आक्षेपो एव विरोधो रूपी विषो के कडवे घूंट आपने शकर की तरह हंसते-हँसते पीए। श्रमणसघ की नैया जब अव्यवस्था के तूफानो से डावा डोल होने लगी, तब भी आपने अपने बूढे, जराजीर्ण हाथो से उसे खेकर पार लगाने की कोशिश की। यह कहना कोई अत्युक्ति

नही होगी कि श्रमणसघीय साधु-साध्वियो मे ज्ञान-दर्शन-चारित्र की उन्नति के लिए आप मनोयोग, वचनयोग एव काययोग तीनो योगो से अहर्निश जुटे हुए थे।

श्रमण-सघ के रिक्त आचार्य-पद के लिए सुझाव

श्रमणसंघ के मुख्य कर्णधार आचार्य श्री आत्मारामजी महाराज साहव दिवगत हो गए। श्रमणसघ के लिए यह आकस्मिक वज्रपात था। इधर श्रमणसघ मे भी कुछ विघटनकारी तत्त्व पैदा हो रहे थे। आचार्य के अभाव मे श्रमणसघ की डगमगाती नैया को स्थिर रखना और उसके गत्यवरोध को मिटाना वहुत ही कठिन प्रतीत हो रहा था। वि० सवत् २०१६ का आपका चातुर्मास विजयनगर था। आचार्यश्रीजी महाराज के आकस्मिक निधन के वाद आपका मन्थन नये उत्तराधिकारी (आचार्य) के वारे मे चल रहा था, इसी दौरान धार्मिक परीक्षा वोर्ड, पाथर्डी के रजिस्ट्रार प० वद्रीनारायणजी शुक्ल आपकी सेवा मे श्रमणसघ के रिक्त हुए आचार्य-पद के विषय मे विचारविमर्श करने हेतु पहुँचे। हमारे प्रवर्तक श्री जी महाराज का विचार यह था कि "श्रमणसघ को सुदृढ वनाए रखने के लिए आचार्यपद की पूर्ति होनी जरूरी है। किन्तु इसके लिए पहल वरिष्ठ पदाधिकारियो की ओर से होनी चाहिये।"

प० वद्रीनारायणजी शुक्ल ने वताया कि इस प्रकार का प्रयत्न किया गया, मगर उसमे कही से भी सफलता नहीं मिली। लेकिन आशा की एक किरण हमे दिखाई दी उपाध्याय श्री हस्तीमलजी महाराज ने आचार्य पद के लिए श्रमणसघीय कार्यवाहक समिति के तत्काल संयोजक एव श्रमणसघीय उपाध्याय श्री आनन्दऋषिजी महाराज को मनोनीत करने का सुझाव दिया। इसके वाद सभी अधिकारी मुनिवरों की ओर से आचार्यपद के लिए उपाध्याय आनन्द ऋपिजी महाराज साहव के नाम का समर्थन किया गया और सर्वसम्मति से उनके नाम का चयन हो गया। परन्तु उसकी घोषणा करने को कोई भी अधिकारी मुनिवर तैयार नही हुए।"

आपने जब यह सुना तो आश्चर्यचकित रह गए। और अ० भा० स्था० जैन कॉन्फ्रेंस की जनरल मीटिंग, माटुगा (बम्वई) मे दिनाक १८-११-६२ को होने जा रही थी, उसमे श्रमण-सघीय मत्रिमण्डल के विचारो को समझ कर श्रमण-सघ के द्वितीय पाट पर आचार्य पद के लिए उपाध्याय श्री आनन्द ऋषिजी महाराज साहव को प्रतिष्ठित करने की घोषणा-पत्र द्वारा आपने अपनी ओर से सूचित करवाई। वह इस प्रकार है

श्रमणसघीय मन्त्रिमण्डल के निर्णय की घोषणा

श्रमणसघ के द्वितीय पाट पर आचार्य श्री आनन्द ऋषि जी महाराज का समारोहण

श्री वर्द्धमान स्थानकवासी जैन श्रमण-सघ के आद्य आचार्य आगम रत्नाकर पूज्य श्री आत्मारामजी महाराज साहव के स्वर्गारोहण से रिक्त आचार्यपद की पूर्ति के लिए श्रमण सघीय विधान की धारा ३ के अनुसार मत्रिमण्डल दीर्घ विचार-विमर्श के पश्चात् निम्न निर्णय करता है

सघ के आद्य प्रधानमत्री, शान्तस्वभावी, महान् अनुभवी श्रद्धेय प० प्रवर उपाध्याय श्रीआनन्दऋषि जी महाराज साहब के व्यक्तित्व पर सघ की पूर्ण श्रद्धा है। आपकी सघ-सचालन पद्धति से मत्रिमडल को विश्वास है कि श्रमणसघ आपके नेतृत्व में भलीभाति फूले-फलेगा।

संगठन के लिए हर सम्भव प्रयत्न



अजमेर मे एक विशाल श्रमण सम्मेलन हो रहा है, श्रमण सघ की एकता के नव पल्लवित पोधो को जल संचन कर और नव आचार्य का चयन कर सुदृढ़ बनाना है। अनेक महत्वपूर्ण प्रश्नो को सुलझाना है।

और गुरुदेवश्री शारीरिक दृष्टि से विहार करने मे अक्षम ! एक विचित्र उलझन थी। पर आत्मार्थी सेवा ावी सन्तो ने समाधान निकाला, सुखपाल मे बिठा कर वे परम उपकारी गुरुदेव को बिठा कर ले जाने को तत्पर ो गए। पराश्रयी होने का मन नहीं होते हुए भी चतुर्विध श्री सघ के आग्रह को मान्य कर आपश्री ने अजमेर म्मेलन के लिए गुलाबपुरा से प्रस्थान किया। उत्साही सेवाभावी श्रमण गुरुदेव को लिए चल रहे है, और पीछे ढा है श्रमणी समुदाय तथा अगणित श्रावक श्राविकाए असीम शुभकामनाए लिए।

संगठन की दिशा में अजमेर श्रमण-सम्मेलन



शरीर से अशक्त होते हुए भी श्री सघ के अत्यधिक आग्रह एव श्रमण सघ की एकता के लिए दृढ प्रयत्न करने हेतु गुरुदेव श्री पन्नालाल जी म० ने सुखपाल मे पधारना स्वीकार किया।

अजमेर मे पधारते हुए, आपश्री के स्वागत मे मरुधरकेसरी प्रवर्तक मुनि श्री मिश्रीमल जी म० आगम अनुयोग प्रवर्तक मुनिश्री कन्हैयालालजी 'कमल' तथा अन्य अनेक मुनिराज, उमडता हुआ विशाल श्रद्धालु श्रावक समाज।

अजमेर स्थित चतुर्विध श्री सघ ने सगठन के इन महान सूत्रधार गुरुदेवश्री का गर्मजोशी के साथ भाव-भीना स्वागत किया।

यद्यपि संघ की कार्यवाहक समिति के संयोजक पद से आप श्री आज भी संघ का संचालन कर ही रहे हैं, तथापि मन्त्रिमण्डल अनुभव कर रहा है कि वैधानिक, व्यावहारिक और आगमिक दृष्ट्या यह परमावश्यक है कि आप श्री पूर्ण अधिकार के साथ आचार्यपद पर प्रतिष्ठित होकर संघ को सुशोभित करते हुए श्रमण भगवान् महावीर के पवित्र शासन का सुयोग्य संचालन करें।

एतदर्थ मंत्रिमण्डल यह घोषित करता है कि श्रमणसंघ में श्रद्धा रखने वाले चतुर्विध श्री संघ के सभी सदस्य आज से अपने मनोनीत कर्णधार श्रद्धेय आचार्य श्री आनन्दऋषि जी महाराज साहब के अनुशासन का पूर्णतया पालन करेंगे और संघ की सुदृढता के लिए आचार्य श्री जो भी मार्ग निर्धारित करेंगे, उस पर चलने के लिए पूर्णश्रद्धा और भक्ति के साथ तत्पर रहेंगे।

श्रमणसंघीय विधानानुसार मन्त्रिमण्डल ने आचार्यपद का सर्वाधिकार श्रद्धेय उपाध्याय श्रीआनन्दऋषिजी महाराज साहब को समर्पित कर दिया है। आचार्यपद का महोत्सव 'चद्दर-समर्पण' शुभ समय पर मुनिसम्मेलन में किया जाएगा।

श्री वर्द्धमान स्थानकवासी श्रमण संघ के मन्त्रिमण्डल के अभिमतानुसार श्रद्धेय स्थविर पद विभूषित पं० रत्न प्रान्तमंत्री श्री पन्नालाल जी महाराज साहब ने यह घोषणा प्रसारित की है।

समाज सेवक
गुलाबचन्द चोरडिया
मंत्री, श्री वर्द्धमान स्था० जैन० श्रावकसंघ, विजयनगर (अजमेर)
ता० १५-११-६२

इस घोषणा के प्रसारित करने पर अ० भा० स्था० जैन कॉन्फ्रेंस ने सर्वानुमति से जनरल मीटिंग में प्रस्ताव पारित करके उसे समाचार-पत्रों में प्रसारित किया। वह इस प्रकार है

श्रमणसंघीय मंत्रिमंडल का निर्णय[1]

श्री वर्द्धमान स्था० जैन श्रमणसंघ के स्व० पू० आचार्य श्री आत्मारामजी महाराज साहब के द्वितीय पाट पर उपाध्याय श्री आनन्दऋषिजी महाराज साहबजी आचार्य पद पर प्रतिष्ठित

आचार्य पद की घोषणा से समस्त स्था० जैन समाज में
आनन्द और उत्साह की लहर

श्री वर्द्धमान स्था० जैन श्रमणसंघीय मन्त्रिमण्डल की सम्मति से श्रमणसंघीय कार्यकारिणी कमेटी के संयोजक उपाध्याय श्री आनन्दऋषिजी महाराज साहब को श्री व० स्था० जैन श्रमणसंघ के स्व० पूज्य आचार्य श्री आत्मारामजी महाराज साहब के द्वितीय पाट पर आचार्यपद से प्रतिष्ठित करने के निर्णय को स्थविरपद विभूषित प्रान्त-मन्त्री पं० मुनिश्री पन्नालालजी महाराज साहब की ओर से ता० १८-११-६२ को माटुंगा में चतुर्विध श्री संघ के समक्ष घोषित किया गया है और कॉन्फ्रेंस की जनरल कमेटी ने इस घोषणा का अभिनन्दन किया है।"

१ 'तरुण जैन' वर्ष १०, अंक ६ बुधवार दि० ५ सितम्बर, १९६२ से उद्धृत

शिखर सम्मेलन के लिए अजमेर मे पदार्पण

अजमेर श्री सघ, जिसने सर्वप्रथम वृहत्साधुसम्मेलन का बीडा आपकी प्रेरणा से उठाया था, इस बात के लिए कई वर्षो से आपसे अजमेर पधारने का आग्रह कर रहा था, और इस प्रतीक्षा मे था कि आप अवश्य ही अजमेर पधारेगे। लेकिन आप अपने स्वास्थ्य की प्रतिकूलता के कारण सघ के प्रेमाग्रह को बार-बार टाल रहे थे। किन्तु श्रमणसघीय शिविर सम्मेलन की चर्चा चल रही थी, उसके लिए अजमेर के शक्तिशाली, साहसी एव भक्तिमान श्रावकसघ ने इस सम्मेलन को अजमेर मे करने का बीडा उठाया। संघ ने कॉन्फ्रेस को अपनी स्वीकृति दे दी। अत. सभी प्रमुख साधु-साध्वियो को अजमेर मे होने वाले इस शिखर सम्मेलन मे पधारने का आग्रह कॉन्फ्रेस के अधिकारी कार्यकर्त्ताओ द्वारा चल रहा था, अजमेर श्रावकसघ का भी आग्रह था कि सभी श्रमणसघीय पदाधिकारी शिखर सम्मेलन मे पधारें। किन्तु वयोवृद्ध स्थविरपदविभूपित प्रान्तमन्त्री श्रीपन्नालालजी महाराज साहव शारीरिक अशक्ति के कारण पधार नही सकते थे। मगर सम्मेलन का निश्चय होने से अजमेर सघ को अत्यधिक आग्रह करने का मौका मिल गया। वहुत-कुछ आनाकानी के बाद आखिर आपने अजमेर-सम्मेलन मे सम्मिलित होने की विनति स्वीकृत की। तदनुसार वि० संवत् २०१९ के माघ शुक्ला १० को घुटनो मे दर्द वढ जाने के कारण आपने डोली द्वारा विजयनगर से विहार किया।

विहार का दृश्य देखते ही बनता था। वालकों, युवकों, वृद्धों, युवतियों, वृद्धाओं सबने आपको अश्रुपूरित नेत्रो से भावभीनी विदाई दी। आपके विहार के समय भीलवाडा, विजयनगर, ब्यावर एवं अजमेर के अलावा आस-पास के गाँवों के सघ के सदस्य भी हजारो की संख्या मे आए हुए थे। आपने विदाई-समारोह के अवसर पर अपने ओजस्वी एव प्रेरक भाषण मे कहा

"धर्मप्रेमी भाई-बहनो! मै श्रमणसघ का एक अदना सेवक हूँ। मुझे प्रारम्भ से ही सगठन के प्रति प्रेम है। और मैं सदा से सघ-ऐक्य के लिए प्रयत्न करता आ रहा हूँ। मेरी नस-नस मे सघ का अखड प्रेम विद्यमान है। इस समय भी मैं सघप्रेम से प्रेरित होकर ही वृद्धावस्था, अशक्ति एव अस्वस्थता होते हुए भी अजमेर जा रहा हूँ। मुझे अफसोस है कि मैं स्वय अपने पैरो से चलने मे असमर्थ होने के कारण सतो के कन्धो पर चलकर जा रहा हूँ। यद्यपि ये सब मुनिवर मेरे प्रति श्रद्धा, भक्ति एवं उत्साह से मुझे डोली मे विठा कर ले जा रहे हैं। किन्तु मुझे वहुत सकोच होता है। मै इतना वडा होकर कभी किसी के कधो पर नही चला। वचपन मे ही साधु वन गया था। पहले भी ऐसा याद नही कि मै किसी के कधो पर सवार होकर चला हूँ। किन्तु खेद है कि मैं लाचारीवश अपने सतो के कधो पर सवार होकर चल रहा हूँ।"

यद्यपि सन्त लोगो ने आपसे वहुत कुछ अनुनय किया कि "हम आपको भक्तिवश ले जा रहे हैं, हमे आपका कोई वोझ महसूस नही हो रहा है। आप किसी बात का खेद न करें। हम प्रसन्नता से आपको लेकर अजमेर ले जा रहे हैं।" लेकिन आपने अजमेर पहुँचने पर इसके लिए प्रायश्चित्त ग्रहण किया।

अजमेर पधार कर आपने शिखर सम्मेलन के लिए विविध पदाधिकारी साधु एव प्रमुख साध्विओं को पत्राचार द्वारा सूचित किया। विविध व्यवस्था के लिए सघ को प्रेरित किया। शिखर सम्मेलन मे विचारणीय विषयो की तालिका बनाई तथा नव-निर्वाचित आचार्य श्री जी को आचार्य की चादर ओढाने के भी समारोह के आयोजन के लिए संघ को प्रेरित किया। सघ आपके इशारे पर बडी उमग और उत्साह के साथ कार्य कर रहा था। आप न पधारते तो इतनी सुन्दर व्यवस्था अजमेर मे शायद ही हो पाती। आपके पधारने से अजमेर के नवयुवको मे भी उत्साह की नई चेतना आ गई।

आपने विक्रम सवत् २०२० का चातुर्मास अजमेर मे ही भव्यरूप से व्यतीत किया।

चातुर्मास मे और चातुर्मास के पश्चात् भी शिखर सम्मेलन की तैयारी के लिए व्यवस्थापको को आप मार्गदर्शन देते रहे।

श्रमण संघीय शिखर-सम्मेलन एवं आचार्य श्री को चादर प्रदान

आखिर विक्रम सवत् २०२० फाल्गुन शुक्ला ३ से अजमेर मे श्रमणसघीय शिखर सम्मेलन प्रारम्भ हुआ। शिखरसम्मेलन मे प्राय. सभी पदाधिकारी उपस्थित थे। हमारे चरितनायक पूज्य गुरुदेवश्री सक्रिय रूप से पहले से भाग ले रहे थे। श्रमणसघ के इस महत्त्वपूर्ण सम्मेलन मे आपने श्रमणसघ मे पनप रही उच्छृङ्खलता एव शिथिलता की ओर आचार्य श्री एव पदाधिकारियो का ध्यान आकर्षित किया। साथ मे इस खतरे की गभीर चेतावनी भी दी कि "यदि इस दुष्प्रवृत्ति की अभी से रोकथाम न की गई, और आचार्य श्री ने यथाशीघ्र अध्यादेशो द्वारा इस पर नियत्रण नही किया तो श्रमणसघ की अखण्डता को बहुत बडा खतरा पैदा होने की सभावना है।" सभी प्रमुख मुनिवरो ने आपकी बात पर गम्भीरता से विचार किया। नव-निर्वाचित आचार्य श्री ने भी आश्वासन दिया कि वह हर सम्भव श्रमणसघीय उन्नति के प्रयत्न करेंगे, बशर्ते कि मुझे पदाधिकारी मुनिवरो एव विशिष्ट साधु-साध्वियो का सक्रिय सहयोग मिला।

इसी अवसर पर नव-निर्वाचित पूज्य आचार्य श्री आनन्दऋषि जी महाराज को आपने तथा श्रमणसघीय पदाधिकारी मुनिवरो ने मिलकर आचार्यपद की चादर ओढाई और सबने उन्हे श्रमणसघ के द्वितीय आचार्य घोषित किये। आचार्यश्री ने इस अवसर पर सक्षिप्त वक्तव्य दिया, जिसमे आपके सहयोग की भूरि-भूरि प्रशसा की तथा सबको श्रमणसघीय ऐक्ययज्ञ मे आहुति देने के लिए आह्वान किया। सबने अपनी-अपनी ओर से यथाशक्ति सगठन के कार्य मे सहयोग देने का वचन दिया।

प्रवर्तक-पद-प्रदान

इसी अवसर पर एक नवीन, किन्तु महत्त्वपूर्ण घोषणा आचार्य श्री की ओर से की गई। अब तक श्रमणसंघ की सुव्यवस्था सभालने के लिए भू० पू० आचार्य श्री की ओर से मन्त्रिमण्डल बना हुआ था, जिसमे विभिन्न प्रान्तो के विभिन्न मत्री उस उस प्रदेश मे विचरण करने वाले साधु-साध्वियो की दीक्षा, चातुर्मास, विचरण, अध्ययन

तथा प्रायश्चित्त आदि व्यवस्थाएँ सभालते थे। किन्तु मत्रीपद मे राजनैतिक गन्ध आने लग गई थी, तथा वह पद शास्त्रीय पदो से वहुत दूर जा पडता था, अत शास्त्रीय पदो के निकटवर्ती और राजनैतिक दलवन्दी या गुटवाजी से ऊपर उठकर सघसेवा की भावना से अनुप्राणित प्रवर्तक पद समस्त भू० पू० मत्रियों को प्रदान किया गया। अधिकार और कर्तव्य वे ही रखे गए, जो मत्रीपद के थे। इस दृष्टि से हमारे चरितनायक की सघीय सेवाओ तथा सगठन के प्रति सतत जागरूकता को देख कर नव्य आचार्य श्री ने 'प्रवर्तक' पद से विभूषित किया। कुछ मुनिवरो को नये प्रवर्त्तक एव उपप्रवर्त्तक भी बनाये गए। आपके विशिष्ट संघ सेवा के कार्यों की दृष्टि से यह महत्वपूर्ण सम्मान-सूचक पद था, आपश्री के लिए। परन्तु आप पद के अधिकार की अपेक्षा कार्य को विशेष महत्त्व देते थे। यही कारण है कि आपने अपने साधुजीवन मे विना किसी पद की स्पृहा के कई महत्त्वपूर्ण कार्य सघ की उन्नति के लिए किये हैं, जिनका उल्लेख हम पिछले पृष्ठो मे कर चुके हैं।

अनुशासन-प्रियता

आप श्रमणसघीय प्रवर्तक-पद पर रह कर केवल पद के मोह मे चुपचाप बैठ नही गए, किन्तु प्रवर्तक-पद के योग्य कर्तव्यो से प्रेरित होकर संघ मे सुन्दर प्रवृत्ति के लिए स्वय जागरूक रहते थे, दूसरो को भी जागृत करते रहते थे।

आपने श्रमणसघीय शिखर सम्मेलन के अवसर पर भी आचार्यश्रीजी एव अन्य श्रमणसघीय पदाधिकारियो के सामने श्रमणसघ मे पनपते हुए शिथिलाचार एव अनुशासनहीनता की ओर सकेत किया था। परन्तु इसके वावजूद भी जव देखा कि इन दुष्प्रवृत्तियो की रोकथाम के लिए कोई सक्रिय कदम नही उठाए जा रहे हैं, तव आप पत्राचार के माध्यम से सघीय परिस्थिति के सम्वन्ध मे आचार्य श्री को स्पष्टरूपेण अवगत कराते रहे परन्तु इस पर भी कोई अनुशासनात्मक कदम नही उठाया गया। आप धैर्यपूर्वक यथासम्भव अनुनय विनयपूर्वक श्रमणसघीय आचार्यश्री जी महाराज को सूचित करते रहे। किन्तु अनुशासन के लिए उचित कदम उठाने को आचार्य श्री ने प्रयत्न किया और उसका यथोचित परिणाम नही आया, तव आपने उन्हे स्पष्टतया सूचित कर दिया कि अगर आपश्री कडा कदम अनुशासन-भग करने वालो के प्रति नही उठाते हैं तो अब मेरा श्रमणसघ से सम्वद्ध रहना कठिन है।"

श्रमणसंघ से पृथक् रह कर सेवाकार्य

आखिरकार आपने अपने पद की जिम्मेवारी और कर्तव्य की रेखा को तथा अपनी वृद्धावस्था एव भ्रमण मे असमर्थता को देखते हुए सघ से पृथक् रह कर विना किसी पद-प्रतिष्ठा के जितनी भी हो जाए सघ की सेवा करना उचित समझा।

आपने स्वत श्रमणसघीय प्रवर्त्तकपद से मुक्ति पा ली और जीवन के सन्ध्याकाल मे आत्माराधना मे विशेपतया समय लगाने का निश्चय कर लिया। यद्यपि आप श्रमण-सघीय दायित्व से मुक्त हो गए थे, लेकिन श्रमणसंघ समय-समय पर आपकी सेवाओ की कद्र करता रहा, तथा आपके विशिष्ट अनुभवो से लाभ भी उठाता रहा।

श्रमण संघ के इस महामहिम कर्मठ महारथी की विशिष्ट सघसेवाओ को कौन भुला सकता है। कद्रदा गुणवान की कद्र किये बिना नही रहता। श्रमणसघ के गठन, निर्माण, सस्कार परिवर्द्धन एव परिमार्जन के लिए किये गये भगीरथ प्रयत्नो का लेखा-जोखा अपने आप मे सगठन का अद्वितीय अध्याय है।

५

क्रान्तिकारी विचार-दर्शन

क्रान्ति शब्द सुनने मे बहुत मीठा लगता है। आजकल तो प्रत्येक व्यक्ति, खासकर प्रत्येक धर्मगुरु जरा-सा तार्किक और शिक्षित हुआ कि उसके नाम के पूर्व क्रान्तिकारी शब्द जुड जाता है। परन्तु 'क्रान्ति' इतनी सस्ती नही है और न इतनी उन्मादी है कि चाहे जिस तरह से मनमानी उखाड-पछाड कर ली तो क्रान्ति हो गई।

क्रान्ति मानव-जीवन का सहभावी तत्त्व रहा है, प्रत्येक युग मे जब-जब पुराने विचारो और आचारो मे विकृति आई है, वे विचार पोषक और विकासकर्ता के बदले शोषक और ह्रासकर्ता बन गये है, तब किसी दूरदर्शी विचारक ने सैद्धान्तिक सत्य की रक्षा करते हुए, उसमे निहित सडे-गले तत्त्वो को हटाकर नये मूल्यो की स्थापना की है। परन्तु जरा ठहरिये ! उस क्रान्तिकारी को क्रान्तिकारी सज्ञा केवल मनमाने और उच्छृखल विचारो या असयम-पोषक आचारो के प्रस्तुत करने मात्र से नही मिल जाती। वह मिलती है उन विचारो तथा उन आचारो को सिद्धान्त, साधना और विवेक की कसौटी पर कसने के साथ-साथ उन्हे जनजीवन मे प्रचारित करने का मोह तथा थोथे आडम्बर करने का लोभ छोडकर धैर्य के साथ सर्वप्रथम स्वय के जीवन मे उन विचार-आचारो को उतारने और तदनन्तर अपने माने जाने वाले, साधको एव सद्गृहस्थो के जीवन मे उन्हे प्रेरित करने का पुरुषार्थ करने पर। क्रान्ति अन्धी नही होती, वह द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव, परिस्थिति और पात्र के विवेकरूपी प्रकाश की पूर्ण अपेक्षा रखती है। क्रान्तिकारी विचारद्रष्टा एकान्त आग्रही नही होता या अपनी तथाकथित मान्यता को ही सच्ची और उससे भिन्न विचारधारा को मिथ्या मानने की झूठी जिद्द नही रखता। और न मिथ्या मान्यताओ पर युक्ति या खीचतान करके अपनी मान्यतानुसार अर्थ का मुलम्मा चढाने का प्रयत्न करता है। वह नम्र, सरल, विनीत, जिज्ञासु और पापभीरु होता है, वह किसी भी परम्परा-विरुद्ध बात मे तब तक सशोधन या परिवर्तन नही करता, जब

तक वह जिज्ञासा एव सरलता से युक्त वुद्धि से उसकी हिताहितकारिता की जाच न कर ले।

किन्तु क्रान्तिकारी के सम्बन्ध मे एक वात और विचारणीय है। वह यह है कि वह जिस क्रान्ति के सम्बन्ध मे अपने विचार देता है, उसका कुछ अमलीरूप भी देता है। साथ ही वह उस क्रान्ति के कारण विवेकमूढ या भ्रान्त अथवा साधारण अल्प समझ वाली जनता के द्वारा होने वाली प्रतिक्रिया, विरोध, तिरस्कार उपेक्षा, आलोचना, वहिष्कार आदि के रूप मे हो, तो भी उससे घवराता नही। वह उस समय समभाव से तटस्थ होकर चिन्तन करता है। वह विरोध, वहिष्कार, आलोचना या उपेक्षा करने वालो का असभ्य शब्दो मे लडभिड कर हिसक प्रतीकार नही करता।

भारत प्राचीनकाल से धर्मप्रधान देश रहा है। प्रत्येक धर्म मे से कई विचारधाराएँ पैदा हुई। यहाँ सभी धर्मसम्प्रदायो को अपनी-अपनी विचारधाराओं को फलने-फूलने और विकसित होने का अवसर दिया गया।

स्थानकवासी जैन सम्प्रदाय यो तो परम्परा से क्रान्तिकारी रहा है। उसका जन्म ही क्रान्ति मे से हुआ है। फिर भी वीच-वीच में कई विकृतियाँ वैचारिक और आचारिक रूप में उसमें भी आ गई थी।

हमारे चरितनायक जी वैचारिक क्रान्ति के पक्षधर रहे है। आचाराग सूत्र की यह प्रेरणा उनकी नस-नस में भरी हुई थी—

"समियंति मन्नमाणस्स समिया वा असमिया वा, समिया होइ ति उवेहाए।"

आचाराग ५।५। सूत्र १६

अगर कोई सत्यार्थी साधक किसी वात को जिज्ञासाभाव एव सरलभाव से अपने आप में सम्यक्‌रूप से मान रहा है, ज्ञानियो की दृष्टि में वह सम्यक् हो या असम्यक वास्तव में उसके लिए सम्यक् ही है।

वास्तव मे सत्य, सरलता और निर्भीकता की अपेक्षा रखता है। जो व्यक्ति गलत परम्पराओ, कुरूढियो, कुप्रथाओ, मिथ्यामान्यताओ के चक्कर मे पडकर अपने हृदय में सत्य जचती हुई वात या अपनी आत्मा की सीधी और सही आवाज की उपेक्षा कर देता है वह अ-सत्याग्राही है, सत्याग्रही नही। सत्याग्रही पुरुष मिथ्या आग्रह को पकडकर किसी मिथ्या वात को चलाता नही, वल्कि उसके हृदय में जो वात मिथ्या लगती है, वह उसे छोडते देर नही लगाता। भले ही उस समय का रूढिग्रस्त समाज वौखला कर उसे भला-बुरा कहे या उसकी झूठी आलोचना करे, वह अपने सत्य से विचलित नहीं होता।

अल्पारम्भ-महारम्भ पर क्रान्तिकारी विचारो का समर्थन

स्थानकवासी जैन सम्प्रदाय मे समय-समय पर ऐसे सत्यग्राही क्रान्तिकारी युगद्रष्टा अनेक संत हुए हैं। यह घटना उस युग की है, जव जैनसमाज मे अल्पारम्भ-महारम्भ को लेकर काफी विवाद चल रहा था। युगद्रष्टा जैनाचार्य पूज्य श्री जवाहरलाल जी महाराज

अपने युग के लब्धप्रतिष्ठ एव गम्भीर विचारक आचार्य थे। आप प्रकाण्ड विद्वान् तो थे ही, साथ ही शास्त्रो की युगानुकूल एव सिद्धान्तसम्मत व्याख्या प्रस्तुत करने मे सिद्धहस्त थे। गहन चिन्तन एव मौलिक विचारो के साथ आपने अल्पारम्भ-महारम्भ के विषय मे अपनी शास्त्र-सम्मत व्याख्या प्रस्तुत की। आपका चातुर्मास विक्रम सवत् १९९२ मे रतलाम था। आपकी अद्भुत प्रतिभा एव ओजस्वी वक्तृत्व से जनता प्रभावित हो रही थी। कृषिकर्म आदि के बारे मे शास्त्रसम्मत प्रश्न पूछे जाने पर आपने कहा कि कृषि को महारम्भ मानना उचित नही है, क्योकि कृषिकर्म से मानव का शोषण एव अहित उतना नही होता, जितना ब्याज या कलकारखाने आदि धधो से होता है। इसलिए कृषि अल्पारम्भ है। यही कारण है कि प्राचीनकाल मे आनन्द आदि अनेक बडे-बड़े श्रावक कृषिकर्म करते थे। अगर कृषिकर्म महारम्भ होता तो श्रावक वर्ग इसे कैसे अपनाता ? क्योकि महारम्भ तो श्रावक के लिए सर्वथा त्याज्य होता है, और महारम्भ को दुर्गति का भी कारण बताया है। भला इसे श्रावक कैसे अपनाता ?"

आपके द्वारा प्रस्तुत अल्पारम्भ-महारम्भ की व्याख्या सिद्धान्तसम्मत तो थी, परन्तु जैनसमाज मे उस समय प्रचलित अटपटी मान्यता से कुछ भिन्न थी। इस कारण कुछ मुनि आचार्य एव विद्वान् आपके पक्ष मे थे, कुछ विपक्ष मे थे। एक बार तो इतना तहलका मचा कि पूज्य श्री जवाहरलाल जी महाराज को लोग 'शास्त्र विरुद्ध प्ररूपक' (उत्सूत्र प्ररूपक) कहने लगे। परन्तु पूज्य श्री क्रान्तिकारी थे, इसलिए इस विरोध की कोई परवाह नही करते थे।

उधर भीलवाडा मे उस समय हमारे चरितनायक मरुधर पचानन प्रवर्त्तक, श्री पन्नालाल जी महाराज का चौमासा था। भीलवाडा की जनता प्रवर्त्तक श्री के प्रवचनो पर मुग्ध थी। आप अपने मुखारविन्द से जनता को उद्बोधित कर समाज मे क्रान्ति की लहर फैला रहे थे।

रतलाम मे वर्षावास के रूप मे विराजित युगद्रष्टा जैनाचार्य पूज्य श्री जवाहरलाल जी महाराज के विचार हितेच्छु श्रावकमडल रतलाम के द्वारा प्रकाशित पत्रिका 'निवेदन' मे प्रकाशित होते रहते थे। विक्रम सवत् १९९२ के भाद्रपद मास की 'निवेदन' पत्रिका उक्त मडल ने प्रवर्त्तक श्री जी महाराज की सेवा मे इस विषय पर उनके विचार जानने हेतु भेजी थी। प्रवर्त्तक श्री जी महाराज ने जब उक्त पत्रिका पढी तो अल्पारम्भ-महारम्भ की व्याख्या उन्हे शास्त्रसम्मत एव युगानुकूल लगी। उधर आपके कानो मे यह समाचार भी पड़े कि 'पूज्य श्री जवाहरलाल जी महाराज शास्त्र-विरुद्ध प्ररूपणा कर रहे हैं।' आपने तटस्थ दृष्टि से उस पर चिन्तन-मनन किया, कई शास्त्रज्ञ विद्वानो से भी इस सम्बन्ध मे विचार विमर्श किया। अल्पारम्भ-महारम्भ की उक्त व्याख्या के पक्ष-विपक्षमे अनेक युक्तियाँ प्रस्तुत की जा रही थी। विद्वानो मे भी कुछ पुरानी धारणा के थे, वे इसका विरोध कर रहे थे। परन्तु इधर पूज्य आचार्य श्री जवाहरलालजी महाराज भी गम्भीर विचारक होने के साथ-साथ तटस्थ थे, वे विरोध और प्रतिक्रिया सुनने को

सदैव उद्यत रहते थे। उन्हे अपनी व्याख्याओ के प्रति कोई कदाग्रह नही था। अपनी प्रवल युक्तियाँ और शास्त्रीय प्रमाणो से वे उसका उत्तर देते, जिसके सामने विरोधियो की युक्तियाँ टिक नही पाती थी।

प्रवर्त्तक श्री जी महाराज भी युक्तिसगत, युगानुकूल, शास्त्रसम्मत विचारो के सदैव समर्थक रहे हैं। उन्होने भी गहराई से इन विचारो का अध्ययन किया तो, उन्हे वे विचार सत्य प्रतीत हुए। सत्यग्राही सम्यग्दृष्टि को विचारो का कदाग्रह नहीं होता, साथ ही सत्य विचारो को प्रगट करने मे वह हिचकिचाता भी नही। जव भी वह देखता है कि विरोधियो द्वारा सत्य वात को भी हठाग्रह, पूर्वाग्रह एव राग-द्वेष के कारण ठुकराया जा रहा है, तो वह विरोध की परवाह किए विना सत्य वात को स्पष्टतया स्वीकारने मे व कहने मे जरा भी हिचकिचाता नही। यही वात हमारे चरितनायक प्रवर्त्तक श्री जी महाराज मे थी। वे भी रूढिग्रस्त एवं विकृत-विचारधारा के खिलाफ अल्पारम्भ-महारम्भ की युगानुकूल शास्त्रसम्मत विचारधारा का प्रतिपादन कर रहे थे।

अल्पारम्भ-महारम्भ के विषय में विचार व तर्क

अल्पारम्भ-महारम्भ के वारे मे भी आपके विचार आचार्य श्री के विचारो जैसे थे, शास्त्रानुकूल थे और स्पष्टत युगानुरूप थे। आपने एक वार इस सम्वन्ध मे सार्वजनिक रूप से व्याख्यान मे स्पष्ट कहा था "किसी भी कर्म का अल्पारम्भ या महारम्भ होना कर्त्ता की हिंसापरक भावना व अध्यवसाय पर निर्भर है। कोई व्यक्ति प्रत्यक्ष व्यवहार मे हिंसा करता नही प्रतीत होता, किन्तु उसके भावो में तथा उसके कार्य के परिणाम मे महाहिंसा है तो वह महारम्भ व महाहिंसा के पाप का भागी हो जाता है। शास्त्र मे तन्दुलमच्छ का उदाहरण आता है। तन्दुलमच्छ एक पञ्चेन्द्रिय प्राणी होता है, उसका शरीर चावल के दाने जितना होता है। वह वड़े मच्छ की भौहो पर वैठा रहता है। अपने शरीर से तो वह एक भी प्राणी को मार नही सकता, किन्तु वह उस वड़े मच्छ की भौह पर वैठा-वैठा ही यह दुर्भावना करता रहता है कि 'यह मच्छ कितना मूर्ख और आलसी है कि अपने मुह मे आ जाने वाली हजारो मछलियो को वापस निकलने देता है। अगर इसके स्थान पर मैं होता तो एक भी मछली को नही छोडता, सवको निगल जाता।' इसी दुर्भावना एव दुष्ट अध्यवसाय के फलस्वरूप वाहर मे हिंसा न किये जाने पर भी वह पचेन्द्रियवध का भागी वन जाता है और मरकर सातवे नरक मे जाता है।

एक मछुआ है। वह जाल लेकर मछलियो को पकडने के लिए घर से चला है। रास्ते मे किसी कारणवश वह दुर्घटनाग्रस्त हो गया और मछली पकडने जा नही सका, अथवा नदी मे जाल डालने पर एक भी मछली उसके जाल मे नही फसी। मछुआ एक भी मछली को चाहे न पकड सका हो या न मार सका हो, लेकिन उसकी भावना पचेन्द्रियवध की होने से उसे महाहिंसा का पाप लग ही गया।

इसी प्रकार एक शिकारी है। वह हिरणो का शिकार करने के लिए शस्त्रास्त्र ले कर घर से चला। जगल मे पहुँचने पर हिरण चौकडियाँ भरते हुए उसके सामने से

निकले। उसने अपने तीर-कमान लेकर निशाना साधा, लेकिन वह खाली गया। वह एक भी हिरण को नही मार सका। फिर भी पचेन्द्रियवधजनित महाहिंसा के पाप का भागी वह बन ही गया।

इसी प्रकार एक व्यक्ति ब्याज-वट्टे या सट्टे का धन्धा करता है, जिसमे बाहर से प्रत्यक्षहिंसा दृष्टिगोचर नही होती और एक व्यक्ति खेती करता है। खेती मे तो एकेन्द्रिय से लेकर पचेन्द्रिय तक के प्राणियो की हिंसा हो जाती है। यद्यपि किसान की भावना किसी भी प्राणी को जानबूझ कर मारने की नही होती, तथापि असावधानी से कई बार तिर्यंच पचेन्द्रिय (चूहे आदि) मर जाते हैं। जबकि ब्याज बट्टे या सट्टे के धधे मे बाहर से हिंसा न होते हुए भी मानसिक हिंसा तीव्र होती है। बिना ही परिश्रम के दूसरो का अधिक से अधिक पैसा कैसे अपनी जेब मे आए, यही भावना रहती है, शोषण भी होता है। कई बार तो इतनी कठोरता का व्यवहार होता है कि सामने वाले (कर्जदार) के बाल-बच्चो को बिलखते हुए देखकर या उसकी सकट ग्रस्त तग हालत देख कर भी दया नही आती और ऋण की सख्ती से वसूली की जाती है, या उसका शोषण कर लिया जाता है। कई बार सट्टे मे आर्थिक नुकसान होने पर व्यक्ति आत्महत्या करने पर उतारू हो जाता है। सट्टे के कारण गृहकलह होने से भी कई लोग बर्बाद हो जाते हैं। किन्तु कृषि मानसिक हिंसा का कोई मुख्य कारण नही बनती, न सामाजिक हिंसा का ही। बल्कि मानवजाति के लिए वह पोषणदायक, जीवनदायक व हितकर होने के कारण उसमे जो हिंसा होती है, वह अल्प मानी जाती है। और वह भी-सकल्पी हिंसा नही होती। इसलिए कृषि अल्पारम्भ है, जबकि सट्टा या ब्याज-वट्टे आदि का धधा महारम्भ है। यद्यपि यह महारम्भ एक प्रकार का अपेक्षाकृत विशेषारम्भ समझा जाना चाहिए। नरक का हेतु भूत महारम्भ नही।"

इसी प्रकार हिंसा-अहिंसा के विषय मे समाज मे एक भ्रान्त धारणा प्रचलित थी कि जितनी अधिक सख्या मे प्राणियो का हनन होगा, उतनी ही अधिक हिंसा होगी, अल्पसख्या मे हनन होने पर हिंसा भी अल्प होगी।

जब एकेन्द्रिय से लगाकर पचेन्द्रिय तक सभी जीव समान हैं, तो उनमे से किसी की हिंसा कम और किसी की हिंसा ज्यादा कैसे हो सकती है? इस तर्क के आधार पर ही यह भ्रान्त धारणा प्रचलित हुई कि जहाँ जीव ज्यादा मरेंगे वहाँ ज्यादा हिंसा होगी, जहाँ जीव कम मरेंगे, वहाँ हिंसा कम होगी। इस प्रकार हिंसा-अहिंसा का नापतोल जीवो को गिन-गिनकर होने लगा।

इस सम्बन्ध मे अन्य तर्क भी प्रस्तुत किये जाने लगे। यथा एक प्यासा आदमी किसी के दरवाजे पर पहुँच गया। वह प्यास से छटपटा रहा है, और मरने वाला है, गृहस्वामी को उस पर दया आई और उसने उस प्यासे को एक लोटा पानी पिला दिया। प्यासे के प्राण बच गए। वह दुआएँ देता हुआ विदा हो गया। अब देखना यह है कि इस प्रसग मे हिंसा का पलडा भारी है या अहिंसा का? एक ओर लोटे भर पानी

में असंख्यात जलकायिक जीव मरे, दूसरी ओर सिर्फ एक मनुष्य बचा। यहाँ अगर मृत जीवों की गिनती पर से हिंसा की न्यूनाधिकता का निर्णय करते हैं तब तो जलकायिक जीव अधिक संख्या में मरने के कारण पानी पिलाकर प्यासे मरते को बचाने में न धर्म हुआ और न पुण्य ही। हिंसा-अहिंसा का यह गणित किस फार्मूले पर आधारित होगा।

हमारे चरितनायकजी से जब इस विषय में पूछा गया तो आपने अपनी सूझबूझ और क्रान्तदर्शी विचारधारा के अनुरूप उत्तर दिया कि मरने वाले जीवों की संख्या की न्यूनाधिकता पर हिंसा की न्यूनाधिकता का आधार नहीं है, हिंसा की तरतमता का यह मापदंड गलत है। अगर ऐसा माना जाएगा तो अन्नाहारी जैनों की अपेक्षा मांसाहारी लोग अधिक अहिंसक (अल्पहिंसक) ही ठहरेंगे। जैसा कि एक पादरी एक जैन से कहता था कि तुम जैन लोग रोटी बनाने में अनाज और पानी के असंख्य जीवों को मार कर खाते हो, हम एक बकरे से ही काम चला लेते हैं। तुम्हारी अपेक्षा तो हम बहुत ही कम हिंसा करते हैं? क्या पादरी का यह कथन यथार्थ एवं न्यायसंगत है? कदापि नहीं। भगवान् महावीर ने मरने वाले जीवों की गणना के आधार पर हिंसा की न्यूनाधिकता के नापतौल को एकदम गलत बता कर उसका खण्डन किया है। उनके द्वारा प्ररूपित सिद्धान्त सूत्रकृताङ्ग सूत्र के द्वितीय श्रुतस्कन्ध में अंकित है। वहाँ उन्होंने बताया कि हस्तीतापस ही ऐसा मानते हैं कि जीवों की गिनती पर ही हिंसा के कम या ज्यादा होने का दारोमदार है। परन्तु हस्तीतापसों की यह मान्यता असत्य है।

प्राचीन काल में कुछ तापस जंगलों में रहते थे और कठोर क्रियाएँ करते थे। वे बीच-बीच में तपस्या करते रहते, जब पारणे का दिन आता तो वे विचार करते कि यदि हम वनफल या कंदमूल आदि खाएँगे या अनाज खाएँगे तो अनेक जीव मर जायेंगे, हिंसा ज्यादा होगी, अतः क्यों न एक स्थूलकाय हाथी को मार लिया जाए, ताकि एक ही जीव मरेगा, और कई दिनों तक उसे सुविधापूर्वक खाते जाएँगे, हम भी खाएँगे और दूसरों को भी खिलाएँगे। साथ ही हिंसा की मात्रा भी कम होगी। यह सोचकर वे जंगल में एक हाथी को मार लेते, और सुविधापूर्वक खाते रहते। परन्तु हस्तीतापसों का यह मत अज्ञानमूलक भ्रान्त और मिथ्या है।

हिंसा की न्यूनाधिकता का मापदण्ड मरने वाले जीव की चेतना के विकास, प्राणों की न्यूनाधिकता और मारने वाले के तीव्र-मन्द परिणामों पर निर्भर है। एकेन्द्रिय जीवों की चेतना का विकास अत्यल्प होता है प्रायः वे मूर्च्छित-सी अवस्था में रहते हैं, उनके प्राण भी ४ होते हैं कायबलप्राण, श्वासोच्छ्वासबलप्राण, आयुष्यबलप्राण और स्पर्शेन्द्रियबल प्राण। एकेन्द्रिय से द्वीन्द्रिय में द्वीन्द्रिय से त्रीन्द्रिय में और त्रीन्द्रिय से चतुरिन्द्रिय तथा चतुरिन्द्रिय से पंचेन्द्रिय में चेतना प्राण आदि का उत्तरोत्तर ज्यादा विकास है इसलिए एक मापदण्ड तो हिंसा के कमोवेश होने का यही है। दूसरा है हिंसा करने वाले के भावों की तीव्रता-मन्दता का। एकेन्द्रिय को मारते समय भावों में इतनी क्रूरता नहीं आती, जितनी कि पंचेन्द्रिय को मारते समय आती है। इसलिए जितने-

जितने ज्यादा इन्द्रियो वाले प्राणी को मारा जाएगा, उतना-उतना कषायरूप सक्लेश परिणाम अधिक होगा। इसलिए तात्पर्य यह हुआ कि जिस प्राणी की चेतना जितनी-जितनी अधिक विकसित होगी, उस-उस प्राणी को सवेदन या दु खानुभव उतना ही ज्यादा होगा और मारने वाले के परिणामो की तीव्रता उसी अनुसार होगी। इसलिए पचेन्द्रिय तिर्यंचो या मनुष्यो की हिंसा ही महाहिंसा कहलाती है, और उसे ही शास्त्र मे नरक का कारण बताया है।

अगर ऐसा नही मानकर जीवो की गिनती पर हिंसा की न्यूनता-अधिकता को नापेगे तब तो भगवान् नेमिनाथ एव अन्य तीर्थंकरो द्वारा होने वाली अगणित एकेन्द्रिय जीवो की हिंसा के कारण उन्हें नरकगामी और महारम्भी कहना पड़ेगा, परन्तु वास्तव मे ऐसा है नही। अगर गिनती पर ही हिंसा की न्यूनाधिकता मानी जाएगी तब तो अरिष्ट-नेमि भगवान् का प्रश्न हल नही होगा। अरिष्टनेमि के दुल्हा बनने से पहले १०८ पानी के घडो से स्नान कराया जाता है। उस समय वे मतिश्रुत-अवधिरूप त्रिज्ञानी कुछ नही बोले कि मेरे एक विवाह के लिए इतने जीवो की हिंसा क्यो करते हो ? यह मेरे लिए परलोक मे अश्रेयस का कारण होगी जबकि दूल्हा बनने के बाद जब वे विवाह के लिए रथारूढ होकर जा रहे थे तो एक बाडे मे अनेक भद्रपशुपक्षियो को बरातियो के भोज के लिए अवरुद्ध देखकर उनका करुण हृदय द्रवित हो उठा। उन्होने कहा—मेरे विवाह के लिए इतना पाप ! इतनी हिंसा ! अफसोस है। छोड दो मेरे निमित्त यह हिंसा मेरे लिए परलोक मे दु खद होगी।" इससे यह स्पष्ट हो जाता है पचेन्द्रिय जीवो की अपेक्षा एकेन्द्रिय जीववध मे अपेक्षाकृत हिंसात्मक परिणाम कम क्रूर व कम सक्लिष्ट होते है।

शास्त्र मे साधुओ के लिए यह विधान है कि अगर कोई साधु या साध्वी नदी मे डूब रहे हो, और दूसरा साधु तरना जानता हो तो वह नदी मे डूबते हुए साधु या साध्वी को नदी मे से निकाले और डूबते हुओ को बचाए। जरा गहराई से सोचने की बात है कि नदी मे तैर कर साधु जाएगा तो उस समय जलकाय के प्राणी कितने मरेंगे ? और जलकायिक प्राणियो के आश्रित द्वीन्द्रिय से लेकर मछली आदि पञ्चेन्द्रिय-जीवो तक की विराधना हो सकती है, अगर जीवो की गिनती करके हिसाब लगाया जाए तो उधर एक साधु या साध्वी की रक्षा होगी, किन्तु इधर जलकाय तथा द्वीन्द्रिय से लेकर पचे-न्द्रिय तक के, असख्य जीव मरेंगे, फिर भी वहाँ बचाने वाला साधु पुण्योपार्जन या कर्म निर्जरा करता है। अगर मृत जीवो की गिनती पर ही हिंसा की न्यूनता-अधिकता मानी जाती, तब तो शास्त्रकार यही कहते हैं कि एक साधु या साध्वी को बचाने मे असख्य जीव मरते हैं इसलिए डूब जाने दो, बचाने की कोई आवश्यकता नही है। परन्तु ऐसा नही कहा। इसलिए सिद्धान्त यह निकला कि जीवो की गिनती पर हिंसा की न्यूनाधिकता निर्भर नही, अपितु शुभ या शुद्ध परिणामो की न्यूनाधिकता पर हिंसा की न्यूनाधिकता है।

इसी दृष्टिकोण से कृषि का प्रश्न भी हल कर लेना चाहिए। यद्यपि खेती मे कभी-कभी द्वीन्द्रिय से लेकर पचेन्द्रिय तक के जीव मर जाते हैं, लेकिन किसान की

उन्हें मारने संकल्प पूर्वक उनका वध करने की कोई भावना नही होती, ऐसी दशा मे कृषि अल्पारम्भ ही सिद्ध होती है, महारम्भ और उसमे भी नरक का कारणभूत महारम्भ तो वह कदापि नही है।

सट्टे आदि अन्य प्रासुक कार्यों की चर्चा जैनसमाज मे बहुत चलती है, किन्तु जुआ, सट्टा आदि को तो हमारे यहाँ सप्तकुव्यसनो मे सर्वप्रथम त्याज्य माना है। क्योंकि उसके पीछे भयकर भावहिंसा मानसिक हिंसा छिपी हुई है। कृषि सात्त्विक कार्य है, वह अहिंसा की ओर मानव को ले जाने वाली आजीविका है, आर्यकर्म है। उसे अनार्यकर्म किसी भी आचार्य ने या शास्त्रकार ने नही कहा है। मांसाहार जैसे महारम्भ से बचाने के लिए कृषि के अतिरिक्त कोई विकल्प नही है। भगवान् महावीर के आनन्द कामदेव आदि उत्कृष्ट उल्लेखनीय श्रावक भी कृषि-कर्म करते रहे। अगर कृषि महारम्भ हो तो भगवान् उसे श्रावकव्रत ग्रहण कराते समय ही कह देते कि पहले महारम्भरूप कृषि-कर्म छोडो, बाद मे श्रावकव्रत ग्रहण करो। अगर कृषि, फोडीकम्मे नामक कर्मादानरूप कर्म होता तो भगवान् महावीर, आनन्द आदि श्रावको को जब कर्मादान का तीनकरण तीन योग से सर्वथा त्याग कराते, तब ही श्रावकत्व ग्रहण कराते। परन्तु उन्होंने ऐसा कुछ नही किया, बल्कि उपासकदशाग सूत्र मे भगवान महावीर के दश श्रावको मे कई श्रावको के पास विशाल कृषि होने का उल्लेख गौरव के साथ किया गया है।

अन्य व्यापार धन्धो की अपेक्षा कृषि विशेष सात्त्विक कर्म है। इसीलिए भगवान ऋषभदेव व अन्य महापुरुषो ने कृषि को मूल आजीविका बताई है। कृषि के द्वारा अन्न, कपास, तिलहन, गन्ना आदि पैदा होने पर ही अनाज, रुई, तेल, गुड, शक्कर आदि अन्य वस्तुएँ बनकर बाजार मे आ सकती हैं। यानी कृषि होगी, तभी इन चीजो का मण्डी मे व्यापार होगा। कृषि नही होगी तो व्यापारी किस माल का व्यापार करेगा? इसलिए कृषि को अन्य श्रावक योग्य व्यापारो की अपेक्षा अल्पारम्भी मानी जाय तो कोई आपत्ति नही है। कृषि मे त्रस-स्थावर प्राणियो की द्रव्यहिंसा होती है, भावहिंसा नही, जबकि व्यापारी की भावना प्रायः शोषण की होने से भावहिंसा ही ज्यादा होती है। कृषि मे मानव का पोषण है, शोषण नही, जबकि व्यापार मे पोषण तो अत्यल्प है, अधिक लाभ तथा यथाशक्य शोषण एव अधिकाधिक धनार्जन की भावना ही अधिक है अत: कृषि मे मानव पोषण की भावना होने से अधिक सात्विक तथा अपेक्षाकृत अल्पारम्भ है।

करने, कराने एवं अनुमोदन मे हिंसा की न्यूनाधिकता का विचार

जैनधर्म अनेकान्तवादी धर्म है। वह किसी भी विषय मे एकान्त दृष्टि से निर्णय नही देता। वह बाहर मे दिखाई देने वाली प्रत्यक्ष हिंसा को ही नही पकडता वह मनुष्य के भावो परिणामो को पकडता है, उसी के अनुसार उसका निर्णय होता है।

इस दृष्टि से देखा जाय तो कही किसी काम को स्वय करने मे कम हिंसा हो सकती है, बशर्ते कि वह काम विवेक (यतना) पूर्वक किया गया हो, कही स्वय के अविवेक और हठाग्रह के कारण तथा दूसरे विवेकी से न कराने के कारण स्वय करने मे ज्यादा हिंसा हो सकती है।

इसी प्रकार किसी कार्य को स्वय विवेकपूर्वक कर सकने की स्थिति मे होने पर भी दूसरे किसी अनाड़ी, अबोध या नासमझ व्यक्ति से कराने मे स्वय विवेकपूर्वक करने की अपेक्षा ज्यादा हिंसा हो सकती है। इसीप्रकार दूसरे अनाडी से कार्य कराने की अपेक्षा स्वय विवेकपूर्वक करने मे कम हिंसा हो सकती है।

किन्तु एक आदमी स्वय काम नही करता, दूसरो से करवाता भी नही, केवल काम करने वालो की सराहना करता है। कही लडाई हुई। सिर फटे। एक तमाशबीन ने उसका समर्थन करते हुए कहा "वाह! वहुत अच्छा हुआ, उसका सिर फटा और हड्डी का कचूमर निकला।" इस प्रकार उस तमाशबीन ने स्वय लडाई नही की, दूसरो से कराई भी नही, किन्तु लडाई जैसी गलत चीज का समर्थन किया। उसमे आनन्द माना तो उसने हिंसाजन्य कर्मबन्धन कर लिया तन्दुलमच्छ की तरह। अत यहाँ करने और कराने की अपेक्षा अनुमोदन मे अधिक हिंसा हुई है।

प्राचीनकाल मे कई युद्ध ऐसे हुए, जिनमे उभयपक्ष की सेनाओ को न लडा कर पक्ष-प्रतिपक्ष दोनो के अगुओ ने स्वय द्वन्द्व-युद्ध लड कर फैसला किया। उनमे कराने की अपेक्षा स्वय करने मे कम से कम हिंसा से काम हो गया। बल्कि इसे आशिक अहिंसक-युद्ध का एक रूप माना जा सकता है। रावण और बाली के द्वन्द्व-युद्ध का वर्णन जैन-रामायण मे आता है, वह इसी प्रकार का था। इसी प्रकार भरत और बाहुबली का दृष्टियुद्ध, मुष्टियुद्ध आदि द्वन्द्वयुद्ध के द्वारा जय-पराजय का निर्णय भी ऐसे ही युद्ध का एक प्रकार है।

एक जज है। उसके सामने एक कत्ल का मुकद्दमा आता है। वह गम्भीरता से अपने कर्त्तव्य पर विचार करता है। वकीलो की सहायता से खूब अच्छी तरह सोच-विचार कर जज ने मामले की छानवीन की। जज का सिंहासन कानून के अनुसार केवल दण्ड देने के लिए ही नही है, अपितु, व्यक्ति निरपराध साबित हो तो उसे दण्ड से वचाने के लिए भी है। अपराधी को वह दण्ड देता है, प्राणदण्ड भी देता है, परन्तु किसी द्वेष-वश या पक्षपातवश नही देता। जज के हृदय मे अपराधी के प्रति घृणा या द्वेष न होने पर भी उसे मौत की सजा सुनानी पडती है। अपराधी को सुनाए गए दण्ड को कार्यान्वित करने के लिए उसे जल्लाद के सुपुर्द कर दिया जाता है। जल्लाद उसे लेकर फाँसी के तख्ते के पास ले आता है। वह सोचता है—इसने गुनाह किया है, फलत न्यायाधीश की ओर से अपराधी के लिए सुनाये गए दण्ड को कार्यान्वित करने का उत्तरदायित्व मुझ पर आया है। मैं तो केवल आज्ञापालन के लिए हूँ। मैं फासी देने वाला कौन? फासी तो इसके कर्म दे रहे हैं।

इस घटना मे एक हिंसा कर रहा है, उत्तरदायित्व-पालन के लिए, दूसरा (न्यायाधीश) हिंसा करवा रहा है और कुछ दर्शक फासी के तख्ते के पास अपराधी को देखने के लिए खडे हैं। वे कहते है "अच्छा हुआ, वदमाश को फाँसी की सजा हुई। अव देर क्यो हो रही है? जल्दी ही तख्ता क्यो नही हटाया जाता?" स्पष्ट है कि यद्यपि

जल्लाद फासी दे रहा है, न्यायाधीश दिलवा रहा है, फिर-भी इन दोनो की मनोवृत्ति हिंसा करने की न होने से केवल, कर्त्तव्यपालन के कारण द्रव्य हिंसाजनित कर्म से ही छुटकारा हो सकता है, लेकिन दर्शक अपनी क्रूर मनोवृत्ति के कारण भयंकर भावहिंसा कर लेते हैं और तज्जनित पापकर्म का बन्ध भी। यहा अनुमोदन मे हिंसा अधिक है। करने-कराने और अनुमोदन मे हिंसा की न्यूनाधिकता का नाप-तोल करने मे बड़े-बड़े चक्कर खा जाते हैं। कई बार गृहस्थ लोग, जो दूसरे आरम्भ-समारम्भ तो दुनियाभर के करते हैं, बहनें भी गृहस्थी का सब आरम्भ करती हैं, सतानोत्पत्ति, बालक का पालन-पोषण आदि सब आरम्भ के कार्य करती हैं, परन्तु जहाँ मेहनत का काम आ पड़ता है, वहां हिंसा-अहिंसा की फिलॉसॉफी बघारने लगती हैं कि "हाथचक्की से स्वयं आटा पीसने मे आरम्भ हमे लगेगा, इसलिए कलचक्की (पनचक्की) मे आटा पिसवा लो, या किसी नौकरानी से आटा हाथचक्की से पिसवा लो उसी को आरम्भ का पाप लगेगा।" परन्तु जब तक किसी गृहस्थ ने आरम्भ-समारम्भ का तीन करण तीन योग से त्याग नहीं किया और जिसे भिक्षा मागने का अधिकार नही है, तब तक विवेकपूर्वक स्वयं हाथ-चक्की पर आटा पीसने मे कम आरम्भ (हिंसा) है, अविवेकपूर्ण पनचक्की पर पिसवाने मे या घर पर अविवेकी नौकरानी से पिसवाने से अधिक। क्योंकि कलचक्की मे आटा पीसने मे कई बार सड़े-बासी अनाज को भी साथ मे डाल दिया जाता है, उसमे जीवजन्तु भी होते हैं, कई बार मास के टोकरे मे आनज भर कर लोग पीसने के लिए कलचक्की पर लाते हैं। नौकरानी भी अविवेक से पीसेगी, जीव-जन्तु की चक्की को देखने-भालने की चिन्ता क्यो करेगी ? अत ऐसी स्थिति मे दूसरो से कराने मे स्वय विवेकपूर्वक करने की अपेक्षा ज्यादा हिंसा होती है।

आरम्भ का पाप तो तब तक लगेगा, जब तक आप सर्वथा खाने का त्याग नही कर देंगे। पनचक्की वाला आखिर किसलिए आटा पीसता है ? उसने दूसरो का अनाज पीसने के लिए ही तो कलचक्की लगाई है! इसलिए जो अनाज पिसवाता है, उसे भी आरम्भ (हिंसा) का पाप लगेगा, बल्कि दूसरो से आटा पिसवाने मे अविवेक अयतना ज्यादा होने से हिंसा ज्यादा लगती है।

इसी प्रकार कई भाई सोचते हैं कि "हम घर पर मिठाई या अन्य भोज्य-सामग्री बनायेंगे तो हमे आरम्भ (हिंसाजनित पाप) लगेगा। बाजार से हलवाई के यहाँ से सीधी भोज्य सामग्री या मिठाई ले आने पर हमे हिंसाजनित पाप नही लगेगा।" परन्तु यह भी एक प्रकार की भ्रान्ति है। क्या इस तरह हिंसा से बचने के लिए सड़ी, बासी, तथा अविवेक के कारण मक्खी-मकोड़े के सहार से बनी हुई मिठाइयाँ या अन्य भोज्य-सामग्री को बाजार से सीधी ले-आने वाले ज्यादा हिंसा के भागी नही बनते हैं ?

विवेक के गज से हिंसा की अधिकता और न्यूनता को मापना चाहिए। तब ये भ्रान्तियाँ नही रहेगी। बल्कि इससे चिन्तन स्पष्ट हो जाएगा और कोई इस भ्रम का शिकार नहीं होगा कि अमुक चीज खानी तो है, किन्तु स्वय या गृहिणी द्वारा विवेक से

न बना कर हलवाई आदि के यहाँ से मिठाइयाँ सीधी (पहले बनी हुई) लाकर खाने मे हिंसा (आरम्भ) से बच जाऊँगा।

इसी प्रकार अहिंसा के सम्बन्ध मे कई और भ्रान्तियाँ समाज मे प्रचलित है। उन्हे भी यहाँ प्रसगवश मुझे स्पष्ट कर देना चाहिए। एक धर्मगुरु के नाते मेरा कर्तव्य है कि मैं जनता को अन्धेरे मे न रखकर स्पष्ट मार्गदर्शन दूँ, अन्यथा जनता भ्रम की शिकार होकर अन्यथा श्रद्धा कर लेगी।

एक व्यक्ति फूलो का सादा हार पहन कर आता है, और दूसरा मोतियो का हार पहन कर ठाठ से धर्मस्थान मे आता है। लोग मोतियो के हार पहनने वाले को पुण्यवान समझते और कहते है। मगर सोचने की बात है कि मोती कहाँ से आते हैं? सच्चे मोती के लिए अनेक मछलियो का पेट फाडा जाता है, तब जाकर, किसी-किसी मछली व सीप मे मोती निकलता है। उस महान् आरम्भ हिंसा से जनित मोती का हार पहनने वाले को आप चाहे जो कुछ कहे, शास्त्रकार उसे ज्यादा हिंसा से समुत्पन्न होने से अधिक हिंसक कहते हैं, जबकि फूलो के हार मे सिवाय वनस्पतिकाय-जनित हिंसा एकेन्द्रिय जीव की हिंसा के और कोई हिंसा नही मालूम होती।

इसी प्रकार एक व्यक्ति रेशमी कपडा पहनता है और एक व्यक्ति शुद्ध खादी के वस्त्र पहनता है। दोनो मे से कौन अधिक हिंसा का भागी होगा? ऊपर-ऊपर से देखने पर तो यही मालूम पड़ता है कि रेशमी वस्त्र पहिनने वाला ज्यादा पुण्यवान है, परन्तु रेशमी वस्त्र बनते कैसे हैं? इस पर आप लोगो ने कभी विचार किया है? एक गज रेशमी कपडा बनाने मे हजारो शहतूत के कीडे खोलते हुए अत्यन्त गर्म पानी मे उबाले जाते हैं। वे बेचारे मर जाते हैं, तब उनके मुंह से रेशे निकाले जाते हैं, ऐसे त्रसहिंसा से बने हुए रेशमी कपडो को पहनना पुण्यवानी है या पुण्यहीनता है? इसी प्रकार मिल के कपड़े, जिनमे चर्बी लगती है, वे शुद्ध खादी के कपडो की अपेक्षा अधिक हिंसाजन्य हैं। इसलिए मेरे विचार मे चर्बी लगे हुए कपडो मे पचेन्द्रिय जीववध का पाप परोक्षरूप से लगता है, जबकि खादी के वस्त्र वनस्पतिकायजन्य कपास से बनाए जाते हैं। खादी बनने मे सारा पैसा गरीब कत्तिनो, बुनकरो तथा श्रमजीवियो के पास जाता है, जबकि मिल के कपडो का पैसा पूंजीपति के पास जाकर केन्द्रित हो जाता है, जिसके पास पहले भी काफी पूजी जमा है। तथा वह पैसा जो श्रमजीवियो की मेहनत से प्राप्त करके मिल मालिको या कारखानेदारो के पास जाता है, उसका उपयोग प्रायः मौज-शौक या ऐशो-आराम मे जाता है।

इसी प्रकार हिंसा की न्यूनाधिकता के विषय मे एक बात और स्पष्ट कर देना आवश्यक समझा हूँ। एक व्यक्ति मोची से स्वत मरे हुए ढोर के चमडे के बने हुए जूते खरीद कर पहनता है, एक बढिया बूट पहनता है, जिनमे कई क्रूमलेदर के होते हैं, हमारी समझ मे मोची के द्वारा बने हुए देशी जूतो के पहनने मे हिंसा कम है, जबकि विलास व अभिमानवर्द्धक तथा जिंदे पशुओ को मारकर या ताजे बछडो को मारकर

उनके मुलायम चमड़े से निर्मित बूटों के पहनने में हिंसा बहुत ही अधिक हैं, श्रावक के लिए सकल्पी हिंसा वर्जित है अत. क्रूमलेदर या कॉफलेदर की चीजें श्रावक के उपयोग-योग्य नही हैं।

इसी प्रकार तेलघाणी का तेल और मिल का तेल, मिल की चीनी एव खांडसार या गुड तथा सोने का हार और सूत का हार दोनों मे किसमे कम हिंसा है, किसमे ज्यादा है ? यह बात तो आप समझ गए होंगे।

आज ग्रामोद्योगी वस्तु बनाने वाले कारीगर भारत के ग्रामो मे कम होते जा रहे हैं, उनका धधा धीरे-धीरे कलकारखानो ने छीन लिया है, और वे-बेकार होकर या तो शहरो की घनी बस्ती मे गदे स्थानो मे सकडी-सी कोठरियो मे रहते हैं। कई श्रमजीवी लोग तो शहरो के दुर्व्यसनो शराब, मासाहार, जुआ आदि अनैतिक बातो मे फँस कर अपना नैतिक जीवन चौपट कर लेते हैं। किन्तु यह कहना होगा कि कृषक, कुँभकार, बढई, तेली, मोची आदि मूल से सात्त्विक वृत्ति के कारण जनता के सेवक हैं। परन्तु उन्हे अपमानित किया जाता है, दुरदुराया जाता है, उन्हे नीचा समझकर उनका तिरस्कार किया जाता है, उन्हे श्रावक बनने का अधिकार नही दिया जाता, कई जगह इन्हे तुच्छ और अस्पृश्य तक समझा जाता है। यह भी एक प्रकार से सामाजिक हिंसा है।

वैसे तो कृषिकर्म आर्यकर्म एव अल्पारम्भी धंधा है, फिर भी कोई समाज के लिए अनावश्यक राष्ट्रघातक तम्बाकू या किसी नशीली चीज की खेती करता है, तो क्या वह खेती भी अल्पारम्भ ही मानी जाएगी ? सचमुच प्रश्न विचारणीय है, मेरी समझ से तम्बाकू आदि की विवेकपूर्ण की गई खेती अल्पारम्भ के खाते मे फिट नही हो सकती। इसे अधिक हिंसा कहा जा सकता है।

जुलाहे, कुँभकार, कृषक आदि को श्रावक की कोटि मे गिनने मे कोई आपत्ति नही होनी चाहिए। इनका व्यवसाय समाजसेवा की दृष्टि से होने से ये बहुत ही निकट के सेवक हैं। इनमे से कई तो सप्त कुव्यसन के भी त्यागी हैं।"

इस प्रकार अल्पारम्भ-महारम्भ (अल्पहिंसा-अधिक हिंसा) सम्बन्धी भ्रान्तियो के निवारण के रूप मे हमारे चरितनायक पूज्य प्रवर्तक श्रीपन्नालालजी महाराज ने सार्वजनिक व्याख्यानो मे विचार प्रस्तुत किये, जो सभी श्रोताओ, खासकर प्रमुख विचारको को पसन्द आए।

प्रवर्तकश्रीजी ने अपने इन क्रान्तिकारी विचारो के सम्बन्ध मे विचार-विमर्शार्थ उस समय रतलाम मे विराजित युगदृष्टा जैनाचार्य पूज्य श्रीजवाहरलालजी महाराज की सेवा मे इसी आशय का संक्षेप मे एक पत्र लिखवाया। प्रवर्तक श्रीजी महाराज का उक्त पत्र ऐतिहासिक दृष्टि से अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। उस पत्र मे उपर्युक्त सभी मुद्दे आ जाते हैं।

पत्र की प्रतिलिपि इस प्रकार है

ता० १०-१०-३५

मण्डल द्वारा भेजा हुआ 'निवेदन-पत्र' जो यहाँ पर विराजित प्रवर्त्तक पण्डितवर्य मुनि श्री-१००८ श्रीपन्नालाल जी महाराज साहब (मरुधर केसरी) की सेवा मे नजर करने को भेजा गया, वह नजर कर दिया गया है। आपके द्वारा पत्र के जरिए पूछे हुए ग्यारह प्रश्नो का उत्तर लिखने के लिए मुनिश्री ने मुझे पर्युषण मे फरमाया था, परन्तु मुझे कुछ कार्यवश अवकाश न मिल सका, अत अब लिख रहा हूँ

महाराज साहब व्याख्यान मे सूत्र 'श्री उपासकदशांग' फरमाते हैं। आनन्दश्रावक के बारह व्रतो की व्याख्या आपने विस्तार के साथ की व अल्पारम्भ-महारम्भ को भिन्न-भिन्न करके समझाया, जिससे श्रावको व श्रोता-समुदाय को वास्तविकता समझने का अच्छा अवसर मिला। मुनिश्री का व्याख्यान नि सकोच बिना किसी हिचकिचाहट के होता है। पब्लिक स्थानो पर भी पब्लिक का अत्याग्रह होने से कुरूढिनिवारण आदि विषयो पर फरमाए थे। व्याख्यानो मे शहर के शाह लोग, राज्यकर्मचारी व ऑफीसर लोग व अन्य जनता हजारो की सख्या मे उपस्थित हुई। व्याख्यान प्रभाविक होते हैं। समयानुसार कई सुधार भी हुए है।

आपके प्रश्नो का उत्तर सक्षेप मे इस प्रकार फरमाया है "करण, करावण, अनुमोदन, अल्पारम्भ व महारम्भ आदि विषयो मे मुनि श्री (प्रवर्त्तक मुनि श्री पन्नालाल जी महाराज) की मान्यता इस प्रकार है—"अनुमोदन का क्षेत्र करण-करावण की अपेक्षा विशाल है। कही अनुमोदन मे विशेष और कही करण-करावण मे विशेष पाप (आरम्भ-जन्य) माना गया है।

(१) भरत महाराज का वैभव ऋद्धि और आरम्भ इतना होते हुए भी जलकमलवत् अलिप्त एव अनासक्त होने से उनकी गिनती महारथियो मे की गई, और वे ऊँची गति के अधिकारी हुए।

(२) तन्दुलमच्छ ने किया-कराया कुछ भी नही, केवल बुरे विचारो से वह नरक का अधिकारी हुआ। अन्तर्चक्षु खोलकर सूत्रो के पढने से ही रहस्य की बातें मालूम होती हैं। जैनधर्म अनेकान्त और स्याद्वाद का पुजारी है। इसलिए स्पष्ट है कि जहाँ एकान्तवाद है, वहाँ मिथ्यात्त्व है इसी का स्पष्टीकरण करने हेतु सूत्रो मे आगो द्वारा अच्छी विवेचना की गई है श्रावक (जागृत आत्मभाव वाला मनुष्य) जो भी कार्य करेगा, विवेक और उपयोग से करेगा, क्योकि उसका लक्ष्य बिन्दु परम-पद ही है। वह हिताहित का ज्ञान रखते हुए काम करेगा और अपने दर्जे के अनुसार काम करेगा। इसीलिए धर्मपालन करने के लिए भगवान ने दो भेद बताए हैं—(१) अनगारधर्म (२) आगारधर्म।

किस कारण से पाप का बन्ध नही होता है ? इस प्रश्न के पूछे जाने पर भगवान् ने उत्तर फरमाया था, उसे गणधरो ने इस प्रकार व्यक्त किया है

१ जय चरे, जय चिट्ठे, जयमासे जय सए।
जयं भुंजंतो भासंतो पावकम्मं न बधई॥ **दशवै० अ० ४ गा०८**

२ "जे आसवा, ते परिस्सवा, परिस्सवा ते आसवा"। **आचाराग १।४।२**

३ **समत्तदंसी न करेइ पावं।** **आचाराग १।३।२**

क्रिया स्वय अच्छी या बुरी नही होती। जिस क्रिया से अज्ञानी बधन मे जकड जाता है, उसी से ज्ञानी बन्धन मुक्त हो सकता है। क्योकि सारा आधार क्रिया करने वाले की वृत्ति (अध्यव-साय) पर निर्भर है। कर्मबन्ध अध्यवसाय से होता है और अध्यवसाय आत्मा के आधीन है (आत्मा सम्यग्दृष्टि होना चाहिए)।

अल्पारम्भ-महारम्भ के विषय मे आजकल सकुचित दृष्टि वालो द्वारा किए हुए प्रश्नो का उत्तर देना सहज ही है, जिज्ञासु तुरन्त समझ सकता है, वितण्डावादी नही। पहले वस्त्र को लीजिए

(क) विदेशी वस्त्र जो अनार्यो द्वारा बनाये जाते हैं, उनको अच्छे बनाने के लिए हजारो मूक प्राणी चरबी के लिए वध कर दिये जाते हैं, इसलिए इतनी महान् हिंसा होने से इसे घोरातिघोर महारम्भ समझना अनुपयुक्त न होगा।

(ख) हिन्दुस्तानी कल-कारखानो के लिए सुना जाता है कि इनमे से कितने ही मिल चरबी का उपयोग नही करते। इसीलिए न० (क) की अपेक्षा इसमे कम हिंसा है। तथापि इसे महारम्भ ही माना जाएगा।

(ग) हिन्दुस्तानी जुलाहे, बलाई, कोली आदि हाथ से वस्त्र बनाने वाले बुनकरो द्वारा बनाये हुए वस्त्रो के लिए प्राणियो का वध करना जरूरी नही है। इसलिए यह स्वभावत अल्पारम्भ माना जायगा (न०-क और ख की अपेक्षा)।

(घ) यदि न० (ग) के अनुसार कार्य करने वाले भी यदि जैनधर्मी अहिंसा-सयमादि का पूर्ण ज्ञान रखने वाले हो या इनका मैनेजर ज्ञानी मनुष्य (श्रावक) अपनी निगरानी (Supervision) मे कार्य करायेगा तो विशेष उपयोग से होगा और उसे सूत्रानुसार अल्पारम्भ ही माना जाएगा।

ऐसे ही, मनुष्य की प्रत्येक उपभोग-परिभोग की वस्तु के लिए समझना चाहिए। पढने व सुनने मे आया है कि कितने ही बालजीव सूत्रो का रहस्य नही समझने से 'जूतो' का भी प्रश्न करते हैं। सो इसके लिए वस्त्रनिर्माण की विवेचना पढने से समझ मे आ जाएगी। "क्या जूते बनाने वाले मोची जैनधर्म के श्रावक नही हो सकते ? विलायती फुलबूटो के लिए जिंदे प्राणी कत्ल किये जाते हैं, यहाँ मरे हुए जानवर के चमडे का उपयोग होता है। इसलिए जैनधर्म, प्राणीधर्म का ज्ञान रखने वाले श्रावक (मोची) द्वारा हाथ से बनाए हुए देशी जूतो मे अल्पारम्भ माना जायगा।

इसी हेतु से कही करने मे, कही कराने मे और कही अनुमोदन मे पात्र, समय आदि के अनुसार अल्पारम्भ व महारम्भ माना जाता है। शुद्ध हृदय से अन्तश्चक्षु खोलकर सूत्र पढने व सुनने से वास्तविक बात समझ मे आ सकती है। जो पढ़े-लिखे न हो, या जिन्हे विशेष ज्ञान न हो, उन्हे महात्मा पुरुषो के वचनो पर श्रद्धा लाना चाहिए।"

यहाँ पर बहुत समय से श्रावकगण धर्मक्रिया (धर्मगोठ=दया) मे भी भिन्नता रखते हुए अलग-अलग दलो मे भोजनादि करते थे। इस वर्ष यहाँ सबो ने मिलकर धर्मगोठ=दया की। भोजनादि के लिए प्रबन्धकर्ता श्रावको ने अल्पारम्भ समझकर जात मेहनत (स्वय श्रम) व निगरानी मे भोजन के लिए शुद्ध पदार्थ बनाए। अत बाजारू अयतना से बने हुए बाजार के सडे-बासी पदार्थ खरीद कर खाने की अपेक्षा यतना से बनाये हुए शुद्ध, ताजे पदार्थ के उपभोग मे अल्पारम्भ है। 'आपने खाने के त्याग नही लिए, इसलिए खाना तो खाना ही होगा, फिर अशुद्ध भोजन क्यो खाना चाहिए ?....'

पत्र पीछा देवें और इस पत्र को बहुत ध्यानपूर्वक पढकर पूज्य श्री को सुनावें या पूज्य श्री खुद इसे पढें तो विशेष अच्छा होगा। हमने हमारे अमूल्य समय को खर्च करके यह पत्र लिखा है। हम जिस धर्म के अनुयायी कहलाते हैं, उसमे 'कचरा' मिला हुआ होना पसद नही आता। आप व पूज्य श्री चाहे तो 'कचरे' को दूर करना सम्भव होगा। इसीलिए आपको इतना लिखा है। विशेष—फिर आपके पत्र आने पर लिखूंगा।[1]

आपका

कु० मगनलाल कवकुल

बगीचा वाला, भीलवाड़ा (मेवाड़)

१ यह पत्र प्रवर्तक प० मुनिश्री पन्नालालजी महाराज के आज्ञा निर्देशन मे लिखा गया था।

सम्पादक

जैनाचार्य पूज्य श्रीजवाहरलालजी महाराज ने इस पत्र के उत्तर के रूप में पत्र लिखवाया, उस पत्र का अधिकांश यहा पाठको के लाभार्थ उद्धृत करते हैं

पूज्य श्री हुक्मीचन्द जी महाराज की सम्प्रदाय का हितेच्छु श्रावकमंडल, रतलाम (मालवा)

पत्र सख्या २५६ ता० २५–१०–३५

श्रीमान् कु० मगनलाल जी साहब, मु० भीलवाडा
सप्रेम जय जिनेन्द्र !

पत्र आपका मिला। (ता० १०–१०–३५ का लिखा हुआ), वह अक्षरश श्रीमज्जैनाचार्य पूज्य श्री १००८ श्री जवाहरलाल जी महाराज साहब की सेवा मे अर्ज कर दिया है। पूज्य श्री के विषय मे आपने जो उद्गार लिखे, सो ये ऐसे ही पुरुषरत्न हैं किन्तु उन्होंने तो यही फरमाया कि 'मैं इस योग्य बनू, भावना तो यही है। परन्तु वर्तमान मे तो मैं अपने लिए अतिशयोक्ति समझता हूँ।'

मडल से प्रकाशित भाद्रपद के 'निवेदन-पत्र' मे पूज्य श्री के व्याख्यान का अश आपने देखा व तत्रविराजित १००८ श्री पन्नालाल जी महाराज साहब के नजर मे निकलाया, जिस पर मुनि श्री ने भी प्रसन्नता प्रकट की, सो जो जैन सिद्धान्त शैली के ज्ञाता हैं, वे तो कभी एकपक्षीय खेंचताण (खीचातानी) को पसन्द करते ही नही हैं। यह तो जिनके उदयभाव जोर देते हैं, वे ऐसे निमित्त खडे करके महापुरुषो की सत्सग वाणी के श्रवण एव सेवा के लाभ से वचित रह जाते हैं।

वर्तमान साधुसमाज की परिस्थिति के विषय मे आपके व मुनि श्री जी के विचार स्तुत्य हैं। आज समाज मे शाब्दिक सभ्यता के प्रदर्शन का मुख्य अग बन गया है, आचरण तो कोई विरले ही करते होंगे।

बम्बई के एकता के उद्गार वास्तव मे शाब्दिक पॉलिसी (शाब्दिक जाल) है। प्रत्येक विचारक इसे स्पष्ट समझ सकता है।

ग्यारह प्रश्नो के उत्तर मे सामान्य रूप से अल्पारम्भ-महारम्भ की जो व्याख्या मुनि श्री ने की है, वह न्याययुक्त है। फिर भी पृथक्-पृथक् प्रश्नो के उत्तर दिए होते तो अच्छा था। अवकाश में वैसा करें।" ·······"मुनि श्री के विचार, प्रवृत्ति आदि के सम्बन्ध मे पहले भी पूज्य श्री ने सुना है, अब भी। इससे पूज्य श्री का मुनिश्री पर हार्दिक प्रेम है और द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव की अनुकूलता से मिलने की भी इच्छा है। खूब आनन्द से सयम पालें। आचार-विचार-उच्चार (वचन) की त्रिपुटी को विशेष उन्नत बनाने की भावना के साथ समाज-कल्याण मे तत्परता दिलाने के लिए प्रयत्नशील बनें।"

मुनि श्री को हमारी सविधि वन्दना अर्ज करें।

भवदीय
बालचन्द श्रीमाल (सेक्रेटरी)

उपर्युक्त पत्रो के आदान-प्रदान से पाठक स्पष्ट समझ सकते हैं कि पूज्य श्री जवाहरलालजी महाराज एव हमारे चरितनायक श्री (प्रवर्तक प० मुनिश्रीपन्नालालजी महाराज) के अल्पारम्भ-महारम्भ-सम्बन्धी विचारो मे कितना साम्य था! उपर्युक्त पत्राचार के बाद आचार्यश्री व प्रवर्तक श्री मे परस्पर हार्दिक आत्मीयता बढी और साक्षात् मिलन की प्रेरणा जागी, जो आगे चलकर फलीभूत हुई, दोनो के सम्मिलन का कारण बनी।

आचार्य श्रीजवाहरलालजी महाराज ने वि० स० १९९२ के चातुर्मास की समाप्ति के पश्चात् रतलाम से मेवाड़ की ओर विहार किया। मेवाड़ के ग्रामो मे विचारक्रान्ति

की लहरे प्रसारित करते हुए आप होली चातुर्मास के अवसर पर विजयनगर पधारे। उस समय प्रवर्तक श्री पन्नालालजी महाराज साहब जालिया विराजमान थे, जो विजयनगर से पश्चिम दिशा मे केवल ६ मील पर स्थित है।

आचार्यश्री के हृदय मे प्रवर्तक श्रीजी के विचारो के लिए विशेप स्थान था। प्रवर्तक श्रीजी महाराज पर उनका प्रगाढ धर्म-स्नेह था। फलत. आचार्य श्रीजी होली चातुर्मास विजयनगर मे पूर्ण करके वाद मे प्रवर्तक श्रीजी से प्रत्यक्ष मिलन के लिए जालिया पधारे। वहा आचार्य श्री का जनता ने भावभीना स्वागत किया। आचार्यश्री जालिया के निकटवर्ती उद्यान मे विराजे। प्रवर्तकश्रीजी भी वहा पधारे। वरसाती नदी की तरह भक्तिभाव से लोग दर्शनो के लिए उमड़ रहे थे। उद्यान मे आचार्यश्री एव प्रवर्तक श्रीजी का जो मधुर मिलन हुआ, वह २५०० वर्ष पहले तिंदुक उद्यान मे हुए केशी और गौतम के मिलन की स्मृति को ताजा कर देता है। उस मधुर-मिलन का वर्णन करना लेखनी की शक्ति से परे है। दोनो ही महापुरुषो के हृदय मे सौहार्द, सद्भाव और सौजन्य की त्रिवेणी वह रही थी।

दोनो युगद्रष्टा महापुरुषो का यह प्रथम मिलन था। दोनो ही समाजसुधारक एव क्रान्तिकारी विचारक के रूप मे प्रसिद्ध थे। इस मधुरमिलन ने एक-और-एक मिलकर ग्यारह की उक्ति को चरितार्थ कर दिया। दोनो परस्पर विचार विनिमय करके परस्पर निकट आए, क्रान्तिकारी विचारो को वल और प्रचार-प्रसार की प्रेरणा मिली। मिलन का यह पौधा निरन्तर प्रेम-जल से सिञ्चित होता गया और समय-समय पर समाजहित के कार्यों मे परस्पर विचार-विनिमय चलता रहा। विदा होते समय प्रवर्तक प० मुनि श्री ने भविष्यद्रष्टा के रूप मे पूज्यश्री जवाहरलालजी महाराज से कहा— "पूज्यश्री ! मुझे ऐसा प्रतिभास होता है कि आज से लगभग ५० वर्ष वाद स्थानकवासी समाज की स्थिति विलकुल भिन्न हो जाएगी। मैं और आप तव नही रहेगे, लेकिन जो रहेगे, उन्हे प्रतीत हो जाएगा। समय वताएगा, उस परिस्थिति को।"

इन उद्गारो मे प्रवर्तकश्री का स्वरूप भविष्यद्रष्टा के रूप मे प्रतिध्वनित हो रहा है। प्रवर्तकश्री के गहन चिन्तन व सूझवूझ का परिचय समाज को मिला, आपके क्रान्तिकारी विचारो की झाकी समाज को प्राप्त हुई। राष्ट्र को भी आपके क्रान्तकारी विचारो से वहुत लाभ हुआ।

राष्ट्रीय वस्त्र के लिये झुकाव

उन दिनो राष्ट्र मे स्वतन्त्रता के लिए महान् अहिंसक सग्राम चल रहा था। इस राष्ट्रीय आन्दोलन मे वड़े-वडे विचारक एव राष्ट्रधर्म के उद्घोपक लोग अपनी-अपनी आहुतियाँ दे रहे थे। विदेशी कपड़े, जो देश के वस्त्र-शिल्पियो की रोटी-रोजी पर लात मार रहे थे, जो अहिंसा की दृष्टि से भी भारतीयो के लिए उचित नही थे, के वहिष्कार का आन्दोलन चल रहा था। वड़े-वड़े धनीमानी महात्मा गांधीजी जैसे राष्ट्र-नेताओ की प्रेरणा से विदेशी कपड़ो की होली जला रहे थे। प्रवल तूफान मचा हुआ था।

हमारे प्रवर्तक श्रीपन्नालालजी महाराज भी राष्ट्रधर्म की दृष्टि से जनता को प्रेरणा देते रहते थे। वे जनता को अहिंसा, राष्ट्रभक्ति, अर्थ, धर्म आदि सभी दृष्टियो से विदेशी वस्त्रो एव मिल के, खासतौर से चर्बी लगे हुए वस्त्रो के त्याग की जोरशोर से प्रेरणा देते रहते थे।

आप स्वदेशी एव अल्पारम्भी राष्ट्रीय वस्त्रो के बारे मे दूसरो को ही प्रेरणा देकर नही रह जाते थे, आप स्वय भी राष्ट्रीय शुद्ध खादी के वस्त्रो के प्रति आग्रह रखते थे।

आप अपने प्रवचनो मे स्वदेशी, स्वभाषा, स्व-वस्त्र, स्व-सस्कृति और स्वधर्म को राष्ट्रधर्म के अन्तर्गत अपनाना अनिवार्य समझ कर उसकी प्रेरणा **स्वदेशी व्रत या जैन**-पारिभाषिक शब्दो मे **'देशावकाशिक व्रत'** के रूप मे दिया करते थे।

भारतीय सस्कृति के अनुरूप शिक्षा

इसी सन्दर्भ मे आप भारतीय सस्कृति को पुनरुज्जीवित करने के प्रयास मे सदा लगे रहते थे। आप यह नही पसन्द करते थे कि कोई भी भारतीय विद्यार्थी पढ़-लिख कर पाश्चात्य सस्कृति के प्रवाह मे बह जाय, स्वभाषा, स्वसस्कृति और अपने रहन-सहन को भूल जा। इसी दृष्टिकोण से आप शिक्षा के साथ सस्कृति और भारतीय सस्कार विद्यार्थीवर्ग के जीवन मे देखना चाहते थे।

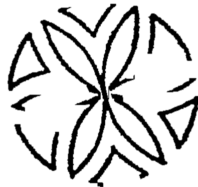
इसी दृष्टि से ब्रिटिश सरकार की गुलामी के दिनो मे भी आपने विद्यालयो और छात्रालयो के स्थापित करने का नारा बुलन्द किया। आप शिक्षाप्रेमी और समाज-सुधारक अवश्य थे, लेकिन शिक्षा के नाम पर खर्चीली जीवन-पद्धति को प्रोत्साहन नही देना चाहते थे। सुधार एव क्रान्ति के नाम पर पुराने यथार्थ मूल्यो को छुडाना एव छोडना नही चाहते थे। यही कारण है कि शिक्षा के नाम पर प्रचलित गलत रिवाजो, पद्धतियो को आपने अपनी प्रेरणा से स्थापित विद्यालयो एव छात्रावासो मे स्थान नही दिया। आपका यह मन्तव्य था कि विद्यार्थियो मे विनय, अनुशासन, सादगी, धर्मानुप्राणित जीवनपद्धति, सुसस्कार आदि गुणो की वृद्धि हो। फैशन और खर्चीली पद्धति से आपको बहुत नफरत थी।

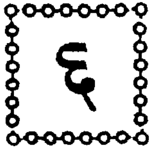
इसी प्रकार समाज मे प्रचलित कुरूढियो को, जो समाज के लिए घातक थी, आपने चुन-चुन कर बदलने के लिए समाज को सावधान किया। समाज-सुधार के नाम पर नई खर्चीली एव आडम्बर से ओत-प्रोत रीतियो एव प्रथाओ पर आपने अपने प्रवचनो मे कडे से कड़े प्रहार किये हैं।

सक्षेप मे, राष्ट्र के नवजागरण मे, समाजसुधार मे, भारतीय शिक्षा और सस्कृति के पुनरुज्जीवन मे, युगानुलक्षी धार्मिक विधि-विधानो मे आपको बहुत ही रुचि थी और आप जहाँ भी जाते युगानुलक्षी सुविचारो की प्रेरणा देते रहते थे।

आपका मन्तव्य था कि क्रान्ति एकदम नही आ सकती। उसके लिए पहले राष्ट्र एव समाज के विचारो और विविध सुसगठनो के माध्यम से आचारो को वदलने का प्रयत्न करना चाहिए। जब जनता हितकर एव सुखकर विचारो और आचारो से अभ्यस्त हो जायगी, तव नये विचारों का विरोध नही करेगी, नये आचारो के कार्यक्रमो मे स्वयमेव शामिल होगी। जीवन के नये शुद्ध मूल्यो को अपनाने के लिए वह तत्पर रहेगी।

हमारे चरितनायक श्रीपन्नालालजी महाराज की यही क्रान्तदर्शी विचारधारा थी, यही क्रान्तिकारी विचारदर्शन था, जिसे लेकर वे अन्त तक जीए, समाज मे नवचेतना डालने के लिए अन्तिम समय तक जूझे और विचार क्रान्ति की प्रवल लहर छोड गये।





काव्यकृतियाँ : एक समीक्षा



किसी भी महापुरुष के विचारो का वास्तविक मूल्याकन उसकी रचनाओ से हो जाता है। रचनाएँ ही व्यक्ति की रुचि, योग्यता और विचारधारा को अभिव्यक्त करती हैं। रचनाएँ ही व्यक्ति की प्रसिद्धि का द्वार हैं। यद्यपि निस्पृह त्यागी मुनिवरो को अपनी प्रसिद्धि की कोई लालसा नही होती, तथापि उनकी कृतियाँ उन्हे प्रकाश मे ले ही आती हैं।

भारतीय सस्कृति एव भारतीय धर्मों के पुरस्कर्ताओ मे एक विशेषता रही है कि वे अपनी प्रत्येक रचना मे शुद्ध धर्म या नीति का पुट दिये बिना नही रहते। चाहे वह रचना निबन्धरूप मे हो, चाहे कहानी के रूप मे अथवा चरित्र-चित्रण के रूप मे हो, या फिर वह कल्पित उदाहरण के रूप मे ही क्यो न हो, वे उसमे इस सत्य को ओझल नही होने देते। कथा या दृष्टान्त की शैली चाहे जसी रही हो, वे उस कथा का अन्त मुक्ति, निर्वाण या सद्गति अथवा सच्चरित्रता मे ही करते रहे हैं। ज्ञाताधर्मकथांग सूत्र मे कई कल्पित दृष्टान्त एव रूपक अकित किये गये हैं, परन्तु उन्हे घटित किया गया है आध्यात्मिक जीवन के साथ ही। उत्तराध्ययन सूत्र मे कई ऐतिहासिक कथाएँ वर्णित की गई हैं, लेकिन उनके वर्णन का उद्देश्य सैद्धान्तिक दृष्टिकोण को प्रस्तुत करना रहा है।

हमारे चरितनायक प्रवर्तक श्री पन्नालाल जी महाराज के द्वारा रचित कृतियाँ विशेषरूप से उपलब्ध नही हैं। जो कुछ उपलब्ध हुई हैं, उनमे कुछ कथाओ एव पद्यात्मक चरित के रूप मे लिखी हुई हैं। एक मे वर्णमाला के क्रम से आगम सम्बन्धी ५२ बातो का पद्यात्मक सग्रह है। और एक ज्योतिष सम्बन्धी तथ्यो के आधार पर लिखी हुई जैनपर्व समालोचना है। इनमे से कुछ प्रकाशित हैं, कुछ अप्रकाशित हैं। यहाँ हम आपकी कुछ रचनाओ का समालोचनात्मक दृष्टि से विश्लेषण कर रहे हैं, उससे पाठको को आपकी रुचि, योग्यता और विचारधारा का सहसा अनुमान हो जायेगा।

जैन-पर्व समालोचना

जैनधर्म मे पर्वो का महत्वपूर्ण स्थान है। वहाँ प्रत्येक पर्व के पीछे अच्छे खाने-पीने, पहनने और खेलने-कूदने का दृष्टिकोण कभी नही रहा, यहाँ हर पर्व के पीछे धार्मिक एवं आध्यात्मिक दृष्टिकोण रहा है, जिसे त्याग, तप, सवर परमात्मभक्ति, आत्मजागृति, आत्मशुद्धि आदि के जरिए मनाया जाता रहा है। प्रस्तुत रचना विक्रम सवत १६६१ मे बडी पादू के सेठ सतोकचन्द जी अभयराज जी सुराणा द्वारा प्रकाशित की गई है। इसमे वृहत्साधुसम्मेलन अजमेर मे हुए तिथिपर्व निर्णय से उद्भूत प्रश्नो की मीमासा है। पूज्य प्रवर्तक मुनि श्री पन्नालाल जी महाराज ज्योतिष विद्या के पण्डित थे। इसलिए उन्होंने इस पुस्तक मे जैन ज्योतिष विद्या के आधार पर पर्व सम्बन्धी कुछ प्रश्नो के सुन्दर समाधान प्रस्तुत किये हैं।

प्राज्ञजिनागम-द्विपचाशिका (प्राज्ञ बावनी)

यह पुस्तक अभी तक अप्रकाशित है। इससे प्रवर्तक मुनिश्री की प्रज्ञा का सम्यक् मूल्यांकन हो सकता है कि उन्होंने किस खूबी से जैनागमवर्णित तत्त्वज्ञान को हिन्दी भाषा मे पद्यात्मक रूप से दोहो मे समाविष्ट किया है। इसमे जैनागम मे वर्णित विविध ५२ विषयो का सक्षिप्त वर्णन करके आपने गागर मे सागर भर दिया है। जैनागम एक समुद्र है, उसमे अवगाहन करना हर एक व्यक्ति के वश की वात नही। और साधारण अनभिज्ञ व्यक्ति यदि उसमे डुवकी लगाएगा तो उसको कुछ भी हाथ लगाना कठिन है। चरितनायक ने इसी दृष्टिकोण को मद्देनजर रखकर सर्वसाधारण की समझ में आ सके इस प्रकार से ५२ दोहो मे ५२ विषयो का समावेश कर दिया है। इसमे एक विशेषता यह है कि वर्णमाला के (अकारादि) क्रम से प्रत्येक दोहा वनाया गया है। जैसे प्रथम दोहे मे पचपरमेष्ठी मे सर्वप्रथम 'अ' से 'अर्हन्' लिया गया है। यानी इस दोहे मे पंचपरमेष्ठी का नाम, तथा उनको नमस्कार करने का प्रयोजन बताया है। दूसरे मे 'षट्-द्रव्यात्मक लोक' सम्बन्धी वात है। 'आ' से आदि शब्द प्रारम्भ मे आया है। इस तरह रोचक और मधुर शैली मे आगमिक विषयो का वर्णन है। प्रत्येक दोहे के साथ उसका भावार्थ भी दे दिया गया है। जिससे जैनधर्म से अनभिज्ञ व्यक्ति भी सहज समझ सकता है। यह रचना आपने विजयनगर मे २०१५ मार्गशीर्ष कृष्णा ६ को की है। यह रचना के अन्तिम पद्य से ज्ञात होता है। कुल मिलाकर रचना उत्तम हुई है।

प्राज्ञ-पुञ्ज

प्रस्तुत कृति मे तीर्थंकरो के स्तवन, समाजसुधार के भजन एव वैराग्यवर्द्धक गीत हैं, सभी उस समय मे प्रचलित तर्जों पर वनाए हुए सगीतमय भजन-स्तवन हैं। प्रत्येक व्यक्ति आसानी से इनके भावो को हृदयगम कर सकता है। उस युग मे सन्त कवि अपना पाण्डित्य दिखाने या विद्वत्ता का प्रदर्शन करने के लिए कोई भी गेयकाव्य नही बनाता था, उनका सगीतमय पद्य वनाने का उद्देश्य आम जनता मे अपने विचारो को आसानी से प्रविष्ट कराना होता था। इसलिए वे सरल से सरल हिन्दी एवं स्थानीय वोली मे

मिश्रित काव्य रचना करते थे। यही इस पुस्तक मे प्रवर्तक मुनिश्री पन्नालाल जी महाराज ने किया है। इसमे कुल ५६ गीत हैं। इसके संग्राहक बाल-वल्लभ-मुनिद्वय हैं। प्रकाशक है श्री श्वे० स्था० जैन स्वाध्यायी संघ, गुलाबपुरा। यह रचना लगभग सन् १९६१ मे पुस्तकाकार प्रकाशित हुई हैं। इसमे अंकित सभी भजन आत्मा को परमात्मभक्ति एव उन्नति के मार्ग मे अग्रसर होने की प्रेरणा देते है।

रक्षिका सम्बन्ध

प्रस्तुत रचना जैन सम्प्रदाय में प्रचलित रक्षाबन्धन की पद्यमय अप्रकाशित कथा है। यह रचना विक्रम संवत् १९७६ मे बनाई हुई है। रक्षिका की यह आद्योपान्त कथा विविध तर्जो मे बनी हुई छह ढालो मे विभक्त है। इसमे भाई-बहन के आदर्श वात्सल्य का रसपूर्ण वृत्तान्त है। सरल सरस भाषा मे प्रवर्तक मुनिश्री ने इसे ग्रथित किया है। यह कथा रक्षापर्व के पीछे छिपी हुई सुन्दर भावना को समझने मे सहायक है। सचमुच प्रवर्तक मुनिश्री इसे भाववाही बनाने मे सफल हुए हैं।

भागचन्द चरित्र

यह अप्रकाशित पद्यमय चरित है, और विशेषरूप से इसमे भाग्य (पुण्यकर्म) की महिमा विविध ढालो में वर्णित है। मानवजीवन की विविध आशा लताएँ भाग्य कला के सिंचन से पुष्पित-फलित होती हैं। यदि पुण्य प्रबल न हो तो बुद्धिमान से बुद्धिमान व्यक्ति या अत्यन्त शक्तिशाली पुरुष भी दर-दर की ठोकरें खाता फिरता है। इसके विपरीत पुण्य प्रबल हो तो मूर्ख और दुर्बल एव निर्धन व्यक्ति भी सुख की शय्या पर सोता है, हजारो नौकर-चाकर उसकी सेवा मे भाग-दौड करते रहते हैं। प्रस्तुत चरित मे इसी विषय का रोचक वर्णन है। यद्यपि चरित्र-चित्रण मे मारवाड़ी भाषा का पुट विशेष है, तथापि उससे विषय की रोचकता मे कोई अन्तर नही आता। प्रवर्तक मुनि श्री ने संवत् १९९६ ज्येष्ठ कृष्णा अष्टमी को यह रचना की है। कुल मिलाकर रचना की शैली और अन्त बहुत ही सुन्दर हुए हैं।

शील-सप्तमी आख्यान

प्रस्तुत आख्यान भी विविध तर्जों मे अप्रकाशित पद्यमय चरित है। मारवाड़ मे बच्चो के चेचक निकल आती है उस चेचक की बीमारी को लोग अन्धविश्वासवश शीतला माता (देवी) का प्रकोप मानते, हैं, और उसकी पूजा भी करते हैं। चैत्र सुदी सप्तमी (शीतला सप्तमी) के दिन बासी और ठडा भोजन करने का रिवाज है। प्रवर्तक श्री जी महाराज ने इसके पीछे जो तत्त्व है, उसे नया मोड दिया है। वास्तव मे चैत्रमास मे गर्मी-शर्दी दोनो ऋतुओ का सगम होता है, इस कारण रक्तप्रकोप हो जाया करता है। उसके पीछे खान-पान की असावधानी मुख्य कारण हैं। बच्चे अबोध होते हैं, परन्तु अगर उनकी माताएँ अपने बच्चो के व अपने खानपान पर ध्यान दें तो यह प्रकोप प्राय. नही होता। कथा का चित्रण जैनदृष्टि से हुआ है, प्रकोप शान्ति का उपाय भी कथा के अन्तर्गत जैनदृष्टि से चित्रित किया गया है। यह लघु आख्यान भी रोचक एव सुन्दर बन पडा है।



७

पूर्वजों से अनुजों तक



इस विश्व मे कोई भी व्यक्ति शाश्वत नही रहता, शाश्वत रहते हैं उसके गुण, चिरस्थायी रहते हैं उसके वश के श्रेष्ठकार्य ! चिरजीवी रहता है उसका व्यक्तित्व ! जिसकी वंश परम्परा मे महान् पुरुष पैदा होते हैं, उसकी यशःकीर्ति-ध्वजा चिरकाल तक दूर-दूर तक फहराती रहती है। नीतिकार के शब्दो मे कहे तो

"स जातो येन जातेन याति वंशःसमुन्नतिम् ।
परिवर्तिनि ससारे मृत: को वा न जायते ।"

उसी का जन्म सार्थक होता है, जिसके जन्म लेने से उसका वश समुन्नत होता हो। अन्यथा, इस परिवर्तनशील ससार मे कौन नही मरता, कौन नही जन्म लेता ? अनेको व्यक्तियो का जन्म-मरण होता ही रहता है। वे तो केवल भवपूर्ति करने के लिए जन्म लेते हैं, और एक दिन इस ससार से वे चले जाते हैं, न उनके जीवनकाल मे उन्हे किसी ने जाना और न मृत्यु के बाद ही कोई उन्हे याद करता है। परन्तु जो व्यक्ति किसी वश मे जन्म लेकर कुछ अच्छे कार्य कर जाता है, वह अपने पूर्वजो की कीर्ति मे तो चार चाँद लगाता ही है, अपने वंश का नाम तो उज्ज्वल करता ही है, साथ ही अपना नाम भी प्रसिद्ध कर जाता है।

हमारे चरितनायक श्रद्धेय पन्नालाल जी महाराज भी इन्ही महानुभावो मे से एक थे, जिन्होंने अपने उज्ज्वल कार्यों से अपना नाम भी रोशन किया और अपने पूर्वजो के यश मे भी वृद्धि की। परन्तु किसी भी वृक्ष का वास्तविक परिचय पाने के लिए उसकी जड का पता लगाना आवश्यक होता है, वैसे ही प्रवर्तक मुनिवर्य श्री पन्नालाल जी महाराज के उत्तम संयम-जीवन का परिचय प्राप्त करने के लिए उनके गुरु-वश के उद्गम तथा वशवृद्धि एवं वश-परम्परा का पता लगाना आवश्यक है। अत: हम यहाँ चरितनायकजी की गुरु-वश-परम्परा का सक्षिप्त परिचय दे रहे हैं

वीर लोकाशाह

वैसे तो श्रमण भगवान महावीर स्वामी की यह शासन-परम्परा चल रही है। उसमे अनेको उत्कृष्ट विभूतियो ने जैनधर्म के आचार्यपद को सुशोभित किया और उत्तरोत्तर वशपरम्परा चलाई, लेकिन बीच मे एक ऐसा युग आया, जब मुनिधर्म मे शिथिलता आ गई थी। प्राय. गद्दीधारी भगवान महावीर के द्वारा प्ररूपित साधुचर्या को ताक मे रखकर भोगी-विलासी का-सा जीवन व्यतीत करने लग गये थे। परिग्रही बन गए थे। पाँच महाव्रतो के पालन की कोई महत्ता नही रह गई थी। ऐसे समय मे लोकाशाह शुद्ध मार्ग के अन्वेषक के रूप मे आए। उन्होने साधु-जीवन के शुद्ध एव मौलिक आचार-विचारो का प्रतिपादन निर्भीकता पूर्वक किया।

इन्होने साधुवृत्ति अगीकार कर ली थी या ये श्रावक वृत्ति मे ही रहे, यह अभी तक विद्वानो के अनुसन्धान का विषय बना हुआ है। परन्तु इतना निश्चित है कि श्री लोकाशाह अनेक विरोधो के बावजूद निर्भीकता-पूर्वक भगवान महावीर द्वारा प्रतिपादित सिद्धान्तो का प्रचार करते रहे। उनका उद्देश्य निरभिमान और पद-प्रतिष्ठा-से रहित नि स्पृह रह कर जैन समाज मे जागृति करना था।

श्री भाणजी महाराज

अनेक क्रियोद्धारक आचार्य श्री लोकाशाह की प्रेरणा पाकर जैनत्व की शुद्ध साधना करके स्वपर-कल्याण कर गए। इतिहास कहता है कि श्री लोकाशाह की प्रेरणा से दीक्षा लेने वाले ४५ मुनिपुगवो मे श्री भाणजी महाराज प्रमुख थे। श्री लोकाशाह जी की उत्तम प्रेरणा को जाज्वल्यमान रखने के लिए क्रियोद्धारक साधुओ का एक गच्छ इन्ही के नाम से निर्मित हुआ, जिसका नाम रखा गया लोकागच्छ। इसका सर्वप्रथम नेतृत्व श्री भाणजी महाराज को सौंपा गया। श्री भाणजी ऋषि प्रतिभासम्पन्न कुशल मुनिनायक थे। उनके साथ श्री भीदाजी, श्री नूना जी, श्री भीमाजी, श्री केशवजी, श्री रतनजी, श्री जगमालजी तथा श्री सोनजी आदि अनेक महापुरुष सन्त हुए, जिनके सहयोग से लोकागच्छ श्री जीवाऋषि जी महाराज तक उत्तरोत्तर वृद्धिगत होता गया। इसके पश्चात् लोकागच्छ तीन भागो मे विभक्त हो गया। पूरी एक शताब्दी तक लोकागच्छ परम्परा के चलने के बाद पारस्परिक अनैक्य के कारण इसमे अनेक विकार आगए, धर्म प्रचार का आन्दोलन मद पड गया, धर्मोपदेशक अपने मार्ग से पिछडने लगे।

आचार्य श्री जीवराजजी महाराज

ऐसे समय मे पाँच महापुरुष क्रियोद्धारक के रूप मे प्रगट हुए, वे इस प्रकार हैं—श्री जीवराजजी महाराज, श्री हरजी महाराज, श्री लवजी ऋषि, श्री धर्मदास जी महाराज, एव श्री धर्मसिंह जी महाराज। वर्तमान मे प्रचलित स्थानकवासी साधु समाज का पुर्नानिर्माण करने वाले ये पाँचो महापुरुष थे। इनमे से श्री जीवराज जी महाराज प्रमुख प्रवर्तक थे। यहाँ विशेषरूप से उन्ही की परम्परा का परिचय दिया जा रहा है।

आचार्य श्री जीवराज जी महाराज द्वारा क्रियोद्धार होने के सम्बन्ध मे विभिन्न मत हैं। कोई विक्रम संवत् १६६६, कोई १६०८ और कोई १५६६ मे क्रियोद्धार का सूत्रपात मानते हैं। कुछ भी हो, यह निर्विवाद है कि सर्वप्रथम क्रियोद्धारक हुए हैं।

सगृहीत सामग्री के आधार पर पता चलता है कि आपने १६६६ मे नागौरी लोकागच्छ की मारवाड मे पीपाड़स्थित गद्दी के यति श्री तेजपाल जी कुवरपालजी की निश्राय को त्यागकर क्रियोद्धार किया। उक्त यतिजी के परिवार में से श्री अमीपाल जी, श्री महीपाल जी, श्री हीरोजी, श्री गिरधर जी एव श्री हरजी महाराज, ये ५ महापुरुष आपके सहयोगी वने।

आपके दो शिष्यो का वश निम्नोक्त रूप से चला पहले शिष्य श्री धनजी महाराज हुए, जिनसे दो उप सम्प्रदायें चली प्रथम श्री नाथूलाल जी महाराज की उपसम्प्रदाय, दूसरी श्री शीतलदास जी महाराज की उपसम्प्रदाय। इनमे से प्रथम के वशज श्री पुष्फभिक्खू जी (फूलचंद जी महाराज) आदि थे, द्वितीय के वशज श्री मोहनमुनिजी, महासती श्री जसकुंवरजी आदि हैं।

आचार्य श्री लालचन्द जी महाराज साहब

आचार्य श्री जीवराज जी महाराज के द्वितीय शिष्य श्री लालचद जी महाराज थे। उनके दो शिष्यो का परिवार चला। जिनमे एक है आचार्य श्री अमरसिंह जी महाराज का परिवार। जिनकी परम्परा के प्रतिनिधि पं० प्रवर श्री पुष्करमुनि जी महाराज आदि सत हैं।

आचार्य श्री दीपचंदजी महाराज

आचार्य श्री लालचदजी महाराज का द्वितीय परिवार आप से चला। आपकी दीक्षा सवत् १७६८ फाल्गुन कृष्णा ११ को अजमेर जिले के प्रसिद्ध तीर्थ पुष्कर से पश्चिम मे ४ मील पर स्थित 'किशनपुरा' मे हुई। आपके शिष्यो मे आचार्य श्री स्वामीदास जी महाराज, आचार्य श्री मलूकचन्द जी महाराज, श्री कर्मचन्दजी महाराज, श्री बोहथ मल जी महाराज आदि हुए। आचार्य श्री स्वामीदासजी महाराज की उपसम्प्रदाय में वर्तमान मे पं मुनिश्री कन्हैयालाल जी महाराज 'कमल' आदि सन्त हैं।

आचार्य श्री मलूकचन्द जी महाराज आचार्यश्री नानकराम जी महाराज

आप आचार्य श्री मलूकचन्दजी महाराज के पट्ट पर आसीन हुए। आपके ही नाम से यह उपसम्प्रदाय वर्तमान मे 'नानक सम्प्रदाय' के नाम से पल्लवित-पुष्पित है। आचार्य श्री नानकराम जी महाराज का जन्म महाराष्ट्र प्रान्त के वरार प्रदेश मे काजुवा ग्राम में विक्रम सवत् १७९७ फाल्गुन कृष्णा १३ शुक्रवार को हुआ। आपके पिताजी का नाम महाकिरण जी और माता जी का नाम गगादेवी था।

आपकी दीक्षा विक्रम सवत् १८१२ चैत्रशुक्ला ६ को हुई। आप आचार्य पद से कब सुशोभित हुए, यह उपलब्ध नही है। आपने अपने पावन चरणो से बरार, खानदेश, मेवाड, मालवा, हाडोती, मारवाड, अजमेर-मेरवाडा और पजाब आदि को विचरण कर पवित्र किया है।

आपने जैन सिद्धान्तो के गहन अध्ययन के पश्चात् ३२ आगमो की अर्थसहित दो-दो प्रतियाँ अपने हाथ से लिखी, जो जैन भडार मे सुरक्षित है। आपकी सयम-साधना बहुत ही उच्चकोटि की थी। अनेक प्रान्तो मे विचरण कर आपने यतिवर्ग के चक्कर मे फँसी हुई अबोध जनता को सम्यग्ज्ञान-दर्शन-चारित्ररूप मोक्षमार्ग मे स्थिर किया। आप मे निर्भीकता और कष्टसहिष्णुता कूट-कूटकर भरी थी। इस कारण भीलवाड़ा से किशनगढ राज्य तक तथा सरवाड से मेडता तक के समस्त प्रखड मे आपने अनुपम धैर्य से यतिवर्ग द्वारा किये जाने वाले विरोध एव उपसर्ग को समभाव से सह कर सद्धर्म का प्रचार किया। सुनने मे आया है कि एक बार आपकी जीवनलीला समाप्त करने के लिए अजमेर के पूर्व मे पर्वत पर स्थित मदारदेवी के स्थान पर विरोधियो ने ठहरा दिया। आप अपनी सयम साधना मे लीन थे। रात्रि के समय देवी ने सिह, सर्प, उल्लू आदि नाना प्रकार के भयावने रूप बनाकर आपको विचलित करने का प्रयत्न किया, मगर आप अपनी साधना मे अडिग रहे, जरा भी भयभीत नही हुए। अत. अन्त मे देवी प्रगट होकर नतमस्तक हो गई और अपने कृत अपराधो के लिए क्षमा-याचना करने लगी। तथा आपसे कहा "इस स्थान मे प्रसन्नतापूर्वक विराजने की मेरी अनुमति है। आप सरीखे शुद्ध सयमी साधको के उपदेश से जनता सद्धर्म प्राप्त करेगी।"

आप ५७ वर्ष ६ मास २६ दिन तक शुद्ध सयमपाल कर ७१ वर्ष ११ मास ७ दिन की आयु पूर्ण कर विक्रम सम्वत् १८६६ मे दिवगत हुए।[1] आपके शिष्य श्री मायारामजी महाराज बड़े ही उच्चकोटि के साधक और चमत्कारी पुरुष थे। एक बार की घटना है

आपश्री मसूदा मे विराजमान थे। आपकी साधना की सुकीर्ति से जहाँ श्रद्धालु वर्ग आल्हादित होता था वहाँ कुछ ईर्ष्यालु सज्जनो के कलेजे भी तप्त हो रहे थे। ईर्ष्यालुजनो मे कुछ यतिजन भी थे जो कई प्रकार के यत्र-मत्र आदि के चक्रव्यूह रचने मे लीन रहते थे। कुछ यतियो ने आपका अनिष्ट करने का षड्यन्त्र रचा। किसी बहाने एक मन्त्रित पत्र आपके हाथ मे पहुँचा दिया। उस पत्र को जैसे ही आप श्री ने हाथ मे लिया, नेत्रो की ज्योति लुप्त हो गई।

१ आपके स्वर्गवास के सम्बन्ध मे वि० स० १८५६ वसन्तपचमी की किवदन्ती सुनने व पढने मे आती है, वह प्रामाणिक नही प्रतीत होती। क्योकि हमारे पास १८६५ पौष कृ० १३ के दिन का आचार्य श्री द्वारा प्रदत्त आदेश-पत्र मौजूद है, जिस पर से आचार्य श्री का स्वर्गवास वि० स० १८६६ वसन्तपचमी का ही युक्तिसगत लगता है।

इस विचित्र और आकस्मिक आपत्ति से आपश्री तुरन्त सावधान हो गए। आपको यह जानने मे देर नही लगी कि यह कुछ ईर्ष्यालु सज्जनो के षड्यंत्र का परिणाम है। किन्तु फिर भी आपके मन मे उन लोगों के प्रति बिल्कुल ही रोष तथा द्वेष का संकल्प नही उठा। यहाँ तक कि आपने किसी के सामने इस चक्र की विशेष चर्चा भी नहीं की, किन्तु अत्यन्त समभाव के साथ तेले की तपस्या ग्रहण कर ली। और नवकार महामन्त्र के अनवरत स्मरण मे लीन हो गये। ध्यान मे अपार शक्ति है, फिर समभाव और सद्भाव के साथ ध्यान करने का तो अपूर्व चमत्कार है। तेले की तपस्या और नवकार महामंत्र के स्मरण ने चमत्कार दिखाया। तीसरे दिन आपके नेत्रो मे पुनः स्वत ही ज्योति प्रगट हो गई।

लोगो को धीरे-धीरे जब यति वर्ग के इस कुचक्र का पता चला तो उनके मन मे स्वतः ही उनके प्रभाव का रहा-सहा अंग भी लुप्त हो गया और सच्चे त्यागी समभावी श्रमणो के प्रति अत्यन्त श्रद्धा और आस्था उमड़ पड़ी।

आचार्य श्री निहालचन्दजी महाराज

आपने अपने जन्म से पुष्कर क्षेत्र को एव ओसवाल जाति के गुगलिया गोत्र को पवित्र किया था। आपकी जन्म तिथि तथा माता पिता का नाम उपलब्ध नहीं हो पाया। आपने विक्रम सवत् १८२६ मे चैत्र कृष्णा १४ को आचार्य श्री नानकरामजी महाराज के करकमलो से मुनि दीक्षा ग्रहण की थी तथा उनके पट्ट पर आपने आचार्य पद को विभूषित किया। आप प्रमाद से सदा दूर रहते थे। यही कारण है कि आपने अर्थ सहित ३२ ही आगम अनेक श्लोक, सवैया, कवित्त एव प्रकरण आदि अपने हाथ से लिखे, जो आज भी जैन भण्डारों मे सुरक्षित हैं। आपने अनेक प्रान्तो मे विचरण करके अनेक भव्य जीवो को सम्यक् बोध दिया। ४४ वर्ष के करीब संयम पालन कर आप स्वर्गवासी हुए। आपके श्री तुलसीदासजी महाराज, श्री वीरमाणजी महाराज, श्री उम्मेदमलजी महाराज श्री माणकचन्दजी महाराज, श्री सुखलालजी महाराज आदि १० शिष्य हुए।

आचार्य श्री वीरमाणजी महाराज

आप अजमेर जिले के अन्तर्गत मसूदा क्षेत्र के निवासी थे। ओसवाल जाति में सालेचा बोहरा गोत्र मे आपका जन्म हुआ था। आपने विक्रम सवत् १८५९ आषाढ शुक्ला ९ को २३ वर्ष की आयु मे किशनगढ मे आचार्य श्री निहालचन्द जी महाराज द्वारा भागवती दीक्षा ग्रहण की। दीक्षा के पश्चात् आप ज्ञानाभ्यास के साथ-साथ उत्कट तप साधना मे जुट गए। आपका त्याग-वैराग्य उच्चकोटि का था। आप प्रत्येक कार्य मे दीर्घ दृष्टि से काम लेते थे। आपको अनेक आगम कण्ठस्थ थे। किशनगढ शहर मे आपके तप प्रभाव से प्रभावित होकर चतुर्विध श्री सघ ने आपकी आन्तरिक इच्छा न होते हुए भी आपको आचार्य पद से सुशोभित किया। आपने मन ही मन एक युक्ति सोची—पदभार से मुक्त होने की और आचार्य बनते ही खड़े होकर आपने चतुर्विध श्री संघ से पूछा "आपके आचार्य कौन हैं?" चतुर्विध श्री सघ ने एक स्वर से उत्तर दिया।

आप हैं। 'तो आप मेरी आज्ञा मानेंगे ?' आचार्य श्री ने पुन गम्भीरतापूर्वक प्रश्न किया।

"गुरुदेव ! आपकी आज्ञा नही मानेंगे तो और किसकी मानेंगे ?' चतुर्विध सघ ने बड़े उत्साह एव प्रेम से उत्तर दिया।

'जो मैं कहूँ, उसे आप मान्य करेंगे' ? आचार्य श्री ने फिर पूछा।

'अवश्य ! एक बार नही, हजार बार मानेंगे। हम सब आपका आदेश शिरोधार्य करेंगे।' चतुर्विध सघ ने सविनय निवेदन किया।

इस प्रकार सघ को वचनवद्ध करके आचार्य श्री ने अपने पर आये हुए आचार्य पद के भार को उतारने के लिए अपने छोटे गुरुभाई श्री सुखलालजी महाराज साहब को वाह पकड कर उठाया और पट्टे पर बिठा कर आचार्य की चादर ओढाते हुए चतुर्विध सघ से कहा "आपने मेरी इच्छा न होते हुए भी मेरे कन्धो पर यह भार डाला था। मैं सघ के आग्रह को अस्वीकार न कर सका। किन्तु मेरा यह गुरुभाई आचार्य पद के सर्वथा योग्य है। इसे मैं आप सबकी साक्षी से यह भार दे रहा हूँ। आज से आप सब श्री सुखलालजी महाराज को आचार्य मानें और इनकी प्रत्येक आज्ञा शिरोधार्य करें। सघ इनकी छत्रछाया मे वहुत फलेगा-फूलेगा। यह महान् प्रतापी एव धर्म-प्रभावक आचार्य होगे।"

आपके इस पदत्याग के सामने चतुर्विध श्री सघ नत-मस्तक था। अत समस्त श्री सघ ने वचनवद्ध होने के कारण कोई प्रतिवाद या निवेदन नही किया और सहर्ष आपकी आज्ञा शिरोधार्य की, धन्य है ऐसे पद-प्रतिष्ठा से निष्पृह महापुरुष को ! यह एक आदर्श प्रेरणा है उनके लिए जो सन्त पूजा-प्रतिष्ठा एव पद प्राप्ति की स्पृहा के पीछे पागल से वने भटक रहे हैं।

आपने ३७ वर्ष ७ दिन तक चारित्राराधना करके ६० वर्ष की सर्वायु मे वि० स० १८९६ मे श्रावण वदी १ के दिन भिणाय मे पण्डितमरण प्राप्त किया।

घोरतपस्वी श्री माधवदास जी महाराज

आप नागौर जिलान्तर्गत छोटी रीया (जाटियावास) निवासी साड गोत्रीय थे। विक्रम सवत् १८७४ वैशाखी पूर्णिमा को आपने आचार्य श्री वीरभाण जी महाराज से दीक्षा ग्रहण की। दीक्षित होते ही आपने आजीवन अठाई-अठाई की तपस्या करने का नियम ले लिया था, साथ ही पांचो विगय का त्याग एव अज्ञात कुल[1] से भिक्षा-ग्रहण का अभिग्रह कर लिया। तव ही से यह कहावत प्रचलित हो गई—"सौ साधु और एक माधु"। मतलब यह था कि सौ साधुओ की क्रिया के बराबर अकेले तपस्वी श्री माधव मुनिजी की क्रिया होती थी।

१ जैन साधु को भिक्षा देने की विधि से अपरिचित कुल

श्री माधव मुनिजी मे एक विशेषता यह थी कि वे किसी श्रावक को अपने साथ एक गाँव से दूसरे गाव विहार करते समय साथ मे नही होने देते थे। यदि कोई किसी वहाने से साथ हो जाता तो आप उसे वहीं से ही मंगलपाठ सुना कर विदा कर देते। इस पर भी अगर वह वापिस नही लौटता तो आप वही वैठ जाते और उसके लौट जाने के वाद आगे विहार करते। इसी कारण शीतकाल मे प्रातः और ग्रीष्मऋतु मे दोपहर को विहार करते थे।

आपके तप-त्याग की प्रशसा आचार्य श्री हुक्मीचन्द जी महाराज की सम्प्रदाय के सुप्रसिद्ध आचार्य श्री लाल जी महाराज मुक्तकंठ से किया करते थे।

आप मे क्षमा का गुण वहुत ही वढा-चढा था। आपके क्षमा के गुण को प्रकट करने के लिए एक ही घटना पर्याप्त होगी

एक वार आप विचरण करते हुए जोधपुर पधारे। आपने अठाई का तप किया था। पारणे के दिन अज्ञातकुल से भिक्षा लेने हेतु आप गली-मोहल्ले मे घूमते हुए तिंवरी के जागीरदार पुरोहित जी की हवेली के पास से होकर जा रहे थे कि अचानक पुरोहित जी की दृष्टि आप पर पडी। उस समय भडारी जी (जैन) पुरोहित जी के पास ही वैठे हुए थे। अत. पुरोहित जी ने व्यग करते हुए उन्हे कहा "भण्डारी! देख ये तेरे गुरु जा रहे हैं।" भण्डारी को समझते देर न लगी। उन्होंने कहा "पुरोहित जी महाराज ! ये मेरे ही नही, प्राणिमात्र के गुरु हैं। इनकी तपस्या, त्यागभावना और धर्मसाधना वहुत उत्कृष्ट है। ये क्षमा के भण्डार हैं।"

पुरोहित जी "क्षमा का पता तो तव चले, जव कोई इनकी परीक्षा करे। ऐसे ही कहने से क्या मतलव ?"

भण्डारी जी पुरोहित जी! आप चाहे तो स्वय परीक्षा करके देख लीजिए। "हाथ कगन को आरसी क्या ?"

पुरोहित जी के हृदय मे वात चुभ गई। उसी समय उन्होने अपने एक नौकर से कहा "जा, यह जो साधु जा रहा है, इसे यहाँ वुला ला।"

नौकर गया और तपस्वी माधवदास जी महाराज से विनयपूर्वक पुरोहितजी की हवेली मे पधारने की प्रार्थना की। मुनिवरो ने सहजभाव से पुरोहित जी की हवेली की ओर कदम वढाए। ज्यो ही वे हवेली के दरवाजे पर पहुँचे कि पुरोहित जी ने कहा "अरे ओ फक्कड! कहाँ चला जा रहा है अन्दर? पता नही, यह पुरोहित जी की हवेली है। चला जा यहाँ से।"

यह सुनते ही मुनिवर चेहरे पर किसी प्रकार की सिकुडन लाए विना वापिस लौटने लगे। मुनिराज को थोड़े से आगे वढे देखकर पुरोहित जी ने फिर उन्हे आवाज दी "खैर आजा, आजा! घर आए अतिथि को खाली लौटाना अच्छा नही है। ले, आजा!"

मुनिवर पुन· लौटकर हवेली मे पधारे। पुरोहित जी उन्हे रसोईघर के पास ले गए। मुनिवर ने झोली मे से अपना पात्र निकाला और रसोईघर मे रखा।" यह देखते ही पुरोहित जी ने फिर कडकती हुई आवाज मे कहा—"अरे मोड़े! क्या तुझे होश भी नही है, हमारे चौके मे ऐसे खराब पात्र नही रखे जाते। उठा इन्हे, पागल कही का, आया है भिक्षा लेने!" मुनिराज ने बडी शान्ति से चुपचाप पात्र उठा लिया। तब तक पुरोहित जी अन्दर से एक थाल मे विविध मिष्टान्न भर कर ले आए और मुनिजी को देने लगे। परन्तु मुनिराज ने विगय का त्याग होने से उसे लेने से इन्कार कर दिया। पुरोहित जी ने पूछा "तब फिर क्या लेगा?"

"जो भी रूखा-सूखा सादा आहार मिल जाएगा, उसे ले सकता हूँ।" मुनिराज ने अत्यन्त गम्भीरतापूर्वक कहा।

"महाराज! रूखासूखा तो गरीबो के यहाँ मिल सकता है, जागीरदारो के यहाँ तो मेवा-मिष्ठान्न ही प्राय· मिलते हैं। परन्तु आपकी इच्छा रूखा आहार लेने की है, तो ठहरिए, पात्र खोलिए मैं अभी आपको वैसा ही आहार दे देता हूँ।" पुरोहित ने अभिमान के साथ कहा।

मुनिराज ने अपना पात्र रखा ही था कि तपाक से पुरोहित जी ने छाछ से भरे हुए पात्र मे अजलि भर राख डाल दी।"

"बस, बहुत है। मेरे लिए पर्याप्त है! अब मुझे और अधिक नही चाहिए।" बहुत ही शालीनता के साथ मुनिजी ने वह पात्र उठा कर झोली मे रखा और चलने लगे।

पुरोहितजी शुरू से अन्त तक अपने द्वारा किये गए व्यवहार की मुनिराज पर क्या प्रतिक्रिया हुई, इसे उनके चेहरे और चेष्टाओ पर से पढने लगे। पुरोहितजी को समझते देर न लगी कि मुनिवर का चेहरा जैसा पहले शान्त एव प्रसन्न था, वैसा ही शान्त और प्रसन्न अब भी था। शीघ्र ही पुरोहितजी पर मुनिवर की इस अद्भुत क्षमा एव तप साधना का प्रभाव पडा। वे उसी समय तपस्वी मुनिवर के चरणो मे मस्तक रख कर हाथ जोड कर गिड़गिडाते हुए अपने अपराध के लिए क्षमा याचना करने लगे। आपने स्नेह भाव से मुस्कराते हुए कहा "भाई! इसमे आपका क्या अपराध है कि आप क्षमा याचना करते हैं? यह तो मेरी साधना की छोटी-सी परीक्षा है। हमारे पूर्वजो ने अपने मस्तक पर जलते हुए अगारे रखने पर और अपने शरीर की खाल उतारने पर उफ तक नही किया था। उन्होने इतनी कठोर परीक्षा मे भी अद्भुत क्षमा का परिचय दिया था, तब मैं इस मामूली-सी परीक्षा मे कैसे पीछे रहता? बल्कि आपने तो मुझे दिया है, लिया तो कुछ भी नही। अत· आप निर्भय रहे।"

"गुरुदेव! यह छाछ राख डालने से खराब हो चुकी है, अतः इसे यही डाल दीजिए, यह पशुओ के काम आ जाएगी। आप फिर से नया आहार ले लीजिए।" पुरोहितजी ने भाव भक्ति पूर्वक निवेदन किया।

लिछमणदासजी की दृढता देखकर गुरुवर्य ने 'जहासुहं देवाणुप्पिया' का मधुर सन्देश देते हुए उन्हे आजीवन पूर्ण ब्रह्मचर्य पालन की प्रतिज्ञा दिला दी।"

अब तो कुछ सौदा लेना ही नही था। अत सीधे वहाँ से वे पादू की ओर रवाना हुए। इधर सभी सम्बन्धी लोग प्रतीक्षा कर रहे थे। जब उन्हें खाली हाथ लौटते हुए देखा तो आश्चर्य पूर्वक पूछा—"क्यो भाई! सामान नही लाए क्या? खाली हाथ ही कैसे लौट आए?"

लिछमणदासजी ने सविनय निवेदन किया "नही, नही खाली हाथ नही आया हूँ। खूब सामान लेकर आया हूँ। घर चल कर सब कुछ बताऊँगा।"

सभी लोग घर पहुँचे। सबके यथास्थान बैठने के बाद लिछमणदासजी ने कहा "मैंने गुरु महाराज का उपदेश सुनकर अपने जीवन का मूल्य समझ लिया और आजीवन पूर्ण ब्रह्मचर्य-पालन की प्रतिज्ञा ले ली है। मैं अब अपने भाइयो को घर का दायित्व सौंपने के लिए ही यहाँ आया हूँ। अत: आप सभी के सामने घर का सारा भार मैं अपने भाई के कधो पर रख कर सयम ग्रहण करने की आज्ञा चाहता हूँ।"

दीक्षा! क्या मुनि दीक्षा कोई खेल है? जिसे तुम खेलना चाहते हो? जरा सोचो। अभी तो तुमने दुनियाँ का अनुभव ही क्या किया है? अभी तुम्हारे दोनो भैया छोटे हैं, उन्हे सभालना और घर-गृहस्थी चलाना तुम्हारा कर्तव्य है। उसके बाद भुक्त-भोगी बन कर दीक्षा ग्रहण कर लेने मे कोई आपत्ति नही है।" कौटुम्बिक लोगो ने कहा।

परन्तु लिछमणदासजी पर तो वैराग्य का रग गहरा चढा हुआ था। '**सूरदास की कारी कामरी, चढ़े न दूजो रंग**' वाली कहावत के अनुसार उन पर दूसरा रग अब चढ ही नही सकता था। फलत उन्होंने दृढ निश्चय की भाषा मे कहा "मैंने भली-भाँति समझ लिया है। बाल्य, यौवन और वृद्धत्व ये सब नश्वर हैं। सच्चा आनन्द भोगमय जीवन मे नही है, वह तो सयमी जीवन मे है। वही आनन्द शाश्वत है। इसीलिए मैंने आजीवन ब्रह्मचारी रहने की प्रतिज्ञा ली है। मैं आप सबकी व भाइयो की अनुमति चाहता हूँ।"

सम्बन्धी लोग यह सुनकर मौन रहे। अंत दोनो भाई बोले "जब आप ही जीवन की नश्वरता और अस्थिरता के कारण दीक्षित हो रहे हैं तो हमे इस नश्वर क्षणिक सुख के दलदल मे क्यों फँसा रहे हैं, गृहस्थी का बोझ डालकर! हम भी आपके साथ ही दीक्षा लेंगे। हमारा भी यही दृढ निश्चय है।

दोनो भाइयो की बात सुनकर लिछमणदासजी ने पूछा "अरे भैया! तुम दोनो ऊपर-ऊपर से ही कह रहे हो, या अन्तर्हृदय से? बाद मे कही बदल तो नही जाओगे? यह अवसर ही जीवन को ऊँचा उठाने का है।"

"नही-नही! हम न तो बदलेगे, न ही फिसलेंगे। हमने भी दृढ निश्चय कर लिया है कि आपके साथ हम भी साधु बनेंगे। यह हम अन्तर्हृदय से कहते हैं।

अपने दोनो भाइयों के दृढ निश्चय को देखकर श्री लिछमणदास जी ने समाज के अग्रगण्य लोगों को घर की चाबियाँ सौंपते हुए कहा "लो, यह मकान और सम्पत्ति सब आप संभालो। हम यह सब कुछ समाज को समर्पित करते हैं, और तीनो ही भाई संयम के महापथ को स्वीकार करना चाहते हैं। आप सबके सहयोग और आशीर्वाद से हमारा कार्य सफल हो। बस, सविनय प्रणाम।"

अपने भरे-पूरे घर को ज्यों का त्यों छोडकर सबके देखते ही देखते तीनों भाई अजमेर की ओर प्रस्थान कर गए। पुष्कर मे छोटा भाई एक यति के बहकावे मे आकर बीकानेर श्रीपूज्य बनने के लिये चला गया। श्री लिछमणदासजी ने पूर्ण वैराग्यपूर्वक विक्रम संवत् १८९२ चैत्र कृष्णा १३ को तथा श्री गभीरमल जी ने विक्रम सवत् १८९३ आषाढ शुक्ला १ को पूज्य गुरुदेव श्री वीरभाण जी महाराज साहब से भागवती दीक्षा अगीकार की।

दीक्षा लेने के बाद दोनो मुनि अपने ज्ञान-दर्शन-चारित्र की उत्कृष्ट आराधना मे लीन हो गए।

श्री लिछमणदास जी महाराज त्यागी, तपस्वी एव लब्धिसम्पन्न थे। यद्यपि वे लब्धि का प्रदर्शन नही करते थे, परन्तु गुणग्राही जनों को उनके इस गुण का पता लग ही गया। विक्रम स १९२२ का वर्षावास भिणाय था। श्रावण का महीना था। आप प्रात. शौचनिवृत्यर्थ राण के दरवाजे की ओर पधारे। चलते-चलते ही आप लोकस्वरूप पर मनन-चिन्तन मे इतने तल्लीन हो गए कि आपको शौचनिवृत्ति का भी स्मरण न रहा। व्याख्यान का समय हो गया, गोचरी भी सत लोग ले आए, पर आप वापिस लौट कर नही आए। स्थानक मे श्रावक लोग भी उत्सुकता से प्रतीक्षा कर रहे थे। सब लोग आपके चिन्तनशील स्वभाव से तो परिचित थे, फिर भी श्रावकों ने अपना कर्तव्य समझ कर आपका पता लगाने का निश्चय किया। कामदार श्री कावडियाजी घोड़े पर सवार हो आपको ढूंढने के लिए निकले। पता लगाते-लगाते गोवालिया से आगे फतेहगढ से दो मील दूर आप मिले। गुरुदेव के दृष्टिगोचर होते ही कावडियाजी घोड़े से उतरे और सविनय वन्दन करके निवेदन करने लगे "गुरुदेव! आप कहाँ पधार रहे हैं? कितना समय हो गया है? वहाँ स्थानक मे हम और सभी सत आपकी प्रतीक्षा मे हैं।"

"कावडियाजी! मैं तो शौच के लिए आया हूँ।" मुनिवर ने स्वाभाविक रूप से कहा।

"गुरुदेव! आपका यह शौच-स्थान तो बहुत लम्बा रहा! स्वामीजी! देखिये, कितना दिन चढ आया है?"

कावडियाजी के इस कथन पर आपने सूर्य की ओर देख कर फरमाया—"कावडियाजी! लगभग ४ बजे का समय होने आया है।"

तपस्वी मुनिजी "नही, पुरोहितजी ! इसमे क्या विगड गया ? यह आहार तो वहुत ही सुखकारी है। इसे कैसे डाला जाय ? हमारे पूर्वजो ने तो कडवा तुम्बा तक उदरस्थ कर लिया था, तो आपका यह आहार कडवा नही है, न जहरीला है। अतः आपकी आज्ञा हो तो मैं यही कही एकान्त मे वैठकर इसे पी लूं।"

पुरोहितजी की आज्ञा पाकर मुनिराज श्री ने एकान्त मे वैठकर राख मिली वह छाछ पी ली और वहाँ से पधार गए। परन्तु पुरोहितजी पर उनकी क्षमा का अचूक प्रभाव पड चुका था। उन्होने भडारीजी से कहा 'वास्तव मे ये तुम्हारे-हमारे ही गुरु नही, सारे जगत के गुरु हैं।'

स्वामी श्री सिद्धकरणजी महाराज

आप मेवाड के भीलवाडा जिला के खारीतट पर स्थित सग्रामगढवासी ओसवाल जाति के मेरतवाल (पगारिया) गोत्रीय कुल रत्न थे। आपने आचार्य श्री वीरभाणजी महाराज के शिष्य देवकरणजी महाराज के शिष्य श्री जीतमलजी महाराज से वि० स० १९१९ माघ शुक्ला १३ को दीक्षा ग्रहण की। आगमो का गहन अध्ययन किया। आपने विभिन्न प्रान्तो मे विचरण करके जनता को धर्मामृतपान कराया। आपकी निर्भयता की एक अपूर्व घटना इस प्रकार है

एक वार आप भिणाय के वाजार मे स्थित उपाश्रय (छतरियो) मे विराजमान थे। एक दिन रात को उस उपाश्रय का स्वामी मृत यति भूत वन कर आया और आपके शिष्य सत श्री धनराजजी महाराज साहव को मारने के लिए उनके मुँह पर कालिख पोत दी एव उनके पैरो पर नीला रग पोत कर सफेद कपडा ओढा दिया और उसे सूत के धागो से शव की भाँति वाँध दिया। फिर लगा गला दवोचने। धनराजजी महाराज की नीद खुल जाने से वे जोर से चिल्लाने लगे। उनका आर्तस्वर सुनकर स्वामी श्री सिद्धकरणजी ने फरमाया—"धनराज ! यो क्यो चिल्ला रहा है ? क्या हो गया ?" यों कहकर आपने उठ कर देखा तो एक यति रूपधारी व्यन्तर मकान के वायव्य कोने मे गायव होते हुए दिखाई दिया। आपने धनराजजी महाराज साहव से पूछा "वह भागने वाला कौन है ? क्या कर रहा था यहाँ ?" इस पर श्री धनराजजी ने स्वामीजी को सारी घटना वताई। और कहा न मालूम यह कौन था, मुझे वाँध कर मेरा गला दवो-चने का प्रयत्न कर रहा था।"

स्वामी जी ने अपने शिष्य संत के वन्धन खोले और चादर दूर हटाई तो देखा कि मुंह पर कालिख पुती है!" यह दृश्य देखकर आपने यति (भूत) को सम्वोधित करते हुए कहा—"तू हम सन्तो के साथ भी दुष्कृत्य करने से नही चूका। तो आज से यह समझ ले कि यह स्थान तेरा नही रहा।"

स्वामीजी के इस प्रकार फरमाने के वाद से वह स्थान सवके लिए निरापद वन गया। जहाँ लोग पैर रखते हुए काँपते थे, वहाँ आज एक छोटा-सा वच्चा भी वेखटके आ-जा सकता है। आपकी प्रभावशीलता सावित करने के लिए यह एक ही घटना पर्याप्त है।

आपका स्वर्गवास वि० स० १९६० कार्तिक शुक्ला पूर्णिमा की रात्रि को बादनवाडा ग्राम मे हुआ।

पूज्य गुरुदेव श्री लिछमणदासजी महाराज साहब

मारवाड मे पादू रूपारेल निवासी श्री विनयचन्दजी आचलिया और श्रीमती चम्पाबाई के आत्मज थे। आपके दो भाई और थे—गभीरमलजी और छोगालालजी बचपन में ही तीनो भाइयो पर से माता-पिता का साया उठ जाने से ग्रामवासी स्वधर्मी भाइयो ने तीनो का प्रेम पूर्वक पालन-पोषण किया। यौवन की देहली पर पैर रखते ही लिछमणदासजी की सगाई एक अच्छे घराने मे कर दी गई थी। एक दिन आप अपने विवाह की सामग्री लेने पादू से पैदल चल कर अजमेर पहुँचे। सयोगवश उस समय अजमेर मे पूज्य गुरुदेव श्री वीरभाणजी विराजमान थे। श्रावको की दूकानें बन्द होने का कारण पूछने पर पता लगा कि शहर मे पूज्य गुरुदेव पधारे हुए हैं, सब लोग वही व्याख्यान सुनने गए हुए हैं। अत आप भी वही स्थानक मे गुरुदेव के व्याख्यान सुनने के लिए पहुँच गए। 'ब्रह्मचर्य की महिमा' पर सुन्दर प्रवचन हो रहा था। साथ ही साधु-धर्म एवं श्रावक धर्म के अन्तर पर प्रकाश डाला जा रहा था। प्रवचन सुनकर श्री लिछमणदासजी के हृदय मे विवेक का प्रकाश जागृत हो गया। उन्होने मन ही मन साधु धर्म की दीक्षा लेने का सकल्प कर लिया। सोचा व्यर्थ ही गृहस्थ के कीचड मे फँसने से क्या फायदा?' अत प्रवचन पूर्ण होने के पश्चात् भरी सभा मे खड़े होकर आपने गुरुदेव से सविनय निवेदन किया "गुरुदेव! आपकी वाणी सुनकर मेरे हृदय मे प्रकाश हो गया है। मेरी इच्छा मुनि धर्म अगीकार करने की हो रही है। अत मुझे आजीवन पूर्ण ब्रह्मचर्य व्रत पालन करने की प्रतिज्ञा दिला दीजिए। मैं अपने घर जाकर अपने दोनो भाइयो को घर का दायित्व सौंप कर आपश्री के चरणो मे मुनि धर्म मे दीक्षित होना चाहता हूँ।"

श्री लिछमणदासजी के इस अप्रत्याशित भीष्म प्रण को सुनकर पूज्य श्री ने समझाते हुए कहा "भाई! अभी तो तुम आए ही हो। जरा और शान्ति से इस पर सोच लो। भावावेश मे आकर ऐसे कठोर पथ पर कदम रखना अच्छा नही होता। साधु-जीवन कोई बच्चो का खेल तो है नही कि जब चाहे तब अगीकार कर लिया और चाहे जब छोड़ दिया। यह तो वीरो का मार्ग है, जिस पर एक बार पैर रखने के बाद पीछे हटना नही होता। अभी तो तुम विवाह की सामग्री लेने के लिए आये हो, साधु बनने का उज्ज्वल भाव होना तुम्हारे उज्ज्वल भविष्य का सूचक है। अभी गम्भीरता से इस पर विचार कर लो।"

गुरुदेव! सोचा है, खूब सोच लिया मैंने! तभी तो मैं आपसे प्रतिज्ञा लेने के लिए खडा हुआ हूँ। मुझे आप कायर न समझें। प्रतिज्ञा लेकर तोडना तो कायरो का काम है। 'प्राण जाय पर प्रण न जाई' मत्र का उपासक हूँ। आप तो मुझे प्रतिज्ञा दिलाने की कृपा करें।"

इस पर कावडियाजी ने निवेदन किया—"गुरुदेव ! भिणाय यहाँ से १० मील है और इधर सामने ही फतेहगढ दो मील है। दिन थोडा ही रह गया है। अतः आप फतेहगढ पधार जावें, कल फिर भिणाय पधार जावें, यह ठीक रहेगा।" आपने फरमाया "कावडियाजी ! वर्षावास का समय है। यहाँ रहना कल्पनीय नही है ! हम फक्कड साधु हैं, हमारी क्या चिन्ता ! आप तो अपना अवसर देख लो जैसा अवसर होगा, मैं देख लूगा।"

गुरुदेव के इस कथन पर कावडियाजी ने भिणाय सूचना देना आवश्यक समझ कर घोडे को भिणाय की ओर मोड लिया। भिणाय पहुँच कर ज्यो ही वे सतो को सूचना देने स्थानक मे पहुँचे और गुरुदेव को वहाँ विराजमान देखा तो आश्चर्यचकित रह गए।

कावड़ियाजी ने विस्मित होकर पूछा "गुरुदेव ! आप मुझसे भी पहले कैसे पधार गए ?"

आपने फरमाया "कावडियाजी ! मैंने कहा था न कि जैसा अवसर होगा मैं देख लूंगा।" मेरे ऐसा ही अवसर था।"

यह था आपके जीवन मे चिन्तन-मनन के फलस्वरूप समुत्पन्नलब्धि का चमत्कार ! आपके जीवन की एक और चामत्कारिक घटना प्रसिद्ध है। विक्रम संवत् १९२४ आषाढ शुक्ला द्वितीया को आपने किशनगढ मे संथारा (समाधिमरण के लिए अनशन) किया। आपने यह सथारा २५ दिन की तपस्या के दौरान ही ग्रहण कर लिया था। सयोगवश उस साल वर्षा नही हुई थी, इस कारण चन्द व्यक्तियो द्वारा जनता मे यह भ्रान्ति फैलाई गई कि जैनसाधु के भूखे रहने के कारण वर्षा नही हो रही है। कर्ण-परम्परा से यह वात तत्कालीन किशनगढ नरेश पृथ्वीसिंह जी के पास पहुँची। लोगो ने उन्हे यह निवेदन किया कि आप प्रार्थना करके उन्हें आहार करा दें। किशनगढ नरेश जैनसाधुओ के भक्त थे, एव उनके आचार-विचार व सथाराविधि के पूर्ण जानकार थे, तथापि जनता की भावना को शान्त करने के लिए आपने दीवान श्री सौभागसिंह जी एवं ठाकुर भारतसिंह जी आदि ५ सज्जनो का शिष्टमडल तपस्वी श्री लिछमणदास जी महाराज की सेवा मे आहार-ग्रहण करने की प्रार्थना करने हेतु भेजा। शिष्टमडल ने सारी वातें राजा साहव की ओर से सविनय निवेदन कर दी और आहार लेने की प्रार्थना की। आप शिष्टमडल की वात सुनते ही समझ गये। अत शान्तभाव से कहा "मैं आप लोगो के आशय को समझ गया हूँ। अगर जनता इस राज्य मे वर्षा न होने का कारण मेरे अनशन को मान रही है तो मैं इस राज्य को छोडकर अन्यत्र जा सकता हूँ, लेकिन प्रतिज्ञा भ्रष्ट होकर अव आहार नही करूँगा।"

यह सुनते ही शिष्टमडल के सभी सदस्य हाथ जोडकर प्रार्थना करने लगे "गुरुदेव ! आपने हमारी स्थिति का यथार्थरूप से आकलन कर लिया है कि जनता वर्षा के विना दुखी है। परन्तु आप इस राज्य को छोडकर अन्यत्र पधारें, यह तो राज्य

के लिए तथा हमारे लिए शोभास्पद नही है। आपका यहाँ से विहार तो हम कदापि नही होने देंगे। जनता का दु.ख आप समझ ही गये है।"

आपने फरमाया "भाइयो! घबराओ मत। जैसा अवसर होगा, वह तो होकर ही रहेगा। प्रभु-स्मरण और धर्माराधना कीजिए। धर्म के प्रताप से सब ठीक होता है। और अवसर हुआ तो मैं जाऊँगा तब आपकी भावना पर मेरा ध्यान केन्द्रित रहेगा। शिष्टमडल यह सुनते ही आनन्दविभोर हो गया। सबको विश्वास हो गया कि अब वर्षा होने मे कोई सन्देह नही है। अत आपसे मगल-पाठ सुनकर शिष्टमडल विदा हुआ। उसने राजा साहब से सारा वृत्तान्त निवेदन किया।

श्रावण कृष्णा ११ को प्रात काल आपके दर्शनार्थ श्री रिद्धकरणजी कोठारी आए हुए थे। आपने सहजभाव से फरमाया कोठारीजी! एकादशी को वैकुण्ठ का द्वार खुला रहता है, ऐसी वैष्णव सम्प्रदाय की मान्यता है, अत मैं भी आज ही चला जाऊँ तो कैसा रहेगा ?"

कोठारी जी विस्मित होकर बोले "गुरुदेव! अभी से आप ऐसा क्यो फरमाते हैं ?"

तपस्वीजी "अवसर ऐसा ही मालूम होता है।"

बस, उसी दिन, दिन के करीब तीसरे पहर मे चार शरणो का उच्चारण करते-करते आप स्वर्गलोक पधार गए। आपका स्वर्गवास होते ही वर्षा की ऐसी झडी लगी कि वहाँ का विशालकाय तालाब गुंदोलाब दो-तीन घण्टे मे ही लबालब भर गया। दूसरे दिन जब आपकी वैकुण्ठी निकालने का समय आया तब तक वर्षा रुकी नही। सब लोग चिन्ता मे पड गए कि वर्षा नही रुकी तो इनकी निहरणक्रिया कैसे होगी ?" इस पर मोदीजी ने कहा "गुरुदेव की जय बोलकर वैकुण्ठी उठाओ तो वर्षा रुक जाएगी।" बस जय बोलकर वैकुण्ठी उठाते ही वर्षा एकदम बद हो गई। जो अग्नि-सस्कार होने तक रुकी रही। सब लोग आपके अमोघ दिव्य प्रभाव को देखकर चकित हो उठे।

गुरुवर्य श्री गम्भीरमल जी महाराज आप गुरुदेव श्री लिछमणदास जी महाराज के गुरुभ्राता थे। आप आचार्य श्री वीरभाण जी महाराज के निश्राय मे विक्रम सवत् १८९३ आषाढ शुक्ला १ को दीक्षित हुए थे। आप बहुत ही विद्वान् थे। आप अपने समय के ज्योतिषशास्त्र के विशेषज्ञ थे। आपके द्वारा निर्मित पचाग आज भी जीर्ण-शीर्ण अवस्था मे विद्यमान है। आपने अनेक ग्रन्थ एव चौपाइयाँ आदि लिखी हैं। आपका स्वर्गवास भी विक्रम सवत् १९१४ भादवा वदी ३ को सलेखना-सथारा सहित किशनगढ मे हुआ।

गुरुवर्य श्री मगनमल जी महाराज साहब आप अजमेर के ओसवाल जातीय नवलखागोत्र के कुलचन्द्र थे। आपने विक्रम सवत् १९०६ आषाढ कृष्णा २ को गुरुवर्य श्री लिछमणदास जी महाराज के निश्राय मे भागवती दीक्षा ली थी। आप महान् त्यागी, तपस्वी एव उच्चकोटि के विद्वान् थे। आपका स्वर्गवास विक्रम सवत् १९४६

मार्गशीर्ष कृष्णा ६ को हुआ। आपके ५ शिष्य हुए "श्री मोतीलाल जी महाराज साहव, विजयलाल जी महाराज, केशरीमल जी महाराज एवं रीखभदास जी महाराज साहव।

गुरुवर्य श्री हमीरमल जी महाराज साहव आप नागौर जिलान्तर्गत थावला के ओसवाल जाति के डूंगरवाल कुलरत्न थे। वचपन से ही आपके हृदय मे धर्मानुराग अधिक था। विक्रम सवत् १९०७ मार्गशीर्ष कृष्णा ७ को आपने अपनी सगर्भा पत्नी को छोडकर गुरुदेव श्री लिछमणदासजी महाराज साहव के चरणो मे वैराग्यपूर्वक दीक्षा ग्रहण की। दीक्षा लेते ही आपने अपना जीवन अधिकाश तप, त्याग मे ही व्यतीत करना शुरू कर दिया। आप उसी घर के यहाँ की भिक्षा स्वीकार करते थे, जो श्रावक प्रतिमास छह पौषध करता। दीक्षित होने के वाद जब भी आपकी ससारपक्षीया पत्नी दर्शनार्थ आती और आपको पहले से जानकारी मिल जाती तो आप पता लगते ही तपस्या अगीकार कर लेते थे। वह आपके दर्शन भी चुपके से आकर दूर से ही कर पाती थी। आप उसे समक्ष बैठकर कभी दर्शन नही देते थे। इस प्रकार का वैराग्य था आपका।

आप अधिकतर टाटोटी व भिणाय के एकान्त, शान्त निर्जन-स्थलो पर विराजते थे और वही तेले-चोले आदि की तपस्या करते थे। या तो आप प्राय: टाटोटी के पास डाई नदी के तट पर स्थित पीर की दरगाह मे विराजते थे या भिणाय वाजार मे स्थित छतरियों मे, जहाँ भूत का उपद्रव था। लेकिन वह भूत तो आपका भक्त बन गया था। रात मे वह आपसे वातें तक करता हुआ जनता द्वारा सुना जाता था। परन्तु आपका लक्ष्य केवल आत्म-साधना का ही रहता था, चमत्कार दिखाकर सस्ती लोक प्रतिष्ठा प्राप्त करना आपको कतई अभीष्ट नही था। एक दिन रात्रि को ढाई वजे आप स्वाध्यायलीन थे, तभी टाटोटी-निवासी स्व. श्री विरदीचद जी वडोला (सामायिकदास जी के नाम से प्रसिद्ध) आपके दर्शनार्थ आया और सामायिक करने लगा। सामायिक पूर्ण होते ही वह मागलिक श्रवण करके चला गया। किन्तु प्रातःकाल होते ही जब आपको पता चला कि कल सामायिकदास जी का निधन हो चुका है तब आपने समझ लिया कि रात्रि मे जो आया था, वह मृत सामायिकदास जी का व्यन्तर था।

दूसरे दिन फिर रात के ढाई वजे सामायिकदास जी विरदीचद जी वडोला के रूप मे आए, और आपको वन्दन करके सामायिक करने लगे तो आपने कहा "मैंने तो तुम्हारी मृत्यु के बारे मे सुना है। फिर इस रूप मे कैसे आए?" व्यन्तर रूप वडालाजी ने कहा "गुरुदेव! वात तो सही है। अन्तिम समय मे मुझे कोई धर्मसहयोगी न मिलने से मैं विराधक होकर व्यन्तर योनि मे पहुँच गया। आपके दर्शनो के लिए आया हूँ।"

गुरुदेव ने सोचा कि लोगो को व्यन्तर के यहाँ आने का पता चल गया तो भय के मारे उनका यहाँ आना और धर्मध्यान करना छूट जाएगा। अत उन्होने उस व्यन्तर

से कहा—"भाई ! व्यन्तरो के कही सामायिक साधना हुआ करती है ? इसलिए तुम्हारे आने से यहाँ अन्य लोगो के भय के कारण धर्माराधना मे अन्तराय लगेगी। अत अपनी भक्ति को रहने दो। भविष्य मे यहाँ आने का कष्ट मत करना।" व्यन्तर ने बहुत ही अनुनय-विनय की, परन्तु आपने उसे अपनी सेवा तथा अपनी प्रतिष्ठावृद्धि या सम्प्रदायोन्नति के लिए भी उसे नही कहा। क्योकि आपके मन मे सिर्फ आत्मसाधना का लक्ष्य था। आप ४२ वर्ष १७ दिन सयमपर्याय की साधना करके विक्रम सवत् १९४९ मार्गशीर्ष शुक्ला ९ को स्वर्गवासी हो गए।

गुरुवर्य श्री मोतीलालजी महाराज साहब

आपको अपने जन्म से ओसवालवशीय जामड गोत्रीय कुल को पवित्र किया। आप किशनगढ के थे। आपने विक्रम सवत् १९२२ माघ शुक्ला ५को अपनी माताजी के साथ ही गुरुवर श्री मगनमल जी महाराज के पास भागवती दीक्षा ग्रहण की। आपके दो शिष्य हुए श्री पीरचन्द जी महाराज साहब एव श्री पन्नालाल जी महाराज। अपका स्वर्गवास विक्रम सम्वत् १९५७ पौष कृष्णा ११ को अजमेर मे हुआ।

गुरुवर श्री गजमल जी महाराज साहब

आप किशनगढ राज्यान्तर्गत फतेहगढ निवासी एव ओसवाल वशीय ललवाणी गोत्र के श्री कल्याणमल जी एव श्रीमती केशरबाई जी के कुलदीपक थे। आपका जन्म विक्रम सवत् १९१५ माघ शुक्ला ५ को हुआ। आपने वैराग्य भाव से विक्रम सवत् १९२६ चैत्र शुक्ला १४ को अपनी माताजी के साथ गुरुदेव श्री मगनमल जी महाराज से दीक्षा ग्रहण की। आप श्वेताम्बर आगम साहित्य के साथ-साथ दिगम्बर साहित्य के भी माने हुए विद्वान थे। 'गोम्मटसार' 'तिलोयपण्णत्ति' आदि दिगम्बर आम्नाय के धर्मग्रन्थ तो आपको कण्ठस्थ थे। आप छोटे-छोटे साधुओ से भी स्नेहपूर्वक तत्त्वचर्चा करके आनन्द विभोर हो जाते थे। आचार्य श्री हस्तिमल जी महाराज साहब के दादागुरु आचार्य श्री विनयचन्द जी महाराज साहब से आपका मधुर और घनिष्ठ सम्पर्क था। आपने हिन्दी पद्यो मे 'धर्मसेन' नामक ग्रन्थ की रचना की थी, जो ६ खण्ड एव ६४ ढालो मे, लगभग ६५०० जितने अनुष्टुप् श्लोको मे परिपूर्ण हुआ है। ग्रन्थ की पूर्णाहुति की सिर्फ अन्तिम गाथा मे आपने अपना परिचय इस प्रकार दिया है

१ मणि २ गणपति ३ नगने वलिए ४ महिमा ५ लक्ष्मी ६ जीय के
आदि अक्षर लीजै तसु शिष्य है मगलीय के ॥

अर्थात् श्री मगनमल जी के शिष्य श्री गजमल जी महाराज साहब की यह अप्रकाशित रचना है।

आप महाविद्वान, सरल एव विनीत थे। अधिकाश समय आप अपने ज्ञान-ध्यान मे लीन रहा करते थे। पूज्य प्रवर्तक श्री पन्नालाल जी महाराज फरमाया करते थे कि आपको लगभग ६० हजार श्लोक कण्ठस्थ थे, जो वृद्धावस्था तक याद थे। आपके द्वारा लिखित साहित्य आज भी 'जैन प्राज्ञ पुस्तक भण्डार, भिणाय' मे तथा अन्य सग्रहालयो मे

विद्यमान हैं। आपने मसूदा में, दो विशेष अभिग्रह (संकल्प विशेष) किये थे। वे निम्न प्रकार से हैं

(१) एक वार आपने एक पैर के वल खड़े रह कर यह अभिग्रह किया कि सेठ छोगमल जी नाहर लम्बी अंगरखी पहन कर कमरबधा वांध कर स्थानक में आए और तीन वार मुझसे कहें कि 'साधु गजमल वैठ जा' तभी वैठूंगा, अन्यथा तीन दिन तक एक ही पैर के वल खड़े रहकर तेले की तपस्या करूंगा।" आपका यह अभिग्रह दूसरे ही दिन फलित हो गया। (२) इसी तरह दूसरा अभिग्रह इस प्रकार का किया कि भीमराज जी, चुन्नीलाल जी और राजमल जी चोरड़िया, ये तीनों भाई मिल कर मुझे हल्दी, फिटकरी और खल तीनों पदार्थ भिक्षा में दें तो मुझे आहार लेना है, अन्यथा जव तक यह अभिग्रह पूर्ण न हो, तव तक तपस्या करते रहना है।' यह अभिग्रह भी तीसरे ही दिन फलित हो गया।

आपका विचरण क्षेत्र दिल्ली, अलवर, जयपुर, वूंदी, कोटा, लश्कर, ग्वालियर, मालवा, मारवाड़, अजमेर-मेरवाड़ा आदि प्रदेश रहे हैं। आपका अन्तिम चौमासा जालिया (विजयनगर) में हुआ था, जहां आपके उपदेश से हजारों की सख्या में जैन-जैनेतर लोगों ने आयम्बिल तप की आराधना की। चातुर्मास के पश्चात् आस-पास के क्षेत्रों में विचरण करते हुए आप होली चातुर्मास के लिए टाटोटी पधारे। परन्तु होली चौमासी से पहले ही विक्रम संवत् १९७५ की फाल्गुन कृष्णा त्रयोदशी को सलेखना-संथारा पूर्वक टांटोटी में ही आपका स्वर्गवास हो गया। आपने ४९ वर्ष, १०½ मास तक मुनिदीक्षा पर्याय का पालन किया। आपके तीन शिष्य थे—(१) यशवर्तसिंह जी महाराज (२) रावतमलजी महाराज साहव एवं (३) श्री मोखमसिंह जी महाराज साहव। श्री मोखमसिंह जी के निश्राय में पं० मुनिश्री सोहनलाल जी महाराज की दीक्षा पुष्कर में पूज्य प्रवर्तक गुरुदेव श्री पन्नालालजी महाराज के कर-कमलों से हुई।

गुरुवर श्री विजयलाल जी महाराज

आप गेगल (किशनगढ) निवासी ओसवाल वंशीय टकलिया गोत्र के कुलदीपक थे। आपने विक्रम सवत् १९२७ ज्येष्ठ शुक्ला ८ को गुरुदेव श्री मगनमल जी महाराज साहव के पास दीक्षा ग्रहण की। आपके शिष्य श्री धूलचन्द जी महाराज साहव थे। विक्रम संवत् १९६३ पौष कृष्णा ३ को किशनगढ में आपका स्वर्गवास हुआ।

गुरुदेव श्री धूलचन्द जी महाराज साहव

आप जालिया (विजयनगर) निवासी श्री देवकरण जी मालाकार के आत्मज थे। विक्रम सवत् १९३६ माघ शुक्ला ५ को आपका जन्म हुआ। आपकी वुद्धि अत्यन्त तीव्र एवं कुशाग्र थी, इसी कारण आप राजस्थान सेकेण्डरी विद्यालय, जालिया में प्रथम श्रेणी के छात्र रहे। पुण्योदय से आपको विक्रम संवत् १९५१ के ग्रीष्मावकाश के समय पूज्य गुरुदेव श्री विजयलाल जी महाराज की सेवा में रहने का अवसर मिला। गुरुदेव के

अमृतोपम धर्मोपदेश सुनकर आपके हृदय मे अपूर्व जागृति हो गई। आपको इतना आकर्षण गुरुदेव के प्रति हो गया कि आपने स्व-पर कल्याण करने के लिए साधु बनने की ठान ली और गुरुदेव के साथ-साथ पैदल विचरण करने लगे। विक्रम सवत् १६५१ का नसीरावाद का पूरा चातुर्मास भी आपने वैराग्य अवस्था मे गुरुदेव की सेवा मे ही विताया। चातुर्मास के दौरान ही जालिया के माली लोगो ने थानेदार से शिकायत की कि हमारा लडका जैन साधुओं के पास है, उसे हमे दिलाया जाय। थानेदार ने आर्डर करके पुलिस द्वारा आपको हिरासत मे लेकर थाने मे विठा दिया। परन्तु आप गुरुदेव से प्राप्त किये हुए नवकार मन्त्र का अखण्ड जाप करते रहे। मन्त्रजाप के प्रभाव से तत्काल थानेदार के पेट मे भयंकर पीडा हो गई, वह हायतोवा मचाने लगा। आखिर उनसे मिलने वाले किसी सज्जन ने उनको वेदना से छटपटाते देख कर कहा मालूम होता है, आपने किसी सन्त या भक्त को सताया है, अन्यथा यकायक ऐसा तो हो नही सकता। अत: आप सुख-शान्ति चाहते हो तो जिन्हे सताया है, उनसे क्षमायाचना करके उन्हे शीघ्र वन्धन मुक्त करें। अपने मित्र के कहने पर थानेदार ने तत्काल आपको हिरासत से मुक्त किया और अपने अपराध के लिए क्षमायाचना की। थानेदार की पीडा तत्काल शान्त हो गयी। यह था नवकार मन्त्र के प्रति आपकी अटूट श्रद्धा का अद्भुत प्रभाव!

उसके वाद आपके परिवार वालो ने भी आपको गुरुदेव के चरणो मे दीक्षा लेने की अनुमति दे दी। फलत. विक्रम सवत् १६५२ ज्येष्ठ कृष्णा १ को अजमेर राज्य के सोकलिया ग्राम मे आपकी दीक्षा हुई। आप शान्त एव गम्भीर प्रकृति के महाविद्वान्, अथक परिश्रमी, उच्च कोटि के व्याख्याता थे। आपका हस्त लेखन भी वहुत ही सुन्दर था। आपका पढने-लिखने मे ही अधिकाश समय व्यतीत होता था। क्षणमात्र भी निकम्मे वैठना या गपशप लगाना आपको विलकुल ही पसद न था। आपने अपने साधु जीवन-काल मे कई चरित्र, श्लोक, सवैया, दृष्टान्त, ग्रन्थ एव जैन तत्त्व ज्ञान की पुस्तकें लिखी हैं। जो आज भी भिणाय के जैन प्राज्ञभण्डार मे सुरक्षित है। आपकी कविताएँ लालित्य और पाण्डित्य दोनो से परिपूर्ण हैं। आपके द्वारा रचित कुछ स्तवन, समास, सवैया, कवित्त, दोहा आदि के रूप मे रचनाएँ 'धूल के फूल' नामक पुस्तक मे प्रकाशित हुई हैं। आपकी साहित्य रचना पर से मालूम होता है, आप हिन्दी, गुजराती, सस्कृत, प्राकृत, उर्दू आदि अनेक भाषाओं के पण्डित थे। आप अपनी संयम-साधना मे प्रतिक्षण जागरूक रहते थे।

अद्भुत सहिष्णुता

पिछले अनेक प्रसगो मे पाठक देख चुके हैं कि हमारे चरितनायक श्री जी 'पुढवी समो मुणी हवेज्जा' के सच्चे आदर्श थे। अनेक प्रकार की शारीरिक एव मानसिक पीडा तथा उद्विग्नता के व्यथामय क्षणो मे भी उनका हृदय शात, मस्तिष्क स्वस्थ-सतुलित रहा और चेहरा सदा मुस्कराता सौम्यता की मधुर मजुल आभा से खिलता हुआ। जिन

क्षणो मे मनुष्य मानसिक सतुलन खो बैठता है, शारीरिक व्यथाओ से कराहने लगता है उन क्षणो मे भी उनको सदा मुस्कराता देखकर दर्शक गद्‌गद् हो कह उठता।

अचल तुम्हारा धैर्य धरा सा
सहनशीलता सागर सी

भयकर से भयकर शारीरिक वेदनाओ मे भी वे कितने समत्व व सौम्य-भाव मे रमते रहे इसका एक उदाहरण यहाँ प्रस्तुत है।

वि० स० १९७६ मे आपश्री मसूदा विराज रहे थे। आपके दायें पैर की जघा मे नाडी व्रण (नासूर) था जो करीब पिछले ५–६ वर्षो से तकलीफ दे रहा था। कई उपचार किये पर, ठीक नही हुआ।

मसूदा के राजकीय चिकित्सालय मे डा० छोटू भाई देसाई उन दिनो ख्याति प्राप्त सर्जन थे। उन्होने गुरुदेव से उस नासूर की शल्य-क्रिया (आपरेशन) कराने का आग्रह किया।

गुरुदेव श्री ने पहले तो उपेक्षा ही दिखाई पर एक तो उसकी पीडा बढती जा रही थी, दूसरे डाक्टर आदि का कहना था कि धीरे-धीरे यह नासूर भयकर रूप धारण कर सकता है और समूचे पैर को ही काटने का प्रसग आ सकता है अत इसका आपरेशन करना अनिवार्य है।

डाक्टर, सत व श्रावक वर्ग का अत्यधिक आग्रह देखकर आपश्री ने आपरेशन करवाना स्वीकार किया और समय पर सब तैयारी के साथ अस्पताल पधारे। डाक्टर महोदय ने अपनी विधि के अनुसार आपरेशन से पहले क्लोराफार्म सुघाकर बेहोश करना चाहा तो आपश्री ने कहा यह क्यो सुघाते है ?

डाक्टर बेहोश हो जाने के बाद दर्द का अनुभव कम होता है और आपरेशन भी सरलता पूर्वक हो जाता है। अन्यथा दर्द के कारण रोगी चीखने-चिल्लाने लग जाता है।

गुरुदेव श्री डाक्टर साहब ! मुझे क्लोराफार्म सुघाने की जरूरत नही, आप बे-धडक जितना चाहे काट लीजिए, मैं अपने ध्यान मे निश्चल बैठा रहूँगा।

डाक्टर के बहुत आग्रह करने पर भी आपने दवा नही सूघी। चाकू चला, रक्त की धारा बही, मास के टुकड़े भी कटे, स्वय डाक्टर घबरा रहा था कि दर्द के मारे कही पाँव इधर-उधर हिल न जाये या हृदय पर घातक प्रभाव न हो जाय। डाक्टर बार-बार आपके चेहरे की तरफ देख रहा था, पर चेहरे पर वही शान्ति, वही सौम्यता जैसे कुछ हो ही नही रहा है। आश्चर्य तो यह था कि आपरेशन का रोगी शान्त व स्थिर तथा चिकित्सक घबरा रहा था। डाक्टर की यह स्थिति देखकर आपश्री ने कहा—डाक्टर ! तुम डाक्टर होकर भी घबराते हो, फिर कैसे रोगी का आपरेशन कर सकोगे ?

डाक्टर ने कहा महाराज ! मुझे डर है कि इस पीडा का घातक प्रभाव हृदय पर न हो जाय

गुरुदेव डाक्टर ! तुम निश्चित रहो, निसकोच होकर अपना काम करो ! जितना आवश्यक हो, पैर काट सकते हो। यह पीडा मेरे शरीर को हो रही है, आत्मा को नही। मेरा मन प्रसन्न है, शान्त है।

आपकी यह अद्भुत सहिष्णुता देखकर डाक्टर भी चकित रह गया। २ इच गहरा व ४ इच लम्बा-चौडा आपरेशन हुआ। आपरेशन के बाद डाक्टर ने कहा महाराज ! आप तो गजब के सत हैं ! इतनी सहिष्णुता मैंने आज तक किसी मे नही देखी !

गुरुदेव श्री ने आपरेशन के बाद पट्टी बँधाते हुए उसी शान्ति के साथ कहा मेरी क्या सहिष्णुता है, पाँव मे छोटा-सा घाव हुआ है यह ! हमारे पूर्वजो की तो समूचे शरीर की खाल उतार दी गई थी फिर भी उनके चेहरे पर शिकन नही आई ! हमारे सामने तो सहिष्णुता और समता का वही आदर्श है !

आपके कथन से उपस्थित सभी लोग मुग्ध हो गये और इस अद्भुत सहिष्णुता की मुक्तकण्ठ से सराहना करने लगे।

आपका अन्तिम चातुर्मास विक्रम सवत् १९८६ का थाँवला मे होना निश्चित हुआ, तभी आपने फरमा दिया था कि मेरा वहाँ पहुँचना कठिन है। लेकिन श्रावको के विशेष आग्रह पर आपने अजमेर से थावला की ओर विहार कर दिया। मगर रास्ते मे ही विहार करते समय पैर मे अचानक एक फोडा निकल आया, इस कारण आगे विहार करना स्थगित हो गया। अत आपको पुष्कर मे ही रुकना पडा और वह चौमासा भी वही हुआ। चातुर्मासकाल मे एक दिन आपने बात ही बात मे सेवा मे बैठे हुए श्रावक कुन्दनमल जी लोढा से कहा "कुन्दनमल जी ! यह पुष्कर-क्षेत्र तीर्थराज कहलाता है। यहाँ की भूमि के कण-कण मे पवित्रता का वास है, ऐसा माना जाता है। यहाँ अनेक लोगो के मृत शरीर लाकर अन्तिम सस्कार किये जाते हैं। मैं भी अपने शरीर का व्युत्सर्ग यही पर कर दूं तो ?"

लोढाजी आश्चर्य विस्फारित नेत्रो से आपकी ओर देखकर कहने लगे "गुरुदेव ! आप अभी से यह क्या विचार कर रहे हैं। अभी तो समय आया मालूम नही होता।"

परन्तु कौन जानता था कि गुरु जी की यह भविष्य-वाणी सच्ची सिद्ध होगी और यही उनका शरीर छूटेगा।

पैर की पीडा मिटी तो दमा का जोर एकाएक बढ गया। शरीर बेकाबू होने लगा। अत विशेष तकलीफ बढ जाने से तपस्वी श्रावक छोगमल जी नाहर ने आपसे भाद्रपद शुक्ला ९ को निवेदन किया "गुरुवर ! क्या सलेखना-संथारा का अवसर नही आया ?"

गुरुदेव ने फरमाया "तपस्वी जी, अभी अवसर नही आया। जब अवसर आएगा, तब मैं स्वय इस विषय मे कहूगा और यथायोग्य अन्तिम सलेखना विधि करूँगा।"

"गुरुदेव ! मालूम होता है, आपको शरीर पर मोह है।" तपस्वी श्रावक ने अपने तेज स्वभाव के अनुसार तपाक से कहा। भाई ! मोह की बात नही है। अभी मेरे सथारे के

साथ पुष्कर के अनेक श्रावकों का संथारा हो जायेगा। [अतः जब अवसर आयेगा, तब आगे होकर मैं समस्त संघ से निवेदन करूंगा।" गुरुदेव ने शान्ति से तपस्वी जी को समझा दिया।

धीरे-धीरे आपका स्वास्थ्य सुधरने लगा। किन्तु भाद्रव सुदी १४ को फिर अचानक दमे का दौरा हुआ। वह इतने जोर का हुआ कि आपने तुरन्त तपस्वी श्रावक जी, एवं अपने अन्तेवासी शिष्य श्री पन्नालाल जी महाराज से कहा "पन्ना! मैंने अपनी आलोचना कर ली है, अतः मुझे संलेखना-संथारा करवा दे।" प्रवर्तक श्री पन्नालाल जी महाराज ने कहा "गुरुदेव! अभी तो आपका स्वास्थ्य ठीक है। दमा का भी उतना जोर नहीं है। अत. अभी संथारा न कीजिए।" तपस्वी छोगालाल जी नाहर ने भी इसी बात का समर्थन किया। परन्तु आपने फरमाया "अब अवसर आ गया है। अत. मुझे चतुर्विध संघ की साक्षी से देवगुरु की साक्षी से संथारा करा दो। अगर तुम नहीं कराओगे तो मुझे ही स्वयमेव सबकी साक्षी मे करना होगा।"

आपके विशेष आग्रह को देखकर देवगुरु की परोक्ष एवं श्रीसंघ की प्रत्यक्ष साक्षी से आपको संथारा करवा दिया गया। लगभग आध घन्टे बाद ही आपका संथारा सिद्ध हो गया और आपकी आत्मा-भौतिक देह को छोड़कर परलोक-प्रयाण कर गई। आपके देहावसान के पश्चात् आपके उज्ज्वल आदर्श ही आज सबके लिए प्रेरणादायक एवं अनुकरणीय हैं।

पूज्य प्रवर्तक गुरुदेव श्री पन्नालाल जी महाराज

पूज्य गुरुदेव श्री घूलचन्दजी महाराज के स्वर्गवास के पश्चात् सम्प्रदाय की बागडोर आपने संभाली। आपका जीवन-चरित्र विस्तृतरूप से पिछले पृष्ठों मे अंकित हैं। आप समाज-सुधारक, राष्ट्रप्रेमी, शिक्षाप्रचारक, महिलोद्धारक, संगठन के सजग प्रहरी, अनेक राजाओं के उपदेशक एवं प्रखर धर्म-प्रचारक थे। आपका जन्म, दीक्षा एवं स्वर्गवास तीनों ही शनिवार एवं शुक्लपक्ष मे हुए।

आपके निश्राय मे निम्नलिखित शिष्य हुए

१ श्री देवीलाल जी महाराज साहब
२ „ शंकरलाल जी महाराज साहब
३—„ भीकमचन्द जी महाराज साहब
४ „ बालचन्द जी महाराज साहब (पिता)
५—„ वल्लभचन्दजी महाराज साहब 'प्राज्ञकिंकर' (पुत्र)

इनमे से श्री बालचन्द जी महाराज साहब एवं वल्लभचन्द जी महाराज साहब दोनों सन्त वर्तमान मे विचरण कर रहे हैं। शेष सन्त स्वर्गवासी हो चुके हैं।

पूज्य प्रवर्तक श्री छोटमल जी महाराज साहब

श्रद्धेय प्रवर्तक श्री पन्नालाल जी महाराज के पश्चात् सम्प्रदाय का शासन सूत्र आपके हाथों मे सौंपा गया।

आप खारीतटस्थित मेवाड के भीलवाडा जिलान्तर्गत शम्भूगढ के निवासी श्री खूबचन्द जी आंचलिया एव श्रीमती दाखकुवरबाई के आत्मज थे। आपने अपने बड़े भाई श्री छीतरमल जी के साथ विक्रम सवत् १९६२ चैत्र शुक्ला ८ के दिन पूज्य गुरुदेव श्री धूलचन्द जी महाराज साहव के निश्राय मे किशनगढ मे दीक्षा ग्रहण की थी।

आपने दीक्षाग्रहण करने के वाद अपने गुरुदेव के चरणो मे अपना जीवन अर्पित कर दिया। आप वहुत ही पुरुपार्थी एव उदार सेवाभावी सन्त थे। आप अपने छोटे-वड़े व अन्य सभी सन्तो की तन-मन से सेवा करते रहते थे। यही कारण है कि आपके सम्पर्क मे आने वाले सभी सन्त आपको 'महान् सेवाभावी' के रूप मे याद करते रहते हैं।

विक्रम सवत् २०२९ द्वितीय वैशाख शुक्ला २ के दिन सायकाल मे अपने होश-हवास मे आपने श्रमणो एव श्रावको की उपस्थिति मे स्वयमेव सलेखना-सथारा ग्रहण कर लिया। फिर चारो शरणो का स्मरण एव मुनिराजो के तीन मनोरथो का चिन्तन करते हुए अक्षय तृतीया के दिन प्रात ४ वज कर २० मिनट के करीव व्राह्ममुहूर्त मे आप दिवगत हुए।

आपके निधन से नानक-सम्प्रदाय का एक वहुत वड सहारा उठ गया।

पूज्य प्रवर्तक श्री कुन्दनमल जी महाराज साहव

आप प्रवर्तक पूज्य श्री छोटमल जी महाराज साहव के सुशिष्य हैं। आपका जन्म विक्रम संवत् १९७५ भाद्रपद शुक्ला ७ गुरुवार को खारीतटस्थित शम्भूगढ (मेवाड) मे श्रीमती झेलकुवर वाई जी कुक्षि से हुआ। आपके पिता श्री चौथमल जी आचलिया सादा जीवन उच्च विचार के धनी सुश्रावक थे। वचपन से ही आपको विद्याध्ययन के साथ-साथ सत-सतियो के दर्शन करने, प्रवचनसुनने एव सत्सग करने मे बहुत दिलचस्पी थी।

अपनी शिक्षा पूर्ण करके व्यापार के निमित्त जव आप गुलावपुरा मे रह रहे थे, उस दौरान आप पूज्य प्रवर्तक श्री पन्नालाल जी महाराज साहव के सम्पर्क मे आए। प्रतिदिन व्याख्यान श्रवण करने से आपको ससार से विरक्ति हो गई। आपने ससार का वास्तविक स्वरूप जान लिया और शीघ्र ही ससार के मायाजाल से निवृत्त होकर सयमी-जीवन विताने का मन ही मन शुभ-सकल्प कर लिया।

अव क्या था ? आप गुरुदेव के सतत सम्पर्क मे रह कर प्रतिक्रमण, पच्चीस बोल तथा अन्य वोल-थोकडो का अध्ययन करने लगे।

आपके पारिवारिक-जनो को जव इस बात का पता लगा कि आप पर वैराग्य का रग चढ गया है, तव वे श्री गुरुदेव के पास आए और आपको पकड कर ले गए। घर ले जा कर आप पर चढे हुए वैराग्य का रग उतारने के लिए पहले तो नाई से मस्तक मुंडवाया, तत्पश्चात् कुँए पर ले जा कर पानी से खूब मल-मल कर नहलाया। क्योकि उनके दिमाग मे यह भ्रांत धारणा थी कि गुरु शिष्य के मस्तक पर भुरकी डाल देते हैं इसी कारण यह अपने घरवालो को छोडकर बार-बार गुरु के साथ चला जाता है, परन्तु

अब इन दो क्रियाओ से भुरकी भी उतर जायगी और वैराग्य का रंग भी उतर जायगा, मगर इससे तो 'सूरदास की कारी कामरी चढै न दूजो रंग' वाली कहावत ही चरितार्थ हुई। आपका वैराग्य का रंग और अधिक पक्का हो गया।

माता-भाई एव परिवार-जनो को बहुत-कुछ समझाने के बाद उन्होने दीक्षा की अनुमति सूचक आज्ञापत्र लिख दिया। अत आप गुरुदेव की सेवा मे दीक्षा के लिए उपस्थित हुए। तदनुसार विक्रम सवत् १९९६ अक्षयतृतीया को जामोला (अजमेर) मे बडी सादगी से महामहिम श्रद्धेय पूज्य प्रवर्तकवर्य गुरुदेव श्री के करकमलो से आपकी दीक्षा सम्पन्न हुई।

दीक्षा के बाद आप गुरुसेवा मे सर्वात्मना समर्पित होकर आगमो एव दर्शनशास्त्र आदि का अध्ययन करने मे जुट गए। आप सस्कृत प्राकृत, हिन्दी एवं ज्योतिषशास्त्र मे पारगत हुए। आप सूक्ष्म एव स्थूल जैन ज्योतिष-शास्त्र के प्रकाण्ड विद्वान् हैं तथा पचाग-निर्माण करने मे भी सिद्धहस्त हैं।

प्रवर्तक पूज्य गुरुदेव श्री छोटमल जी महाराज साहब के विक्रम सवत् २०२९ की अक्षयतृतीया को स्वर्गस्थ होने पर विक्रम सवत् २०३० अक्षयतृतीया के दिन बादनवाडा (अजमेर) मे चतुर्विध श्री सघ ने लगभग ढाई-तीन हजार जनमेदिनी की उपस्थिति मे आपको प्रवर्तकपद से विभूषित कर अपना धर्मनायक घोषित किया।

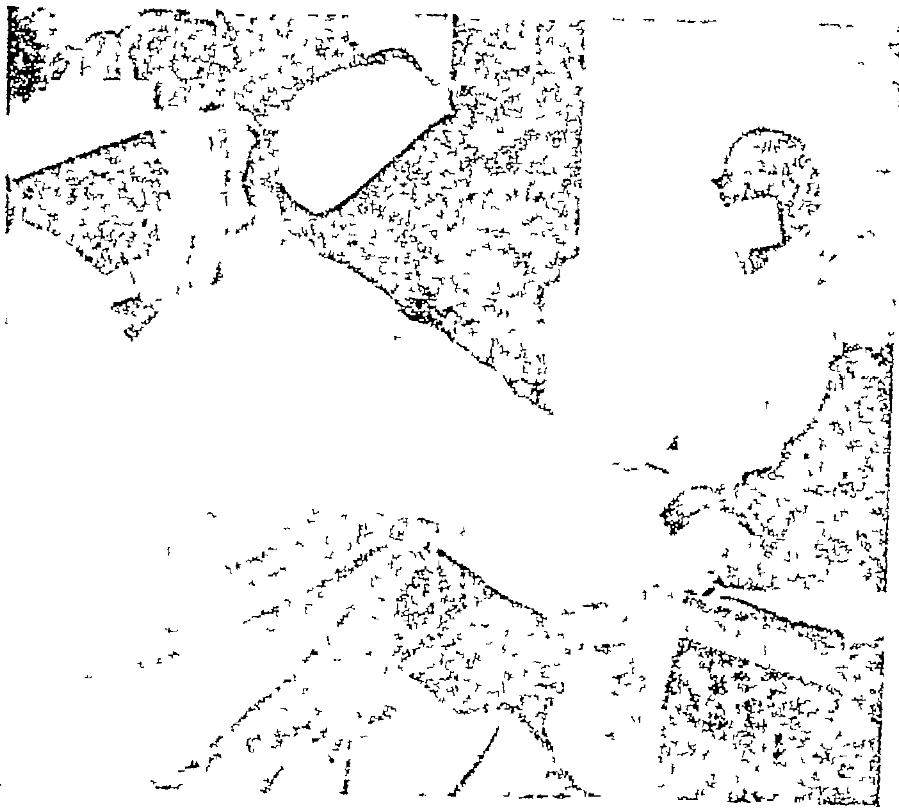
वर्तमान में आपके नेश्राय में ४ श्रमण एव १३ श्रमणीगण सानन्द विचरण कर रहे हैं। जिनका परिचय इस प्रकार है

१. श्री सोहनलाल जी महाराज साहब

आप खारीतटस्थित देवलिया कला (जो विजयनगर से ८ मील पूर्व दिशा मे है) के निवासी श्री सुखलाल जी छाजेड एव श्रीमती भवरबाई जी के सुपुत्र हैं। आपका जन्म विक्रम सवत् १९६८ माघ शुक्ला ९ को हुआ था। माता-पिता के धर्मनिष्ठ एव सुसस्कारी होने से आप बचपन से ही धार्मिक प्रवृत्ति मे दिलचस्पी लेते रहे हैं।

एक बार आपके शरीर पर एक घातक रोग ने हमला कर दिया, जिससे आपको जीने की आशा तक नही रही। उस समय आपने अनाथी मुनि की तरह ऐसा सकल्प कर लिया कि 'यदि मैं इस रोग से मुक्त होकर स्वस्थ हो जाऊँगा तो मुनि दीक्षा धारण कर लूगा, गृहस्थी की उलझन मे नही पडूगा।" इस दृढ सकल्प के चामत्कारिक फल-स्वरूप आप रोग मुक्त और स्वस्थ हो गए। अत· दीक्षा लेने की आपकी भावना प्रबल हो उठी। आप प्रवर्तक पूज्य गुरुदेव की चरण-सेवा मे उपस्थित हो गए।

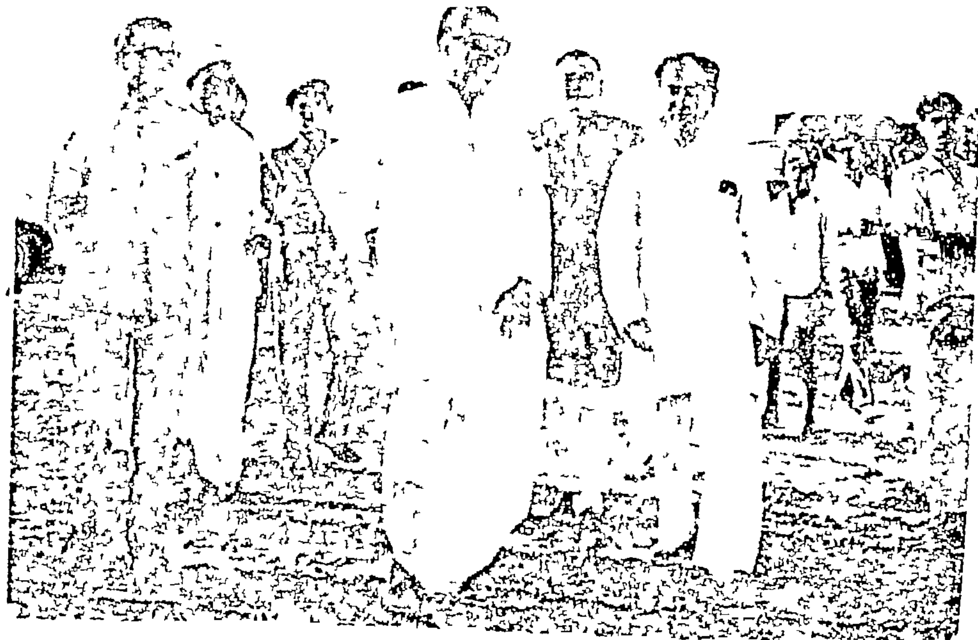
आपके वैराग्य की कसौटी करने के बाद आपकी माताजी एव बड़े भाई श्री मोहन-लालजी छाजेड ने दीक्षा लेने की अनुमति दे दी। तदनुसार विक्रम सवत् २००१ फाल्गुन शुक्ला ५ को तीर्थराज पुष्कर मे बडी सादगी से प्रवर्तक श्री जी के कर कमलो से आप दीक्षित हो गए। आप श्री मोखमसिंह जी महाराज के शिष्य घोषित किये गए। तब से ही आपने आगमो के अध्ययन के साथ-साथ व्याख्यान शैली का उत्तरोत्तर विकास किया। आज आप मधुर व्याख्याता एवं सरल सुबोध शैली के कवि हैं।





तत्कालीन महामहिम उपराष्ट्रपति डा० जाकिर हुसैन एव राजस्थान के
भू० पू० मुख्यमन्त्री माननीय श्री मोहनलाल जी सुखाडिया
गुरुदेव श्री पन्नालाल जी महाराज से नैतिक शिक्षा के सम्बन्ध मे
विचार विमर्श करते हुए (दि० १७-५-६५)

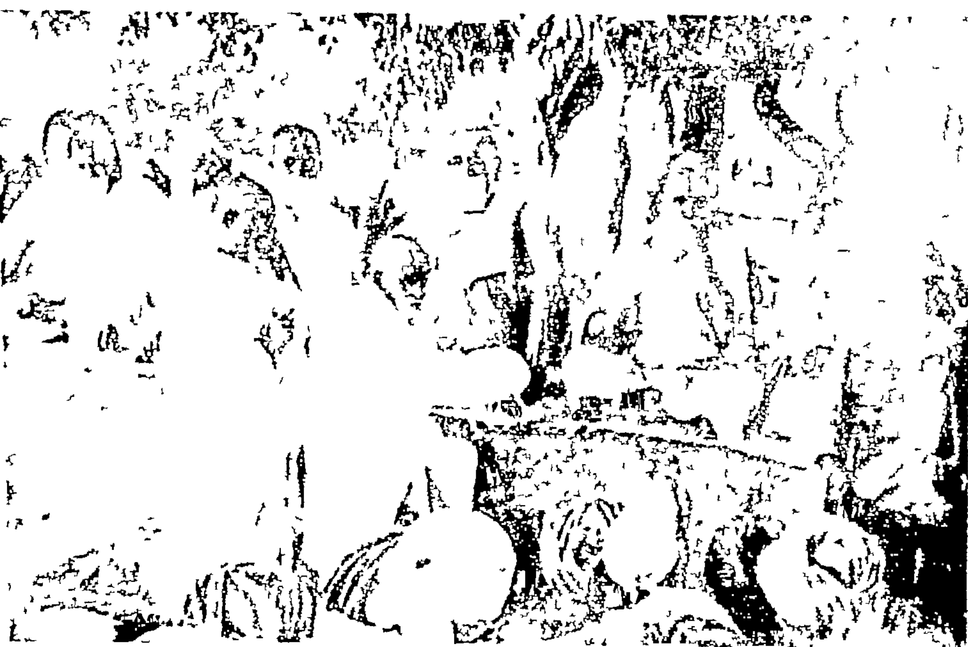




श्री प्राज्ञ महाविद्यालय विजयनगर के शिलान्यास के अवसर पर
तामिलनाडु के वर्तमान राज्यपाल माननीय श्री मोहनलालजी सुखाडिया,
राव साहब श्री नारायणसिंह जी साहब, मसूदा, श्रीमान चन्दनसिंह जी साहब एव
सेठ मानसिंहका जी आदि विशिष्ट अतिथिगण ।




आचार्य प्रवर परम श्रद्धेय श्री आनन्द ऋषिजी म०
महास्थविर पूज्य गुरुदेव श्री पन्नालाल जी म० सा० को वन्दना करते हुए (अजमेर साधु सम्मेलन)




सरल स्वभावी मुनिश्री बालचन्दजी म० सा० एव
विद्यानुरागी मुनिश्री वल्लभचन्दजी म० सा० को पूज्य गुरुदेव श्री दीक्षा प्रदान करते हुए।

२. आत्मार्थी मुनिश्री बालचन्दजी महाराज साहब

आप मसूदा निवासी श्रीमान् बिशनलालजी पीपाडा एव श्रीमती धीसाबाई के आत्मज हैं। बचपन मे ही आपके सिर से पिताजी का साया उठ गया था। एक पुत्र एव दो पुत्रियो के भरण-पोषण का सारा भार माताजी पर आ पडा। इधर आपके ननिहाल वालो ने आपकी माताजी (धीसाबाई) से अपने पुत्र-पुत्रियो सहित पीहर आकर रहने का अत्यधिक आग्रह किया। बहुत कुछ आनाकानी करने के बावजूद खासतौर से अपने भाई श्री बाठियाजी के अत्यधिक स्नेह पूर्ण आग्रहवश आपकी माताजी को सपरिवार अपने पीहर बडली (विजयनगर) जाकर रहना पडा। यहाँ आपके माताजी के भाई श्री बाठियाजी ने आपकी माताजी (अपनी बहन) को सम्मान-पूर्वक एक भाई की तरह घर का आधा हिस्सा रहने के लिए सौंप दिया। इसके पश्चात् आपकी माताजी ने मसूदा का अपना मकान श्री संघ मसूदा के स्थानक को भेंट कर दिया।

बडली मे रहते हुए आपके ननिहाल वालो ने आपकी दोनो बहनो की शादी क्रमश कोटडी (हुरडा) एव रूपाहेली कला मे कर दी। आपका विवाह भी कवलियास (भीलवाडा) निवासी श्रीमान् मागीलाल जी रांका की सुपुत्री श्रीमती सुगन कुवरजी के साथ कर दिया। आप 'विजयनगर की विजय काटन मिल' मे सर्विस करने लगे। मिल मे रहते हुए विक्रम सवत् २००० श्रावण मास मे खारी नदी मे भयकर बाढ आ जाने से आप बाढ मे बह गए।

आयुष्य बलवान होने के कारण कुछ दूर तक बह कर आप एक पेड की ओट मे आ लगे। फलत पेड़ को पकड लेने से आप बच गए। उसके एकाध वर्ष बाद आपकी माताजी का एव कालान्तर मे आपकी धर्म-पत्नी का भी देहावसान हो गया। आप अपने इकलौते पुत्र श्री मदनलाल (वल्लभ मुनि) को विजयनगर ले आए और उसे साथ मे रख कर उसी विजयनगर की मिल मे सर्विस करने लगे।

विक्रम सवत् २००७ मे पूज्य गुरुदेव का चातुर्मास जब विजयनगर था, तब आप अपने पुत्र के साथ उनकी सेवा मे रह कर ज्ञानाभ्यास करने लगे। आपकी दीक्षा लेने की भावना प्रबल हो उठी, लेकिन पुन अपने भागिनेय के कहने मे आकर आप दोनो विजय-नगर से उनके पास चले गए। मगर आपको अपना जीवन तो गुरुचरणो मे समर्पित करना था। अत पुन विक्रम सवत् २०११ के चातुर्मास मे आप अपने पुत्र सहित गुरु-देव की सेवा मे जामरेला (अजमेर) पहुँच गए और उनसे दीक्षा देने की प्रार्थना की।

सयमोचित ज्ञानाभ्यास हो जाने पर गुरुदेव प्रवर्तक श्री ने विक्रम सवत् २०११ फाल्गुन शुक्ला ३ को मसूदा मे बडी सादगी से पिता-पुत्र दोनो को भागवती दीक्षा दी। तब से आज तक दोनो गुरु-चरणो मे यथावत् समर्पित हैं।

३. विद्याभिलाषी श्रीवल्लभ मुनिजी 'प्राज्ञकिकर'

आप अपने पूज्य पिताजी के चरणानुगामी बन कर उन्हीं के साथ मसूदा मे दीक्षित हो गए। आप तभी से गुरुदेवश्री के चरणो मे रह कर विद्योपार्जन मे सलग्न हैं।

आपका जन्म विक्रम सवत् १९९८ आसोज कृष्णा ७ दिनांक १४-९-४१ को अपने ननिहाल मे हुआ। आप सस्कृत, प्राकृत, हिन्दी एव सटीक आगमो के अध्ययन के साथ-साथ न्याय का अध्ययन कर रहे हैं। हिन्दी एवं सस्कृत पद्यरचना करने मे आपको बहुत अच्छी गति है। आपकी व्याख्या शैली भी सुरुचिपूर्ण एव आधुनिक है। अध्ययन-अध्यापन कार्य मे आपकी रुचि प्रशसनीय है। आपके द्वारा सम्पादित एव अनूदित 'सम्बोधना' वैराग्यरसिको के लिए पठनीय व मननीय है।

४. तपस्वी मुनिश्री चांदमलजी महाराज साहब

आपका जन्म विकम सवत् १९७५ पोष वदी ११ को काणिया (कनकपुर) मे हुआ। श्रीमान् मागीलालजी श्रीमाल एव श्रीमती हगामबाई के आप आत्मज हैं। आपके और तीन छोटे भाई विद्यमान हैं। आपका सासारिक वैवाहिक सम्बन्ध भी हुआ था, परन्तु कालान्तर मे धर्मपत्नी का वियोग हो गया और आपको ससार से विरक्ति हो गई। आप अपना अधिकाश समय सामायिक, पौषध एव ज्ञानार्जन आदि धार्मिक क्रियाओ मे व्यतीत करने लगे।

विक्रम सवत् २०१६ मे जब गुरुदेव श्री का अपनी शिष्य मण्डली सहित चातुर्मास विजयनगर एव जालिया मे हुआ, तब पुन आपकी हार्दिक इच्छा दीक्षा लेने की प्रबल हो गई फलत. विक्रम सवत् २०१६ माघ शुक्ला ९ के दिन अपने जन्मस्थान कनकपुर मे आप दीक्षित हुए। दीक्षाविधि के लिए प्रवर्तक श्री जी महाराज ने अपने शिष्य श्री कुन्दनमल जी महाराज ठा ४ को भेजा। उस समय ठा. ५ हस्तीमलजी महाराज के आज्ञानुवर्ती बड़े लक्ष्मीचन्दजी महाराज ठा. ३ से भी पधारे हुए थे। बडी दीक्षा विजयनगर मे पूज्य प्रवर्तक जी महाराज के सान्निध्य मे हुई।

तब से अब तक आप सेवा, स्वाध्याय एव तपस्या मे सतत सलग्न रहते हैं।

□

नानक सम्प्रदाय की द्वितीय परम्परा-क्रम

परमप्रभावक आचार्य श्री सुखलाल जी महाराज साहब

आप अजमेर राज्य के किला (पुष्कर से पश्चिम मे ४ मील दूर पहाड़ पर स्थित) गांव के वीसा ओसवालवशीय लुणावत गोत्र के रत्न थे। आपने १२ वर्ष की उम्र मे विक्रम सवत् १८६१ माघ शुक्ला १० को आचार्य श्री निहालचन्द जी महाराज साहब के निश्राय मे भागवती दीक्षा ग्रहण की। आपने संयम लेकर आगमो का तलस्पर्शी अध्ययन किया और स्वल्पकाल मे ही विद्वत्ता प्राप्त कर ली। आपकी विद्वत्ता, प्रखरबुद्धि, प्रतिभा-सम्पन्नता एवं प्रभावशाली व्यक्तित्व को देख कर ही तत्कालीन आचार्य प्रवर श्री वीरभाणजी (जो आपके बडे गुरुभ्राता थे) ने जैन शासन-

उन्नायक समझ कर चतुर्विधसंघ के समक्ष आग्रहपूर्वक अपनी आचार्यपद की चादर अपने ही हाथो से आपको ओढा दी, और अपने पट्ट पर आचार्य घोषित कर दिया।

आपके शासनकाल मे सम्प्रदाय की बहुत उन्नति हुई। लगभग ११० सन्त तथा २०० से ऊपर साध्वियाँ आपकी आज्ञा मे विचरण करती थी, जिनमे कई महान् विद्वान् त्यागी, तपस्वी, वैरागी, क्षमाशील एव परमसतोषी सन्त प्रवर थे। कई साध्वियाँ बहुत उच्चकोटि की, परम विदुषी भी थी। आचार्य सुखलाल जी महाराज की क्रिया एव तपस्या बहुत उच्चकोटि की थी। आपने दूर-सुदूर क्षेत्रो मे विचरण कर जनता को धर्मामृत का पान कराया था।

आपका अनुशासन अतीव कठोर एव विवेकपूर्ण था। स्थानक से बाहर गये हुए सन्त अपने कार्य से निवृत्त होकर यथासमय वापस नही लौट पाते तो उनके विलम्ब के कारण की पूरी जाँच-पड़ताल करते और असावधानी बरतने का उन्हे कठोर प्रायश्चित्त देते थे।

आप अपने आज्ञानुवर्ती साधु-साध्वियो का किशनगढ मे प्रतिवर्ष त्रिदिवसीय सम्मेलन करते थे, उस समय प्रत्येक साधु-साध्वी के आचार-विचार एव आहार-विहार का पूरा ध्यान रखते थे। अधिक साधु-साध्वियो के एकत्र होने से आहार-विहार मे दोष लगने की सम्भावना देखकर कई साधु-साध्वीगण तो उन दिनो मे तपस्या कर लेते थे। अवशेष साधु-साध्वीगण गोचरी मे साधारण आहार ले आते अथवा आटा, शक्कर एव घी ले आते, जिसका लड्डू-सा बना लेते और एक-एक लड्डू से सतोष करते थे। इस सम्मेलन के अवसर पर सभी साधु-साध्वीगण वर्षभर की अपनी कार्यप्रणाली का विवरण आचार्य-श्री जी महाराज के चरणो मे प्रस्तुत करते और आचार्यश्री (आप) तत्कालीन परिस्थिति के अनुसार सघ के नियमोपनियमो मे उचित सशोधन, परिवर्द्धन एव परिवर्तन कर दिया करते थे। साथ ही समस्त सतसतियो का चातुर्मास भी द्रव्य-क्षेत्र-काल-भाव की अनुकूलता देख-सोचकर तय कर देते थे।

जीवन की सन्ध्या के समय आपकी नेत्र ज्योति मन्द हो गई थी, तथा विहार करने मे भी अत्यन्त अशक्त हो गए थे, इस कारण लगभग १७ वर्ष तक आप अजमेर मे ही स्थिरवास के रूप मे विराजे थे। लगभग ५३ वर्ष तक आचार्य पद पर रहकर आपने धर्मसघ की सेवा की और ७० वर्ष, ४ मास एव ७ दिन का सयमपर्याय पालन कर विक्रम सवत् १९३२ आषाढ कृष्णा ३ को अजमेर मे सलेखना-सथारा सहित पण्डितमरण प्राप्त कर स्वर्गवासी हुए।[1] आपके १८ शिष्य हुए थे।

आपके स्वर्गवास के पश्चात् आचार्य पद महोत्सव के प्रसंग को लेकर अजमेर और किशनगढ के श्रावको मे परस्पर मतभेद पैदा हो गया। किशनगढ वाले श्रावक नये आचार्यश्री का पद-महोत्सव परम्परानुसार अपने यहाँ कराना चाहते थे, जबकि

१ ऐसा किशनगढ श्रावकसघ की बहियो से उपलब्ध होता है।

अजमेर वाले श्रावक चाहते थे कि हमारे यहाँ आचार्यश्री सुखलालजी महाराज का स्वर्गवास हुआ है, इसलिए हमारे यहाँ ही नवीन आचार्य का पदमहोत्सव होना चाहिए। इस प्रकार श्रावको के पारस्परिक विवाद को लेकर साधुओ मे भी परस्पर मतभेद पैदा हो गया। फलत दोनो स्थानो को लेकर एक ही सम्प्रदाय के दो आचार्य दोनो जगह नियुक्त हुए।

आचार्य श्री हरखचन्दजी महाराज साहब

आचार्यश्री सुखलालजी महाराज का स्वर्गवास हो जाने के वाद अजमेर श्रावकसघ की विनति पर चतुर्विधसघ द्वारा आप आचार्य पद पर नियुक्त किये गए। सतियाँ एव सन्त मिलकर करीव आधे आपके आज्ञाधीन रहे।

आपने विक्रम सवत् १८८३ ज्येष्ठ कृष्णा ५ को आचार्यश्री सुखलालजी महाराज साहव के निश्राय मे भागवती दीक्षा ली थी। आप उच्चकोटि के विद्वान् थे। आपके अनेक शिष्य हुए थे। वर्तमान मे हीराचदजी महाराज का परिवार अभी विद्यमान है।

हीराचन्दजी महाराज की दीक्षा विक्रम संवत् १९१८ माघ कृष्णा ५ को आचार्य श्री हरखचन्दजी महाराज के निश्राय मे हुई। आप वड़े प्रभावशाली तेजस्वी सत थे। आपके ५ शिष्य हुए जिनमे से देवरियाँ-कला निवासी चपलोतगोत्रीय श्री लक्ष्मीचन्दजी महाराज प्रसिद्ध वक्ता हुए, जिन्होने अनेक प्रान्तो मे विचरणकर धर्मप्रभावना की। आपके शिष्य हुरडानिवासी चपलोत कुलावतस श्री हगामीलाल जी महाराज साहव हैं जिनकी दीक्षा विक्रम सवत् १९६६ फाल्गुन कृष्ण ५ को अजमेर मे हुई। आपके शिष्य वादनवाडानिवासी हीगड़गोत्रीय श्री अभयकुमार जी महाराज साहव हैं, जिनकी दीक्षा विक्रम सवत् २००३ ज्येष्ठ शुक्ला २ को कुकडा ग्राम मे हुई।

श्री हीरालालजी महाराज साहव आप मारवाड़-राज्य अधीनस्थ तिवरी ठिकाने के जागीरदार थे। गोत्र से राजपुरोहित कुल को आपने पावन किया था। विक्रम संवत् १८७० के लगभग जोधपुर नरेश श्री मानसिंह को पदच्युत करके उनके पुत्र श्री छितरसिंह जी को राजगद्दी पर आसीन करने मे आपका ही प्रमुख हाथ था। किन्तु कुछ वर्षो पश्चात् ही श्री छितरसिहजी की आकस्मिक मृत्यु हो जाने से पुनः मानसिंहजी के पक्ष का जोर वढा। उन्होने जालोर की जेल तोडकर श्री मानसिंह जी को जोधपुर लाकर राजगद्दी पर विठा दिया। राजगद्दी पर बैठते ही श्री मानसिंह जी ने अपने पदच्युत करने वालो को जहर के प्याले पिलाने का आदेश दे दिया। उस समय राजपुरोहित श्री हीरालालजी उस अपमृत्यु से अपनी रक्षा के लिए तिवरी छोडकर भाग निकले। कुछ समय तक अज्ञातवास मे रहने के पश्चात् आप आचार्यश्री सुखलाल जी महाराज साहव के पास पहुँचे और उनके पास दीक्षा ग्रहण कर ली। दीक्षा लेते ही आपने अपने जीवन को समुज्ज्वल वनाने के लिए नानाविध तपस्याओ में सलग्न कर दिया। एक वार आपने आचार्यश्री सुखलालजी महाराज साहव से एकलविहार-प्रतिमा वहन करने की आज्ञा मागी। आचार्यश्री ने आपकी योग्यता देखकर

एकलविहार-प्रतिमा अगीकार करने की अनुमति दे दी । फिर क्या था, आप वहाँ से पुष्कर के नाग पहाडो मे रहे और अनेक वर्षो तक वहाँ नानाविध तपस्याएं कीं । वहाँ रहने वाले योगियो के यहाँ से गर्म जल एव राख लेकर आपने जीवनयापन किया । फिर नागपहाडो से चल कर पुष्कर आए, वहाँ जैनधर्मावलम्बियो पर पण्डो द्वारा व्याप्त आतक सदुपदेश देकर दूर कराया आतक दूर होने पर वहाँ जैन समाज ने स्थानक का निर्माण किया । जयपुर और जोधपुर राज्य के अनेक जागीरदारो एव प्रमुख व्यक्तियो को उपदेश देकर आपने उन्हे जैनधर्म की ओर झुकाया । वास्तव मे आपने अपने सयमीजीवन मे अनेक अद्भुत कार्य करके जिनशासन की सेवा की ।

स्वामी श्री दयाचन्दजी महाराज साहब—

आप आचार्यश्री हरखचन्दजी महाराज साहब को निश्राय मे विक्रम सवत् १६०५ ज्येष्ठ सुदी ३ को दीक्षित हुए थे । आचार्यश्री हरखचन्दजी महाराज साहब के स्वर्गवास के पश्चात् शासन की बागडोर आपके हाथो मे सौंपी गई । आपने कुशलता-पूर्वक सम्प्रदाय के शासन का संचालन किया, चतुर्विध सघ आपकी आज्ञा मे साधना-रत रहता था ।

स्वामी श्री दयाचन्दजी महाराज के पश्चात् सम्प्रदाय का शासन सचालन का भार **गुरुवर्य श्री गजमलजी महाराज साहब** ने और तत्पश्चात् गुरुवर्य **श्री धूलचदजी महाराज** ने सभाले ।

आचार्य श्री हरखचन्द जी महाराज साहब की शिष्य परम्परा मे इस समय महास्थविर प्रवर्तक स्वामीजी श्री हगामीलाल जी महाराज, श्री अभयकुमारजी महाराज श्री छीतरमल जी महाराज ठाणा ३ एवं विदुषी महासतीजी श्री जतन कवरजी महाराज साहब ठाणा ३ । इस शिष्य परम्परा का विशेष परिचय आपसे ही उपलब्ध हो सकता है । हमे विशेष जानकारी प्राप्त न होने से हम यहाँ नही दे पा रहे हैं ।

☆

नानक सम्प्रदाय की तीसरी परम्परा का क्रम

आचार्य श्री अभयराजजी महाराज साहब

आप अजमेर राज्यान्तर्गत केवाण्या ग्राम के ओसवाल वशीय छाजेडगोत्र के कुल-रत्न थे । आप अपने पिता श्री देवीचन्द जी के साथ विक्रम सवत् १८६० मार्गशीर्ष शुक्ला ६ को श्री पहाडमलजी महाराज साहब के निश्राय मे दीक्षित हुए । दीक्षा के समय आपकी आयु लगभग ६ वर्ष की थी ।

आचार्य श्री सुखलालजी महाराज के स्वर्गवास होने के पश्चात् किशनगढ श्रावकसघ के अनुरोध से आप आचार्य पद पर नियुक्त किये गए । आपके पक्ष मे करीब ५० सत एव अनेक सतीगण थे ।

आपका अन्तिम चातुर्मास ब्यावर हुआ। विक्रम संवत् १६३५ चैत्र कृष्णा ८ को आप किशनगढ मे सलेखना-सथारा सहित समाधिमरण को प्राप्त हुए। आपके पक्ष-परिवार मे जो साधु-साध्वीगण विचरण करते थे, वे आगे चल कर टाटोटी सघाडे के नाम से प्रख्यात हुए क्योकि आपके सघाड़े के प्रमुख प्रतिभाशाली सत श्री छोटमलजी महाराज काफी वर्षो तक टाटोटी मे स्थिरवास रहे, इस कारण से आपका सघाड़ा टाटोटी सघाडा के नाम से पुकारा जाने लगा। इस समय आपके पक्षपरिवार मे कोई सतसती विद्यमान नही है।

एक साथ हुए समकालीन इन दो आचार्यों के पश्चात् इस (नानक) सम्प्रदाय मे अभी तक कोई आचार्य नही बने है। लेकिन सम्प्रदाय का शासनसूत्र कई क्रियापात्र, विद्वान् एव प्रतिभा-सम्पन्न प्रवर्तक मुनियो के हाथो मे रहा, जिसका उन्होने सफलता-पूर्वक सचालन किया है।

स्वामी श्री छोटमलजी महाराज साहब आप जयपुर राज्य के ढूंढाड देशान्तर्गत लावाग्राम निवासी अग्रवाल कुल के रत्न थे। आपने विक्रम सवत् १६२१ फाल्गुन शुक्ला २ को श्री शेरसिह जी महाराज के निश्राय मे दीक्षा ग्रहण की। आप विद्वान् एव प्रतिभाशाली सन्त थे। आप अपनी वृद्धावस्था मे लगभग १५ वर्ष तक टाटोटी मे स्थिरवास विराजे। उन दिनों भारत मे प्लेग की बीमारी (महामारी) भयंकर रूप में फैली हुई थी, लेकिन आप जब तक टाटोटी विराजमान रहे, तब तक टाटोटी मे प्लेग जैसी महाव्याधि का नामोनिशान तक नही दिखाई दिया, यह आपकी तपस्या का प्रभाव था। आपके एक शिष्य हरिलालजी महाराज साहब हुए, जो जयपुर राज्यान्तर्गत विसलपुर ग्राम के निवासी जाटकुल दीपक थे। हरिलालजी ने आप से विक्रम सवत् १६५७ के आसपास दीक्षा ग्रहण की। आप सस्कृत, प्राकृत एवं हिन्दी भाषा के अच्छे विद्वान् थे। स्वामी श्री छोटमल जी का स्वर्गवास टाटोटी मे विक्रम सवत् १६७४ भाद्रपद कृष्णा ३ को सलेखना-सथारा सहित हुआ। आपके शिष्य श्री हरिलाल जी महाराज साहब भी आपके स्वर्गवास के एक माह पश्चात् ही टाटोटी मे ही दिवगत हुए।

☆

श्रमणी परम्परा क्रम

१. बाल ब्रह्मचारिणी परम विदुषी गुरुणी जी श्री उमरावकुँवरजी महाराज

आप पादू रूपारेल निवासी श्रीमान् भीखमचन्द जी बावड तथा श्रीमती पानबाई की पुत्री हैं। आपका जन्म विक्रम संवत् १६७० पौष कृष्णा १० को हुआ। बचपन मे माताजी का वियोग हो जाने से आप अपने पिताजी के साथ खानदेश मे रही। पूज्य गुरुदेव श्री धूलचन्दजी महाराज एव गुरुदेव श्री पन्नालाल जी महाराज साहब के उपदेश श्रवण करके आपको विरक्ति हो गई और आपने अपने पिताजी के साथ ही

दीक्षा लेने की इच्छा प्रगट की। तदनुसार संयमोचित प्रारम्भिक अध्ययन के बाद विक्रम संवत् १९८२ ज्येष्ठ शुक्ला ९ को महासती श्री गेदकुँवरजी की निश्राय मे बादनवाडा मे दीक्षित हो गई। आपके पिता श्री भीखमचन्द जी भी नसीराबाद मे पूज्य प्रवर्तक श्री पन्नालाल जी महाराज के निश्राय मे दीक्षित हो गए थे।

आपने संस्कृत, प्राकृत एव हिन्दी भाषा का ज्ञान प्राप्त किया। आप बाल-ब्रह्मचारिणी, विदुषी एव सरल हृदय, व्याख्यात्री महासती है। आपकी सहनशीलता, क्षमा, नम्रता एवं सरलता अनुकरणीय है।

२ वयोवृद्ध महासती श्री दीपकुंवरजी महाराज

आप भोजरास (मेवाड) निवासी श्रीमान् ओनाडमल जी गोखरू व श्रीमती चाँदबाईजी की सुपुत्री हैं। आपका विवाह सम्बन्ध लोडियाना (विजयनगर) निवासी श्रीमान् चौथमलजी बडौला के साथ हुआ। आपको वैराग्य हो जाने से आप विक्रम संवत् १९९९ फाल्गुन शुक्ला २ को मसूदा मे महासती श्री सुन्दरकुवरजी महाराज साहब के निश्राय मे दीक्षित हो गई। आप सेवा एव तपश्चर्या मे रत रहती हैं।

३ महासती श्री सूरजकुवरजी महाराज

आप जामोला निवासी श्री चाँदमल जी मड्या एव श्रीमती घीसाबाई जी की आत्मजा हैं। आपका विवाह सथाना (विजयनगर) के श्री उदयलाल जी चौपडा के साथ हुआ था। किन्तु ससार से विरक्ति हो जाने से आपने विक्रम संवत् २००२ माघ शुक्ला १३ को जामोला मे महासती श्री उमरावकुवरजी के निश्राय मे दीक्षा ग्रहण करली। आप अतीव शान्तस्वभावी हैं एव संयम साधनारत रहती हैं।

४ महासती श्री जयवन्तकुवरजी महाराज

अपका जन्म भीलवाडा जिलान्तर्गत तलोली निवासी श्री राजमल जी बाफना की धर्मपत्नी श्री गटुबाई की कुक्षि से हुआ। आपका पाणिग्रहण भीलवाडा जिले के कासोरिया ग्रामवासी श्री गोविन्दसिंह जी भडारी के साथ हुआ था। आपने विक्रम संवत् २००३ माघ शुक्ला ३ को जालिया मे महासती उमरावकुवरजी महाराज से भागवती दीक्षा अगीकार की। आप मधुरवक्त्री हैं।

५ वयोवृद्ध महासती श्री बदामकुंवरजी महाराज

आप भिणाय के मोडुलालजी बम्ब की धर्मपत्नी श्री भूरबाई जी की सुपुत्री हैं। आपका जन्म विक्रम संवत् १९६६ कार्तिक शुक्ला ६ को हुआ और पाणिग्रहण हुआ बाघसूरी निवासी श्री सुजानमल जी पोखरणा के साथ। आपने वैराग्य भाव से महासती श्री धनकुँवरजी महाराज साहब के निश्राय मे विक्रम संवत् २०१० प्रथम वैशाख कृष्णा २ को बाघसूरी मे दीक्षा अगीकार की। आप प्राय सेवाभाव एव ज्ञानाभ्यास मे लीन रहती हैं।

६. महासती श्री जड़ावकुंवरजी महाराज

आप भिणाय निवासी मागीलाल जी डागी एवं श्रीमती केशरवाई जी की सुपुत्री हैं। आपका विवाह भिणाय के श्री सोहनलालजी साखला के साथ हुआ था। लेकिन विरक्ति हो जाने से आपने विक्रम सवत् २०१० जेठ सुदी १० को लाडपुरा (मारवाड) मे महासती श्री जयवन्तकुवरजी के निश्राय मे दीक्षा ग्रहण कर ली। आप स्वाध्याय, तप एव सेवा आदि मे लीन रहती हैं।

७. महासती श्री घेवरकुवरजी महाराज

आप मेवदा (केकडी) निवासी श्रीमान् नेमीचन्द जी लोढा एव श्रीमती रतनवाई की सुपुत्री हैं। जन्म विक्रम सवत् १९८५ चैत्र कृष्णा अमावस्या को हुआ, विवाह घनोपनिवासी श्री मदनलाल जी बुरड के साथ हुआ। आपकी दीक्षा विक्रम सवत् २०१२ आषाढ कृष्णा ११ को जामोला मे महासती जयवतकुंवरजी के नेश्राय मे हुई। आप अच्छी व्याख्यात्री हैं।

८. महासती श्री आनन्द कुंवरजी महाराज

आप वगडी कलाल्या निवासी श्री चुनीलालजी चोपडा एव श्रीमती गुलाव वाई की सुपुत्री हैं। आपका पाणिग्रहण रामगढ निवासी श्री सुवालालजी कुमठ के साथ सम्पन्न हुआ था। आपकी दीक्षा विक्रम सवत् २०१५ भादवा सुदी १३ को गुलावपुरा मे महासती श्री धनकुंवरजी के निश्राय मे हुई। आप सेवा एव सयम साधना मे रत रहती हैं।

९. महासती श्री रोशनकुंवरजी

आप भिणाय निवासी श्री सुजानमलजी सुराणा एवं श्रीमती सुगनवाई जी की पुत्री हैं, आपका विवाह किशनगढ निवासी मदनसिह जी मुणोत के साथ सम्पन्न हुआ था। आपने विक्रम सवत् २०१८ द्वितीय ज्येष्ठ शुक्ला १० को वैराग्यभाव से विजयनगर मे महासती श्री जयवन्तकुंवरजी महाराज के निश्राय मे दीक्षा धारण की। आप ज्ञानार्जन के साथ सेवा मे रत हैं।

१०. महासती श्री मैनाकुंवरजी

आप रासनिवासी श्री चन्दनमलजी एव श्रीमती वदामवाईजी की सुपुत्री हैं। आपका विवाह पादूकलारेल निवासी श्री अमोलकचन्दजी खाविया के साथ सम्पन्न हुआ था। आपकी दीक्षा विक्रम सवत् २०२० मार्गशीर्ष शुक्ला ६ को घनोप मे महासती श्री सूरजकुवरजी महाराज के निश्राय मे हुई। आप ज्ञानार्जन करने के साथ-साथ सेवा मे रत हैं।

११. महासती श्री रतनकुंवरजी

आपका जन्म विक्रम सवत् २००३ मे सागानेर (भीलवाडा) मे हुआ। आपके माता-पिता का नाम क्रमश श्री देवीलालजी बोथरा एव श्रीमती वदामबाई था।

आपके पिताजी व्यापार के निमित्त सागानेर से निबाहेडा मे आकर बस गए थे। आपका पाणिग्रहणसस्कार कवलियास (भीलवाडा) निवासी श्री भेरु लाल जी रांका के साथ हुआ था। आपकी दीक्षा विक्रम सवत् २०२६ को उपरेडा (भीलवाडा) मे महासती श्री जयवतकुवरजी के निश्राय मे प्रवर्तक पूज्य गुरुदेव श्री छोटमलजी महाराज साहब के सान्निध्य मे सम्पन्न हुई। तब से आप अध्ययन एव सेवा मे सलग्न हैं।

१२ बाल ब्रह्मचारिणी साध्वी श्री कमलाकुमारीजी

आपका जन्म विक्रम सवत् २०१४ माघकृष्णा ३ को सरेरी बाघ (भीलवाडा) मे हुआ। आपके माता-पिता का नाम क्रमश श्रीलालजी लोढा एव श्रीमती लहरबाईजी हैं। दोनो धर्मनिष्ठ श्रद्धालु श्रावक-श्राविका हैं। आपकी दीक्षा विक्रम सवत् २०३० को आश्विन शुक्ला ३ को ब्यावर मे गुरुदेव पूज्य प्रवर्तक श्री कुन्दनमल जी महाराज साहब ठा ५ के सान्निध्य मे विदुषी महासती श्री जयवन्तकुंवरजी के निश्राय मे हुई। आप महासतीजी महाराज साहब की सेवा मे रहकर सस्कृत प्राकृत एव सिद्धान्त का अध्ययन कर रही हैं।

१३. बाल ब्रह्मचारिणी साध्वी श्री ज्ञानलताजी

आप धर्मनिष्ठ श्रावकव्रती श्रीमान् दलीचन्दजी बाफणा एव श्रीमती प्रेमबाईजी की अगजा हैं। विक्रम सवत् २०१४ भादवा सुदी १३ को शिखराणी (विजयनगर) मे आपका जन्म हुआ। आपकी दीक्षा भी विक्रम सवत् २०३० आसोज सुदी ३ को ब्यावर मे पूज्य प्रवर्तक गुरुदेव श्री कुन्दनमल जी महाराज साहब ठा ५ के सान्निध्य मे महासती श्री जयवन्तकुंवरजी महाराज के निश्राय मे सम्पन्न हुई।

तब से आप भी आगमो के साथ-साथ हिन्दी, सस्कृत एव प्राकृत के अध्ययन मे दत्तचित्त हैं।

आपकी सेवा मे रहकर आपकी दो छोटी बहनें श्री सुशीलाकुमारीजी एव श्री निर्मलाकुमारीजी भी कुछ अर्से से वैराग्यभाव मे निमग्न होकर अध्ययन कर रही हैं।

इस प्रकार पूज्य प्रवर्तक गुरुदेव श्री पन्नालालजी महाराज के लोकाशाह कालीन पूर्वजो से लेकर अनुजो (नानक सम्प्रदाय से सम्बन्धित साधु-साध्वियो) तक का सक्षिप्त परिचय यहाँ प्रस्तुत किया है।

इस परिचय से हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि श्री नानक सम्प्रदाय का साधुसाध्वी मडल कितना तेजस्वी, उदार एव युगानुकूल रहा है। यही कारण है कि इसी नानक सम्प्रदाय रूपी खान मे से 'पन्ना' (प्राज्ञ महर्षि) निकले हैं। जिनकी चमक-दमक एव आकर्षण से भारत जगमगा उठा है।

गुरुदेव द्वारा प्रदत्त दीक्षाएं

श्रमण दीक्षाएं

वान्दनवाडा श्री देवीलालजी महाराज
भिणाय श्री शंकरलालजी महाराज
नसीराबाद श्री भीकमचन्द जी महाराज
जामोला श्री कुन्दन मुनिजी
पुष्कर श्री सोहनलालजी महाराज
मसूदा श्री बालचन्दजी महाराज
मसूदा—श्री वल्लभचन्दजी महाराज
कनकपुर श्री चांदमलजी महाराज
पादूरूपारेल श्री पृथ्वीसिंहजी
विजयनगर श्री हगामीलालजी
अजमेर श्री मिश्रीलाल जी

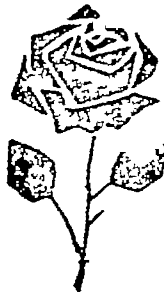
साध्वी दीक्षाएं

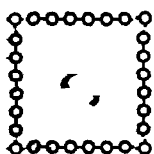
१ श्री उमरावकवर जी महाराज, वादनवाडा
२ श्री धन्नकवरजी महाराज, नसीरा०
३ श्री सूरजकवरजी महाराज, नसीरा०
४ श्री चायकवरजी महाराज, विजय०
५ श्री दीपकवरजी महाराज, मसूदा
६ श्री सूरजकवरजी महाराज, जामोला
७ श्री जयवन्तकंवरजी महाराज, जालिया
८ श्री वदाम कवरजी महाराज, वाघसूरी
९ श्री जडावकंवरजी महाराज, लाडपुरा
१० श्री घेवरकवरजी महाराज, जामोला
११ श्री आनन्दकवरजी महाराज, गुलाबपुरा
१२ श्री रोशनकवरजी महाराज, विजयनगर
१३ श्री मैनाकवरजी महाराज, धनोप

आप श्री की छत्रछाया मे अन्य संत सतियांजी के नेश्राय में दीक्षाएं

श्री जोरावरमल जी महाराज साहब की नेश्राय मे श्री मिश्रीमल जी महाराज 'मधुकर' की दीक्षा १९८० का वैशाख सुदो १० भिणाय मे सपन्न हुई।

श्री पन्नाकवरजी महाराज की नेश्राय मे श्री सुगनकवरजी महाराज की दीक्षा १९९३ का मृगसर मे मसूदा मे संपन्न हुई।





चातुर्मास और उपकार



साधु जीवन मे चातुर्मास (वर्षावास) का समय पर्युपासना का विशिष्ट काल है, जिसमे चार महीने लगातार एक ही (पूर्व निर्धारित) स्थान पर ज्ञान, दर्शन, चारित्र और तप की आराधना मे, आत्मा की उपासना मे, आलोचना, तप और प्रायश्चित्त द्वारा आत्मशुद्धि की साधना मे तथा अधिक से अधिक वीतराग परमात्मा की उपासना एव आज्ञाराधना मे बिताना होता है। वर्षा के कारण चारो ओर पानी, कीचड और हरियाली हो जाती है। असख्य जीवजन्तु पैदा हो जाते हैं, इसलिए वर्षावास मे मुनियो का पद विहार निराबाध और निरापद नही होता। इसी कारण तीर्थंकर प्रभु महावीर ने साधुसाध्वियो के लिए चातुर्मास मे एक ही स्थान पर निवास की आज्ञा दी है। परन्तु वर्षावास मे एक जगह निवास के कारण साधुसाध्वी अपने सयम और आत्मकल्याण की साधना के साथ-साथ अनेक श्रद्धालु धर्मपिपासु जनता को भी दर्शन, स्वाध्याय, प्रवचन, चर्चा-विचारणा एव सत्सग द्वारा लाभ देते है, त्याग-प्रत्याख्यान, व्रत नियम, तप-सयम एव ज्ञान-ध्यान द्वारा उनको भी आत्मज्योति जगाने की प्रेरणा देते हैं। सघ मे प्रचलित कुरूढियाँ, फूट, वैमनस्य और अन्धविश्वास आदि बुराइयाँ मिटाकर परस्पर प्रेमभाव, श्रद्धा एव ज्ञान का प्रकाश तथा सदाचारपूर्ण सुरीतियाँ स्थापित करने का प्रयत्न करते हैं।

हमारे चरितनायक मरुधरकेसरी प्रवर्तक श्री पन्नालालजी महाराज ने भी पूर्वोक्त पद्धति और विचारधारा के अनुसार दीक्षा के प्रारभ से लेकर महाप्रयाण तक इसी प्रकार चातुर्मास व्यतीत किये। नीचे हम क्रमश. उनके चातुर्मासो की तालिका तथा उसमे हुए उपकार के कार्यो का सक्षिप्त विवरण दे रहे हैं, जिससे पाठको को उनके प्रत्येक चातुर्मासिक जीवन की झाकी मिल जाएगी

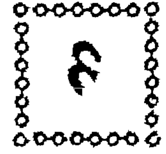
१.	विक्रम सवत् १९५७ जसवतावाद	श्रावको मे धर्मध्यान की लगन बढी स्वय का अध्ययन भी हुवा ।
२	„ „ १९५८ अजमेर	आशातीत धर्माराधना हुई । पर्युषण से पूर्व मुंडितमस्तक पर मुष्टि प्रहार का समभाव पूर्वक सहन ।
३.	„ „ १९५९ मसूदा	पूज्य गुरुदेव श्री विजयलालजी महाराज से शास्त्रीय अध्ययन तथा श्रावको में धर्माराधना ।
४	„ „ १९६० भीलवाडा	श्रावको मे धर्माराधना ।
५	„ „ १९६१ किशनगढ	श्रावको मे धर्मोत्साहवृद्धि ।
६	„ „ १९६२ हरमाडा	रमलविद्या का अध्ययन । श्रावकवर्ग मे नया उत्साहसचार ।
७	„ „ १९६३ पादूरूपारेल	जनता की धर्म श्रवण मे रुचि और तपत्याग मे वृद्धि ।
८	„ „ १९६४ भीलवाडा	प्रवचनो की धूम । समाज-सुधार का उत्साह ।
९	„ „ १९६५ जालिया	जैन-जैनेतरो में श्रद्धाभक्ति का ज्वार उमड़ा ।
१०	„ „ १९६६ पादू रूपारेल	पूज्य गुरुदेव श्री केशरीमलजी महाराज की सेवा मे ।
११	„ „ १९६७ मसूदा	राजपरिवार को धर्मप्रेरणा ।
१२	„ „ १९६८ अजमेर	श्रावको मे तप-त्याग की आराधना, धर्मोद्योत ।
१३	„ „ १९६९ किशनगढ	श्रावको मे धर्मोद्योत ।
१४	„ „ १९७० भिणाय	पूज्य गुरुदेव श्री धूलचंदजी महाराज की सेवा मे व्याख्यानो का अद्भुत प्रभाव ।
१५	„ „ १९७१ पादू रूपारेल	धर्मध्यान का ठाठ ।
१६	„ „ १९७२ मसूदा	मसूदा के निकटवर्ती कोलपुरा गाँव मे होने वाली भैंसे की बलि बन्द करवाई ।
१७.	„ „ १९७३ बादनवाडा	पूज्य गुरुदेव श्री धूलचन्दजी महाराज की रुग्णावस्था मे सेवा साधना ।
१८	„ „ १९७४ „ „	„ „ „ धर्माराधना महामारी के उपद्रव की शान्ति ।
१९	„ „ १९७५ भिणाय	पूज्य गुरुदेव धूलचन्दजी महाराज की सेवा मे ।
२०.	„ „ १९७६ मसूदा	पूज्य गुरुदेव की रुग्णता के कारण सेवा साधना में श्रावकों मे धर्मध्यान ।
२१.	„ „ १९७७ मसूदा	पूज्य गुरुदेव की रुग्णावस्था मे सेवा ।
२२.	„ „ १९७८ अजमेर	भिणायनिवासी देवीलालजी को वैराग्यलाभ उपदेशो की धूम ।
२३.	„ „ १९७९ भिणाय	धर्मध्यान का ठाठ श्री शंकरलालजी को विरक्तिलाभ ।
२४.	„ „ १९८० भीलवाडा	ज्ञानचर्चा व धर्माराधना ।
२५	„ „ १९८१ जालिया	ज्ञानाराधना व धर्मसाधना ।
२६	„ „ १९८२ अजमेर	धर्मध्यान व तपस्या ।

२७	,,	,,	१६८३ गुलाबपुरा	धर्मध्यान की अत्यन्त आराधना। मुस्लिम भाइयो ने हिंसा बन्द की।
२८	,,	,,	१६८४ भीलवाडा	जैन-जैनेतर लोगो को उपदेश का लाभ, धर्माराधना।
२६	,,	,,	१६८५ ब्यावर	धर्मध्यान व तपस्या का ठाठ।
३०	,,	,,	१६८६ पुष्कर	पूज्य गुरुदेव श्री धूलचन्दजी महाराज की रुग्णावस्था मे सेवा। उनके स्वर्गवास होने पर सम्प्रदाय का शासनसूत्र सम्भाला।
३१	,,	,,	१६८७ मसूदा	थानेदार को उपदेश देकर शिकार बन्द कराया। राव साहब ने सार्वजनिक स्थानो पर हिंसा न करने के शिलालेख लगाये। माहेश्वरियो-जैनो मे उत्पन्न हुए उग्रविवाद को शान्त किया। माहेश्वरियो का आपसी झगडा निपटाया।
३२	,,	,,	१६८८ भीलवाडा	बनेडा नरेश श्री अमरसिंह ने प्रवचनो से प्रभावित होकर मृत्यु भोज न करने की प्रतिज्ञा ली, वन मे गोचर कर माफ किया।
३३	,,	,,	१६८६ किशनगढ	वृहत्साधु-सम्मेलन की भूमिका के लिए प्रदान।
३४	,,	,,	१६६० विजयनगर	व्याख्यान से जैन-जैनेतर जनता ने लाभ उठाया।
३५	,,	,,	१६६१ जोधपुर	ठा० १५ का सयुक्त चातुर्मास हुआ। दया-दान पर सारगर्भित प्रवचन।
३६	,,	,,	१६६२ भीलवाडा	रेशमी वस्त्रो के उपयोग का त्याग कराया अल्पारम्भ-महारम्भ के सम्बन्ध मे जैनाचार्य पूज्य जवाहरलालजी महाराज से पत्राचार।
३७	,,	,,	१६६३ मिणाय	मरुधरीयसन्तो मे वात्सल्यभाव बढाने का प्रयत्न।
३८	,,	,,	१६६४ विजयनगर	समाज की दुरवस्था पर प्रवचन
			गुलाबपुरा	श्री श्वेताम्बर स्थानक० नानक जैन श्रावक समिति की स्थापना, उनके अन्तर्गत नानक जैन सहायक फड व नानक जैन छात्रालय गुलाबपुरा का गठन। गृहस्थ उपदेशक तैयार करने का प्रयत्न -पर्युषणपर्वाराधना के लिए दो उपदेशक भेजे। विजयनगर मे पर्यूषण के समय ऊपर से पत्थर गिरा, पर किसी के चोट न लगी।
३६	,,	,,	१६६५ टाटोटी	एक वर्ष से विरक्त श्री कुन्दनमलजी की दीक्षा का निश्चय। जाति मे प्रचलित कुप्रथाओ का त्याग।
४०	,,	,,	१६६६ मसूदा	विजयनगर की होने वाली लूट का निवारण, लुटेरो से रक्षा का प्रयत्न धर्मध्यान, तप, जप की आराधना।
४१	,,	,,	१६६७ जालिया	धर्मध्यान मे अपूर्व वृद्धि।
४२	,,	,,	१६६८ धावला	धर्माराधना।

४३	,,	,,	१९९९	गोविन्दगढ	प्रसिद्ध डाकू श्री लक्ष्मणसिंह का उपदेश से प्रभावित होकर जीवन-परिवर्तन।
४४	,,	,,	२०००	भीलवाडा	बाढ पीडितों की सहायता के लिए प्रेरणा।
४५	,,	,,	२००१	ब्यावर	स्थानक का जीर्णोद्धार श्रावकवर्ग ने किया।
					बंगाल में दुष्काल पीड़ितों की सहायता के लिए प्रेरणा।
४६	,,	,,	२००२	विजयनगर-गुलाबपुरा	कत्लखाने ले जाते हुए कसाइयों के चंगुल से गायों की सुरक्षा।
४७	,,	,,	२००३	,,	कारणवश वर्षावास, धर्मध्यान।
४८.	,,	,,	२००४	भिणाय	कच्छ अंजार में भूकम्प पीडितों की सहायता के लिए आपकी प्रेरणा से फंड एकत्रित कर श्रावकवर्ग ने भेजा।
					धर्माराधना।
४९	,,	,,	२००५	मसूदा	रिखबचन्दजी डोसी की प्रेतबाधा की शान्ति।
					धर्मसाधना।
५०	,,	,,	२००६	भीलवाडा	जैनविद्यालय, गुलाबपुरा को आपकी प्रेरणा से गांधी विद्यालय को सार्वजनिक रूप दिया गया।
					स्वास्थ्य-सुधार।
५१	,,	,,	२००७	विजयनगर-गुलाबपुरा	श्वे० स्थानक० जैन स्वाध्यायी संघ की विधिवत् स्थापना।
५२	,,	,,	२००८	जालिया	आगामी साधु-सम्मेलन के लिए प्रतिनिधि मुनियों को भेजने का निश्चय।
५३	,,	,,	२००९	किशनगढ	धर्माराधन।
					श्रमणसंघीय संगठन की सुदृढता के लिए प्रयत्न।
५४	,,	,,	२०१०	गोविन्दगढ	ठाकुर साहब को प्रतिबोध। स्थानीय जनता में धर्मोद्योत ओजस्वी प्रवचनों का लाभ।
५५	,,	,,	२०११	जामोला	धर्म प्रभावना
					पिता-पुत्र की विरक्ति।
५६	,,	,,	२०१२	मसूदा	धर्माराधना।
					शिष्यों को शास्त्रीय अध्ययन कराया।
५७	,,	,,	२०१३	विजयनगर	वृद्धावस्था के कारण विहार करने में अशक्त होने से स्थिरवास।
					धर्मध्यान तपस्या।
५८	,,	,,	२०१४	,,	,, ,,
५९	,,	,,	२०१५	गुलाबपुरा	आनन्द कुंवरजी की दीक्षा। महासती धनकुंवरजी के नेश्राय में आपके सान्निध्य में हुई। धर्माराधना।
६०	,,	,,	२०१६	विजयनगर	धर्माराधना खूब हुई
६१	,,	,,	२०१७	गुलाबपुरा	,, ,,

					श्रमणसघीय व्यवस्थापक समिति के सचालक पद पर नियुक्ति
६२	"	"	२०१८	विजयनगर	धर्मध्यान एव तपस्या ।
६३	"	"	२०१९	"	" "
					श्रमणसघीय आचार्यपद के लिए परामर्श हेतु आए हुए, शिष्ट मडल के समक्ष आनन्दऋषि जी महाराज का नाम निर्देश ।
६४	"	"	२०२०	अजमेर	श्रमणसघीय सुदृढता के लिए विचार-विमर्श ।
६५	"	"	२०२१	विजयनगर	गाधी विद्यालय एव नानक जैन छात्रालय को आपकी प्रेरणाओ का लाभ ।
६६.	"	"	२०२२	गुलाबपुरा	धर्माराधना । प्रवचनलाभ ।
६७	"	"	२०२३	विजयनगर	धर्माराधना ।
					श्रमणसघीय साधुवर्ग की शिथिलता निवारण के लिए प्रयत्न ।
६८	"	"	२०२४	विजयनगर	धर्माराधना ।





गागर में सागर



(गुरुदेवश्री का विराट जीवन-वृत्त संक्षिप्त सरल रेखाओं में)

१	नाम	श्री पन्नालाल जी महाराज
२	पिता	श्री बाबूराम जी
३	माता	श्री तुलसाबाई जी
४	जाति	मालीकार (माली) माटोजीवीय
५	जन्म स्थान	कोतलसर (नागौर) मारवाड़
६	जन्म-तिथि	वि० स० १९४५ भादवासुदी ३, शनिवार
७	दीक्षा	वि० स० १९५७ वैशाख शु० ६, शनिवार मालू (आनन्दपुर) मारवाड़
८	दीक्षा-गुरु	पूज्य श्री नानकराम जी महाराज साहब की सम्प्रदाय के पूज्य गुरुदेव श्री मोतीलाल जी महाराज साहब
९	प्रथम वर्षावास	जसवन्तावाद (मारवाड़)
१०	गुरु का वियोग	वि० स० १९५७ पौ० सु० १३. अजमेर
११	गुरु का सहवास काल	८ मास, ७ दिन
१२	शिक्षा-गुरु	पूज्य गुरुदेव श्री गजमल जी महाराज साहब पूज्य गुरुदेव श्री धूलचन्द जी महाराज साहब
१३	शिक्षण	जैनागम, ज्योतिष, हिन्दी, प्राकृत, संस्कृत आदि
१४	शिक्षा-गुरु का वियोग	पूज्य श्री गजमल जी महाराज साहब का वि० स० १९७५ फाल्गुन वदी १३ को टाटोटी मे स्वर्गवास हो गया ।
१५	विशेष कार्य	जादू टोना, जीवहिंसा, मृत्युभोज इत्यादि का विरोध तथा कुरूढियो का उन्मूलन ।

१६ सिंह को दर्शन

स० १९८२ मे महावीर जयन्ती को बनेडा मे पदार्पण । रात्रि को बाग मे निवास । उसी रात्रि के करीब ३ बजे वनराज पशुपति केशरी सिंह का आगमन । आपके तप व तेज से प्रभावित होकर उसका श्रद्धा सहित श्री चरणो में नमन कर पुनरावर्तन ।

१७ पशु-वलि निषेध

गनाहेडा (पुष्कर), तिलोल, चावण्डिया, घनोप आदि अनेक स्थानो पर देवी-देव के नाम पर होने वाली नृशस पशु हत्या को वन्द करवाना और राजा महाराजाओ को उपदेश देकर उनसे हिंसा, दारू, मास, सप्त कुव्यसन का त्याग करवाना। गुलाबपुरा मे वि० स० १९८३ के चातुर्मास मे जैन-अजैन जनता पर अप्रतिम प्रभाव तथा इस्लाम भाइयो द्वारा गुलाबपुरा मे पशु हिंसा नही करने की प्रतिज्ञा करना।

१८ पुन शिक्षा-गुरु का वियोग पूज्य श्री धूलचन्द जी महाराज साहब का वि० स० १९८६ भादवा सुदी १४ को पुष्कर मे स्वर्गारोहण।

१९ सदुपदेशित संस्थायें

१ श्री नानक जैन श्रावक समिति, विजयनगर

उद्देश्य स्वधर्मी सहायता करना

२ श्री नानक जैन छात्रालय, गुलाबपुरा

उद्देश्य: छात्रो मे धार्मिक सस्कारो का निर्माण एव साधनहीन छात्रो के लिए नि शुल्क अध्ययन-अध्यापन की व्यवस्था करना।

३ श्री जैन प्राज्ञ पुस्तक भण्डार, भिणाय (अजमेर)

उद्देश्य· प्राचीन हस्तलिखित प्रतियो का सरक्षण एव एक विशाल पुस्तकालय द्वारा स्वाध्यायी श्रावको के लिए ज्ञानार्जन मे सुविधा प्रदान करना।

४ श्री श्वे० स्था० जैन स्वाध्यायी संघ, गुलाबपुरा

उद्देश्य: श्रावको को सयम, ज्ञान, दर्शन, चारित्र के प्रति जागरूक बनाना, जैनागम बोध कराना तथा साधु साध्वी जी महाराज साहब के चातुर्मास से व चित क्षेत्रो मे पर्युषण मे स्वाध्यायी श्रावको को नि शुल्क भेजकर धर्म-ध्यान की साधना-आराधना करना-कराना।

५—श्री नानक जैन कन्या पाठशाला, विजयनगर,

उद्देश्य:—कन्याओ मे धार्मिक सस्कारो का बीजारोपण कर उन्हे सुसस्कृत बनाना।

२० सगठन के सजग प्रहरी

१—सर्वप्रथम पाली मे हुए मरुधर मुनि सम्मेलन के प्रमुख रूप से सक्रिय भाग लेना, वहाँ पर मरुधर मुनियो मे प्रमुख पद प्राप्त करना तथा भावी सम्मेलनो के लिए उचित भूमिका तैयार करना।

२—श्री वृहत् विहार साधु सम्मेलन, अजमेर मे उसी प्रकार प्रमुख रूप से जी जान पूर्वक आगत साधु-सन्तो की सेवा का लाभ प्राप्त करना। साधु सम्मेलन को पूर्ण सफल बनाने मे शरीर की भी परवाह न करना।

३ गुलाबपुरा मे चारो बडो का स्नेह-सम्मेलन कर लम्बे-लम्बे विहार कर मन, वचन, कर्म से उद्देश्य पूर्ति में जुटे रहना। अनेक जटिल से जटिल प्रश्नो का सहज सरल तरीके से समाधान करना।

४ जोधपुर मे संवत् १९९१ मे १५ सन्तो के साथ सयुक्त चातुर्मास कर संगठन को बल प्रदान करना।

५—सादडी सम्मेलन में संगठन का श्री गणेश करके पूर्व सम्प्रदाय के मोह का त्याग करना तथा उसकी सफलता के लिए दूर बैठे हुए भी पावर हाऊस के जैसे पूर्ण सहयोग देना।

६ श्रमण संघ को डाँवाडोल स्थिति में बड़ी धीरजता के साथ उसे टिकाये रखना। प्रथम आचार्य श्री के स्वर्गस्थ होने पर पुन आचार्य का सर्व सम्मति से निर्वाचन कर लेना आपकी निर्णयात्मक बुद्धि का ज्वलन्त प्रमाण है।

७—पुन अजमेर में होने वाले शिखर सम्मेलन में शरीर में अशक्ति रहते हुए भी अजमेर श्रावक संघ के अतीव आग्रह होने पर व निर्वाचित आचार्य जी की अनेक विनम्र विनतियों को लक्ष्य कर पालकी में बैठने की कतई कामना न होते हुए भी संघ संगठन में अपनी सेवा प्रदान करने के लिए पालकी में बैठकर मार्ग में अनेक शारीरिक कष्टों को सहन करके अजमेर पधारना आपकी संगठन-प्रियता का अपूर्व परिचय था।

८ संगठन में आई हुई शिथिलता के निवारण हेतु अनेकश: प्रयत्न करना। आचार्य श्री को भी उसके प्रति कठोर कदम उठाने की प्रेरणा करते रहना आपकी *प्रगाढ चरित्रनिष्ठा का उदाहरण* है। अन्त में जब कार्यकर्ता एवं प्रमुख नेता गण इस प्रेरणा को उपेक्षा भरी निगाह से निकालने लगे तथा आचार शिथिलता को दूर न कर केवल कोरी एकता को ही प्रधानता देने लगे तब उससे अपना सम्बन्ध विच्छेद कर लेना आपकी निर्भीकता एवं त्याग तपस्या का अनुकरणीय कदम था।

९ इतना सब कुछ होते हुए भी चरित्राचार की शुद्ध भूमिका तैयार होने पर फिर से सदा-सदा के लिए संघ संगठन के द्वार खुले रखना आपके हृदय की विशालता एवं दूरदर्शिता का साक्षात् दर्शन है।

२१ चातुर्मास ६८

२२ स्थिरवास विजयनगर, गुलाबपुरा वि० सं० २०१२ से २०२४ तक।

२३ संयम पर्याय ६७ वर्ष, ८ मास, २८ दिन

२४ निर्वाण वि० सं० २०२४ माघ सु० ५, शनिवार, ब्रह्ममुहूर्त में, वसन्त पंचमी, दिनांक ३ फरवरी, १९६८, विजयनगर (अजमेर)

२५ सर्वआयु ७९ वर्ष, ५ मास, दो दिन,

२६ विशेषता आप श्री के जन्म, दीक्षा व निर्वाण इन तीनों का वार (शनिवार) एक ही है।



श्री प्राज्ञ जैन स्मारक समिति के विशिष्ट सहयोगी एव कार्यकर्त्ता



श्रीमान् सत्यप्रसन्नसिंह जी भडारी,
अध्यक्ष मा० शि० बोर्ड, राजस्थान



श्रीमान् नन्दलाल जी पोखरणा
एडवोकेट, अजमेर
महामन्त्री—श्री प्राज्ञ [illegible]



श्रीमान् सेठ सम्पतमल जी साहब लोढा, अजमेर

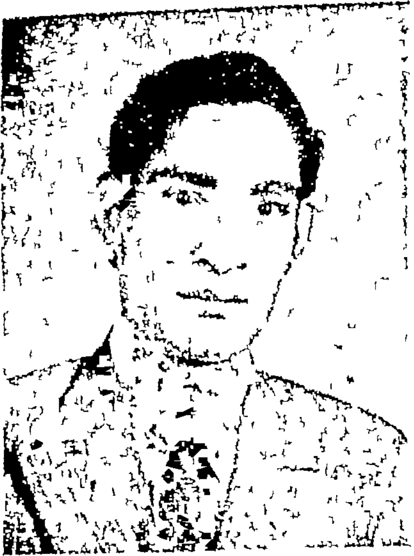


श्रीमान् चुन्नीलाल जी महता
Special executive Magistrate Bombay



श्रीमान् जयप्रकाशजी गुप्ता
प्राचार्य श्री प्राज्ञ महाविद्यालय

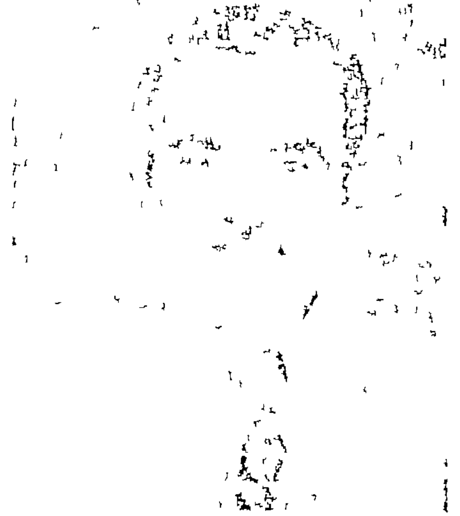
श्री प्राज्ञ जैन स्मारक समिति के [illegible] सहयोगी एवं कार्यकर्ता



श्रीमान् शान्तिलाल जी चोपडा, विजयनगर



श्रीमान् शान्तिलाल जी पोखरणा, भीलवाडा



श्रीमान् फतेहसिंह जी मेडतवाल ब्यावर



श्रीमान् गजेन्द्रकुमारजी जैन, अजमेर



श्रीमान् नोरतमल जी चौधरी, भीलवाडा



श्रीमान् तेजमल जी महता, विजयनगर

तृतीय खण्ड

भाव भीनी

श्रद्धांजलियाँ

भावभीनी श्रद्धाञ्जलियाँ

रचयिता पूज्य प्रवर्तक श्री मरुधर केसरी मुनिश्री मिश्रीलाल जी म० सा०

सवैया

संत सुधोपम, दक्ष, दयालुय, तत्त्वनिरूपक बुद्धि विशाला,
जानत-मानत है दुनिया, गुणिया बिच मे मणि मौक्तिक माला।
जैन-प्रभाकर, वेणू सुधाकर, आगम-ज्ञान प्रसारक आला,
धर्म-विघातक, सप विदारक, ताहि को आप सुधारन वाला ॥१॥
'नानक' गच्छ रवी गगनांगन, मोह अज्ञान घटा घन मोडिय,
मान वितान दशानन पाहन, चूरन वज्र वनि मद मोडिय।
काम, कषाय, विहाय विचच्छन, दीनन के सह नेह सुजोडिय,
धन्य ! इला प्रकट्यो तुलसासुत, काढ दिवी खल की सब खोडिय ॥२॥
ग्राम महा कितलेसर जानिय, बाल सुराम पिता खुशियाली,
भादव तीज सुदी जल-सौरिय, सवत् उन्निस ते पिछताली।
भो अवतार सुधारन को जग, आप वने मुनिराज रसाली,
एकहु बार निहार लिये बस, जानतु प्रीति सुधारस प्याली ॥३॥

कुण्डलिया

द्वीप[७] बाण[५] ग्रह[९] चन्द[१] छठ, शनि माधव पख जास,
पाटनि सीता राम लघु, चन्दनमल आवास।
चन्दनमल आवास, शहर आनन्दपुर कालू,
सत्तावन उन्नीस, सुदी माधव छठ भालू।
'नानक' गछ मुक्ता गुरु, ताके शिष्य रसाल,
गजमल स्वामी ज्ञान दे, कोविद कियो कमाल ॥

कवित्त

रेणु की कृपा ते नाम, पायो है पुनीत प्राज्ञ,
देखी के व्याख्यान छटा, दुनि चकराएगी।
समयानुकूल देते, दृष्टान्त सुयुक्ति युक्त,
घटाते थे भाव जैसे, शारदा ही आएगी।
मधुर मिलाप तप, जाप मे तल्लीन रहते,
शान्त रस भरी छवि, सब को सुहायेगी।
'प्राज्ञ' पुण्यवानी सिंधु, लेते थे हिलोरा अहा !
औरो की प्रशसा नद, उसी मे समाएगी ॥

जाति के सुधार केते, ग्रामोग्राम करि डारे,
विद्यालय, छात्रालय, आज विद्यमान है।
नेह कर छेह देनो, बातो नहिं भूल गयो,
मैंने देखा केइ वेर, गुण यह प्रधान है।
विधवा, गरीब, असहाय को आधार एक,
अजमेर प्रान्त विच, अद्यावधि शान है।
लगाए लगान जिससे, स्थान निर्माण भए,
पेखनारे कहे कैसा, बना आलीशान है॥

दोहा

वनमाली माली महा, माली जग मकरंद।
गुणक्यारी आली बली, ताली मालीचंद ॥१॥

सरल, सादगी, सभ्यता, सुस्नेही, शास्त्रज्ञ।
वक्ता, दाता 'प्राज्ञ' तू, दीनन दुख मर्मज्ञ ॥२॥

एक चीज ऐसी करी, जैसी करी न कोय।
स्वाध्यायी-मडल सुखद, नजरा लीजो जोय ॥३॥

तुर्य पांचम माघ की, दोय सहस चौवीस।
समरण करता सटक ही, विजय-विजय वरीस ॥४॥

वसू मास पर तीन दिन, ग्यारह अन्त गुणीय।
तज जग मुनि मग सग्रह्यो, बाल भाव रमणीय ॥५॥

बीते गुणियासी बरस, पाच मास दिन दोय।
अढषटाब्द सयम रमी, विजय वरी है सोय ॥६॥

जनम दीख दिव गौनविऊ, थावर कीनो ठाठ।
मरुधरारो महामना, तप्यो सिंधु सुत पाठ ॥७॥

शकर, देवी अरु कुनण, सोहन तथा सुवाल।
वल्लभ आदि सुमन शुभ, खिल रहे वल्ली रसाल ॥८॥

महामना की याद में, ग्रन्थ स्मृती एह।
श्रद्धाञ्जलि यह देत है, 'मिश्री' मुनि धर नेह ॥९॥

तत्त्वराम नभ नयन वर, आश्विन पख बिन चद।
जया तिथी शौरी दिवस, श्रद्धाञ्जलि आनन्द ॥१०॥

☆

श्रद्धा-पुष्प

□ बहुश्रुत श्री मधुकर मुनिजी महाराज

श्री युत स्वामी 'प्राज्ञ', वर पावन प्रतिभावन्त ।
सघ-शिरोमणि सन्त वर, महिमावन्त महन्त ॥

वाणी मे तो ओज था, वदन कमल विकसत ।
मुनिराजो मे 'प्राज्ञ' थे, सजग सुधारक सत ॥

'जोरावर' गुरुदेव के, स्नेहशील थे आप ।
दीनो मे रहता अधिक, मीठा मेल मिलाप ॥

जब से मैंने 'प्राज्ञ' के, दर्शन किये पुनीत ।
स्वान्त तभी से हो रहा, उनके लिये विनीत ॥

श्रमण सघ को छोड कर, स्वर्ग गए क्यो आप ?
क्रिया शिथिलता-मुक्ति का, क्या देने सलाप ?

हम सब सूने हो गये, विना आप के सत ।
ऐसी मरजी क्यो करी, छोड गए सब सत ॥

आप विना दुखित बना, सारा सघ समाज ।
हा हा हम पर आ गिरी, अरे भयकर गाज ॥

आशा थी मन मे अधिक, साधु सम्मेलन एक ।
होएगा इह शीघ्रतम, रखने सत्य विवेक ॥

सम्मेलन मे आप से, लेकर विविध विमर्श ।
सघ सुदृढ होगा सही, पाकर प्रेम प्रकर्ष ॥

बिछुड गए हम से त्वरा, पर मुनीश्वर ! आप ।
ऐसा तुम क्यो कर गए ? इतना क्या परिताप ?

आत्मा है परमात्मा, यही-सजा कर साज ।
श्रद्धाजलि अर्पित करू तव चरणो मे आज ॥



श्री प्राज्ञश्रद्धा-सप्तदशी

रचयिता मुक्ता शिष्य श्री रजत मुनि

दोहा

पाञ्ज पचानन प्रकट्यो, तुलसा सीप सुहाय।
पन्नो-पन्खी प्रेम सूं, मुक्ता लियो उठाय॥
मरुधर में मन मोहनो, कीतलसर-शुभ गाम।
वनमाली निवसे वहा, भारी बालूराम॥
प्रेम रता पत्नी भली, तुलसा बहा अनूप।
पूरव पुण्य पसायते, सुत जायो सुर रूप॥
शर-युग-निधि-विधु वर्षशुभ,शनि भादव सिततीज।
वा दिन बालूराम पर,-शासन सुरगो रीज॥
ज्योतिष सू जोशी लख्यो, सुन ले बालूराम।
सुगुन सिन्धु शिशु का सुखद, पन्नालाल है नाम॥
धर्मनिष्ठ अरु इष्ट प्रिय, होगा लब्धप्रतिष्ठ।
लग्नपत्रि मे स्पष्ट है, ग्रह गति जासु वलिष्ठ॥
रस-शर निधि विधुवरष मे, कीतलसरजू विहाय।
बालुराम निवास निज, कियो थावले आय॥
मोती की ज्योती जगी, ग्राम थांवला माय।
जैन वैन वरसावता,-भव्य सुने मन लाय॥

मनहर-छन्द

व्यावसायिक कार्यों से, होकर निवृत्त बालु,
ज्ञान गोष्ठी मे ही चित्त, अपना रमाता था।
पिता की प्रकृति ऐसी, निवृत्ति विलीन पेखी,
प्रवृत्ति प्रवीण पुत्र, होये अपनाता था॥
कथा और कीरतन, सुनने को जाता तात,
साथ तो उन्ही के अग, जात भी सिधाता था।
मत हैं अनेक किन्तु, मर्म गति एक जानो,
नेक मे विवेक पन्ना-लाल मन भाता था॥

दोहा

धर्म ध्वजियो की गिरा, लो ग्रन्थो मे देख।
मत अनेक पै ध्येय है, सभी मतो का एक॥
मुक्ता पै सयम ग्रह्यो, सत्तावन की साल।
मरुधर कालू ग्राम मे, वर्यो पद मुनि बाल॥

मनहर-छन्द

भवियनतारी अरु, उग्र थे विहारी पुनि,
बाल ब्रह्मचारी, अविकारी छवि वारे हा !
अहिंसा पुजारी, मोह-ममता के हारी पञ्च,
महाव्रतधारी निज, आत्म-शोधनारे हा !
जैनागमज्ञाता गुज्झज्ञान के प्रदाता दीन-
दुखियो के त्राता महावीर के पियारे हा !
कुन्दन की ढाल रूप-मुनि को निहाल करि,
हा ! हा !! गुरु पन्नालाल स्वर्ग को सिधारे हा !!

मालिनी-वृत्त

विमलमति - प्रदाता, ज्ञान-सिद्धान्त धाता।
सुकृत विदित सारी, अन्य भाषा प्रसारी॥
जिन-मत-हित तोष, व्यक्त कामादि दोषः।
सकल सुमतिकोष, 'प्राज्ञ' चन्द्रोवभूव॥

छप्पय

नानक छात्रालय, गुलाबपुर मे रस-भीना।
और जैन स्वाध्याय-सघ स्थापित जिन कीना॥
विजयनगर मे प्राज्ञ-महा विद्यालय सुन्दर।
प्राज्ञ जैन पुस्तक भडार, भीणाय मनोहर॥
इत्यादि अनेको कार्य अति, उत्तम जिनने हैं किये।
स्वेच्छानुसार नर आज भी, रस जिनका तो हैं पिये॥

संयम को सक्रिय सदा, सेते थे त्रय काल।
सुर पुर हहो ! सिधार गे, वे गुरु पन्नालाल॥
शात-दांत-निर्भ्रान्त थे, शरणागत प्रतिपाल।
सोहन छोर सिधार गे, वे गुरु पन्नालाल॥
सघरे ही श्री सघ मे, छाय गयो यह शोक।
वल्लभ वात बिसार के, हा ! हा !! गे सुरलोक ॥२॥

मत्तगयन्द

'प्राज्ञ' मुने ! सुर गौन कियो तब, सावन मास लग्यो नैनन मे।
बैनन मे बिखवाद बढ्यौ सब, सेन क्षोभ भयो केनन मे॥
जैनन शोक समन्द चढ्यौ, विन पार और सब भे चेनन मे।
लेनन लाभ दिवेश गए सित, माघ कि पंचम सु रेनन मे॥

✡

श्रद्धा-सुमन

रचयिता —स्व गुरुदेव श्री सहस्रमल जी साहव के सुशिष्य
श्री रगमुनि जी महाराज

(तर्ज देख तेरे ससार की हालत..)

समता सागर ज्ञान उजागर प्राज्ञचन्द्र अनगार
करें सब वन्दन वारम्वार।
थे स्वाध्याय सघ सत्प्रेरक करुणामूर्ति साकार ॥टेर॥

कीतलसर तुलसा मा जाये।
सौम्यमूर्ति तन दीप्ति पाये॥
त्यागमयी उपदेश श्रवण कर छोड दिया घरबार ॥१॥

नानक गण मोती गुरुधारे।
पच महाव्रत निर्मल पाले॥
वन प्रतिपालक षट् काया के किया धर्म प्रचार ॥२॥

समाज हित चिन्तन चित्त लाया।
खर्चा व्यर्थ वन्द करवाया॥
खुला सहायक फण्ड किया कई छात्रो का उपकार ॥३॥

गुण उपकार मैं कैसे गाऊं।
जिह्वा एक कैसे कह पाऊं॥
गागर मे सागर थे मुनिवर, केहरि ज्यूं ललकार ॥४॥

सुना प्राज्ञमुनि स्वर्ग सिधारे।
समझाया मन, धैर्य न धारे॥
कलम उठाई जब लिखने को छूटी आसूधार ॥५॥

मोती भवन वडा सुखकारी।
जहाँ खिली नानक गुल क्यारी॥
श्रद्धाजलि अर्पित करने को 'रग मुनि' हुआ तैयार ॥६॥

☆

श्री नानक जैन छात्रालय के कर्मठ कार्यकर्ता



श्रीमान किस्तूरचन्द जी नाहर, गुलाबपुरा



श्रीमान गणेशलाल जी चौधरी, गुलाबपुरा



श्रीमान कन्हैयालाल जी भटेवरा, विजयनगर



श्रीमान जवरीलाल जी चौधरी, अजमेर

प्रस्तुत जीवन-ग्रन्थ का
विद्वान सम्पादक मण्डल



श्रीमान् शोभाचन्दजी भारिल्ल, ब्यावर



श्रीमान् रणजीतसिंह जी कूमट
आई० ए० एस० जिलाधीश, जयपुर



श्रीमान् कन्हैयालाल जी लोढा, जयपुर



श्रीमान् शोभागसिंहजी चौधरी, गुलाबपुरा



श्रीमान् श्रीचन्द जी सुराणा, आगरा
(लेखक)

प्राज्ञाष्टक-स्तोत्राणि

रचयिता वल्लभ मुनिः "प्राज्ञकिंकरः"

शिखरिणी वृत्ते प्रथमं स्तोत्रम्

मरुस्थल्यामब्दे, समिति - गति - कल्पेन्दु - लसिते,
सिते पक्षे भाद्रे, कितलसरनाम्नीति नगरे ।
तृतीयाया रात्रौ, भविजनहितार्थं समजनि,
मुनि. स प्राज्ञर्षि, सुकृतपथदर्शी भवतु मे ॥१॥

अहो ! येन प्राप्त, निजगुणकलाना विकसनम्,
तपस्तेजश्चाथ, प्रतिदिनमखण्ड विधुरिव ।
जगत्पूज्यः प्राज्ञ, सकलजनतावल्लभतमो,
मुनि. स प्राज्ञर्षिः, सुकृतपथदर्शी भवतु मे ॥२॥

तुलस्या पुत्रोऽय, जगति तुलसीव प्रतिदिन,
जिनेन्द्रै प्रज्ञप्त, प्रकटयति सद्धर्मसुरभिम् ।
भवव्याधिं चाधिं, हरति खलु दूरादसुमताम्,
मुनि स प्राज्ञर्षि, सुकृतपथदर्शी भवतु मे ॥३॥

अमन्दानन्दाढ्या, हृदयगतमिथ्याभ्रमनुदाम्,
मनो जित्वा सम्यग्, जिनवरगिरा पूज्य गुरुणा ।
पठित्वा सद्भक्त्या, विगतमदकाम समभवत्,
मुनि स प्राज्ञर्षि सुकृतपथदर्शी भवतु मे ॥४॥

यतिर्यो मुक्तावद् - विमलचरित सिंह सदृशो-
ह्यभीतो, धीरश्च द्विपइव नतो रेणुरिव य ।
तितिक्षु पृथ्वीवज्जलनिधिगभीरो गुणनिधि
मुनि स प्राज्ञर्षि सुकृतपथदर्शी भवतु मे ॥५॥

समृद्ध्यै सवृद्ध्यै, जिनमतवनस्यार्पितमति,
शुभं स्वाध्यायीति, प्रथितमनघ सघमतुलम् ।
कृपालुर्योऽकार्षीत्, सुरतरु सम वाञ्छितफलम्,
मुनि स प्राज्ञर्षि, सुकृतपथदर्शी भवतु मे ॥६॥

यदीय सच्चित्त, सरसनवनीतोपममृदु,
दयापूर्णं स्वस्थ, मधुमधुरमिष्ट च वचनम् ।
तनुर्लग्ना यस्याऽप्यहह ! जगदुद्धर्तुमनिशम्,
मुनिः स प्राज्ञर्षि सुकृतपथदर्शी भवतु मे ॥७॥

सुधासिक्तैर्वाक्यैर्जगति जनता मोहनिरताम्,
प्रबोधं कुर्वन् य, परमसुखशान्त्या स्थितमति. ।
जिन शान्ति ध्यायन्, सुरपुरमगात् कीर्तिविशदो,
मुनि· स प्राज्ञर्षि·, सुकृतपथदर्शी भवतु मे ॥८॥

वसन्ततिलका-वृत्तम्

प्राज्ञाष्टकं कृतमिदं मुनिवल्लभेन,
"श्री प्राज्ञकिंकर" इति प्रथिताह्वयेन ।
स्तोत्रं सदा पठति यो ह्यथवा शृणोति,
कल्याणमेवमखिलं लभते स मर्त्य· ॥९॥

वसन्ततिलकावृत्ते द्वितीयं स्तोत्रम्,

श्रीमज्जिनेन्द्रपरिपालितशुद्धदीक्षाम्,
यो धारयन् जगति मंगलमूलशीलाम् ।
ससिद्धिमाप सुतरां परमं प्रसिद्धम्,
तं प्राज्ञचन्द्रगुरुराजमहं नमामि ॥१॥

यस्योग्रतेजस उदीक्ष्य तप·प्रभावम्,
स्वाभाविकीमपि विहाय कठोरवृत्तिम् ।
सिंहो वली कृतनति. स्वतं एव शान्त-
स्तं प्राज्ञचन्द्रगुरुराजमहं नमामि ॥२॥

धीरोप्यधीरवचनैर्विमलै: पशूना ,
माकर्ण्य हिंसककृतिं निरुपद्रवाणाम् ।
हिंसात्मकं त्वधमिदं कृपया रुणद्धि,
तं प्राज्ञचन्द्रगुरुराजमहं नमामि ॥३॥

दीनस्य बालकजनस्य हिताय नित्यम्,
भक्तैर्निजै: समुचित कृतसुप्रबन्धम् ।
मोहान्धकारमयविश्वमिमं जुषन्तम्,
तं प्राज्ञचन्द्रगुरुराजमहं नमामि ॥४॥

मिथ्यामये तमसि यापित जीवनान् यो,
जीवन् प्रदर्श्य शिवमार्गविधेर्विधानम् ।
स्वाध्यायिसंघमतुलं व्यरचद् विशिष्टम्,
तं प्राज्ञचन्द्रगुरुराजमहं नमामि ॥५॥

शुद्धैर्गुणै परिवृत्त यमिना वरिष्ठम्,
घर्मैरलड्कृतिपरैर्दशभिर्गरिष्ठम् ।
सन्त पर जनहिताय सदा सुनिष्ठम्,
तं प्राज्ञचन्द्रगुरुराजमहं नमामि ॥६॥

आत्मा समुद्र इति वारि च शुद्धबुद्धि ,
स्तत्रास्ति शोभितमतीवविवेककञ्जम् ।
एतैर्गुणैरधिकृति परिभूषयन्तम्,
त प्राज्ञचन्द्रगुरुराजमह नमामि ॥७॥

ससारसागरजले पतता जनानाम्,
रत्नत्रयान्वितमनुत्तरमुक्तिमार्गम् ।
सम्वोधयन्तमभितोऽधिकृत गुणौघम्,
त प्राज्ञचन्द्रगुरुराजमह नमामि ॥८॥

अनुष्टुप्वृत्ते

एतत्प्राज्ञाष्टक स्तोत्र, "वल्लभेन" मुनीन्दुना ।
मुनीन्दुव्योमहस्ताब्दे, भक्त्या वाक्यैर्नियोजितम् ॥१॥
सदा शुद्धेन चित्तेन, स्तोत्रमेतद् यशस्करम् ।
शृणोति योऽथवाऽधीते, स प्राप्नोति परा गतिम् ॥२॥

चतुर्षु वृत्तेषु—तृतीयं स्तोत्रम्

शार्दूलविक्रीडितवृत्तम्

प्राज्ञो ज्ञानगुणाकरो विजयते, प्राज्ञ मुनीश श्रये !
प्राज्ञेणापि जिनागम सुवितत प्राज्ञाय तस्मै नम ।
प्राज्ञादाप्त उदात्त सूक्तिनिवह', प्राज्ञस्य शुभ्र यश. ।
प्राज्ञे सन्ति विलक्षणागुणगणा, भो प्राज्ञ ! मामुद्धर ! ॥१॥

शिखरिणी वृत्तानि

पिता वालश्चन्द्र, स्वजनहितकेन्द्र शुचिमना,
सुशीला धर्मज्ञा, तुलसि जननी यस्य विदिता ।
कुलाधार धीर, जिनवचनवीर त्वजनयत्,
मुनि स प्राज्ञर्षि, सुकृतपथदर्शी भवतु मे ॥२॥

यथा गर्जन् भाति, प्रवरगिरिशृङ्गे मृगपति,
तथा वादीन्द्राणा, भयमुपदधानो हृदि दृढम् ।
चकारस्त्वेष क्षेमा, गिरमुपदिशञ्छ्रावकगणे,
मुनि. स प्राज्ञर्षि. सुकृतपथदर्शी भवतु मे ॥३॥

स्वकीयाङ्गच्छेत्तृ स्वधितिवदनाय स्ववपुषा,
प्रदत्ते सौगन्ध्य, ननु मलयजश्चोपकुरुते ।
तथा सौजन्येन, व्यवहरति दुष्टान् प्रति पुन',
मुनि स प्राज्ञर्षि', सुकृतपथदर्शी भवतु मे ॥४॥

मालिनीवृत्तम्

श्रमणगुणगरिष्ठ जैनसघे वरिष्ठम्,
सदय हृदयवन्त, सत्यसधानवन्तम् ।
प्रशमरसनिमग्न, सच्चिदानन्दलग्नम्,
स्मर हृदय ! सुधीन्द्र, प्राज्ञचन्द्र मुनीन्द्रम् ॥५॥

वसन्ततिलकावृत्तानि

अस्मिन्नहो ! जगति कल्पमहीरुहस्तु, दत्ते जनाय हृदि-सस्मृतमेव वस्तु ।
योऽयाचतेऽप्युपदिशत्यपवर्गमार्गम्, त प्राज्ञचन्द्रगुरुराजमह नमामि ॥६॥

नाऽसौ सहस्रकिरणोऽपियमन्धकारम्, मोहाभिधेयमपनेतुमल हृदिस्यम् ।
तच्छास्त्रपूत वचस महसा हरन्तम्, त प्राज्ञचन्द्रगुरुराजमह नमामि ॥७॥

वाणीमनाश्रवयुता गुणरत्नगुर्वीम्, लघ्वी तरीमिव भवार्णवपारकर्त्रीम् ।
नस्य पुर' परमया मुदया दिशन्तम्, तं प्राज्ञचन्द्रगुरुराजमह नमामि ॥८॥



भावाञ्जलिः

रचयिता रमेश मुनि शास्त्री (राजस्थानकेशरी श्री पुष्कर मुनिजी म० के सुशिष्य)

उपजाति वृत्तम्

अध्यात्मवारानिधित प्रसूताम् राशि प्रभूता गमनाय लग्न. ।
भक्तस्तवाह गुणरत्नपुञ्जम् द्रष्टु न शक्तो गणना तु दूरे ॥१॥

अध्यात्मकोषस्य मनोज्ञरत्नम् प्रदीप्तिमन्त प्रतिमाप्रभाभि. ।
प्राज्ञाभिधान मुनिमौलितुल्यम् मुनी रमेश स्मृतिमातनोति ॥२॥

क्रियानदीष्ण विदुषा वरिष्ठम् स्वाध्यायदीपद्युतिसप्रकाशम् ।
शीताशुशीत निजभावलीन प्राज्ञ मुनि त सुतरा स्तवीमि ॥३॥



☐ आचार्य श्री हस्तीमल जी म० सा० :

श्रद्धेय महास्थविर श्री पन्नालाल जी महाराज की स्मृति आते ही हृदय पुलकित हो जाता है। वास्तव मे मुनि श्री का हमारे श्रमण सघ मे एक विशिष्ट स्थान था। वे "सुलभा आकृती-रम्या, दुर्लभ हि गुणार्जनम्" इस लोकोक्ति के विपरीत आप मे दोनो रमणीय थे। भव्य आकृति मे दयालु प्रकृति के स्वामी जी को भला कैसे भुलाया जा सकता है। स्थानकवासी परम्परा मे क्रिया उद्धारक पूज्य श्री जीवराज जी महाराज के पश्चात् पूज्य श्री लालचन्द जी महाराज, पूज्य श्री दीपचन्द जी महाराज की परम्परा मे प्रतापी आचार्य श्री नानकराम जी महाराज हुए, जिनके द्वारा लिखित जैनागम आज भी प्राज्ञ भण्डार मे व अन्यत्र ज्ञान भण्डार की शोभा बढा रहे हैं। आचार्य श्री के स्पष्ट, सुन्दर और शुद्ध लेखन से ही उनकी निश्छल मनोवृत्ति और आगमज्ञता की पहचान होती है। उन्होने सहस्रो भव्यो को प्रतिबुद्ध किया कइयो ने श्रमण धर्म की उच्च साधना की, अच्छे-अच्छे त्यागी-तपस्वी एव शास्त्रज्ञ मुनि हुए, पर काल के अन्तराल मे वे विलीन हो गये।

वयोवृद्ध प्रवर्तक श्री पन्नालाल जी महाराज ने, कहना चाहिए कि उन भूतकालीन सन्तो की स्मृति ताजी करदी। जैन सन्तो की यह खूबी रही है कि वे मानव की जाति को नही अपितु उसकी शुद्ध वृत्ति और प्रकृति को देखते हैं। गुण के पारखू जैन सन्त इधर-उधर भटकते हुए व्यक्ति को शाण पर चढा के नगीना तैयार कर देते है। मुनि श्री के जीवन का भी यही वृत्त है। माटी मालाकार जाति का लाल प० मुनि श्री गजमल जी के सदुपदेश से आकृष्ट हुआ और मुनि श्री ने सयम-साधना की शान पर चढाके बालक 'पन्ना' को ११ वर्ष की वय मे दीक्षित कर लिया। आपके धर्म गुरु थे पूज्य मोतीलाल जी महाराज। शिक्षा-दीक्षा के बाद आप गुरु चरणो मे सयम की साधना कर दीप्तिमान् रत्न बन गये। ब्रह्म साधना से आपकी आकृति पर तेजस्विता के साथ सरलता, दयालुता, परदुःख वत्सलता स्पष्ट झलका करती थी। आपने समाज मे शिक्षा, सुधार और स्वधर्मि-सहाय के क्षेत्र मे बडा काम किया। जिसके नमूने नानक जैन छात्रालय, नानक जैन श्रावक समिति और स्वाध्याय सघ आदि आज भी विद्यमान हैं।

आप ओजस्वी वक्ता, समाज सुधारक, और राष्ट्रवादी होकर भी जिन-शासन की मर्यादा के पक्के समर्थक व परिपालक थे। श्रमण-धर्म की मर्यादा मे आचार का आपके मन मे बडा आदर था। आप शिथिलाचार के कडे विरोधी थे। आपकी मान्यता थी कि साधु मूलाचार मे तो बेदाग होना ही चाहिए। आडम्बर से दूर रहकर आप समाज मे रचनात्मक कार्य देखना चाहते थे। आपने कई स्थानो पर बलिप्रथा बन्द करवाई। स्थानकवासी समाज के सगठन हेतु तन-मन से पूरा सहयोग दिया। समाज मे त्यागी वर्ग की कमी कैसे पूर्ण की जाय, इस दृष्टि से आपने समाज की सुरक्षा के लिए स्वाध्याय सघ की नीव डालकर वह अमर काम किया, जिसके लिये हजारो वर्षो के बाद भी आपकी गौरवगाथा चिरस्मरणीय रहेगी। साधु-साध्वियो के अभाव वाले सैकडो क्षेत्र आज स्वाध्यायियो द्वारा पर्यूषण मे सभाले जाते हैं। अधिक क्या कहा जाय, इस समय समाज मे स्थविर मुनि श्री का न होना बडा खटक रहा है। हमारा क्षेत्रीय सम्बन्ध तो सदी पहले से था पर अजमेर सम्मेलन के बाद कुछ निकट सम्बन्ध का प्रसग आया। स्वामी जी की सरलता, सहृदयता, गुणज्ञता और शासन रसिकता एव सत्यता से मन इतना प्रभावित हुआ कि हम लोग एक परिवार की तरह रहने लगे। सम्मेलन मे सादडी से भीनासर तक हम एक राय से काम करते रहे। आखिर जब श्रमण-सघ के सदस्य अपने उद्देश्य से पीछे हटने लगे तो हमने भी अपने स्पष्टीकरण के अनुसार-सघ से सम्बन्ध विच्छेद की घोषणा कर दी।

स्वामी जी इस समय हमारे सामने नही हैं, पर उनके सद्गुण और प्रेरक उद्बोधन आज

भी समाज को जागृत कर रहे हैं। स्वामीजी विद्वान् थे, वक्ता और सर्जक भी। क्रांति और शान्ति दोनों का स्वामी जी मे एक साथ सहवास था स्थानकवासी समाज आज ऐसे मुनि रत्न का स्मरण कर गौरवानुभव करता है।

☆

☐ मुनि कन्हैयालाल 'कमल' :

स्वर्गीय पूज्य प्रवर्त्तक श्री पन्नालाल जी महाराज बाल्यकाल से ही अन्तेवासी होकर विरक्त बन गये थे। अतएव आपका ओजस्वी भाल, तेजस्वी नेत्र, मधुर गीत, स्वस्थ शरीर और गौर वर्ण सयमी जीवन का साक्षात् मूर्त स्वरूप था।

यद्यपि आपका विहार क्षेत्र अति सीमित था फिर भी आपकी ख्याति सर्वत्र व्याप्त थी। चतुर्विध सघ के सार्वजनिक हित के लिए आपने अनेकानेक भागीरथ प्रयत्न किये थे। आपकी प्रबल प्रेरणा से समृद्ध स्वास्थ्य के लिए अनेक आयुर्वेदिक औषधालयो का तथा सम्यक्त्व शुद्धि के लिए अनेक शिक्षण सस्थाओ का प्रादुर्भाव हुआ। आपके प्रभावशाली प्रवचनो से अनेक जगह बलिदान बन्द हुए, सामाजिक कुरूढियाँ समाप्त प्राय हो गई। इस प्रकार आपके भौतिक देह मे आध्यात्मिक एव सामाजिक जीवन का सापेक्ष समन्वय हो रहा था।

आपका शिष्य परिवार आपका ही अनुगामी होकर असहायो का सहायक एव अनाथो का नाथ बनें। केवल इसी एक शुभाभिलाषा के साथ आपके लोकोत्तर साधना स्वरूप श्रामण्य के प्रति सविनय, सभक्ति, यह श्रद्धाजलि समर्पित कर रहा हूँ।

☆

☐ उपाध्याय कवि श्री अमरचन्द जी महाराज :

महात्मा बुद्ध के निर्वाण पर शोकाकुल जन समूह को सान्त्वना देते हुए देवेन्द्र शक्र ने कहा था—"अनिच्चावत संखारा उप्पादवयधम्मिनो" सभी सस्कार, उत्पन्न होने वाली वस्तुएँ अनित्य हैं, उत्पत्ति और क्षय स्वभाव वाले हैं। शरीर, धन-वैभव, ऐश्वर्य जो कुछ भी भौतिक है, वह एक दिन उत्पन्न होता है, और एक दिन विनष्ट। उत्पत्ति और विनाश की, जन्म और मरण के कडी की बीच में बधा हुआ है जीवन!

परन्तु प्रश्न है कि जीवन क्या है? मात्र आयु की लम्बी डोरी का नाम जीवन नही है। जीवन है वह, जो जीने की कला से जीया जाय। जो जीवन विनाशी से अविनाशी की ओर बढता है, मृत्यु से अमृत की ओर गति करता है वह अनित्य नही, नित्य है। चलाचल मे भी स्थिर है। भौतिक रूप मे भले ही वह नष्ट हो जाय, पर आध्यात्मिक रूप मे वह कभी नष्ट नही होता। अपने कर्तृत्व व अपनी विमल साधना ज्योति के रूप मे चिर युग तक स्मृतियो मे तैरता रहता है, वातावरण पर छाया रहता है।

महास्थविर श्री पन्नालाल जी महाराज भौतिक रूप मे हमारे बीच मे नही रहे। किन्तु साधक का महत्त्व तो अभौतिक होता है। वे अपनी साधना की ज्योति, सेवा और सद्भाव की सुरभि जो हमारे बीच छोड गये हैं, वह अभौतिक है, अमरणशील है। जब कभी आप देखेंगे, उन्हें अपने समक्ष विद्यमान पाएँगे, एक भद्रिक-सरल और प्रसन्नात्मा साधक के रूप मे। समाज के वृद्ध, तरुण और बाल वर्ग मे शिक्षा और सद्सस्कारो के बीज जो उन्होंने श्रम से अकुरित किये है, वे अब लहलहाते वृक्ष रूप मे पुष्पित हो रहे हैं, तब कौन कहता है कि श्री पन्नालाल जी महाराज

का अभौतिक रूप हमारे बीच नही है ? जब-जब उनके द्वारा सिंचित अकुर वृक्ष रूप धारण करके धर्म और समाज को शीतल छाया और मधुर रस से आतृप्त करेंगे तब अनायास ही उनकी मधुर स्मृतियाँ, उनका विशुद्ध कर्तृत्व युग पटल पर उभरता रहेगा।" ···· " 'उस स्थविर साधक आत्मा को हार्दिक श्रद्धाजलि। दिवगत आत्मा की शान्ति कामना हम करें, यह तो मात्र औपचारिक बात है, वस्तुत साधक अपनी शान्ति का निर्माता स्वय ही होता है, और वह यही पर अगले जीवन की शान्ति का सूत्रपात करके जाता है।

☆

☐ अध्यात्मयोगी श्री पुष्कर मुनि जी म० सा० :

परम श्रद्धेय प्रवर्तक श्री पन्नालाल जी महाराज के मधुर सस्मरण लिखते समय मुझे गुर्जर गिरा की वह अवूझ पहेली स्मरण आरही है 'गिण्या गिणाय नही, विण्या विणाय नही, तोय मारा आभला मा माय' अर्थात् गिनना चाहो तो गिन नही सकते, विनना चाहो तो विन नही सकते, फिर भी मेरे आसमान मे समा जाते हैं। यही स्थिति उन सस्मरणो रूपी सितारो की है।

बात पुरानी है। अजमेर मे स्थानकवासी मुनियो का विराट् सम्मेलन होने जा रहा था। सभी सन्त बरसाती नदी की तरह अपनी-अपनी मण्डली सहित उधर जा रहे थे। हम भी महास्थविर श्रद्धेय सद्गुरुवर्य श्री ताराचन्द जी महाराज के नेतृत्व मे अपने मुस्तैदी कदम बढा रहे थे। गढ सिवाना की ओर से विहार कर ब्यावर पहुँचे। वहाँ प्रवर्तक श्री पन्नालाल जी महाराज अपने शिष्यो सहित विराजे हुए थे। श्रद्धेय गुरुदेव ने अनेक बार उनके तेजस्वी व्यक्तित्व की मुक्तकण्ठ से प्रशसा की थी तभी से आँखें उनके दर्शनो की प्यासी थी। प्रथम बार उस विमल विभूति के पुनीत दर्शन कर मैंने कवि के शब्दो मे कहा

"दूरेऽपि श्रुत्वा भवदीय कीर्ति,
कर्णौ च तृप्तौ न च चक्षुषी मे।
तयोर्विवाद परिहर्तुकाम
समागतोऽह तव दर्शनाय॥

हे परम श्रद्धेय ! दूर से कानो के द्वारा आपका शुभ नाम तो सुना था किन्तु जो कुछ सुना था उस पर नेत्रो को विश्वास नही हो रहा था, क्योकि उन्होंने आपके दर्शन नही किये थे। आज आपका दर्शन पाकर मैं परम आह्लादित हूँ। जैसे मैंने सुना था उससे भी अधिक सुन्दर रूप मे आप को देखकर मैंने अपने श्रोत्र और नेत्र के चिर विवाद को समाप्त कर दिया।

मैंने प्रथम दर्शन मे ही अनुभव किया कि पन्नालाल जी महाराज का जीवन हिमालय से भी अधिक ऊँचा है, सागर से भी अधिक गम्भीर है, उनके मनकी गरिमा, वाणी की मधुरिमा और चारित्रिक महिमा से मैं प्रभावित हुए बिना न रहा।

अजमेर का सन्त सम्मेलन। स्थानकवासी समाज के मूर्धन्य मुनियो का मधुर मिलन। एक से एक बढकर ज्ञानी, ध्यानी तपस्वी मुनि। उन मुनियों मे भी राजस्थानकेसरी पन्नालाल जी महाराज का व्यक्तित्व अनूठा ! उनके गम्भीर चिन्तन, व्यापक दृष्टि और उदार व उदात्त मानस से सभी सन्त प्रभावित। मुझे स्मरण आरहा है उन्होंने उस समय श्रमण सगठन के लिए जिस दृढता और स्पष्टता के साथ अपने मौलिक विचारो की स्थापना की उन विचारो मे समुद्र की तरह गम्भीरता ही नही, झरने की तरह सहज ताजापन भी था जिससे उनके ओजस्वी और तेजस्वी व्यक्तित्व की छाप सभी के मन पर अकित हो गयी।

मुझ जैसे अकिंचन व्यक्ति पर भी उनका अत्यन्त स्नेह था। स्नेह की अपार सम्पत्ति को पाकर मैं अपने को भाग्यशाली अनुभव करने लगा।

सन् १९५३ की बात है। सोजत की मन्त्री-मण्डल की बैठक समाप्त कर महास्थविर श्री ताराचन्द जी महाराज के साथ हम जयपुर वर्षावास के लिए जा रहे थे। नसीराबाद मे पुन आपके दर्शनो का सौभाग्य मिला। गुरुदेव श्री को लिवाने के लिए दूर तक घुटने मे दर्द होने पर भी सामने आये। साथ मे ठहरे, इतना मधुर और निश्छल प्रेम से पला व्यवहार कि देखते ही तबियत हरी हो गई। पुरानी स्मृति ताजा हो गयी।

जयपुर वर्षावास कर हम श्रद्धेय गुरुदेव श्री के साथ दिल्ली पहुँचे। वहाँ पर एक वर्षावास कर पुन जयपुर लौटे, जहाँ गुरुदेव श्री की वृद्धावस्था के कारण दो वर्ष स्थिर रहे। श्रद्धेय गुरुदेव श्री का जयपुर मे समाधि पूर्वक स्वर्गवास हुआ और हम जयपुर से प्रस्थान कर अजमेर होकर विजयनगर पहुँचे। वहाँ पर आप श्री विराजे हुये थे। दर्शन करने पर आप श्री ने जो स्नेह की वर्षा की वह कभी विस्मृत नही की जा सकती।

उसके पश्चात् स० २०१७ का ब्यावर का वर्षावास पूर्ण कर मैं विजयनगर पहुँचा। उधर अजमेर का चातुर्मास समाप्त कर उपाध्याय प० प्रवर श्री हस्तीमल जी महाराज मेरे से पूर्व ही पधार गये थे। यह त्रिवेणी सगम प्रेक्षणीय था। श्रमण सघ बनने के बावजूद भी साम्प्रदायिक भावना पनप रही थी। उपाचार्य श्री गणेशीलाल जी महाराज श्रमण सघ से पृथक् होने की सोच रहे थे अत. हम तीनो ने 'अखण्ड रहे यह सघ हमारा' एक सयुक्त वक्तव्य निकाला। गम्भीरता से श्रमण सघ के सम्बन्ध मे विचार विनिमय किया। मैंने अनुभव किया उस महान् आत्मा मे श्रमण संघ एवं श्रावक सघ की उन्नति के लिए कितनी गहरी निष्ठा रही हुई है। श्रमण सघ को आचार की दृष्टि से उदात्त देखने की कितनी तीव्र उत्कण्ठा है।

उसके बाद पुन अजमेर शिखर सम्मेलन पर दर्शनो का लाभ मिला। मैंने देखा उस बूढ़े शेर के मन मे श्रमण सघ की चित्र-विचित्र स्थिति से कितना दर्द है।

अजमेर शिखर सम्मेलन के बाद फिर से दर्शन का सौभाग्य नही मिला, पर स्नेह दिन प्रतिदिन शतशाखी के रूप मे बढता ही रहा। आप बडे ही स्पष्टवक्ता और निर्भीक सन्त थे। सन् १९६७ का वर्षावास वालकेश्वर (बम्बई) था। बाल दीक्षा के प्रकरण को लेकर कान्फ्रेंस व बम्बई महासघ ने जब विरोध किया तब आपने प्रवर्तक के अधिकार से उन्हें स्पष्ट लिखा कि "तुम्हारा विरोध अवैधानिक एव अनुचित है। मैंने दीक्षा की आज्ञा दी है। अत तुम्हें जो भी वार्ता करनी है। मेरे से करो।"

क्या लिखूँ, लिखना बहुत चाहता हूँ, किन्तु लिखा नही जा रहा है। आज तो वह एक अनन्त अतीत की करुण कहानी बन चुकी है। मैं ज्यो-ज्यो गहराई मे जाता हूँ त्यो-त्यो उनके जीवन की शत-शत-स्मृतियाँ आ रही हैं। उन सभी स्मृतियो को लघु निबन्ध मे कैसे पिरोऊँ, श्रेयस्कर यही है कि उनकी स्मृति सदा सर्वदा बनी रहे।

☆

पन्ना : एक अनुचिन्तन !

(प्रवर्तक पूज्य गुरुदेव श्री कुन्दनमल जी म० सा०)

पूज्य गुरुदेव श्री का नाम है "पन्ना"। 'पन्ना' शब्द पर अनुचिन्तन करने के पहले उसके शब्दार्थ को समझ लेना चाहिए। "पन्ना" प्राकृत भाषा का शब्द है। उसका संस्कृत मे शुद्ध रूप बनता है—प्रज्ञा। प्रज्ञा का अर्थ बुद्धि होता है और पन्ना या प्रज्ञा जिसके होती है उसे 'प्राज्ञ' (बुद्धिमान्) कहते हैं। यही 'प्राज्ञ' पूज्य गुरुदेव श्री का अमर नाम था जिसे वे अपनी रचना मे प्राय लिखा करते थे।

अब "पन्ना" शब्द पर कुछ अनुचिन्तन प्रस्तुत करते हैं श्री उत्तराध्ययन सूत्र के २३वें अध्ययन मे वर्णित श्री केशीकुमार श्रमण एव श्री गौतम स्वामी की चर्चा को जब पढते हैं तो उसमे पन्ना का बहुत-बहुत महत्त्व प्रतिपादित किया हुआ मिलता है। सूत्र में यह स्पष्ट सकेत है कि "धर्म तत्त्व का ठीक-ठीक निश्चय करने वाली "पन्ना" ही है। पन्ना (बुद्धि) की कसौटी पर कसा हुआ तत्त्व ही खरा है, साफ-सुथरा है। और यही कारण है कि पात्र की बुद्धि के अनुसार ही "तेण धम्मे दुहा कए" धर्म की प्ररूपणा दो प्रकार से की गई है।[1]

श्री केशीकुमार श्रमण ने भी प्रत्येक प्रश्न के समाधान मे श्री गौतम स्वामी से निवेदन किया था कि हे गौतम! आपकी पन्ना (बुद्धि) साधुवाद के योग्य है। यह इतनी श्रेष्ठ है कि जिससे मेरे सशयो का तमस्तोम छिन्न-भिन्न हुआ है और मुझे ज्ञान का सही प्रकाश मिला है।[2]

श्री कुन्दकुन्दाचार्य के समक्ष भी जब यह प्रश्न आया कि आत्मा का ज्ञान किससे किया जाय? तब आचार्य श्री ने उत्तर मे कहा "पन्ना" (बुद्धि) के द्वारा ही आत्मा का ज्ञान एव अनुभव हो सकता है। "पन्ना" के द्वारा आत्मा को जिस भाँति अन्य द्रव्यो से पृथक् द्रव्य निश्चित किया उसी भाँति पन्ना के द्वारा ही उस आत्मा को ग्रहण करना चाहिए। प्रज्ञा द्वारा यह निरन्तर अनुभव करते रहना चाहिए कि जो द्रष्टा है, वह निश्चय मे आत्मा ही है। अवशेष सभी पदार्थ आत्मा से भिन्न है, पर है।

इस प्रकार आत्मा और अनात्मा का अनुभव भी पन्ना के द्वारा ही किया जाता है एव पन्ना से ही स्वीकारा जाता है।

महाभारत मे भी 'पन्ना' (प्रज्ञा) का बडा ही महत्त्व अकित है। वहाँ तो यहाँ तक कहा है कि जिसके पास हिताहित विवेचनी प्रज्ञा नही है वह बहुश्रुत विद्वान् ठीक वैसा ही है जैसा नित्य मार्ल-मसालो मे रहने वाला चम्मच। जिस प्रकार चम्मच उन पदार्थो के रसास्वादन से सर्वथा अनभिज्ञ होता है उसी प्रकार प्रज्ञा रहित बहुश्रुत पडित भी शास्त्रो के सत्य रहस्य से अछूता ही रहता है।[3]

१ पन्ना समिक्खए धम्मतत्त तत्तविणिच्छय ॥२५॥
पुरिमा उज्जुजडा उ वक्कजडा उ पच्छिमा।
मज्झिमा उज्जुपन्ना उ तेण धम्मे दुहा कए ॥२६॥

२ साहु गोयम पन्ना ते, छिन्नो मे ससओ इमो।

श्री उत्तराध्ययन सूत्र २३वा अध्याय।

३ यस्य नास्ति निजा प्रज्ञा, केवल तु बहुश्रुत।
न स जानाति शास्त्रार्थं दर्वी सूपरसानिव ॥ महाभारत

ज्योतिर्मय दीपक को उठाये फिरने वाले अन्धे की तरह वह शास्त्रो का वेत्ता होते हुए भी उपहास का पात्र बनता है।[४]

आचार्य चाणक्य ने "पन्ना" (प्रज्ञा) का स्वरूप बताते हुए लिखा है कि 'जो अज्ञान एव आग्रह से रहित है वही प्रज्ञा है।[५]

उपर्युक्त अनुचिन्तन के पश्चात् अब हमे यह देखना है कि पन्ना के वे समस्त गुण जिनका ऋषि-महर्षियो ने मुक्त कण्ठ से कथन किया है—पूज्य गुरुदेव श्री मे कहाँ तक आत्मसात हो पाए हैं। पहला गुण है **धर्मतत्त्व का समीक्षण एव विनिश्चन**। आपने जिस सूक्ष्म प्रज्ञा से 'धर्मतत्त्व का समीक्षण एव विवेचन जनता के समक्ष प्रस्तुत किया वह आज भी श्रोताओ के हृदय मन्दिर मे शखनाद की भाँति गूँज रहा है। अनेक सन्त सतीजन एव श्रावक श्राविकागण उनसे अपने सशयो का समाधान पाकर आह्लादित हो जाते थे और उनकी सत्य समीक्षा करने वाली पन्ना की मुक्त कण्ठ से प्रशसा करते हुए फिर से दर्शन करने की भावना किया करते थे।

उन्होंने व्यक्ति परिवार व समाज मे फैली मिथ्या मान्यताओ एव कुरीति-रिवाजो को अपनी पैनी प्रज्ञा द्वारा व्यर्थ एव तथ्यहीन समझकर उन्हें परिष्कृत करने के लिए मनुष्यो को प्रेरित किया और उन मनुष्यो ने समयानुकूल परिवर्तन-परिवर्द्धन के साथ सर्वजनहिताय नियमो का निर्माण भी किया। वे सही तत्त्व को उचित एव ओजस्वी प्रवचनो मे शेरे बब्बर की भाँति गूँजते हुए कह दिया करते थे और उनका ही यह प्रभाव था कि पीढ़ियो से पनपती हुई कितनी ही मिथ्यामान्यताओं एव कुरीति-रिवाजो की जडें उखड गईं जिससे समाज को सही दिशा मिली, नई जागृति मिली, साथ ही अपार सान्त्वना भी मिली।

दूसरा गुण था **आत्मानुभव एवं आत्मरमणता**। वे इतने कृपालु थे कि जन-जन की दुख भरी आह को सुने बिना नही रहते थे। उनकी आत्मीयता मानव समाज तक ही सीमित नहीं थी अपितु प्राणिमात्र तक फैली हुई थी फिर भी वे अपने आत्मानुभव मे पूर्णरूपेण लीन थे। निरन्तर जपन्तप स्वाध्याय मे रमण करते हुए अजपा जाप मे मग्न रहते थे। उनकी इस विरक्ति को देखकर श्री उत्तराध्ययन सूत्र के ३२वें अध्याय की गाथाओ मे वर्णित भगवान् महावीर स्वामी का अनमोल प्रवचन याद आ जाता है, जिसका सार है कि सभी विषयो एव परभावो से विरक्त आत्मा अनादि कालीन दुखो की परम्परा से मुक्त हो जाता है और उसकी आत्मिक स्थिति ठीक कमल पत्र की तरह हो जाती है जो कीचड मे जन्मा, पानी मे बढा फिर भी सबसे अलग-अलग बिल्कुल निर्लेप।[६]

यह उक्ति उनके जीवन मे अक्षरश अनुप्राणित थी। वे सब के थे, सबके बीच रहते थे, सबकी सुनते और सब को कहते थे फिर भी सबसे न्यारे निर्लेप एव उन्नत थे।

अपने आप को अन्य सभी भावों से विलक्षण समझने वाले उस महापुरुष मे 'पन्ना' का तीसरा गुण था **ज्ञान का आचरण मे अवतरण**। वे चम्मच की भाँति बहुश्रुत नही थे अपितु पुए

४ बुद्धिबोध्यानि शास्त्राणि, नाऽबुद्धि शास्त्रबोधक।
प्रत्यक्षेऽपि कृतेदीपे, चक्षुर्हीनो न पश्यति॥ — **महाभारत**

५ अज्ञाननाशिनी प्रज्ञा, प्रज्ञा चाऽऽग्रहवर्जिता। — **चाणक्यनीति**

६ भावे विरत्तो मणुओ विसोगो, एएण दुक्खोहपरपरेण।
न लिप्पई भवमज्झे वि सन्तो, जलेण वा पोक्खरिणीपलासं।
— उत्तराध्ययन सूत्र **३२वाँ अध्याय, ९९वीं** गाथा

पूडी की तरह आस-पास के सभी स्व-पर समयो के ग्राहक एव चिन्तक थे। वे विवेक चक्षु को प्रकट कर शास्त्र मर्यादानुसार साधना-पथ के सच्चे पथिक थे। वे जितना जानते थे उसे कहने के पहले जीवन मे उतार लेते थे। उसी का यह परिणाम था कि उनके तप, त्याग एव शुद्ध चारित्र की अमिट छाप सारे समाज पर थी। वे केवल दुनिया को दिखाने वाले झूठी वाहवाही एव पूजा प्रतिष्ठा प्राप्त करने के इच्छुक अन्धे साधक नहीं थे, अपितु अपने आप मे जागृत रहने वाले तथा आत्म-साधना का पूरा-पूरा स्वाद लेने वाले सच्चे साधक थे।

'पन्ना' का चौथा गुण है—"अज्ञान एवं आग्रह से रहित।" यहाँ आग्रह का अर्थ है कदाग्रह, हठाग्रह या दुराग्रह। पूज्य गुरुदेव कदाग्रह से दूर, कोसो दूर रहते हुए भी सदाग्रह के पक्षपाती थे। सत्य के आग्रह मे वे सघ व समाज के द्वारा फैलाए गए विषमय वातावरण का भी शिवशकर की भाँति वरण कर लेते थे, अर्थात् उसे पी जाते थे। वे सत्य एव निष्पक्ष ज्ञान को जहाँ भी सुनते उसे शीघ्र स्वीकार लेते थे। मूलव्रतो एव व्यवहार को शुद्ध सुरक्षित रखते हुए हमे युगानुकूल नियमोपनियमो मे परिवर्तन परिवर्द्धन किस प्रकार करना चाहिए इसके लिए उनका आग्रह एव अज्ञानता से रहित विशाल मानस सदा सर्वदा तत्पर रहता था। और यही कारण है कि वे एक के होते हुए अनेको के थे। जैनो के ही नही जन-जन के थे, प्राणी मात्र के थे। उस सर्वजन वन्दनीय आत्मा के चरणो मे शतशत वन्दना। ☆

यथा नाम तथा गुण

(मधुर व्याख्यानी प० मुनि श्री सोहनलाल जी महाराज साहब)

पूज्य गुरुदेव श्री का शुभ नाम दो शब्दो से निष्पन्न हुआ है। वे दो शब्द हैं 'पन्ना' और 'लाल'। उनके पास जब भी जो गया उन्हे यह कहते और सुनाते ही पाया कि "भाई! जरा सम्यग्ज्ञान का सवर्धन करो। ज्ञान पाकर अपना विकास करो। अज्ञान-तिमिर की सघन छाया से दुर्गम भवाटवी मे भटकते मानव के लिए ज्ञान एक ज्योति है, प्रकाश है। जिसके सहारे वह अपने आपको विषय कषाय रूप गर्तो और ठोकरो से बचाकर उन्नति के पथ पर अग्रसर कर लेता है। क्रमश अन्तत सिद्धि को प्राप्त करने के पूर्व अपने पास-पडोसी परिवार समाज एव राष्ट्र को भी सही दिशा का ज्ञान कराने वाला यन्त्र कुतुबनुमा बन जाता है। अत ज्ञान की ज्योति से अपने अन्तर्मन को ज्योतित करने का प्रयास करो।"

और उन्होंने अपने इस उपदेशानुसार भव्य प्राणियो को ज्ञान के प्रकाश मे लाने का अनिर्वचनीय परिश्रम भी किया है। जब हम गुरुदेव के ज्ञानाराधना के कार्यक्षेत्र पर दृष्टिपात करते हैं तो सहसा हमारा ध्यान उनके नाम के दोनो शब्दो पर जा टिकता है और उसके गुण-चिन्तन मे मस्तिष्क गोते लगाना प्रारम्भ कर देता है।

उनके नाम का पहला शब्द है "पन्ना"। पन्ना एक रत्न है और उसका वर्ण हरा होता है। और इधर जिन शासन मे पच पदो मे हरा वर्ण माना है उपाध्याय का। "उपाध्याय" चतुर्विध सघ मे ज्ञान की लहरें उठाने वाले समर्थ साधक होते है। सघ को हरा-भरा रखना, ज्ञान साधना पर निर्भर है और ज्ञान स्वाध्याय के बल पर ही बढाया जा सकता है। यही कारण है कि स्वय उपाध्याय स्वसमय परसमय का ध्यान रखते हुए अनेक भव्य प्राणियो को अध्यापन कराते रहते हैं। उनकी आत्मा मे ज्ञान की ज्योति प्रकट करते हुए उन्हें क्रिया के द्वारा कर्माणुओ से मुक्त, शुद्ध सिद्धत्व की ओर सप्रेरित करते रहते हैं। जो पूज्य गुरुदेव श्री के दूसरे शब्द "लाल" का समर्थक है।

'लाल' एक रत्न है और उसका वर्ण भी लाल ही होता है। साथ ही पच पदो मे ज्योति-स्वरूप सिद्धो का वर्ण भी लाल माना है।

तो, उपर्युक्त चिन्तन का यह फलितार्थ रहा कि पूज्यवर सही माने मे "पन्नालाल" थे। जिन्होने अपने समकालीन देव, गुरु, धर्म के आराधक भव्य भक्तो को ज्ञान की ओर प्रेरित करने के लिए "श्री स्वाध्यायी सघ" का निर्माण किया। स्वाध्याय के बल पर ज्ञानाराधना एव क्रियाराधना की ओर बढाते हुए उससे साध्य-ज्योति (लाल) स्वरूप सिद्धत्व की ओर इगित किया।

"ज्ञान क्रियाभ्यां मोक्ष" का शुभ सन्देश देते हुए उन्हे समझाया कि पन्ना के समान आत्म-गुणो को हरा-भरा भरने का साधन ज्ञान है और उसी ज्ञान को क्रियान्वित कर कर्मो के मल से रहित हो सकते हैं तथा लाल के समान सिद्ध स्वरूप को प्राप्त कर सकते हैं। भव्यजनो को समझाने वाले वे स्वय भी पन्ना की भाँति आत्म-गुणो को एव चतुर्विध सघ को हरा-भरा करते हुए लाल की भाँति ज्योति (लाल) स्वरूप सिद्धत्व के सच्चे साधक सिद्ध हुए।

उन "यथा नाम तथा गुण." के प्रतिमान पूज्य गुरु के ज्ञान दर्शन चारित्र गुण सम्पन्न आत्मा को सादर वन्दन।

☆

पड़ मती ! ऊठ !

(प्राज्ञशिष्य बाल मुनि)

वि० स० २००२ अरे तीन री साल मे म्हारी माता व धर्मपतनी रो वियोग होवण सूँ मैं अ'र एक टाबर "मदन" दोनू ही रह गया। मदन गुलाबपुरा विद्यालय मे पढतो हो और मैं विजयनगर कपडा मिल मे सर्विस करतो हो। आराम सूँ दोना रो जीवन बीत रयो हो। बात सात रा साल री है गुरुदेव रो चोमासो विजयनगर+गुलाबपुरा दोनो खेतरा मे सामिल हुवो। दोनो खेतरा रा बीच में १½-२ मील रो ही फासलो है। सावण भादवा मे पेली विजयनगर विराज्या हा। मैं भी धर्मध्यान मे, दर्शन मागलिक मे जावतो आवतो हो। नोकरी होवण सूँ हमेशा तो नी पर सप्ताह मे १-२ वार वखाण सुणवा रो मने मोको जरूर मिल जावतो। गुरुदेव री अमृत वाणी सूँ प्रेरणा जागी अ'र म्हूँ टाबर ने (जद ईं री ऊमर करीब ९ वरस री ही) लारे लेय एक दिन गुरुदेव री सेवा मे आयो अर अरज करी के गुरुदेव ! म्हारो विचार टाबर समेत आपरी सेवा मे ही रेवण रो है अर सजम लेय नें आत्म कल्याण करण रो है। सो चरणां मे शरणो दिरावो।

गुरुदेव घणां घणा दयालु हा। वे कयो के रेवण मे काई हरज कोनी पर काम करवा पेली खूब सोच लेणो चाहिजे। थे नोकरी मत छोडो, हाल तो म्हें अठे ही हा। ज्ञान-ध्यान सीखो अ'र चोमासा पछै विचार कर लीज्यो।

पर म्हूँ तो नोकरी छोड टाबर ने लेय गुरुदेव की सेवा मे आयग्यो। विजयनगर सूँ पछे आसोज काती मे गुलाबपुरा पधार्या म्हे दोनो साथे ही हा। ई री चरचा वारता फेली अर बडी रूपाहेली वाला म्हारा भाणजा सुण ने आया अर म्हनें समझावा लाग्या। मूँ दिल रो सदा भोलो ही रयो सो उणा की वात मे आग्यो। गुरुदेव रा पास सूँ पाछो जावण रो विचार कर लियो। गुरुदेव न विना कया ही सामरी टेम प्रतिक्रमण कर जद थोडो थोडो अँधारो छायग्यो तो म्हूँ मदन कना सूँ धीरे-धीरे ऊपर कमरा सूँ सामान ने नीचे मगाय लियो।

सामान लावता अंधारा मे मदन नीचे आवता चोक मे ठोकर खाय पडयो अर हाथ माहिलो सामान खणणणण करतो विखरग्यो। गुरुदेव ने पतो पडग्यो के अे दोनू जाय रया है पर अतरी देर तक देखता-जाणता थका भी कंइ न वोल्या पर मदना रे नीचे गिरता ही ऊपर सू गुरुदेव री आवाज आई अर कुण है रे ! काई हुयो रे......!! जद मदन वोल्यो पडग्यो अन्दाता, गुरुदेव म्हाने रेवण

रोकण री कई भोनी कहता थका आही फुरमायो के पड मती ! ऊठ !! पर म्हें वी बात रो रहस्य वी वगत मे न समझ सक्या अर चुपचाप सामान ले'र भाग छूट्या ।

तीन साल मदनो रूपाहेली रयो ने ४-५-६ठवी कलास भुआ ने घर रेय ठठे ही पढीओ, और मूँ पाछो विजयनगर मिल मे नौकरी करवा लागग्यो ।

पर गुरुदेव रो ओ अटल विचार हो के "ज्यारो पातरा मे सीर होय ने करमा रो खयो-पसम होय वो कठे ही जावण वालो कोंय नी । वी ने तो आवणो ही पडे ।" शायद वा ने आ जरूर मालूम पडगी हो सी के ए अबारू जावे हैं पर पाछा जरूर आय जासी कारण के या दोनूँ रे सजम रो जोग है अर ई वास्ते तीन साल रा बीच मे कदे ही म्हाने आ न कयो अ'र न कोई सरावगा रे साथे ए समाचार ही भिजाया के कठे संसार मे रूलो हो, आवो दीक्षा लो परी । गुरुदेव चेला रा भूखा भी नी हा अर न लोभी, लालची ही हा । जोगो कोई चेलो मिलतो तो मूँड लेता ने मूँडियाँ वाद भी आज्ञा ने मरजादा मे नही रेवतो तो वी ने परो निकाल भी देता ! वे चेला री केवल जमात नी चावे हा !

म्हा दोनूँ रो जोग तो आखिर गुरा सा रे चरणा मे ही आवण रो हो सो तीन साडा तीन साल वाद गुरुदेव रो वि० स० २०११ रो चोमासो जामोला (अजमेर) मे हो जद म्हारी भावना पाछी जागी ने मूँ सेवा मे पहुँच अरज करी । गुरुजी सुण ने कयो के पेली री जिस्यान ढीली भावना तो नी हैं । मूँ अब के दृढता सू अरज करी के—अन्दाता ! अब पेली की ज्यान ढीली नी है, अब मैं पक्को विचार करने ही ज आयो हूँ ।" गुरुदेव फुरमायो—था ने ज्यान सुख होव विस्यान ही करो पर धरम रा काम मे ढील मत करो ।" गुरुदेव ई उत्तम उपदेश रा सिवाय और कई फरमावता । मैं खूब खुश हुयो । ने गुलाबपुरा रा भाया साथे श्री नानक जैन छात्रालय मे पढ रया मदन के समाचार भेज दिया के तू आपणा पोथी-कपडा लेय ने मसूदा आय जाजे । ऊ भी समाचार मिलता ही सावण सुद १३ रे दिन मसूदा आय गयो ने दोनू जणा गुरुदेव रे चरणा मे रेवण लाग गया ।

म्हने वा बात जद-जद भी याद आवै तो घणो-घणो विचार आवै के गुरुदेव कितरा निर्लोभी ने चेला री भूख सूँ दूरा हा के आयोडा वैरागी चेला चाटी कर रया है ने वा ने राखण वास्ते तो कई भी कोशिश नही करी पर जावता ने उपदेश तरीका सूँ मोको पाय ने कयो के "पड मती ! ऊठ" !! जाती वगत रा सुणियोडा वी वचना रो ही ओ प्रभाव हो के म्हा पड तो गया पर "पड मती ! ऊठ !!" रे माफक पाछा ऊठ जरूर गया और धरम रा मारग पर लाग गया । ईसा निर्लोभी गुरु ने देख म्हने उ एक दोहो याद आव है के

लोभी गुरु तारे नही, तिरे सो तारणहार ।
जो तू तिरणो चाहिजे, निर्लोभी गुरु धार ॥

☆

वह दिन, जब…

(वल्लभमुनि "प्रश्नकिंकर")

पूज्य गुरुदेव श्री ठा० २ वि०स० २०११ का वर्षावास जामोला (अजमेर) ग्राम मे विराजमान थे । आपके आज्ञावर्ती पूज्य गुरुदेव श्री छोटमल जी महाराज साहब ठा० ३ श्रावण, भादवा यो दो महिनो के लिए मसूदा (अजमेर) मे विराजमान थे । जामोला और मसूदा के बीच ६ माइल का फासला है और बीच मे कुशलपुरा (कोलपुरा) ग्राम मे आषाढी चातुर्मासी का प्रतिक्रमण कर दोनों क्षेत्रो मे आना-जाना खुला रखा था । पूज्य पिता श्री की आज्ञानुसार मैं सावण सुदी १३

को श्री नानक जैन छात्रालय गुलाबपुरा में रवाना होकर मसूदा पहुँच गया। उम्र करीब १३ वर्ष की थी और कक्षा ७ मे पढता था। पूज्य पिताजी के साथ मसूदा मे ही गुरुदेव की सेवा में रह गया। २५ बोल, श्रावक प्रतिक्रमण आदि सीखे कि भादवा मास उतर गया। आसोज के महीने मे मसूदा से विहार कर जामोला पूज्य गुरुदेव श्री की सेवा मे गुरुजनो के साथ हम (पिता, पुत्र) भी पहुँच गये। गुरुदेव के दर्शन किये, व वन्दन किया और भोजन करने चले गये। भोजन कर पुन. स्थानक मे आए इतने मे पूज्य गुरुदेव श्री भी आहार पानी से निवृत्त हो एक कमरे मे पाट पर विराजमान हो गये थे। उन्हें हमारी आने की पहले ही मालूम हो चुकी थी।

मैं पूज्य पिता के साथ गुरुदेव के दर्शन करने पुन. कमरे मे गया तो मैंने देखा उनका मुखमण्डल चमक रहा था। उनके ललाट की चाकचिक्यता व नेत्रो की तेजस्विता देखकर मुझे "आइच्चेसु अहिय पयासयरा" का पद आज बरबस याद आ जाता है। मैंने पास मे जाकर "मत्थएण वन्दामि" कहते हुए वन्दना की। सहसा पूज्य गुरुदेव श्री ने अपना दाहिना वरदहस्त फैलाया और मेरे माथे पर रखते हुए अपनी छाती से चिपका लिया। मुझ अजान को हृदय से लगाते हुए वे बोले कई भोल्या आग्यो रे! अब चेलो बणी कई ? "खम्मा अन्दाता" कहकर हाथ जोडकर मैंने हाँ भरी। गुरुदेव मुझ भोले की यह बात सुन कुछ हँसते हुए बोले मदन! चेलो बणवा में तो घणो जोर पडसी रे! गुरुदेव श्री और कुछ कहने वाले होंगे पर मैंने बीच मे ही बालसुलभ स्वभाव से बात काटते हुए अर्ज किया कइ जोर न आव अन्दाता! आपको हाथ माथा पर है। पछै कई सोच है।" इतने मे गुरुदेव ने पूछ लिया तू कई कइ सीख्यो रे मसूदा मे ? "मैं श्रावक प्रतिक्रमण अर २५ बोल सीखग्यो और अब आप सिखावो जो सीखूं।"

गुरुदेव ने हमे साधु प्रतिक्रमण सीखने का फरमाया। मुझे पाठ देकर गुरुदेव जगल निपटने चले गये और मैं पाठ याद करने लगा। मुझे आश्चर्य हुआ कि स्कूल मे पढते समय जो मन्दमति ठोठीराम की उपाधि पाता था उसने जगल से निपटकर आते ही गुरुदेव श्री को पाठ याद कर सुना दिया। मुझे विश्वास हुआ कि गुरुदेव श्री ने जब अपना वरदहस्त मेरे मस्तक पर रख दिया है तो मैं मन्दमति कैसे रह सकता हूँ। अब जबकि मैं गुरुदेव श्री की छत्रछाया मे आ बैठा हूँ क्या फिर भी "ठोठीराम" कहलाऊँगा ? कभी नही! शनै-शनै साधु प्रतिक्रमण पाँच समिति तीन गुप्ति का थोकडा और भी छोटे-बडे बोल जो साधु-जीवन मे प्रवेश पाने के लिए आवश्यक थे याद कर लिए।

इसी बीच मेरे मानस मे एक लहर उठी और मैंने गुरुदेव से सहज स्वभाव मे अर्ज किया साधु क्यान बणै अन्दाता ? गुरुदेव मेरी इस जिज्ञासा पर थोडे से मुस्कराये और बोले साधु बणावे जद घणा ठाटबाट होवै, जलसो निकाले, गाजा बाजा होवै, लोग मिल न जय जयकार करे, अर, अर बैरागी ने भी बीन्द ज्यान सजावे, तुर्रा कलगी लगावे, और भी कतरा ही लाड कोड करे अर पछ साधु बणावे।" मैं अब ज्यादा नही सुन सका और बीच मे ही झट से बोल गया अस्यान बणावे जद तो मनेभी झटपट बणाल्यो अन्दाता।

अ'र तो हाल अतरी जल्दी काई है, पेली खूब पढो पछै साधु बणावा।" गुरुदेव ने बड़े प्रेम से माथे पर हाथ फेरते हुए मुझे समझा दिया। चातुर्मास बीत गया, विहार हुआ और गुरुदेव श्री शिष्य परिवार सहित मसूदा पधार गये। वहाँ मुझे लघु सिद्धान्त कौमुदी, अमर कोश तथा उपदेशी श्लोक याद करवाना शुरू कर दिया।

गुरुदेव श्री जब से मसूदा पधारे तब से निरन्तर आपके दर्शन करने तथा अनेकानेक गम्भीर विषयो पर विचार-विमर्श करने बडे-बडे सन्त एव सतियाँ जी महाराज साहब का पदार्पण होने लग गया था। माघ मास मे तो मसूदा में गाढा धर्म मेला-सा हो गया। चारो ओर से सन्तो का पदार्पण होने लगा। तत्कालीन श्रमणसघ के प्रधानमत्री श्री आनन्द ऋषि जी महाराज साहब, सहमंत्री श्री

हस्तीमल जी महाराज साहव ज्योतिर्विद श्री किस्तूरचन्द जी महाराज साहव खीचन वालो के सन्त आदि और भी करीव ४०,५० सत सतियाँ जी का पदार्पण हुआ। विराजे, विचार विमर्श किया और विहार भी होने लगा। इधर श्रावक लोग चादर मुहपत्ती आदि दीक्षोपकरणो पर केशर से नन्दावर्त साथियाँ माड रहे थे उन्हे देखकर प्रधानमंत्री जी एवं सहमंत्री जी महाराज साहब आदि ने गुरुदेव से अर्ज किया-स्वामीनाथ! यदि निकट मे जल्दी दीक्षा का योग हो तो हम इस मौके पर रह जाय अत कृपाकर निश्चित तिथि फरमा दिरावें नही तो फिर विहार की चचलता है।" गुरुदेव ने दीक्षा के लिए आमत्रित करते हुए फरमाया-अवसर है विराजो! मिती का क्या पूछना वह तो आ रही है। आप कृपा करो और विराजो। गुरुदेव श्री ने निश्चित तिथि नही वताई तो दोनो महापुरुष और शेष सभी सतियाँ जी महाराज साहव विहार कर गये। और विजयनगर जो मसूदा से १६ मील दूर है पधार गये।

इधर फाल्गुन सुद १ की शाम को ४ वजे करीव मसूदा कामदार सा० श्री कुन्दनमल जी कोठारी ने अनुनय किया। गुरुदेव! हमे तो दीक्षा का दिन फरमाइये ताकि सव तैयारी कर सके? गुरुदेव श्री ने कामदार सा आदि श्रावको के आग्रह पर फरमाया कि दीक्षा तीज के सुवह सूर्योदय होने के कुछ ही मिनिटो वाद की है। लोग सुनकर अवाक् रह गये। एक दिन मे क्या करें? कैसे करें! किसे सूचना दें। पर गुरुदेव श्री व्यर्थ का आडम्वर कर गृहस्थो के साधन का अपव्यय नही करना चाहते थे इसीलिए इन्होंने वडे-वडे सन्तो से विराजने का कहा पर तिथि का प्रकाशन नही किया।

आखिर दूज के दिन दोपहर को एक जुलूस निकला और तीज के दिन वडी सादगी से मोटर स्टेण्ड मसूदा के वट वृक्ष के नीचे दीक्षा-विधि सम्पन्न हुई। दीक्षा मत्र पूज्य पिता श्री को और वाद मे मुझे सुनाया। चोटी के केश का लोचकर अपनी दोनो लम्वी भुजाओ को फैलाते हुए उन्होंने मेरे पर अनन्त-अनन्त स्नेह वरसाया तथा "वल्लभ" नाम से पुकारते हुए अपने पास वैठाया।

वह दिन जव ...... गुरुदेव ने "मदन" कहकर अपना वरदहस्त मेरे माथे पर रक्खा और "वल्लभ" कहकर मुझे साधु वनाया। आज भी जव स्मृति मे आ जाता है तो हृदय गद्गद हो जाता है और अन्तर्मन वोल उठता है

पूज्य प्रवर्तक दीनदयाल।
धन्य धन्य गुरु पन्नालाल॥

☆

□ **श्री देवेन्द्रमुनि, शास्त्री, साहित्यरत्न**

परम श्रद्धेय प्रवर्तक पद विभूषित राजस्थानकेशरी, महास्थविर श्री पन्नालाल जी महाराज का व्यक्तित्व और कृतित्व इन्द्र धनुष के विविध रगो की तरह मन-मोहक, चित्ताकर्षक और दिलचस्प था। वे मन से पवित्र थे, हृदय से सरल थे, बुद्धि से विलक्षण थे और व्यवहार से मधुर थे। गम्भीर विचार करना उनका सहज स्वभाव था। मीठी वाणी वोलना और कोमल व्यवहार करना उनका सहज धर्म था। किसी की निन्दा करना और खुशामद करना उन्हें पसन्द नही था। जो भी उनके परिचय मे आता वह उनका होकर लौटता। 'स्व' और 'पर' की सकीर्ण मनोवृत्ति से उनका मानस ऊपर उठा हुआ था। सव के हित मे वे अपना हित निहारते थे। श्रमण सघ के प्रति उनकी गहरी निष्ठा थी और श्रमण सघ को वे आचार और विचार की दृष्टि से अत्युच्च कोटि का देखना चाहते थे।

सन् १९५३ के पश्चात् अनेकों बार मैं उनके निकट सम्पर्क में आया। बहुत ही गहराई से उनके जीवन-दर्शन का अध्ययन किया। उनकी विचारधारा पर चिन्तन किया तो मुझे स्पष्ट ज्ञात हुआ कि उनका हृदय स्फटिक की तरह स्वच्छ है। श्रमण संघ में बढ़ती हुई उच्छृंखलता और स्वच्छंद प्रवृत्ति को देखकर उनका हृदय व्यथित है। पर किसी के प्रति उनके मन में दुर्भावना नहीं है। काश! उनकी विचारधारा को समझने का प्रयास किया होता तो वे श्रमण संघ से कभी पृथक् नहीं होते।

जब कभी भी मैंने उनके दर्शन किये तो उस मधुर-मिलन की वेला में देखा उनके चेहरे पर प्रसन्नता की आभा नाच रही है। उनका रोम-रोम खिल रहा है, उनके अन्तर्हृदय की प्रसन्न लहर उनकी वाणी पर थिरक रही है, हम उनके दर्शन कर प्रसन्न हैं तो वे हमें देखकर आनन्द-विभोर हैं, और जब विहार का नाम लिया तो उनके गुलाबी चेहरे पर उदासीनता है, कहाँ जा रहे हो, क्यों इतनी जल्दी कर रहे हो, और फिर आदेश के स्वर में कहते अभी कुछ दिन यहाँ रहो। और फिर मुस्कराकर कहते, क्या तुम्हें मेरे पास रहते आनन्द नहीं आता, फिर सुनाने लगते—ध्यान-योग की साधना के मधुर संस्मरण, आगम के गम्भीर रहस्य, जीवन के अनमोल अनुभव, ज्योतिष शास्त्र के चुटकले। एक के पश्चात् एक ऐसे जीवनस्पर्शी रहस्य बताते कि उस ज्ञान की प्याऊ के पास से उठने का दिल ही नहीं होता।

वृद्धावस्था के कारण वे बहुत कम प्रवचन करते थे, पर उन्होंने अनेक बार मेरे प्रेम भरे आग्रह से प्रवचन किये। उनके प्रवचन संक्षिप्त पर, सुलझे हुए, अध्ययन पूर्ण और सरस होते थे। उनकी भाषण शैली गजब की थी। जब वे अपना प्रवचन प्रारम्भ करते उस समय कुछ उखड़े-उखड़े से प्रतीत होते थे। बहुत साधारण-सी बातें, सुनने वाला विचार करता क्या यही हैं प्रसिद्ध वक्ता पन्नालाल जी महाराज, किन्तु प्रवचन के बीच में वे ऐसे जमते और अन्त में चार ऐसी बातें बता देते कि श्रोता झूम उठते।

उनकी प्रवचन शैली वस्तुतः फ्रांस के महान् लेखक, कलाकार विक्टर ह्यूगो की लेखन शैली के सदृश थी। जिसे निहार कर आश्चर्य होता था। ह्यूगो के प्रारम्भिक-परिच्छेद कुछ ऐसे बिखरे-बिखरे से होते हैं कि पढ़ने की इच्छा नहीं होती, पर उसके पश्चात् वह पाठक को ऐसा पकड़ता है कि पाठक पुस्तक छोड़ नहीं सकता, और पढ़ने के पश्चात् भी दिल और दिमाग में वे विचार चक्कर लगाते रहते हैं और वह उसी में लीन रहता है।

वे अपने प्रवचनों में और वार्तालाप में स्वाध्याय पर अधिक बल देते थे। उनका मानना था स्वाध्याय जीवन के लिए टॉनिक है। स्वाध्याय से विचारों में निर्मलता आती है। आचार की विशुद्धि होती है। हित और अहित का परिज्ञान होता है। पाप-पुण्य का पता चलता है। कर्तव्य-अकर्तव्य का बोध होता है। स्वाध्याय अन्धकार पूर्ण जीवन पथ को आलोकित करने के लिए दीपक के समान है। दिल और दिमाग की थकावट और भारीपन को मिटाने के लिए नन्दन वन के सदृश है। आज जो दुःख व दैन्य की ज्वालाएँ सुलग रही हैं। उसका मूल कारण अज्ञान है। अज्ञान को नष्ट करने के लिए स्वाध्याय रामबाण दवा है। यही कारण है आज सैकड़ों आपके श्रद्धालु-श्रावक स्वाध्यायरत हैं, प्रति वर्ष पर्युषण के पुण्य पलों में निवृत्ति मार्ग को ग्रहण कर, भारत के विराट् नगरों में और नन्हें-नन्हे गाँवों में जहाँ श्रमण नहीं पहुँच पाते वहाँ जाकर धार्मिक प्रवचन करते, और हजार-हजार व्यक्तियों को स्वाध्याय की प्रेरणा देते हैं। आज भी स्वाध्याय संघ उनका जीवित स्मारक है।

आज प्रवर्तक श्री देह रूप में भले ही हमारे सामने न हो पर अनेक दिव्य गुणों की मधुर स्मृति आज भी मेरे मन-मानस में घूम रही है, आँखों के सामने झूम रही है। उनके जैसा स्नेही

सरल और निर्भीक सन्त मैंने आज दिन तक नही देखा है। वह वस्तुत साधुता के एवरेस्ट और सस्कृति के अखण्ड दीप थे। मैं उनके पुनीत चरण-कमलो मे अपनी भाव-प्रवण श्रद्धाजलि-समर्पित करते हुए एक अप्राप्य हर्ष की अनुभूति कर रहा हूँ।

☆

☐ श्री रंगमुनि

श्रमण भगवन्त श्री महावीर स्वामी ने सम्यक्त्व के आठ अग बतलाये हैं जिसमे वात्सल्य भी एक है, जिसका अर्थ है मानव मात्र के प्रति प्रेम, स्नेह एव सद्भावना का व्यवहार करना। मानव भूलो का पात्र है, उसके द्वारा समय-समय पर प्रमादवश भूलें होती रहती हैं, उसकी भूलें देखकर जो व्यक्ति प्रेम एव सद्भावना से उसे सन्मार्ग पर लाने का प्रयत्न करता है, वही महापुरुष कहलाता है। भूले-भटके राही को अज्ञानान्धकार से निकालकर जो सन्मार्ग मे प्रवृत्त करता है, वही मानव वन्दनीय, पूजनीय एव उसी का जीवन श्लाघनीय होता है। ऐसे ही सन्मार्ग के पथ-प्रदर्शक एव वात्सल्यमूर्ति थे महास्थविर प्रवर्तक प० रत्न श्री पन्नालाल जी महाराज, जो पार्थिव शरीर से आज हमारे समक्ष नही हैं। मगर उनका यश शरीर भी विद्यमान है, और हजारो वर्ष बीत जाने पर भी अमर रहेगा।

जिस प्रकार माली बगीचे की सावधानी रखता हुआ, समय-समय पर खाद, पानी व अन्य साधनो के द्वारा उपवन की शोभा बढाता है, ठीक उसी तरह प्रवर्तक श्री जी भगवान महावीर के तीर्थ सघ को पल्लवित पुष्पित करते रहे।

जिस प्रकार माली बगीचे की शोभा बढाने के लिए उसमे रहे हुए अनावश्यक घास एव झाड-झखाड को उखाड कर फेंक देता है ठीक उसी तरह से समाज रूपी बगीचे मे भी जो मोसर प्रथा आदि कुरीतियो का झाड-झखाड था उसे प्रवर्तक श्री जी ने डके की चोट उपदेशामृत द्वारा दूर कर धन के अपव्यय से समाज को पतन के गर्त मे गिरने से बचाया।

धन के अपव्यय से समाज को बचाकर शिक्षा के क्षेत्र मे नवजागृति का सचार किया। कई स्थानो पर धार्मिक पाठशालाएँ, वाचनालय, पुस्तकालय एव नानक जैन छात्रालय जैसी विशाल सस्थाएँ खुलवाकर प्रवर्तक श्री जी ने महान उपकार का कार्य किया।

महात्मा तुलसीदासजी के शब्दो मे 'सन्त हृदय नवनीत समाना' के अनुसार प्रवर्तक श्री जी का जीवन यथार्थ रूप मे मक्खन के समान ही कोमल था, अन्तर इतना ही था कि मक्खन अग्नि का सहयोग पाकर पिघल जाता है, मगर उनका हृदय दुखी व्यक्तियो के आर्तनाद को सुनकर पिघल जाता था। समाज की कई अनाश्रित विधवाओ की दयनीय-स्थिति को देखकर प्रवर्तक श्री जी ने समय-समय पर समाज को सही दिशा का निर्देश किया। जिसके फलस्वरूप विधवा सहायता फण्ड एव सधर्मी सहायता फण्ड खुलवाकर समाज का बहुत-सा अपव्यय होने वाले धन का सदुपयोग करवाया।

स्थानकवासी समाज, साधु समाज पर ही आश्रित है। सन्त मुनिराज एव महासती वर्ग अथक परिश्रम से पैदल यात्रा करते हुए प्रत्येक क्षेत्र को पावन कर जिनवाणी का प्रचार करने के लिए प्रयत्नशील हैं। फिर भी कई क्षेत्र ऐसे हैं, जहाँ पर मुनिराज एव महासतियो का पदार्पण नही होता है, तथा उन क्षेत्रो को चातुर्मास एव जिनवाणी सेवन करने का लाभ प्राप्त नही हो सकता है। इसी उद्देश्य को लेकर प्रवर्तक श्री जी ने समाज हित के लिए स्वाध्याय सघ की स्थापना करवायी जिसमे कई श्रावक गण पर्युषण पर्व में व्याख्यान आदि देने के लिए सुदूर नगरो एव निकट-वर्ती ग्रामो मे जाकर जिनवाणी का अमृतपान करवाते हैं। भगवान महावीर द्वारा प्ररूपित १२

प्रकार के तप मे स्वाध्याय भी एक आभ्यन्तर तप है जिसकी मन वचन, काया, की शुभ योग से पालना करने पर निर्जरा फल की प्राप्ति होती है। ऐसी शुभ प्रवृत्ति की स्थापना करवाकर प्रवर्तक श्री जी ने चिर स्मरणीय कार्य किया है जो जैन इतिहास मे स्वर्ण अक्षरो मे अंकित करने योग्य है।

प्रवर्तक श्री जी का जीवन निडर एव साहसिक था। सयोग-वियोग के झझावातो से ये कभी भी चलायमान नही होते थे। ये मानव मात्र के हित-चिन्तक एव दीर्घदृष्टा थे। इनका जीवन बहुत निर्मल एव स्नेह धाराओ से ओतप्रोत था।

☆

☐ साध्वी श्री सिद्धकवर जी (श्री यशकवर जी म की शिष्या)

पूज्य श्रद्धेय जैन जगत के भास्कर श्री पन्नालाल जी महाराज साहब. का आकस्मिक स्वर्गवास को सुनकर हृदय को अनिर्वचनीय दु ख हुआ, आपके निधन से जैन समाज मे महान् क्षति हुई, जिसकी पूर्ति होना कठिन है। आपने बाल्यकाल में ही दीक्षित होकर समाज की जो सेवा की उसको भुला नही सकेगे। स्थान-स्थान पर स्वाध्याय सघ खोलना, एव ग्राम-ग्राम मे जिनवाणी का प्रचार कराना आदि अनेक प्रकार से समाज को ऊँचे उठाने का प्रयास किया, आप मेधा के भण्डार थे, आपकी वाणी मे ओज था, हृदय में वात्सल्य-भाव था एव चेहरे पर ब्रह्मचर्य का तेज था, धन्य है उन महापुरुष का जीवन जो इस क्षर शरीर से विश्व मे अक्षर कीर्ति को छोड़ गये। उनके गुणो का वर्णन करने मे वाणी असमर्थ है। शासन प्रभु से यही अभ्यर्थना है कि स्वर्गस्थ आत्मा को चिर शान्ति प्राप्त हो ?

☆

☐ साध्वी श्री ज्ञान लता जैन "प्राज्ञचन्द्रिका" "सिद्धान्तविशारद"

प्र उपसर्ग पूर्वक ज्ञा धातु से कृदन्त मे अण् प्रत्यय करने पर (प्र+ज्ञा+अण्) प्राज्ञ शब्द की व्युत्पत्ति होती है। जिसका अर्थ है हर कार्य के हर पहलू को प्रकर्षतापूर्वक जानने वाला। अथवा सत्-असत् की विभक्ति करने वाली हिताहित की अभिव्यक्ति कर हित मे प्रवृत्ति कराने वाली प्रज्ञा-बुद्धि को जो धारण करने वाला (प्रज्ञा अस्ति यस्य स) हो उसे भी प्राज्ञ कहते हैं।

जब हम प्रवर्तक प्राज्ञपि गुरुदेव के जीवन को देखते है, निकट से पढते हैं एवं परखते हैं तो हमें पूर्ण विश्वास के साथ कहना होता है—उनका जीवन महान् था। वे जिस प्रकार शरीर के आकार से महान् थे उसी प्रकार प्रज्ञा से भी महान थे। बिना प्रज्ञा के शरीर की महानता-हीनता की ओर बढा देती है। किन्तु जब

"आकारसदृश. प्रज्ञ, प्रज्ञया सदृशागम।
आगमै सदृशारम्भ, आरम्भसदृशोदय.॥

रघुवंश प्रथम सर्ग

शरीर की आकृति के समान प्रज्ञा हो, प्रज्ञा के समान आगमो का ज्ञान हो, ज्ञान के समान कार्य का प्रारम्भ हो और प्रारम्भ किये कार्य के समान फल की सिद्धि हो तो फिर कहना ही क्या ? सोने मे सुगन्ध और दोनो हाथ लड्डू। बस ! कल्याण ही कल्याण !!

पूज्य गुरुदेव श्री आकार-प्रकार, प्रज्ञा-परिष्कार और आचार-विचार मे इतने गहरे एव साफ-सुथरे थे कि अनेको सन्त-महन्त आपकी सलाह लेकर ही सन्तोष प्राप्त करते थे ! आपने इसी प्रज्ञा बल के आधार पर अनेक समाज हित के कार्य किये थे। एक समय था कि जबकि जैन समाज

के साधु महात्मा "अपनी-अपनी ढपली और अपना-अपना राग" अलाप कर एक-दूसरे को हीन दृष्टि से देखने मे लगे थे । ऐसे समय मे आपने उन सबको मिलाया था, एक जगह बिठाया था और एक-दूसरो को भाई-भाई के समान गले लगाया था । पाली का छह सम्प्रदायो का सम्मेलन (वि० स० १९८८) व अजमेर का वृहत्साधु सम्मेलन (वि० सं० १९९०) आपकी सूझ-बूझ का आदर्श प्रतीक है । वैसा सम्मेलन हमारे जीवन मे "न भूतो न भविष्यति" की याद दिला रहा है ।

इतना सब कुछ होते हुए भी आप पूजा प्रतिष्ठा एवं वाह्य उपाधियो से उतने ही भयभीत रहते थे जितने कि सावद्ययोगो से । आप सदा ही यही फरमाया करते मुझे मन्दिर के कलश नही नीव के पत्थर ही रहने दो ! मुझे वाहरी वाहवाही नही, अपनी साधना की कार्यवाही की जरूरत है । मैं तो वीतराग शासन का यत्किंचित् सेवक हूँ । मुझे जिन शासन की सेवा ही करने दो । शासन सेवा मे उपाधियो की आवश्यकता नही होती ।

एक वार की वात है । एक साधुजी ने आपको "मरुधर-केसरी" की, तो एक ने "राजस्थान केसरी" की उपाधि दी । गुरुदेव ने मुस्कराते हुए उसका प्रतिवाद किया और फरमाया भैया ! मैं सर्वविरति साधु हूँ ! पशुश्रेणी की खीचतान कर साधुता की महिमा क्यो कम कर रहे हो । क्या 'केसरी' को भी कभी साधुता प्राप्त होती है ? साधुता को मानव ही प्राप्त करते है अत मुझे मानव ही रहने दो, केसरी नही । उनका यह कितना सीधा एव तीखा समाधान था उपाधिग्रस्त व्यक्तियो को समझाने का !

आज वह महान् पुरुप भले ही हमारे वीच भौतिक देह से विद्यमान न हो, पर उनके दिव्य सस्मरण हमारे अन्त करण के कण-कण मे रमे हुए हैं । उनके दिव्य स्वरूप को कदापि विस्मृत नही किया जा सकता है । आज सारा समाज और उसका प्रत्येक सदस्य अनुभव के साथ यह कहता दृष्टिगोचर हो रहा है कि—एक "प्राज्ञर्षि" मुनिराज के विना हम सव विद्यमान होते हुए भी छिन्न-भिन्न एवं सूने-सूने से वने वैठे हैं । अत मेरा यह लिखना अतिशय पूर्ण न होगा कि

"प्राज्ञरत्नो विशिष्यते"

मानव जीवन की महानता की तुलना मे ससार की कोई भी वहुमूल्य वस्तु नहीं ठहर सकती । जो महान् आत्माएँ मानव भव पाकर अपने मे सच्ची मानवता जागृत करती है, वे अपनी आत्मा के उद्धार के साथ ही साथ प्राणी मात्र को लाभ पहुँचाने का भरसक प्रयत्न करती हैं । जीवन का सदुपयोग करने वाली ये महान् आत्माएँ नव युग का निर्माण करती हैं । इनमे से कुछ महान् आत्माएँ सत जीवन भी धारण कर अपना सम्पूर्ण जीवन विश्व कल्याण हेतु समर्पित कर देती हैं ।

ऐसा ही आदर्श जीवन एव प्राणी सेवा के लिए समर्पित व्यक्तित्व का प्रभाव प्रात स्मरणीय जैनाचार्य परम पूज्य श्री १००८ श्री नानकरामजी महाराज साहव की सम्प्रदाय की पुनीत सत-परम्परा मे परम पूज्य परम श्रद्धेय, श्रमण-रत्न प्रवर्त्तक गुरुदेव स्व० श्री पन्नालालजी महाराज साहव का रहा है ।

श्रद्धेय गुरुदेव श्री का सर्वोत्कृष्ट कार्य प्राणियो को अभयदान दिलाने सम्बन्धित रहा है । कुछ अज्ञानी लोगो मे यह अन्ध श्रद्धा है कि मन्दिरो मे देवी-देवताओं के सम्मुख निर्दोष भैंसो और वकरो आदि पशुओ का वलिदान करने से देवी-देवता प्रसन्न होते हैं । अत वे दशहरा आदि पर्वों पर मूक पशुओ का वलिदान कर उनका रक्त वहाते हैं एव जीवो के प्रति क्रूर और निर्दयी बनते हैं । उनका यह कुकृत्य धार्मिक यज्ञ नही, अपितु नितात अधर्म ही है ।

अतएव श्रद्धेय गुरुदेव ने ऐसे निर्दयतापूर्ण पशु वलिदान की अधार्मिक कुप्रथा को मिटाने

का बीडा उठाया, जिससे अनेक देव-स्थानो पर पशुबलिदान बन्द होकर प्राणियो को अभयदान प्राप्त हुआ।

पुष्कर के निकट ही गनाहेडा ग्राम मे रावतो की कुलदेवी खाडा-माता के मन्दिर मे दशहरा आदि पर्वो पर अनेक भैंसो और बकरो का बलिदान होता था। इस बलिदान को मिटाने के लिए गुरुदेव गनाहेडा पहुँचे और वहाँ के निवासियो को अहिंसा का महत्त्व और पशु बलिदान का दुष्परिणाम सम्बन्धी उपदेश दिया। इसके फलस्वरूप स० १९८२ के फाल्गुन शुक्ला ६ को उन लोगो ने भविष्य मे कभी भी मन्दिर मे पशु बलिदान नही करने की प्रतिज्ञा ली और अहिंसक बन गये एव अपनी प्रतिज्ञा के स्मारक रूप मे वहाँ शिलालेख स्थापित किया।

इसी प्रकार घनोपमाताजी तथा चावण्डिया माताजी आदि स्थानो मे जहाँ-जहाँ पशुबलिदान होते थे उन्हें बन्द कराने का यथासम्भव प्रयास किया। साथ ही अनेक राजाओ, ठाकुरो एव हिंसक व्यक्तियो को उपदेश देकर उन्हें दया प्रेमी बनाया।

इस प्रकार श्रद्धेय गुरुदेव के दयामय उपदेशो से असख्य प्राणियो को अभयदान प्राप्त हुआ। उनकी अहिंसा वृत्ति का ही यह चमत्कार था कि घोर हिंसा प्रेमी सिंह भी बनेडा के उद्यान मे रात्रि के समय उनके सम्मुख आकर एव ध्यानस्थ शात सौम्य स्वरूप के दर्शन कर उनके पवित्र चरण-कमलो मे नतमस्तक होकर परम दयालु बनकर चला गया।

इस प्रकार श्रद्धेय गुरुदेव का हृदय अत्यन्त दयाप्लावित था, जिसके कारण उन्होंने अनेक दीन-दुखियो का दुख दूर किया। निराश्रित विधवाओ को सहायता दिलाई एव जिज्ञासु आत्माओ के लिए ज्ञान शालाएँ स्थापित की।

इस प्रकार अनवरत रूप से जीवनभर सम्पर्क मे आने वाले सभी प्राणियो को सुख पहुँचाने मे लगे रहे। उनके द्वारा सस्थापित सस्थाएँ इस बात के ज्वलत प्रमाण हैं एव उनकी अमिट कीर्ति के अमर स्मारक हैं।

ऐसे परमोपकारी, परम श्रद्धेय, पूज्य प्रवर, श्रमण रत्न स्व० 'प्राज्ञ' गुरुदेव के प्रति नतमस्तक हो उनकी पुनीत सेवा मे सादर श्रद्धा-सुमन समर्पित करती हूँ। साथ ही यह शुभ कामना करती हूँ कि उनके गुणरत्नो का प्रतिबिम्ब सदैव हमारे जीवन मे भी प्रतिबिम्बित होता रहे, जिससे हम अपना दुर्लभ मानव-जीवन प्राणीमात्र के कल्याण मे समर्पित कर उत्तरोत्तर अपनी आत्मा का विकास करते हुए मोक्ष के शाश्वत सुख के अधिकारी बनें। शुभं भूयात्।

☆

☐ महासती श्री कमलाकुमारी जी

हे आदर्श श्रमण-रत्न!

आपने इस दृश्यमान विराट विश्व मे दुर्लभ मानव-भव पाकर आत्मिक गुणो के विकास के लिए एव प्राणी मात्र का कल्याण करने के लिए सासारिक वैभव-विलास एव पारिवारिक मोह का परित्याग कर बाल्यावस्था मे ही जैन श्रमण-सस्कृति की परम्परा मे पञ्च महाव्रतधारी, स्व-पर कल्याणकारी एव जगत्वल्लभ श्रमण बनकर आजीवन आदर्श सयममय जीवन का निर्वाह किया।

धन्य आपका आदर्श त्याग! धन्य आपका पावन सन्त जीवन!!

हे जैनागम मर्मज्ञ!

आपने हिन्दी, प्राकृत, सस्कृत आदि विभिन्न भाषाओ का ज्ञान प्राप्त कर जैनागमो का

गम्भीर अध्ययन और मन्थन किया। जैन शास्त्रो के साथ ही साथ जैनेतर ग्रन्थ यथा गीता, रामायण, महाभारत, बाइबिल आदि विभिन्न दार्शनिक ग्रन्थो का अध्ययन कर तुलनात्मक ज्ञान प्राप्त कर आप सम्यग्ज्ञानी बने। आप आगम मनीषियो, ज्योतिर्विदो और आगम चिन्तको मे शिरोमणि थे।

धन्य तत्त्वदर्शी महात्मन्! धन्य आपका ज्ञान!!

हे प्रवचन पीयूषवर्षीमेघ!

जैसे महामेघ वसुधरा को अपने जल से सिंचित कर शस्यश्यामला भूमि बना देता है, वैसे ही आपने जीवन पर्यन्त अपने प्रवचनो की अमृत वर्षा से मानव-मेदिनी के हृदय-प्रदेश को सिंचित कर अनुप्राणित किया। यही कारण था कि आपकी इस प्रवचन-प्रभावना से प्रतिबोध पाकर जन साधारण एव अनेक राजा-महाराजा अहिंसा आदि सिद्धान्तो के परिपालक बने।

धन्य प्रवचन-प्रभावक! धन्य जन-मन उद्बोधक!!

हे उदार हृदय महात्मन्!

"सन्त हृदय नवनीत समाना" इस उक्ति के आप साकार मूर्ति थे। वस्तुत आपका हृदय मक्खन के समान कोमल था। जैसे मक्खन आँच पाकर पिघल जाता है, वैसे ही दुखियो के सन्तप्त जीवन को देखकर आपका हृदय नवनीतवत द्रवित हो उठता था। तत्काल आप उसके दुख निवारणार्थ प्रयास करते थे और उन्हे सुखी बनाते थे।

निराश्रित छात्रो और असहाय विधवाओ की सहायता हेतु आपने 'निराश्रित सहायता कोष' की भी स्थापना की, जिससे आज भी अनेक भाई-बहिन लाभान्वित हो रहे हैं।

धन्य आपकी परोपकार परायणता! धन्य आपकी सहृदयता!!

हे करुणानिधे!

आपके कोमल हृदय मे सदैव करुणा का अविरल प्रवाह प्रवाहित होता था। देव-मन्दिरो मे होने वाली मूक पशुओ की बलि से आपका तन, मन प्रकम्पित हो उठा और हृदय उनके प्रति करुणा से भर गया। अत आपने चरम तीर्थंकर अहिंसावतार भगवान महावीर के मुख्य सिद्धान्त **"अहिंसा परमो धर्म."** का प्रचार करते हुए **'सेंट फ्रान्सिस'** के निम्नलिखित हृदयोद्गारों का समर्थन किया।

"All creatures feel as we do
All creatures long for happiness as we do.
All the animals of the world live, suffer and die just as we do
Therefore they are like us."

अर्थात् समस्त छोटे-मोटे प्राणी हमारे समान ही सुख और दुख का अनुभव करते हैं। हमारे समान ही सभी प्राणी सुखी और जीवित रहना चाहते हैं तथा दुख और मृत्यु से घबराते हैं। इसलिए समस्त जीव-जन्तु, पशु-पक्षी हमारे समान ही जीवन के अधिकारी हैं।

अत आपने करुणार्द्र-हृदय होकर स्थान-स्थान पर पशुबलि बन्द कराने का अथक प्रयास किया। इसके फलस्वरूप राजस्थान के अनेक देवालयो मे होने वाली जीवहत्या बन्द हुई एव मासाहारी भी निरामिषभोजी बने, जिससे मूक प्राणियो की आत्माओ को शान्ति-लाभ हुआ। आपकी अहिंसा-परायणता का ही प्रभाव था कि आप जैसे महापुरुष के सौम्य स्वरूप के दर्शन कर वनराज केशरीसिंह भी आपके सम्मुख नतमस्तक हो गया।

धन्य करुणावतार! धन्य आपकी करुणा!!

हे ज्ञान-क्रिया के साकार स्वरूप !

"ज्ञानक्रियाभ्यां मोक्ष" अर्थात् सम्यग्ज्ञान और सम्यक् क्रिया की साधना ही मोक्ष का कारण है। अत आपके सयमी जीवन की साधना का लक्ष्य भी यही सूत्र रहा है। मुमुक्षु आत्माओं का ध्यान भी सदैव आपने अपने इस प्रिय सूत्र के परिपालन हेतु आकर्षित किया।

इसी प्रकार "पढमं नाणं तओ दया" भगवान् महावीर स्वामी की इस वाणी के अनुसार मानव जीवन को ज्ञानयुक्त एव दयामय बनाने के लिए आपने विभिन्न ज्ञानशालाएँ एव स्वाध्याय-मण्डल की स्थापना कर सर्वत्र धर्म-जागृति की।

धन्य आपका ज्ञान और क्रिया का समन्वय ! धन्य आपका ज्ञान-प्रचार !!

हे श्रमण सस्कृति के परम रक्षक !

चरम तीर्थंकर भगवान् महावीर स्वामी द्वारा उपदिष्ट श्रमण-सस्कृति की मर्यादाओं के आप परिपालक एव परम रक्षक रहे हैं। श्रमणमर्यादामय आपका जीवन हमारे लिए अनुकरणीय आदर्श एव पथ-प्रदर्शक है।

धन्य श्रमण शिरोमणि ! धन्य आदर्श गुरुदेव !!
जय-जय प्राज्ञ मुनीन्द्र महान् !!
"धन्य-धन्य श्रमण-रत्न महान्,
दयानिधे ! किया जगत् कल्याण।
श्रद्धा-सुमन चढाए गाये तव गुणगान,
नमन करें हम पावें सौख्य महान् ॥"

☆

मुनिश्री पन्नालाल जी : मेरा सम्पर्क

☐ रावसाहब नारायणसिंहजी (मसूदा)

पूज्य मुनि श्री पन्नालाल जी महाराज से मेरे परिवार एवं मेरे पिता का निकट सम्पर्क रहा है। इस कारण मेरे बचपन काल मे ही इनकी विचारधारा व व्यक्तित्व से प्रभाव ग्रहण करता रहा हूँ। मुनि श्री ने माली जाति मे एक रत्न रूप मे जन्म लिया। आरम्भ मे इनकी प्रवृत्तियां व व्यवहार अहिंसावाद की ओर उन्मुख था। इस कारण वे जैन सिद्धान्तो मे इसका उन्मेष व स्वरूप की प्रगति देखकर इस सम्प्रदाय मे ही वे दीक्षित हो गये। तथा अटूट आस्था एवं विश्वास के साथ मुनिश्री ने स्वीकृत सिद्धान्तो का अदम्य उत्साह एव निर्भीकता के साथ प्रतिपादन एव प्रसारण मे किसी प्रकार की कमी उठाकर नही रखी। जीवन की पर्यवसान की वेला मे अपने निकटस्थ जनसमाज मे उसकी अमिट छाप छोड गये। आज प्राज्ञ महाविद्यालय मे आपकी ही आत्मा का प्रकाश विकीर्ण है।

मुनिश्री की विचक्षण प्रतिभा ने उन्हें केवल जैन सिद्धान्तो की औपचारिकता मे सीमित न रखकर अहिंसा को जीवन के सर्वागीण क्षेत्र मे प्रकाशमान किया। जैन सिद्धान्तो को जीवन की सामयिक राजनयिक एव सामाजिक परिस्थितियो के सन्दर्भ मे अवतरित कर व्यक्ति व समाज की सापेक्षता के आधार पर प्रतिपादन किया। उनमे व्यावहारिक ज्ञान की अपूर्व क्षमता थी। मुनिश्री पूर्व परम्परा एवं समसामयिक जीवन मे विषमता के प्रति पूर्ण जागरूक थे। जिस कारण उन्होंने समसामयिक जीवन मे समन्वय व सामञ्जस्य स्थापित करने की दृष्टि से भारतीय संस्कृति एव सभ्यता को आधार बनाकर अहिंसावाद का प्रवर्तन करने की अपूर्व क्षमता प्राप्त करली थी। अत.

स्वतन्त्रता आन्दोलन मे अपने ओजस्वी व्याख्यान द्वारा जनसाधारण को अपने राष्ट्र के प्रति कर्तव्य पालन एव दायित्व निर्वाह की दिशा मे अनुप्रेरित करते रहे हैं। इस प्रकार उनकी विचारधारा मे स्वतन्त्रता आन्दोलन की भावना का रूप स्पष्ट रूप से झलकता था। विशेषत मुनिश्री मे गाधी जी के विचारो की झलक भी स्पष्ट रूप से दिखाई देती है। वे गांधी जी के प्रशसक एव सिद्धान्तो मे अहिंसा एव सत्य की झलक स्पष्ट रूप से देखते थे। यद्यपि गाधी जी जैन होते हुए भी जैन मत के ही प्रवर्तक नही थे वरन् उनमें मानवतावाद अहिंसा के आधार पर उभर कर आया था। उन्होंने मानव जीवन मे सामाजिक व राजनीतिक भ्रांति का शखनाद फूंककर भी सदैव उसके व्यक्ति चरित्र मे स्वावलम्ब, सदाचार एव ईश्वर भाव के आधार पर अध्यात्मवाद की प्रतिष्ठा की। उनकी क्रातिवादी विचारधारा अहिंसा को अपनाकर ही आगे बढी थी। मुनिश्री भी इसी प्रकार रूढिवाद के पूर्णत विरोधी थे। इसी आधार पर जैन सिद्धान्तो के प्रतिपादन की विचार शैली के साथ श्रेष्ठी वर्ग को सदैव सम्बोधित करते रहे कि अपरिग्रह उनके जीवन का एक आधार बनना चाहिए। ब्याज कमाने व गरीब जनता के शोषण की प्रवृत्तियो के प्रति सक्रिय रूप से जागृत करने की ओर देते रहे। सादा जीवन व्यवहार रखने की ओर सादा अनुरोध करते रहे। मुनिश्री मे इस प्रकार व्यक्तित्व का स्वरूप मिलने पर भी वे कभी भी राजनयिक दलबन्दियो के घेरे मे नही फसे। सदैव परिस्थितियो का विहगावलोकन करके ही जीवन सत्य को दर्शाने की दिशा मे सक्रिय रहे। प्राज्ञ महाविद्यालय आपकी ही प्रेरणाओ का प्रतिभासित रूप है। जो जन-सहयोग के रूप मे आपकी विचारधारा के रूप मे प्रकाशमान है।

कभी-कभी मुनिश्री मे गाधीवाद की ओर झुकाव देखकर उन्हें गाधीवादी समझने का सदेह होता था। मुझे याद है सन् १६५२ मे पहली बार चुनाव में खडे होने के सम्बन्ध मे निर्णय लेकर आशीर्वाद की याचना की थी, तो मुनिश्री ने मुस्कराकर आशीर्वाद दिया और फरमाया "वोटा का चु त्या न भेला करवासु काई मिलसी" मुझे तो स्पष्ट सकेत मिलता है कि सत्ता लोलुपता एव आकर्षण के प्रति लगाव न रखने का आशय रहा है।

मुनिश्री का अधिक प्रिय एव प्रभावशाली क्षेत्र भीलवाडा, गुलाबपुरा एव मसूदा परगना है। इस क्षेत्र मे आपका प्रभाव अक्षुण्ण रूप से रहा एव आज भी है।

अन्तिम दिनो मे मुनिश्री के पार्थिव शरीर को वेदना की अनेक यातनाएँ भोगने के लिए बाध्य होना पडा। पर उनके पार्थिव शरीर पर इसके प्रति भय उदासीनता या विवशता उद्विग्नता वेदना की एक भी रेखा दृष्टिगत नही होती थी। यहाँ तक कि उनके पार्थिव शरीर की अन्त्येष्ठी हेतु शव-यात्रा काल मे बैकुण्ठी पर विराजमान मुनिश्री के चेहरे से वही ज्ञान की आभा एव प्रकाश प्रस्फुटित हो रहा था जो मानव समाज के मानस पर उनके जीवन भर तपश्चरण एव अहिंसा के रूप मे उद्भासित था।

×

श्रमणसिंह

☐ शोभाचन्द्र भारिल्ल

प्रवर्तक पद विभूषित पूज्य मुनिराज श्री पन्नालालजी महाराज का स्मरण करते ही हृदय मे अनेक प्रकार के भाव उद्भूत होने लगते हैं। जहां उनका व्यक्तित्व बडा ही प्रभावशाली था, वही उनका व्यवहार अत्यन्त शालीन एव अपरिचित को भी अनायास अपनी ओर आकर्षित करने वाला था। सच तो यह है कि उनका समग्र जीवन इतनी विशेषताओ के लिए था कि उनकी गणना करना

सम्भव नही है। जैनेतर कुल मे जन्म लेकर भी जैनधर्म को अगीकार करके उसकी आराधना और प्रभावना मे ही उनका समग्र जीवन व्यतीत हुआ।

मुनिश्री दया के सागर थे। जो उनकी शरण मे आया, जिसने अपना दुख-दर्द उनके समक्ष रक्खा, उसे कभी निराश नही होना पडा। असख्य दीन-दुखियो को उन्होने अपनी वाणी से तथा अन्य प्रकार से सान्त्वना एव सुविधा प्रदान की तथा करवाई।

मुनिश्री के विचार का धरातल बहुत ऊँचा था। छिछले या सकीर्ण विचार उनके निकट भी नही फटकते थे। वे आजीवन समग्र जैनसंघ के अभ्युदय एव उत्कर्ष के लिए विचार और कार्य करते रहे। श्रमणो के सगठन के लिए श्रमणसघ की स्थापना मे उन्होने घोर परिश्रम किया, अपनी समग्र शक्ति लगाई और अपनी विलक्षण प्रतिभा के कारण उसमे सफलता प्राप्त की।

मुनिश्री का विहार-क्षेत्र बहुत विस्तृत नही रहा, मगर वे जहाँ विचरे शान्तिदूत बनकर विचरे। उनके अन्तस्तल तक पैठ जाने वाले प्रवचन-पीयूष की वर्षा ने न जाने कितने ग्रामो और नगरो मे धधकती कलह की ज्वालाओ को शान्त किया, न जाने कितने हृदयो मे व्याप्त कषाय के दावानल को बुझाया।

प्रवर्त्तकजी महाराज जैसे ज्ञान की विशिष्ट समृद्धि से विभूषित थे वैसे ही उच्चकोटि के चरित्र से भी सम्पन्न थे। आगम ज्ञान के साथ ज्योतिषशास्त्र के भी आप पारगामी विद्वान् थे। स्वाध्याय आपका प्रिय विषय था। यही कारण है कि स्वाध्यायीसघ की स्थापना करके आपने जहाँ अपनी मौलिक सूझ-बूझ को उजागर किया वहीं समाज मे व्याप्त अज्ञान के निवारण का भी भगीरथ प्रयत्न किया। आपकी यह एक योजना ही आपकी कीर्ति को अजर-अमर बनाये रखने वाली है।

आपके जीवन की एक बहुत बडी विशेषता थी आपका असीम साहस, अदम्य मनोबल या अपराजेय आत्मिक शक्ति। यह ऐसी शक्ति है जो विरले ही पुण्यशाली व्यक्तियो मे पायी जाती है। मुनिश्री के जीवन मे यह शक्ति विराट् रूप मे विद्यमान थी। जिसने अनेकानेक विस्मय-जनक घटनाओ को जन्म दिया। इस दुर्लभ शक्ति के बल पर आप सिंह की तरह विचरे और जैन शासन का उद्योत करने मे सफल हुए।

सक्षेप मे, मुनिश्री पन्नालालजी महाराज का जीवन विविधताओ से युक्त, स्पृहणीय गुणो से मण्डित और सन्तोचित विशेषताओ से सुशोभित था। निस्सन्देह कहा जा सकता है कि मुनिश्री श्रमणसिंह थे। इस वरिष्ठ महासन्त की पुनीत आत्मा को मेरे शतश प्रणाम।

×

☐ श्री चन्दनसिंह जी भडकातिया (इन्दौर)

पूज्य स्वर्गीय गुरुदेव श्री पन्नालालजी बडे विचारक और योजक थे। वे करुणाशील थे और उनकी करुणा के ही रचनात्मक स्वरूप गुलाबपुरा की शिक्षण सस्थाएँ हैं।

वे आधुनिक शिक्षा की कमजोरियो को जानते थे और उसके अवगुणो को ठीक तरह से समझते थे और इसीलिए शिक्षा के साथ मे धर्म का समन्वय करके चरित्र गठन की ओर उनका विशेष लक्ष्य था।

मेरे जीवन का भी एक प्रसग उनसे जुडा हुआ है। सन् १९४२ मे मेरे पिताश्री का स्वर्गवास हुआ। उनके सभी मित्र और रिश्तेदारो का सर्वसम्मत आग्रह था कि उनका मृत्यु-भोज करना चाहिए। मैं स्वय इसके विरुद्ध था परन्तु सतप्त हृदय कुछ कमजोर होता है और इसीलिए परिस्थितिवश मुझे उनके १२वें पर मृत्यु-भोज करने का निश्चय करना पडा उसके लिए मैंने एक

स्व० श्रीमान घेवरचन्द जी चोपडा, अजमेर



स्व० श्रीमान नेमीचन्द जी तातेड, राताकोट



स्व० श्रीमान सेठ जीवराज जी चोरडिया भैरुंदा



पूज्य गुरुदेव श्री के सदुपदेशो के फलस्वरूप सस्थापित सस्थाओ मे सक्रिय सहयोग देने वाले उत्साही श्रावकगण



स्व० श्रीमान शोभागमल जी चोपडा, विजयनगर



स्व० श्रीमान गणेशमल जी बोहरा, अजमेर



स्व० श्रीमान सेठ भवरलाल जी चोरडिया, भैरुंदा

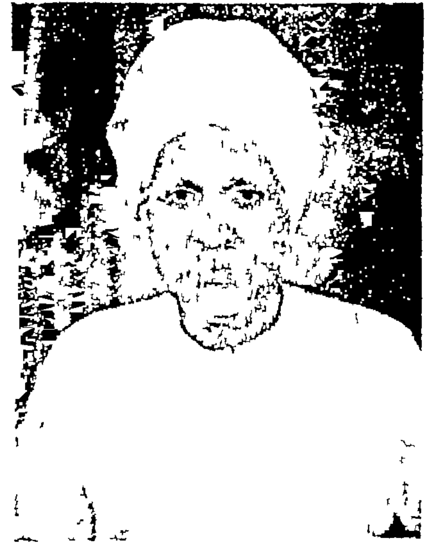
श्रीमान सेठ भैरूलाल जी खेराडा, अजमेर



श्रीमान उमरावमल जी ढढ्ढा, अजमेर



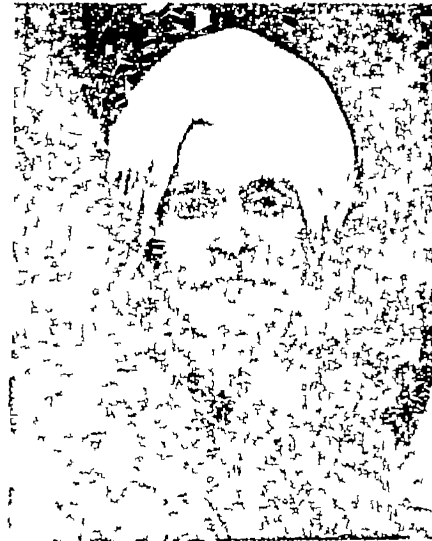
श्रीमान भैरूसिंह जी चौधरी, ब्यावर



पूज्य गुरुदेव श्री के सदुपदेशो के फलस्वरूप सस्थापित सस्थाओ मे सक्रिय सहयोग देने वाले उत्साही श्रावकगण



श्रीमान चतरसिंह जी छाजेड, विजयनगर



श्रीमान फतेहचन्द जी तातेड, विजयनगर



श्रीमान मानमल जी छाजेड, शाहपुरा

शर्त रखी कि उस दिन मैं सूर्य उदय से सूर्यास्त तक अनुपस्थित रहूँगा और इसमे किसी प्रकार का सहयोग नही करूँगा। मैंने वैसा ही किया भी। जब यह समाचार महाराज को मिला तो बहुत प्रसन्न हुए और इस रूढि के साथ असहयोग करने के लिए मुझे धन्यवाद दिया।

गरीब और बेकार विद्यार्थियो की तरफ उनका विशेष स्नेह था। उस समय जैन धर्म रूढियो मे फँसा हुआ था किन्तु उन्होंने अजैन विद्यार्थी मे भी उतनी ही दिलचस्पी ली जितनी वे जैन विद्यार्थी मे लेते थे।

×

पूज्य गुरुदेव श्री पन्नालालजी का जीवन-परिचय ग्रन्थ-प्रकाशन

☐ श्री बी० एल० जैन [सहायक मुख्य अधिकारी रिजर्व बैंक आफ इण्डिया, जयपुर]

मुझे यह जानकर अत्यन्त प्रसन्नता हुई कि श्री परम श्रेष्ठ सुदीर्घ चिन्तक महामनीषी स्वर्गीय गुरुदेव श्री पन्नालाल जी महाराज साहब का जीवन-परिचय-ग्रन्थ प्रकाशित किया जा रहा है। यह प्रयास बहुत सराहनीय व बधाई योग्य है। पूज्य श्री पन्नालाल जी महाराज साहब का सम्पूर्ण जीवन धर्म व समाज की सेवा मे लगा रहा। उनके सदुपदेशो से समाज के लाखो लोगो ने अपना जीवन सुधार किया, बुराइयाँ छोडी, व प्रगतिशील दृष्टिकोण समाज, राष्ट्र व स्वय के प्रति अपनाया। उनके सम्बोधन की सरल भाषा से आम आदमी के दिल मे उनके उपदेश सीधे दिल तक पहुँचते थे। यह पूज्य श्री की दूरदृष्टि ही कहिये कि जिस आचरण को अपनाने के लिए, अनुशासन व कठोर श्रम की बात आज बीस व चौबीस सूत्री कार्यक्रम मे हमारे देश की माननीय प्रधानमन्त्री श्रीमती इन्दिरा गांधी व श्री सजय जी कहते हैं, उसी को अपनाने, स्वच्छ व सुखद समाज की रचना के लिए पूज्य गुरुदेव ने गांव एव समाज के विभिन्न वर्गों मे राष्ट्र-हित की भावना का उद्-बोधन दिया था।

मुझे स्वय को आज के दो दशाब्दी पूर्व से पूज्य गुरुदेव के कई व्याख्यान सुनने का अवसर मिला, उनके व्याख्यानो के दौरान तरह-तरह के उदाहरण देकर पूज्य श्री ने गांव के ठेठ आखिरी व्यक्ति के दिल मे समाज मे व्याप्त बुराइयो की ओर लोगो का ध्यान आकर्षित किया। सोने के गहनो से मोह त्याग, घूँघट-प्रथा छोडना, सरकार की कर चोरी न करना, बाल विवाह बन्द करना, बच्चो को पढाना, राष्ट्रीय सम्पत्ति की हिफाजत करना, सब धर्मों का आदर करना यही तो पूज्य श्री के कुछेक बार-बार दोहराये जाने वाले प्रवचन थे, जो एक नागरिक को आदर्श नागरिक बनाते हैं।

आज गुरुदेव समाज के बीच नही है, यह प्रकाशन समाज को एक अमूल्य धरोहर होगी जो आने वाली पीढी को भी पूज्य श्री के उद्बोधो का लाभ पहुँचायेगी। प्रकाशक प्रशसा व बधाई के पात्र है।

×

☐ श्री किस्तूरचन्द जी नाहर

परम पूज्य गुरुदेव श्री पन्नालाल जी महाराज एक महान् पुरुष थे। वे तपस्वी, त्यागी एव समाजसेवी महात्मा थे। सवत् १९८३ मे जब श्री महाराज साहब का चातुर्मास गुलाबपुरा मे हुआ उस समय तथा तत्पश्चात् उनके चरण-कमलों मे रह कर उनके महान् व्यक्तित्व से आत्म-प्रेरणा प्राप्त करने का सौभाग्य प्राप्त हुआ। इसी के फलस्वरूप मैं अपने जीवन के सामान्य स्तर से ऊपर उठाने मे किसी रूप मे सफलीभूत हो सका।

पूज्य गुरुदेव करुणा की मूर्ति थे। दीन-दुखियो के प्रति उनमे करुणा, सहानुभूति एव संवेदना की भावना थी। उनका हृदय सतप्त-जनो के लिए द्रवित हो जाता था व उनका दुख निवारण के लिए वे सदैव तत्पर रहते थे। इन्ही भावनाओ से प्रेरित होकर उन्होंने निर्धन छात्रो की सहायता करने के लिए छात्रावास एव छात्रवृत्तियो की व्यवस्था करवाई।

पूज्य श्री का शिक्षा के प्रति बडा लगाव था। उनकी मान्यता थी कि यदि समाज और राष्ट्र को उन्नत बनाना है तो, यह कार्य शिक्षा के माध्यम से सम्पन्न किया जा सकता है विशेषकर नारी-शिक्षा के माध्यम से। इसी मान्यता को दृष्टि मे रखकर उन्होंने गुलाबपुरा मे कन्या पाठशाला की स्थापना करवाई। नानक जैन छात्रालय बनवाया व एक जैन विद्यालय का शुभारम्भ करवाया जो आज उनके शुभाशीष से महाविद्यालय के स्तर तक पहुँच चुका है तथा सहस्रों निर्धन एव सामान्य छात्रो के लिए आर्थिक एव शैक्षणिक अवलम्ब प्रदान कर उनके जीवन को सफल बनाने मे सक्रिय योगदान दे रहा है।

गुरुदेव मेरे जीवन मे सदैव प्रेरणा के स्रोत रहे हैं तथा मेरे जीवन के निविड अन्धकारमय-पथ पर जीवन-ज्योति प्रदान करने वाले पथ-प्रदर्शक रहे हैं। उन्हे शत-शत प्रणाम अर्पित करता हूँ।



☐ श्री उमरावमल जी ढड्ढा (अजमेर)

जैन मुनि निज कल्याण का मार्ग अपनाते हुए दूसरो की आध्यात्मिक उन्नति के लिए भी प्रयत्नशील रहते हैं किन्तु श्रद्धेय प्रवर्तक श्री पन्नालालजी महाराज साहब समाज के घटको की दैन्य स्थिति के प्रति भी जागरूक थे और उस स्थिति को मिटाने के लिए भी उतने ही प्रयत्नशील रहे। जहाँ धार्मिक क्षेत्र मे स्वाध्यायी सघ की स्थापना व श्रमण-संघ मे योगदान आदि कार्य किये वहाँ सामाजिक क्षेत्र मे विद्यालय व छात्रावास की स्थापना एवं वृद्धो व असहाय विधवाओ आदि के लिए उचित व्यवस्था बैठाने हेतु आजीवन प्रयत्नशील रहे। ऐसे मुनि पुंगव को, जिनके हृदय मे दीन के प्रति दर्द था मेरे शत् शत् वन्दन।



☐ श्री पुखराज जी बम्ब, असिस्टेण्ट कलक्टर, गोवा

मानव हृदय मे अनेकानेक सद् व असद्वृत्तियो का निवास होता है। हृदय मे पुण्य तथा पाप, धर्म व अधर्म, सत्य व असत्य तथा दया व निर्दयता के मध्य निरन्तर द्वन्द्व चलता रहता है। मानव हृदय की कोमल वृत्तियाँ कभी-कभी कठोरता के कोहरे मे दब कर प्रभावहीन हो जाती हैं व मानव-मन असद्वृत्तियो की ओर दौडने लगता है, परन्तु यह क्रिया अल्पकालिक होती है। अनुभव के आधार पर विचारको ने यह निर्णय दिया है कि अन्तिम विजय सद्वृत्तियो की ही होती है, जिनके सहारे मानव धर्म की ओर बढता है। यहाँ प्रश्न उठ सकता है कि धर्म क्या है? धर्मानुकूल जीवन क्या है? साधारण शब्दो मे आत्म-कल्याण और मानव हित सम्पादन मे प्रवृत्त होना ही धर्म है। अर्थात् उत्तम गुणो को ही धारण करना सच्चा धर्म है। धर्म कभी कट्टरता या संकुचितता नही सिखाता।

धर्म के मूल मे एक और प्रवृत्ति होती है, वह है दया। दूसरो का कष्ट देखकर स्वय उसी कष्ट की अनुभूति करने की भावना का नाम ही दया है। पर-पीडा मे स्वपीडा का भाव ढूँढना ही दया है। दया की अभिव्यक्ति मन, वचन व कर्म के माध्यम से होती है। दया के धारक का लक्ष्य

सदैव यही रहता है कि उसका मन ऐसे विचारो से तर रहे। जिनसे किसी की भावनाओ को ठेस पहुँचती हो। वह ऐसा वचन न कहे जो किसी के हृदय को कष्ट पहुंचावे। वह किसी ऐसी क्रिया का भागी न बने जिससे सम्मुख व्यक्ति के हितो को आघात पहुँचता हो। दया शब्द की व्याख्या करने से निष्कर्ष निकलता है कि दया शब्द जीवन धर्म का पर्याय है। दया के बिना धर्म पगु है। धर्म अनेक तत्त्वो का मिश्रण है। जिस धर्म-क्रिया मे दया तत्त्व की मात्रा जितनी अधिक होगी, वह क्रिया उतनी ही निखर कर सम्मुख आएगी। धर्म का यह निखार ही मानव का चरम लक्ष्य है।

दया की परिणति सामान्य जीवन मे अहिंसा के माध्यम से होती है। गुरुवर से वार्तालाप के दौरान यह ज्ञात हुआ कि अहिंसा की व्याख्या विभिन्न धर्मों मे अनेकानेक प्रकारो से की है, किन्तु जैनत्व मे अहिंसा का अत्यन्त ही व्यापक और सार्वभौम अर्थ दिया गया है। किसी भी जीव के शरीर को कष्ट या यातना देना हिंसा है, यह सभी मानते हैं, किन्तु जैनत्व का विश्लेषण इससे कई कदम आगे है। जैनत्व मे किसी को मानसिक आघात पहुँचाना या किसी का हृदय तक दुखाना भी हिंसा है। अहिंसक व्यक्ति के हृदय मे दया का वास होता है। अर्थात् प्रत्येक अहिंसक व्यक्ति पहले दयालु होता है तथा बाद मे कुछ और। दया, धर्म व अहिंसा के इसी सन्दर्भ मे स्वर्गीय गुरुवर श्री पन्नालाल जी महाराज साहब की सौम्य, करुणामयी, दयाप्रदायिनी-मूर्ति का स्मरण होना अत्यन्त स्वाभाविक है। पर-दुखकातरता से उनका हृदय ओत-प्रोत था। उनके प्रत्येक उद्गार व क्रिया-कलाप से दया की मधुर धारा प्रवाहित होती थी। हृदय मे पाप की छाया का धारक उनके सम्मुख पहुँचते ही दया की सुरम्य किरणो का स्पर्श पाकर स्वच्छ व पाप मुक्त हो जाता था। उसके मन मे प्रायश्चित्त की भावना का उदय हो जाता था, जिससे आत्म-शुद्धि की प्रेरणा मिलती थी। यह प्रभाव गुरुवर की अखण्ड तपस्या का ही प्रतिफल था। किसी भी प्राणी का दुख सुनकर गुरुवर के हृदय मे करुणा उमड पडती थी, फिर चाहे वह प्राणी जैन हो या अजैन।

मूक प्राणियो के प्रति भी गुरुवर के हृदय मे दया का अथाह भण्डार था। अपने प्रवचनो व व्याख्यानो मे गुरुवर अक्सर गोवध की तरफ इगित कर समाज को इस हिंसक प्रवृत्ति से जूझने की प्रेरणा देते थे। गुरुवर की कार्य स्थली ग्राम थे। दया की भावना राजस्थान के उन ग्रामो मे भलीभाँति दृष्टव्य है, जहाँ कि तथाकथित खटीक बन्धुओ ने गुरुजन की वाणी का अनुसरण कर वधिक वृत्ति का परित्याग कर दिया। आज वे स्वय को वीरवाल के नाम से पुकारने मे गौरव का अनुभव करते हैं। इस क्रिया से लाखो जानें बच गयी व सैकडो मानवो के आत्म-कल्याण का मार्ग खुल गया। वीरवाल बन्धुओ को जैनत्व की दीक्षा प्रदान कर उन्होने इतिहास को एक नवीन मोड प्रदान किया है।

मन व वचन के माध्यम से दया का प्रचार गुरुवर ने खूब किया। साथ ही समाज को धन के माध्यम से दया को पालन करने की प्रेरणा भी प्रदान की। जीव दया फण्ड की स्थापना व उसके माध्यम से चल रही अनेकानेक दया प्रवृत्तियाँ गुरुवर के सदुपदेशो का ही पुनीत फल है। गुरुवर के व्याख्यानो मे भी सदैव इसी बात पर जोर रहता था कि जब हृदय मे दया वृत्ति जागृत हो जाएगी तब पाप, क्रोध व निर्दयता जैसी राक्षसी वृत्तियो का स्वत ही हनन हो जायगा। जीवन की सार्थकता इसी मे है कि हम जीवन को दया के साथ एक रस होने दें, अर्थात् जीवन व दया परस्पर पर्याय बन जाय। परपीडा की स्वपीडा मे अनुभूति ही दया का मूल है।

+

वे कुरीति मुक्त-समाज के स्वप्न-दृष्टा थे

☐ श्री गजेन्द्र कुमार जैन (अजमेर)

राजस्थान केशरी प्रवर्तक मुनि श्री पन्नालालजी महाराज साहब का जन्म लगभग ८८ वर्ष पूर्व सावणी घटाटोप से घिरे मारवाड के कीथलसर ग्राम के माली परिवार मे हुआ। तव क्या कोई जानता था कि एक सामान्य किसान का यह वेटा आगे जाकर हजारो सस्कारवान् जैनो का श्रद्धाभाजन वनेगा और सम्य शिक्षित कहलाने वालो की सामाजिक कमियो को वता कर उनको नई दिशा दिखायेगा ? कुआँ खोदते-खोदते किस पत्थर के हटते ही जल का स्रोत फूट पडेगा, यह पहले से पता रहता ही नही है, किन्तु ऐसा होता है तो इसी उदाहरण का दोहराना होता है कि मानव मे असीम सभावनाएं गुंफित रहती हैं और आवश्यकता है तो केवल इतनी कि व्यक्ति के अगार को उनके प्रति जागृत कर दिया जाये और प्रेरणा की छोटी-सी लौ वहाँ ज्योतित हो उठे।

मुनिश्री के पहली वार दर्शन मैंने कव किये, यह अव याद नही पडता किन्तु मेरे ग्राम टाँटोटी और मेरे परिवार मे जिस गहरी श्रद्धा से उनकी वात की जाती थी, वह मुझे स्पष्ट याद है। भिणाय और टाँटोटी उनके प्रारम्भिक कार्यक्षेत्र रहे और उनकी सामाजिक योजनाओ को कार्यान्वित करने मे तो टाँटोटी के समाज का स्थान सर्वोपरि ही रहा। उनके परामर्श को स्वीकार करके जव अन्य स्थानो के श्रावको ने वैयक्तिक प्रतिष्ठा के झूठे और थोथे वहाने वनाकर उन नियमो का भग कर दिया, तव भी टाटोटी वरसो तक उन नियमो पर अडिग वना रहा। मैं १९३४ मे श्री जैन गुरुकुल व्यावर मे अध्ययन हेतु भर्ती हुआ तो वहाँ वालविवाह, वृद्ध विवाह, दहेज, मोसर आदि कुरीतियो के दुष्प्रभावो की व्यापक जानकारी मिली और मैंने उन पर एक जोशीला लेख लिखा जो 'झलक' मे छपा। छुट्टी मे घर आने पर महाराजश्री के दर्शन हुए तो उन्होंने मुझे उस लेख पर शावासी दी, क्योंकि उन दिनो उनका भी अभियान इसी विषय मे चल रहा था और वे ओसवाल पचायतो मे इस प्रकार के सादगीपूर्ण सुधारण के लिए प्रयत्नशील थे। मेरे किशोर हृदय मे तव से मुनिश्री के प्रति जो श्रद्धा जगी, निरन्तर वढती रही। यद्यपि अपने जीवन के अन्तिम कई वर्षो तक घुटनो में दर्द रहने के कारण और अधिक विहार न कर सकने की विवशता से उनके प्रारम्भिक प्रयासो को टूटने से वे नही वचा पाये, फिर भी जव १९६३ मे अजमेर क्षेत्रीय ओसवाल सघ के मच से इस दिशा में एक व्यवस्थित व क्षेत्र व्यापी प्रयास किया गया तो उनका आशीर्वाद सहज ही आयोजको को प्राप्त रहा। यदि अजमेर व व्यावर के समाज अपने सकीर्ण स्वार्थो के दायरो से निकल कर उक्त सघ के प्रभावो से वचे होते या मुनिश्री वढती आयु के कारण अशक्त नही हो गये होते तो इस क्षेत्र से विश्वासत सामाजिक कुरीतियाँ नामशेष हो गई होती। यह खेद का विषय रहा कि थोडे ही समय वाद उन नियमो की अवज्ञा करने मे कुछ ही ग्रामो के साधन सम्पन्न श्रावको ने पहल कर वुरा उदाहरण प्रस्तुत किया और उन श्रावको मे अधिकाश ऐसे रहे जो अपने को मुनिश्री के परम भक्त व अनुयायी मानते व जताते रहे हैं।

आज मुनिश्री हमारे मध्य नही हैं लेकिन जव उनके दीर्घ-जीवन व समाज के वहुमुखी क्षेत्रो मे उनके कृतित्व की याद करता हूँ तो मुझे उन सव कार्यो मे महत्त्वपूर्ण यही कुरीति-निवारण का कार्य लगता है। मैंने कई वार सोचा कि जव अनेक मुनियो ने अपनी आत्मा को उन्नत वनाने या कि श्रावको को अपनी भव वाधा से मुक्त होने का उपदेश देकर ही अपने कर्त्तव्य की इतिश्री मान ली, तव केवल उनके ही अपने मन मे समाज के कमजोर जन की विवशता के काँटे की यह चुभन इतनी तीव्रता से क्यों महसूस हुई ? समाज के सिरमोर कहाने वाले श्रावक जव इन रस्मो मे मस्त होकर अपनी गार्हस्थ्य की सफलता समझ रहे थे तव उस पिछडे युग मे मुनिश्री ने ही गरीव को वचाने का यह दुस्साहस कर धनवानों की नाराजी क्यो मोल लेना जरूरी समझा ? मेरे मन से

इसका उत्तर भी मिला और यह कि वे माली कुल मे जन्मे थे तो सभवत पारिवारिक सस्कार से उन्होंने इस मूल सत्य को सभवत बहुत पहले समझ लिया था कि उपवन मे फूलो के पौधे और खेत मे अन्न की फसल तभी भली-भाँति फलफूल सकती है जब उनके बीच मे या कि आस-पास उग आई बेकार वनस्पतियो अथवा झाड-झखाडो को उखाड कर फैंक दिया जावे। चाणक्य ने जिस प्रकार मठा डाल कर कुश कटको को जडविहीन करने का बीडा उठा लिया था, उसी प्रकार मुनिश्री ने अपनी प्रेरणा और शक्ति समाज की जडे खोखली करने वाली इन कुरूढियो के उन्मूलन मे लगाई थी और उसके सुपरिणाम आज भी उन स्थानो पर देखे जा सकते हैं जहाँ उनकी प्रेरणा फलवती रही है। निस्सदेह मुनिश्री सामाजिक जागरण के अग्रदूत थे और उन्होने एकाकी जितना कार्य किया उसकी तुलना उनके पहले और बाद मे भी किसी से की जा सके, ऐसा कोई दृष्टिगोचर नही होता।

अहिंसा को उन्होंने कितने व्यापक परिप्रेक्ष्य मे समझा था, यह उनके उक्त कार्य से स्पष्ट हो जाता है। असल मे अहिंसा व्यावहारिक रूप से तब तक बेमानी है, जब तक सामाजिक समानता और न्याय को प्रतिष्ठा नही मिल जाये। यदि हमे उनकी याद आती है तो उनके मन मे पलती समाज के सामान्य व साधनहीन-जन की पीडाओ से क्या हम अनछुये रह सकते है? जैन मुनि तो निर्ग्रन्थ होते हैं और उनकी माँग तो केवल हमारे व्यसनो की ही रही है ताकि उनका समाज निर्व्यसनी बन जावे। प्रश्न यह है कि उनके जीवन सन्देश को क्या हम पतित प्रथाओ को पूर्ववत् पालते रह कर आगे बढा सकेंगे? हमसे उनकी जो माँग है, क्या उसकी पूर्ति सामाजिक विषमता और हानिकर दिखावे व प्रतियोगिता की भावना का पोषण करते रह कर की जा सकेगी?

काश, हमारी तन्द्रा अब भी टूटे और हम अब तक अधूरे रहे उनके मिशन को सफल कर उनके योग्य अनुयायी अपने को बना सकें। मुझे स्पष्ट लगता है कि कुरीति मुक्त और प्रगतिशील स्वावलम्बी समाज का गठन ही उनका चिरन्तन स्वप्न था और उसको साकार करने की दिशा मे सच्चे मन से लग कर ही हम उनको खरी श्रद्धाजलि दे सकते हैं।

देखना है इस शाश्वत स्मारक के निर्माण मे हम कब लगते हैं?

×

☐ वैराग्यवती सुशीलाकुमारी जैन

मस्तिष्क की तीक्ष्णता, चतुरता, सूझ-बूझ, स्मरण-क्षमता एव व्युत्पन्नमति को आमतौर से बुद्धिमत्ता समझा जाता है, पर अध्यात्म के चर्चा प्रसग मे दूरदर्शी विवेकशीलता को "प्रज्ञा" कहा जाता है। यही आध्यात्मिक बुद्धिमत्ता है। प्रज्ञा सामान्य व्यवहार बुद्धि के लिए प्रयुक्त नही होता। चतुरता, कुशलता एव जानकारी की जो शिक्षा स्कूलो कारखानो एव बाजारो मे सीखने को मिलती है, प्रज्ञा उससे सर्वथा भिन्न है। जिस विद्या के आधार पर आत्मबोध होता है, जीवन का महत्त्व, स्वरूप, लक्ष्य एव उपयोग विदित होता है साथ ही सत्-असत् का उचित-अनुचित का भेद कर सकने वाली क्षीर-नीर विवेचनी वृत्ति विकसित होती है उसी को प्रज्ञा कहा जाता है।

प्रज्ञा का प्रधान कार्य मनुष्य मे सत्-असत् निरुपिणी बुद्धि का विकास-परिष्कार करना है। इसके मिलने का प्रथम चमत्कार यह होता है कि मनुष्य वासना तृष्णा की पशु-प्रवृत्तियो से ऊँचा उठकर मनुष्योचित कर्म धर्म को समझने और तदनुसार उत्कृष्टतावादी रीति-नीति को अपनाने के लिए अन्त प्रेरणा प्राप्त करता है और साहस पूर्वक आदर्श जीवन जीने की दशा मे चल ही पडता है। ऐसे व्यक्ति स्वभावत दुष्कर्मों से विरत हो जाते हैं।

"प्रज्ञा" मनुष्य को आत्मिक दृष्टि से सुविकसित एव सुसम्पन्न बनाती है। आत्मदृष्ट्या

सुसम्पन्न मानव अपने जीवन-स्तर को उच्चस्तर तक पहुँचा देता है और फिर वह सामान्य जीवात्मा न रहकर महात्मा, देवात्मा एव परमात्मा स्तर की क्रमिक प्रगति करता चला जाता है।

प्रज्ञा पुरुष की आत्मिक पूँजी निरतर वढती चली जाती है। जहाँ आत्मिक सम्पन्नता है वहाँ उसकी अनुचरी भौतिक समृद्धि की भी कमी नही रहती। यह वात अलग है कि आत्मिक क्षमताओ का धनी व्यक्ति उन्हें वाह्य प्रदर्शन मे खर्च न करके किसी महान् प्रयोजनो मे लगाने के लिए नियोजित करता रहता है।

तो, आज हम जिस प्रज्ञा पुरुष के जीवन का पुण्य मन्थन कर रहे हैं वे हैं प्रवर्तक पूज्य गुरुदेव श्री पन्नालाल जी महाराज साहव अपार प्रज्ञा के धनी "प्राज्ञर्षि" मुनिराज।

वे प्रज्ञा-पुरुष प्रज्ञा (पन्ना) प्रखरता के प्रमुख केन्द्र रहे है और यही कारण है कि वे क्षमा सहिष्णुता, विरति, आत्मानुशासन एव नियम वद्धता आदि प्रज्ञा गुणो से अपने जीवन को कुन्दन की भाँति निखार पाए। क्षमा से क्षोभ को, मृदुता से मान को, ऋजुता से माया को एव विरक्ति से आसक्ति को जीतकर आत्मा से अरिहन्त व ससारी से सिद्ध वनने के लिए समता, मैत्री गुणानुरागता और अनुग्रह वृत्ति से अपने अन्त करण को भावित कर सके।

वस्तुत उन प्रज्ञा पुरुष के आदर्श जीवन का अभिनन्दन करना हमारा अहोभाग्य है, परम कर्त्तव्य है। साथ ही उनके आदर्श गुणो को आत्मसात् करना भी हमे इष्ट है, योग्य भी है। क्योकि यही उनका सच्चा अभिनन्दन है, वास्तविक श्रद्धार्पण है।

☆

☐ वैराग्यवती निर्मलाकुमारी जैन

"पूज्य प्रवर्तक दीन दयाल, धन्य-धन्य गुरु पन्नालाल।"

उपरि लिखित ध्वनि का जव मैं पाठ करती हूँ तो सहसा चित्त यो कुछ चिन्तन करने लगता है कि धन्य कौन है ? धन्य पुरुष का जीवन कैसा हो सकता है ? वह किस उद्देश्य की पूर्ति के लिए जीता है ? और वह अपने लक्ष्य को कहाँ तक टिकाये रखता है ? यो अनेक विचारधाराएँ चिन्तन मानस मे तैरने उतरने लगती हैं।

फिर कुछ विचार-मन्थन के वाद पाती हूँ — कि वक वृत्ति को अपनाकर भक्त मण्डली को गुमराह करने वाला धन्य हो नही सकता। केवल अपने शरीर के पीछे जीवन के अनमोल क्षणो को विताने वाला भी धन्य कैसे हो सकता है ? धन्य तो वह है जो अपने जीवन को हसके समान वनाता है। अपने चित्त को इतना उज्ज्वल एव निर्मल वना लेता है कि उस पर निन्दा और प्रशसा का कोई प्रभाव नही पड़ता। फिर उसे अपने लक्ष्य से न प्रशसा विचलित कर सकती है और न निन्दा ही दूर हटा सकती है।

वस्तुत प्रवर्तक पूज्य गुरुदेव श्री भी ऐसे ही 'हस समाणा" महान् पुरुष थे। उस महान् सन्त का महान् जीवन जैसा दूर से सुना देखा जाता था ठीक वैसा ही वह निकट से भी होता था। दूर और निकट का उनके जीवन मे कोई अर्थ नही रहता था। वे जैसे वाहर थे वैसे ही अन्दर थे। इसका प्रमुख कारण था उनकी सहजता और सरलता। जिस जीवन मे न सहजता हो न सरलता हो वह जीवन अन्दर मे कुछ और होता है और वाहर मे कुछ अन्य ही। धन्य जीवन उसे ही कहा जा सकता है जो अन्दर और वाहर एक समान रह पाता है। पूज्य गुरुदेव श्री का जीवन "मनस्येक वचस्येक कर्मण्येक महात्मनाम्" का मूर्तिमन्त प्रतिनिधि जीवन था, धन्य जीवन था। इसीलिए उनके लिए भक्तगण गाया करते हैं

"पूज्य प्रवर्तक दीन दयाल, धन्य धन्य गुरु पन्नालाल॥"

☐ डॉ० नरेन्द्र भानावत (जिनवाणी)

वसन्त पचमी को प्रकृति मे नयी वहार क्या आई, एक आलोक स्तम्भ धरती से उठ गया। पडित रत्नमुनि श्री पन्नालाल जी महाराज स्थानकवासी जैन सघ के वयोवृद्ध श्रुत स्थविर और महान् प्रभावक सत थे। वे स्वाध्यायी सघ की प्रवृत्ति के मूल स्रोत थे। समाज के प्रकाश-स्तम्भ थे। समाज को सगठित करने मे उन्होने बडा योग दिया। मरुधर प्रान्त के स्थानकवासी समाज के सतो का जो सम्मेलन पाली मे हुआ था, उसके वे मुख्य प्रेरक थे। अजमेर-सम्मेलन को सफल बनाने मे भी उनका पूरा हाथ था। सादडी मे जो श्रमण सघ वना, उसको सुव्यवस्थित बनाने मे वे सदा तत्पर रहे। समाज मे व्याप्त शिथिलाचार के वे जवरदस्त विरोधी थे। इन परिस्थितियों मे उन जैसे शुद्ध विचारशील, क्रियाशील, आगमज्ञ, साधक सत की अत्यन्त आवश्यकता थी। उनके द्वारा स्थापित स्वाध्यायी संघ समाज के लिए वरदान सिद्ध हुआ है। इसके द्वारा ज्ञान, दर्शन, चारित्र की जो ज्योति जगाई जा रही है, वह समाज के लिए चिरस्मरणीय रहेगी।

मुनि श्री समन्वयवादी थे, पर सिद्धान्त के आगे झुकना नही जानते थे। वे सच्चे समाज सुधारक थे। समाज मे व्याप्त कुरीतियो के विरुद्ध आवाज उठाने वालो मे वे अग्रणी संत थे। आज वे हमारे बीच नही हैं। हमे उनके पवित्र जीवन से प्रेरणा ग्रहण कर उनके द्वारा प्रवर्तित रचनात्मक कार्यों को पूर्ण कर, स्व व पर के कल्याण मे लगे रहना चाहिए। हम जिनदेव से प्रार्थना करते हैं कि उस पुण्यात्मा को चिर शाति प्रदान करें। ☆

☐ सम्पादक-ओसवाल

प्रवर्त्तक श्री एक जैन साधु थे ऐसा नहीं था, वे जैन अजैन सवके प्रति दयालु, परोपकारी एव कल्याणकारी भावनाओ से अभिभूत महान् सत थे। उनका स्वर्गवास निश्चय ही राष्ट्र की एक महान् क्षति है। 'ओसवाल' परिवार की ओर से हार्दिक श्रद्धाजलि

☐ तत्री, श्री स्थानकवासी

प्रवर्त्तक पूज्य श्री पन्नालाल जी महाराज जेओ वयोवृद्ध होवा थी छेल्ला केटलाक वर्षों थी विजयनगर (अजमेर) मा स्थिरवास हता, तेमनु मनन चिंतन भारे विद्वत्ता भर्यु हतु। वर्धमान श्रमण सघ ना एक साचा सलाहकार हता। छेल्ले छेल्ले व० श्रमण सघ नी स्थिति डामाडोल जोइ तेमणे तेमा थी राजीनामु आप्यु हतु छताय तेमना प्रत्येनो कोइनो य सद्भाव ओछो थयो न हतो।

वर्धमान श्रमण सघ स्थापित तिथि निर्णायक समिति ना तेओ अग्रणी हता। एटलुज नही पण दर वरसे तेओ पोतेज तिथि पत्र बनावता, मतभेदो वाला ने ज्योतिषनी सचोट दलीलो थी समजावता जे दलीलो सामाने तरतज गले उतरी जती। गुजरात-सौराष्ट्र, कच्छनी संवत्सरी नी जे मान्यता (बे श्रावण, बे भाद्रपद आवता) हती तेज मान्यता ने तेओ श्री साची मानता।

प्रवर्तक पूज्य महाराज श्री ए १३ वर्ष नी उमरे दीक्षा लीधी हती अने ६६ वर्ष सुधी चारित्र नु एक धारुं पालनकरी, ८२ वर्ष नी उमरे ता ३-२-६८ ना रोज तेओश्री अनश्वर जगत नो त्यागकरी गया।

आ वदनीय महापुरुष ना आत्मा ने शासन देव अक्षय शाति अर्पे ए प्रार्थना।

☐ सम्पादक, सम्यग्दर्शन

वयोवृद्ध स्थविर प्रवर्त्तक स्वामी श्री १००८ श्री पन्नालालजी महाराज का गत ३-२-६८ को ८२ वर्ष की आयु मे अकस्मात् स्वर्गवास हो गया। आप १३ वर्ष की उम्र मे दीक्षित हुए और ६६ वष श्रमण पर्याय मे रहे। श्रमण परम्परा एव आगमिक विचारधारा के आप समर्थक एव पोषक थे।

श्रमण-सगठन के भी आप समर्थक रहे, किन्तु जब सगठन मे बहुत बडी-बडी विकृतियाँ देखी और जिनका परिमार्जन अशक्य लगा तो आप उससे चिपके नही रहे, और अपना सम्बन्ध छोडकर पृथक हो गये।

श्रमण परम्परा के श्रद्धालु समर्थक एव पोषक ऐसे थोडे-से सन्तो मे आप भी थे। आपके स्वर्गवास से परम्परा पक्ष को बडी क्षति हुई है। बढती एव बढाई जाती हुई मर्यादा-हीनता, जैनत्व उच्छेदकता तथा स्वच्छन्दता के समय आपका वियोग, एक विशेष क्षति है। आपकी आत्मा को शाश्वत शाति प्राप्त हो।

हम आशा करते हैं कि आपके शिष्यगण अपनी आगमिक परम्परा के पोषण, रक्षण एव पुरस्करण मे बढ-बढ कर योग प्रदान करते रहेगे।

☆

☐ सम्पादक, जैन प्रकाश

प्रज्ञा-प्रकाश के पुज श्रमणवर्य स्थविर प्रज्ञा रत्न प्रवर्तक प० र० मुनि श्री पन्नालाल जी महाराज जो जीवन पर्यन्त एक योद्धा की भाँति समाज के अज्ञानता, अनेकता एवं अन्ध-विश्वास आदि शत्रुओ के प्रति सतत जूझते रहे। वीर-मार्ग पर निर्भय होकर जागृति पूर्वक अपने कदम आगे बढाते ही रहे अन्तिम श्वास तक श्रमण सघ की अखण्डता का जाप करते रहे। लेकिन समाज का यह दुर्भाग्य है कि किसी अगम्य कारण से उनकी इच्छापूर्ति नही हो सकी। ऐसे प्रज्ञा के प्रकाश-पुज का अन्तर्धान होने से समाज मे अन्धकार व्याप्त हो जाना स्वाभाविक ही है। उन्होंने स्वाध्याय प्रवृत्ति को प्रगतिशील बनाकर समाज मे शास्त्रीय ज्ञान की जो रुचि उत्पन्न की उसकी परम्परा चलती रहेगी, ऐसे हमें पूर्ण आशा है।

प्रज्ञा के प्रकाशपुंज के देहावसान से समाज आज दिग्मूढ हो गया है। उनका तप पूत शरीर हमारे बीच न रहते हुए वे आज भी जीवित हैं। इस अमर आत्मा के चरणो मे हार्दिक श्रद्धाजलि। ☆

☐ सम्पादक, तरुण जैन

श्रद्धेय प्रवर्तक प० मुनि श्री पन्नालाल जी महाराज साहब के स्वर्गारोहण के समाचारो से स्था० जैन समाज को अत्यन्त आघात पहुँचा है। प्रवर्तक श्री जी ने १३ वर्ष की बाल्यावस्था मे ही भूतपूर्व पूज्य श्री नानकराम जी महाराज साहब की सम्प्रदाय मे दीक्षा अगीकार कर शास्त्रो का प्रगाढ ज्ञान प्राप्त किया। आप एक महान् वक्ता, स्पष्टवादी क्रियापात्र सत थे। जिनकी पूर्ति निकट भविष्य मे असभव प्रतीत होती है।

समाज के सगठन के प्रति आपकी निष्ठा अत्यन्त प्रशसनीय थी। सादडी सम्मेलन मे वर्द्ध० स्था० श्रमण सघ की स्थापना मे आपने अवर्णनीय सहयोग प्रदान किया। उसके पश्चात के विभिन्न सम्मेलनों मे आपका सक्रिय सहयोग सगठन के लिए वरदहस्त प्रमाणित हुआ।

आपने प्राय ६९ वर्ष तक कठोर साधनामय सयमी जीवन बिताया एव सामाजिक जागृति का सदैव ही अथक प्रयास किया। आपकी दूरदर्शिता के कारण ही स्थान-स्थान पर स्वाध्यायी सघो की स्थापना हुई।

गा रही है गीत दुनियाँ उनके तप के त्याग के।
थे कुसुम सुरभित अनुपम, विश्व के वह बाग के॥